गीता प्रकाश

श्रीमद्भगवद् गीता
गीता व्याकरण
गीता कोश

कृष्ण किशोर

गीता प्रकाश

श्रीमद्भगवद् गीता
गीता व्याकरण
गीता कोश

कृष्ण किशोर

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रथम संस्करण ५००० जन्माष्टमी संवत् २०४९
(२१-८-९२)

मूल्य : १०० रुपये U.S. $ 15

ISBN 81 - 85304 - 56 - 4

प्रकाशक – कृष्णकिशोर
श्रीत्रिलोचन ज्ञान-विज्ञान संस्था
५५ सरत् बोस रोड
कलकत्ता ७०००२५

लेसर टाईप सेटिंग : एमके प्रेस, २२ रविन्द्र सरणी, कलकत्ता- ७०० ०७३
फोन : २७-४१६६

मुद्रक : ऑफसेट प्रोसेस, २४सी, रविन्द्र सरणी कलकत्ता- ७०० ०७३

बंगाल में पाई गई [illegible] ई. की ताम्र पट्टिका पर आधारित

शिल्पी श्री सुनील पाल के सौजन्य से

कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्

बंगाल में पाई गई, ११९६ ई. की ताम्र पट्टिका पर आधारित

शिल्पी श्री सुनील पाल के सौजन्य से

भागलपुर (बिहार) के स्वनामधन्य स्वर्गीय सेठ बलदेव दास शाह ने सौ वर्ष पूर्व, कलकत्ता में जिस धर्म निष्ठा से अपने व्यापार का बीजारोपण किया, वह अब वटवृक्ष के रूप में है–

इस पुस्तक के प्रथम संस्करण के प्रकाशन का सम्पूर्ण आर्थिक भार श्री सेठ बलदेव दास शाह चैरिटेबल ट्रस्ट, ५५ शरत् बोस रोड, कलकत्ता (७०००२५) ने सहर्ष अपने ऊपर लिया है–

लेखक हृदय से आभारी है।

॥ श्री हरिः ॥

अनन्त श्री विभूषित श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर
श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज
ज्योतिर्मठ (बदरिकाश्रम) हिमालय

सञ्चारयात्रास्थान
श्री राधामाधव मन्दिर
१।१।१ काशीसेठ लेन. कलकत्ता.४

पत्राङ्क ....   दिनाङ्क १४ दिसम्बर ८१

शुभाशीष: — श्री

श्रीमद् भगवद् गीता पर "गीता प्रकाश" नामक हिन्दी में अनुवाद देखा सहज गद्यात्मक लघु वाक्यों में अनुवाद किया गया है, जो हृदयङ्गम होने में सुगम होगा.

श्लोकों को बिना कठिनाई के पढ़ने के लिये सन्धि-विच्छेद शैली में लिखा गया है. यह प्रयास भी समीचीन है. अनुवादक ने दूरदर्शिता से यह प्रयास किया है, जो अनुमोदनीय है.

कहीं कहीं लिखी गई टिप्पणियाँ भी महत्वपूर्ण हैं. पूज्य जगद्गुरुवर्य सन्तुष्ट हैं. उनके शुभाशीष हैं इस प्रयास के साफल्य के लिये.

पूज्य शङ्कराचार्य जी के निर्देश से -:

भाउ पुरोहित.
२०३८ [illegible]
चन्दननगर.

अपनी 'अति अचेत' अवस्था में,

मैने आप को देखा है,

गीता पढ़ते – मां ।

प्रेरणा स्वरूप–

यह "गीता प्रकाश", आज आप को

समर्पित है

सूची

ग्रन्थ संदर्भिका

१. The Bhagavad Gita — Annie Besant and Bhagavan Das

२. The Bhagavadgita — S. Radhakrishnan

३. श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य अथवा कर्म योग शास्त्र — लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

४. गीता माता — महात्मा गांधी

५. संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ — चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा तथा पण्डित तारिणीश झा

६. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर — रामचन्द्र वर्मा

७. अँगरेजी-हिन्दी कोश — फादर कामिल बुल्के

८. गीता व्याकरणम् — श्रीदीवानचन्द्र शास्त्री

९. संस्कृत व्याकरण-प्रवेशिका — बाबूराम सक्सेना

दो शब्द

गीता पर एक और पुस्तक ? प्रश्न स्वाभाविक है। गीता पर महापुरूषों की अगणित टीकाएं हैं, अगणित व्याख्यायें हैं। इस ओर एक और प्रयास किसी भी साधारण व्यक्ति के लिए धृष्टता है। अतः ऐसा कुछ न करते हुए गीता प्रकाश का ध्येय है कि वे सब हिन्दी भाषा-भाषी जो संस्कृत नहीं जानते पर गीता पढ़ने के इच्छुक हैं, मूलरूप का रसास्वादन लेते हुए गीता पढ़ें और स्वयं समझें।

इस ध्येय की पूर्ति के लिए गीता प्रकाश में एक नई पद्धति का प्रयोग किया है। मूल श्लोक के नीचे उसका पाठ्य रूप दिया गया है। श्री राधाकृष्णन् ने यह काम अपनी गीता में रोमन लिपि में विदेशी विद्यार्थियों की सुविधा के लिए किया है। पाठ्य रूप के नीचे अलग-अलग शब्द दिये हैं। जिज्ञासु पाठक हर शब्द का अर्थ गीता कोश – जो गीता प्रकाश का एक भाग है – में देखकर श्लोक का ठीक-ठीक अर्थ करने में समर्थ होंगे। पुस्तक में संस्कृत व्याकरण का इतना भर ज्ञान कराने का भी प्रयत्न है, कि पाठकों को मूल श्लोक का अर्थ सरलता से समझने में सहायता हो सके। इस पद्धति से गीता रत्नाकर का मंथन करने से न जाने किसके

हाथ कौन अनमोल रत्न लग जाए। फिर भी, जिनके पास आरम्भ में इतना समय नहीं है, उनकी सुविधा के लिए श्लोक का अर्थ कर दिया है, इस विश्वास से कि यदि भगवान् यह उपदेश आज की भाषा में करते तो कुछ-कुछ ऐसा ही कहते।

आशा है, इस पद्धति से गीता पढ़ते-पढ़ते पाठक संस्कृत भाषा का भी पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लेंगे जो उन्हें अन्य धर्म ग्रन्थों के पढ़ने में सहायक होगा।

गीता प्रकाश को इस रूप में लाने के लिए मुझे पन्द्रह वर्ष से भी अधिक का समय लग गया। कारण, मेरी अपनी शारीरिक और सांसारिक व्यथाएं। फिर भी, इस सम्पूर्ण लम्बी कालावधि में, लगातार सर्वश्री शिव कुमार ओझा, और श्रीकान्त शर्मा एडवोकेट, मेरे साथ ऐसे लगे रहे, मानो यह सारी सिरदर्दी उन्हींकी हो। पुस्तक में जो भी अनोखापन आया है, उसे संवारने में इन मित्रों का बड़ा हाथ है।

आप गीता कोश और गीता व्याकरण का समुचित प्रयोग करते हुए गीता प्रकाश का श्रद्धा पूर्वक अध्ययन करें और मुझे अवश्य बतलाएं कि पुस्तक ने अपना ध्येय कहां तक प्राप्त किया है ? आप के सुझावों का स्वागत है।

पी १६/४ पूर्ण दास रोड
कलकत्ता ७०००२९
१६-८-९०

कृष्ण किशोर

श्लोकोच्चारण

जो संस्कृत भाषा ठीक से नहीं जानते, वे गीता के मूल श्लोक को बिना कठिनाई के पढ़ सकें इसके लिए हमने जो प्रयास किया है, उसे पीठद्वयाधीश जगद्गुरू शंकराचार्य ने "समीचीन" और "अनुमोदनीय" बतलाया है। यह पाठ्य-रूप मूल श्लोक के नीचे लिखा है जिसे पढ़ते समय आप निम्न बातों का, जो हम उदाहरण सहित दे रहे हैं, ध्यान रखें। उच्चारण यथासम्भव सुलभ और शुद्ध बन पड़ेगा :-

१. हलन्त शब्द :

(I) अध्याय एक श्लोक एक : 'किमकुर्वत' को 'किम्' 'अकुर्वत' लिखा है। आप अर्द्ध मकार बोलते-बोलते 'अकुर्वत' बोल जाएं। ध्वनि बोध " अकुर्वत" का होना चाहिए "कुर्वत" का नहीं। 'कुर्वत' निज में, कोई शब्द नहीं।

(II) अध्याय चार श्लोक सात में 'अभ्युत्थानमधर्मस्य' में 'अधर्मस्य' की ध्वनि आनी चाहिए। "धर्मस्य" उच्चारित करने से अर्थ का अनर्थ हो जाएगा।

२. लुप्ताक्षर :

दो स्वर पास-पास आने से सन्धि नियमों के अन्तर्गत एक का लोप हो जाता है अथवा दोनों का रूपान्तर हो जाता है :

(I) प्रथमोऽध्यायः में 'अ' का लोप हुआ है। लुप्त 'अ' को चिन्ह 'ऽ' द्वारा दर्शाया गया है। इस चिन्ह का नाम है "लुप्ताकार या अवग्रह"। यहां दूसरे 'अ' का उच्चारण नहीं होता।

(II) अध्याय एक श्लोक एक में "च्+अ+ए+व" में 'अ+ए' का रूपान्तर होकर पूरा शब्द "चैव" रह जाता है। यद्यपि इसका उच्चारण चैव ही है, जैसा मूल श्लोक में लिखा है, परन्तु पाठ्य रूप में "चै (ए) व" इसलिए लिखा है कि पाठकों का ध्यान "च" और "एव" शब्दों की ओर बना रहे। डा. राधा कृष्णन् ने इस बात को "अपास्ट्राफि कौमा" द्वारा दर्शाया है, जैसे अध्याय एक श्लोक तेरह में" (अ) भ्यहन्यन्त" और "(अ) भवत्"। (अ) के स्थान पर यह कौमा (') लगा दिया है।

३. लम्बी ध्वनि :

चरणान्त में आने वाले लघु अक्षर की ध्वनि भी लम्बी होनी चाहिए। जैसे अध्याय एक श्लोक एक में "संजय" को 'संजय्अअ....' करके पढ़ना चाहिए। हमने ऐसे शब्दों के अन्त में यह (– –) चिन्ह लगा दिया है।

४. अर्धाक्षर :

यदि शब्द में अर्धाक्षर है जैसे 'विद्वान्' में द् तो उसे 'विद्वान्' या 'विद्द्वान्' अथवा 'विदुआन्' पढ़ते सुना जाता है। पर आप सरल और सुगम उच्चारण 'विद्वान्' को ही अपनाएं अर्थात् अर्धाक्षर ('द्') पर कुछ बल (accent) देते हुए पढ़े। परन्तु, यदि शब्द के आरम्भ में ही अर्धाक्षर है और उसके पूर्व लघुवर्ण है तो अर्धाक्षर को दोहरा के बोलते हैं, जैसे 'प्रिय' के 'प्' को 'लोकप् प्रिय' में। ऐसे दोहराए जाने वाले अर्धाक्षरों को हमने पाठ्यरूप में दो बार लिख दिया है। देखें श्लोक १.९ में 'नानाशस्त्रप् प्रहरणाः'।

प्रवेशिका

I

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतींव्यासं ततो जयम् उदीरयेत् ॥

नारायण (श्री कृष्ण), नरश्रेष्ठ (अर्जुन), देवी सरस्वती और व्यासजी को नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिए । श्री मद्भगवद्गीता इसी महाभारत के भीष्म पर्व का एक भाग है ।

महाबली पाण्डव और कौरव एक दूसरे को जीतने की आशा से कुरूक्षेत्र में उतर कर आमने-सामने डटे थे–

विचित्रवीर्य नन्दन राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रों के अन्याय का चिन्तन करके शोक मग्न एवं आर्त हो रहे थे–

उसी समय व्यास जी वहां पहुंचे और एकान्त में धृतराष्ट्र से बोले–

"राजन् ! तुम्हारे पुत्रों का मृत्यु काल आ पहुंचा है । इसे काल का चक्कर समझ कर मन में शोक न करना । यदि संग्राम भूमि में तुम इन सब की अवस्था देखना चाहो तो मैं तुम्हें दिव्य नेत्र प्रदान कर देता हूं । फिर, तुम यही बैठे-बैठे युद्ध का सारा दृश्य देख सकोगे ।"

धृतराष्ट्र बोले- "हे ब्रह्मर्षि प्रवर, मुझे अपने कुटुम्बियों का वध देखना अच्छा नहींलगेगा। परन्तु, आपके प्रभाव से इस युद्ध का सारा वृत्तान्त सुन सकूं, ऐसी कृपा अवश्य करें।"

तब संजय* को वर देते हुए व्यास जी ने कहा- "राजन्! यह संजय आपको इस युद्ध का सब समाचार सुनाएगा। सम्पूर्ण युद्ध भूमि में ऐसी कोई बात नहींहोगी जो इसको प्रत्यक्ष न हो। यह सर्वज्ञ हो जाएगा और आपको युद्ध की हर बात बतलाएगा। कोई भी बात, प्रकट हो या अप्रकट, दिन में हो या रात में अथवा वह मन में ही क्यों न हो, संजय सब कुछ जान लेगा।"

तत्पश्चात् व्यास जी धृतराष्ट्र को धैर्य बंधाकर चले गए।

युद्ध आरम्भ होने में अभी देर थी। धृतराष्ट्र ने संजय से कई प्रश्न पूछे।

*महाभारत आदि पर्व अध्याय एक के श्लोक ८१ में संजय का नाम पहली बार आता है। व्यास जी कह रहे हैं: "इस (जय) ग्रन्थ में ८८०० श्लोक ऐसे हैं जिनका अर्थ मैं समझता हूं, शुकदेव समझते है और संजय समझते है या नहीं, इसमें सन्देह है।" सम्भवतः व्यासजी की इसी स्नेहोक्ति के कारण कुछ लोग संजय को व्यास जी का शिष्य बतलाते है। पर हमें इस बात की पुष्टि का कोई अन्य प्रमाण नहीं मिला। संजय के पिता गवल्गण थे। इनकी जाति सूत थी, पिता क्षत्रिय, माता ब्राह्मणी। सूतजाति के लोग प्रायः सारथि होते थे और कुछ कथा प्रवचन करते थे। कई लोग इन्हें महाराज धृतराष्ट्र का सारथि भी बतलाते हैं। गीता के संजय, मुनि स्वरूप प्रकाण्ड विद्वान् थे। यह आरम्भ से ही महाराजा धृतराष्ट्र के साथ रहे। राजदूत का कार्य भी कई बार बड़ी दक्षता से निभाया। संजय महाराज के सभासद ही नहीं, उनकी आँखें थे। अन्त में संजय ने ही धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती के वनाग्नि में समा जाने का समाचार गंगा की घाटी में एकत्र साधुओं को सुनाया और स्वयं हिमालय की ओर चले गये।

संजय ने युद्ध का वृत्तान्त आरम्भ किया :

दुर्योधन की सेना, कौरव महारथियों का युद्ध के लिए आगे बढ़ना, उनके व्यूह, वाहन और ध्वज आदि का वर्णन किया। यह सब विस्तार से सुनने के बाद धृतराष्ट्र ने पूछा -

"संजय ! उस समय किस पक्ष के योद्धा अत्यन्त हर्ष से भरकर युद्ध में प्रवृत्त हुए ?"

संजय ने कहा - 'राजन् ! दोनों ही सेनाओं के योद्धा उस समय हर्ष में भरे हुए थे। उभय पक्ष में सुगन्ध और पुष्पहारों का प्रादुर्भाव हुआ था।'

अब आगे "गीता संवाद" आरम्भ होता है, जो भीष्म पर्व के अठारह अध्यायों (पच्चीस से बयालीस) का विषय है। विद्वानों का मत है, यह संसार का सर्वोत्तम दार्शनिक संवाद है। भाषान्तर करते समय हमने इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि यह संवाद है, संवाद रहे; लेख निबन्ध न बने। अतः आप भी इसे श्रद्धापूर्वक कुछ उच्च स्वर से पढ़िए।

II

गीता में "आत्मन्-आत्मा" संबन्धित शब्दों का प्रयोग कई बार हुआ है। "आत्मा" को भगवान् ने अपनी विभूति बतलाया है। हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि गीता हमें "आत्मोत्सर्ग", "आत्मोद्धार" अथवा "आत्मोन्नति" का एक निश्चित मार्ग दिखलाती है। आज के संसार में फंसे मनुष्य के

लिए यह कितना आवश्यक है, इसे हम सब भली प्रकार जानते हैं। वास्तव में, इसी ध्येय की पूर्ति के लिए हम गीता अध्ययन करना चाहते हैं। अतः गीता अध्ययन के पहले, हमें चाहिए निम्न शब्दों के अर्थोंको भली प्रकार समझलें :-

(क) आत्मन्-आत्मा – (१) जीव, परमात्मा, मन या अंतः करण से परे उसके व्यापारों का ज्ञान कराने वाली सत्ता। (२) मन, बुद्धि, मनन शक्ति, स्फूर्ति, स्वभाव, शरीर के भीतर की ज्योति। (३) सूर्य, अग्नि, वायु। (४) मूर्ति, शक्ल, पुत्र, उद्योग। (५) सार, विशेषता, (६) धर्म, प्रकृति (७) पुरूष या समस्त शरीर।

(ख) आत्म – (१) अपना। (२) आत्मा का, आत्मा संबंधी।

(ग) अपना – सर्व. [संस्कृत– आत्मनः प्राकृत– अप्पण, अप्पणय] (१) निज का; (२) आप, निज ('को' के साथ) जैसे– अपने को।

प्रश्न उठता है "आत्मा" के इन अनेक अर्थोंके अन्तर्गत हमें किस अर्थ को मान्यता देनी चाहिए जिससे हम अपने धर्मकर्म में लगे अपना उद्धार कर सकें। लोकमान्य तिलक ने यह बात निश्चित कर दी है कि गीता हमें कर्म योग की शिक्षा देती है, संन्यास की नहीं। अपना कर्म करते रहिए, बिना वांछित फल की इच्छा के।

ऊपर आत्मा के सात प्रकार के अर्थों के सम्बध में हमें यह कहना है :-

(१) "जीव" गीता के अनुसार "परमात्मा" का ही अंश है। जैसे मनुष्य "परमात्मा" की सत्ता में "उद्धार" "उन्नति" अथवा "उत्सर्ग" तो क्या, किसी प्रकार का हेर फेर भी नहीं कर सकता, उसी प्रकार मनुष्य, "जीव" या "जो सत्ता, मन अथवा अन्तःकरण के परे है" उसे किसी प्रकार से प्रभावित नहींकर सकता।

(२) "मन", "बुद्धि," —"शरीर के भीतर की ज्योति" सब अर्थ स्पष्ट हैं, मनुष्य के वश में हैं या वश में किए जा सकते हैं। यह सब मनुष्य का "अपना" है जिसे वह सुधार सकता है, बना सकता है - अध्ययन द्वारा, परिश्रम से। गीता कहती है: 'इस देह के सब द्वारों में ज्ञान का प्रकाश फूट पड़ता है, जब सत्त्वगुण की वृद्धि होती है'। यह वृद्धि भी मनुष्य के अपने हाथ में हैं।

(३) से (७) में दिए अर्थ "आत्मोद्धार" के संदर्भ में असंगत से प्रतीत होते हैं।

अतः हमें "आत्मन्-आत्मा" का पर्याय "अपना" शब्द ही मान लेना चाहिए। कोश के अनुसार दोनों शब्दों का मूल एक ही है। "अपना" शब्द की आज के युग में एक और विशेषता है - "अपना" कहने से मनुष्य निजको भी सम्मिलित कर लेता है जब कि "आत्मा" कहने से इसके अनेकानेक अर्थोंको लेकर वह तटस्थ सा रह जाता है। आशा है पाठक "आत्मा" के पर्याय "अपना" शब्द को अपनाते हुए "स्वयं" अपने को अपने बल से ऊपर उठाने की दृष्टि से गीता अध्ययन करेंगे।

श्रीमद्भगवद्गीता

सूची

गीता प्रकाश

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

परिचय-१

मनुष्य जब किसी गम्भीर वास्तविकता के सम्मुख आता है, तो वह सोच में पड़ जाता है, किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाता है- करूं या न करूं।

यही दशा अर्जुन की हुई, जब उसने अपने सामने अपने ही बन्धु-बान्धवों को लड़ मरने के लिए खड़े देखा। वह स्तब्ध रह गया, चुपचाप बैठ गया।

अर्जुन के इसी विषाद के कारण अध्याय १ का नाम "विषाद योग" है।

श्रीमद्भगवद्गीता

अथ प्रथमोऽध्यायः

(श्रीकृष्णार्जुन संवादे विषादयोगः)

१.१ **धृतराष्ट्र उवाच–**
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥

धर्मक्.क्षेत्रे कुरुक्.क्षेत्रे
समवेता युयुत्सवः
मामकाः पाण्डवाश् चै (ए)व – –
किम् अकुर्वत संजय – –

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः
मामकाः पाण्डवाः च एव किम् अकुर्वत संजय

धृतराष्ट्र उवाच–
धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में एकत्र, युद्ध के इच्छुक, मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया ? संजय[१] !

१. महाराज धृतराष्ट्र का एक सभासद । (देखिए प्रवेशिका)

१.२ संजय उवाच–
दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं
व्यूढं दुर्योधनस् तदा
आचार्यम् उपसंगम्य – –
राजा वचनम् अब्रवीत्

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकम् व्यूढम् दुर्योधनः तदा
आचार्यम् उपसंगम्य राजा वचनम् अब्रवीत्

संजय उवाच–
व्यूह रचना में खड़ी पाण्डवों की सेना को देखकर, तब राजा दुर्योधन ने, आचार्य[२] के पास जाकर, ये वचन कहे–

१.३ **पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।**
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥

पश्यै (ए)तां पाण्डुपुत्राणाम्
आचार्य महतीं चमूम्
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण · –
तव शिष्येण धीमता

पश्य एताम् पाण्डुपुत्राणाम् आचार्य महतीम् चमूम्
व्यूढाम् द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता

हे आचार्य ! पाण्डु के पुत्रों की विशाल सेना को देखिए । यह आपके बुद्धिमान शिष्य, द्रुपद के पुत्र[३] द्वारा संघटित की गई है ।

२. द्रोणाचार्य ३. धृष्टद्युम्न

**१.४ अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥**

अत्र शूरा महेष्वासा
भीमार्जुन समा युधि - -
युयुधानो विराटश् च - -
द्रुपदश् च महारथः

अत्र शूराः महेष्वासाः भीमार्जुनसमाः युधि
युयुधानः विराटः च द्रुपदः च महारथः

यहां बड़े धनुर्धर वीर लोग हैं जो युद्ध में भीम और अर्जुन के तुल्य हैं:- युयुधान,[४] विराट और महारथी[५] द्रुपद ;

**१.५ धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥**

धृष्टकेतुश् चेकितानः
काशि राजश् च वीर्यवान्
पुरुजित् कुन्तिभोजश् च - -
शैब्यश् च नरपुंगवः

धृष्टकेतुः चेकितानः काशिराजः च वीर्यवान्
पुरुजित् कुन्तिभोजः च शैब्यः च नरपुंगवः

धृष्टकेतु,[६] चेकितान[७] और पराक्रमी काशिराज पुरुजित्[८] कुन्तिभोज[८] और नरश्रेष्ठ शैब्य[९] ;

४- सात्यकि (भगवान् कृष्ण का सारथि) ५- दसहजार धनुर्धारियों से अकेला युद्ध करनेवाला। ६- चेदिनरेश, (शिशुपाल का पुत्र) ७- एक यादव योद्धा ८- अर्जुन के दोनों मामा ९- शिबि देश का राजा (युधिष्ठिर के श्वसुर)

**१.६ युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥**

युधामन्युश् च विक्रान्त - -
उत्तमौजाश् च वीर्यवान्
सौभद्रो द्रौपदेयाश् च - -
सर्व एव महारथाः

युधामन्युः च विक्रान्तः उत्तमौजाः च वीर्यवान्
सौभद्रः द्रौपदेयाः च सर्वे एव महारथाः

वीरबली युधामन्यु,[१०] पराक्रमी उत्तमौजा,[११] सुभद्रापुत्र (अभिमन्यु) और द्रौपदी के पुत्र,[१२] सभी महारथी हैं ।

**१.७ अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥**

अस्माकं तु विशिष्टा ये
तान् निबोध द्विजोत्तम - -
नायका मम सैन्यस्य - -
संज्ञार्थं तान् ब्रवीमि ते

अस्माकम् तु विशिष्टाः ये तान् निबोध द्विजोत्तम
नायकाः मम सैन्यस्य संज्ञार्थम् तान् ब्रवीमि ते

हे द्विजश्रेष्ठ ! मेरी ओर के जो परम प्रमुख हैं उन्हें भी जान लीजिए । अपनी सेना के नायकों को आपकी जानकारी के लिए, बतलाता हूं ।

१० और ११ दोनों पांचाल्य अर्जुन के चक्र रक्षक थे । १२- महाभारत आदि पर्व अध्याय २२० श्लोक ७८-७९ के अनुसारः "शुभ लक्षणा पाञ्चाली ने अपने पांचों पतियों से पांच श्रेष्ठ पुत्रों को प्राप्त कियाः युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य; भीमसेन से सुतसोम; अर्जुन से श्रुतकर्मा; नकुल से शतानीक; और सहदेव से श्रुतसेन ।"

१.८ भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥

भवान् भीष्मश् च कर्णश् च – –
कृपश् च समितिंजयः
अश्वत्थामा विकर्णश् च – –
सौमदत्तिस् तथै (ए)व च – –

भवान् भीष्मः च कर्णः च कृपः चं समितिंजयः
अश्वत्थामा विकर्णः च सौमदत्तिः तथा एव च

स्वयं आप, भीष्म, कर्ण और रणविजयी कृप[१३] और ऐसे ही अश्वत्थामा,[१४] विकर्ण[१५] और सौमदत्ति[१६] भी ।

१.९ अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणा सर्वे युद्धविशारदाः ॥

अन्ये च बहवः शूरा
मदर्थे त्यक्तजीविताः
नानाशस्त्रप् प्रहरणाः
सर्वे युद्धविशारदाः

अन्ये च बहवः शूराः मदर्थे त्यक्तजीविताः
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः

और दूसरे अनेक शूरवीर जिन्होंने मेरे लिए जीवन को दांव पर लगाया है, नाना प्रकार के शस्त्र चलाने वाले हैं; सभी युद्ध में कुशल हैं ।

(१३) कृपाचार्यः यह द्रोणाचार्य के साले थे और उन से पहिले कौरवों और पाण्डवों को शस्त्र विद्या सिखाते थे । (१४) द्रोणाचार्य के पुत्र । (१५) धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से एक । (१६) राजा सोमदत्त के पुत्र–"भूरिश्रवा"

**१.१० अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥**

अपर्याप्तं तद् अस्माकं
बलं भीष्माभि रक्षितम्
पर्याप्तं त्व् इदम् एतेषां
बलं भीमाभि रक्षितम्

अपर्याप्तम् तत् अस्माकम् बलम् भीष्माभिरक्षितम्
पर्याप्तम् तु इदम् एतेषाम् बलम् भीमाभिरक्षितम्

फिर भी (ऐसा प्रतीत होता है कि) भीष्म द्वारा संरक्षित, हमारी वह सेना पर्याप्त नहीं (पर) इनकी यह सेना, भीम द्वारा संरक्षित, पर्याप्त है[१७] ।

**१.११ अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥**

अयनेषु च सर्वेषु - -
यथाभागम् अवस्थिताः
भीष्मम् एवा (अ)भिरक् क्षन्तु - -
भवन्तः सर्व एव हि - -

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागम् अवस्थिताः
भीष्मम् एव अभिरक्षान्तु भवन्तः सर्वे एव हि

(अतः) सेना के सब भागों में अपने-अपने स्थानों पर डटे हुए आप सबलोग भी भीष्म की ही चारों ओर से रक्षा करें ।

१७-पर्याप्त का अर्थ है यथेष्ट - जितना चाहिए उतना । कई टीकाकार इसका अर्थ सीमित करते है, भीष्मद्वारा सं रक्षित हमारी वह सेना असीमित है, अजेय है और इनकी यह भीम द्वारा संरक्षित सेना सीमित है । (दुर्योधन अहंकार से बोल रहे हैं मानों, पर अगले श्लोकों से इस बात की कुछ पु ष्टि नहीं होती) ।

१.१२ तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥

तस्य संजनयन् हर्षं
कुरुवृद्धः पितामहः
सिंहनादं विनद्यो (उ)च्चैः
शंखं दध्मौ प्रतापवान्

तस्य संजनयन् हर्षम् कुरुवृद्धः पितामहः
सिंहनादम् विनद्य उच्चैः शंखम् दध्मौ प्रतापवान्

उस (दुर्योधन) को हर्षित करते हुए कौरवों के वृद्ध तेजस्वी पितामह ने शंख बजाया - उच्च स्वर से, गूंजता हुआ, सिंह की गर्जना सा -

१.१३ ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥

ततः शंखाश् च भेर्यश् च - -
पणवानकगोमुखाः
सहसै (ए)वा (अ)भ्य हन्यन्त - -,
स शब्दस् तुमुलो (अ)भवत्

ततः शंखाः च भेर्यः च पणवानकगोमुखाः
सहसा एव अभ्यहन्यन्त स शब्दः तुमुलः अभवत्

तत्पश्चात् शंख और नगाड़े, भेरी ढोल और रणसिंगे एकाएक बज उठे । वह शब्द-नाद बहुत प्रचण्ड था ।

१.१४ ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥

ततः श्वेतैर् हयैर् युक्ते
महतिस् स्यन्दने स्थितौ
माधवः पाण्डवश् चै (ए)व, - -
दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः

ततः श्वेतैः हयैः युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ
माधवः पाण्डवः च एव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः

इसके बाद सफेद घोड़ों से जुते हुए महान् रथ में स्थित कृष्ण और अर्जुन दोनों ने दैवी शंखों को बजाया ।

१.१५ पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो,
देवदत्तं धनञ्जयः
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं
भीमकर्मा वृकोदरः

पांचजन्यम् हृषीकेशः देवदत्तं धनंजयः
पौण्ड्रम् दध्मौ महाशंखम् भीमकर्मा वृकोदरः

हृषीकेश ने "पांचजन्य", धनञ्जय ने "देवदत्त" और भयानक कर्मकर्ता वृकोदर ने महाशंख "पौण्ड्र" बजाया ।

१.१६ अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥

अनन्तविजयं राजा
कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः
नकुलः सहदेवश् च - -
सुघोष मणिपुष्पकौ

अनन्तविजयम् राजा कुन्तीपुत्रः युधिष्ठिरः
नकुलः सहदेवः च सुघोषमणिपुष्पकौ

कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर ने "अनन्तविजय", नकुल और सहदेव ने "सुघोष" और "मणिपुष्पक",

१.१७ काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥

काश्यश् च परमे (इ)ष्वासः ,
शिखण्डी च महारथः
धृष्टद्युम्नो विराटश्च - -
सात्यकिश् चा (अ)पराजितः

काश्यः च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः
धृष्टद्युम्नः विराटः च सात्यकिः च अपराजितः

श्रेष्ठ धनुर्धर काशी नरेश और महारथी शिखण्डी,[१८] धृष्टद्युम्न,[१८] विराट[१८] और अजेय सात्यकि[१८] ने,

१८- देखिए 'गीता कोश'

१.१८ द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥

द्रुपदो द्रौपदेयाश् च - -
सर्वशः पृथिवीपते
सौभद्रश् च महाबाहुः
शंखान् दध्मुः पृथक् पृथक्

द्रुपदः द्रौपदेयाः च सर्वशः पृथिवीपते,
सौभद्रः च महाबाहुः शंखान् दध्मुः पृथक् पृथक्

द्रुपद और द्रौपदी के पुत्रों ने, और महाबहु सौभद्र (अभिमन्यु) ने, हे पृथ्वीपते[१९] सब ओर से,शंख बजाए, अलग-अलग ।

१.१९ स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥

स घोषो धार्तराष्ट्राणां
हृदयानि व्यदारयत्
नभश् च पृथिवीम् चै (ए)व, - -
तुमुलो, व्यनुनादयन्

सः घोषः धार्तराष्ट्राणाम् हृदयानि व्यदारयत्
नभः च पृथिवीम् च एव तुमुलः व्यनुनादयन्

उस प्रचण्ड कोलाहल ने धृतराष्ट्र के पुत्रों के हृदय चीर दिये - पृथ्वी और आकाश को गुंजायमान करते हुए ।

१९- धृतराष्ट्र

१.२० **अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ।**
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥

अथव् व्यवस्थितान् दृष्ट्वा
धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते,
धनुर् उद्यम्य पाण्डवः

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुः उद्यम्य पाण्डवः

अब धृतराष्ट्र के पुत्रों को क्रम से खड़े देख, कपि-अंकित ध्वजा वाले पाण्डव ने, जब शस्त्र प्रहार होने को था, धनुष उठाकर -

१.२१ **हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।**
अर्जुन उवाच-
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥

हृषीकेशं तदा वाक्यम्
इदम् आह, महीपते
सेनयोर् उभयोर् मध्ये
रथं स्थापय मे (अ)च्युत - -

हृषीकेशम् तदा वाक्यम् इदम् आह महीपते
सेनयोः उभयोः मध्ये रथम् स्थापय मे अच्युत

हे पृथ्वीपते ! हृषीकेश को तब यह वाक्य कहाः
अर्जुन उवाच-
"हे अच्युत ! दोनों सेनाओं के बीच, मेरे रथ को खड़ा कर दीजिए,

१.२२ यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रण समुद्यमे ॥

यावद् एतान् निरीक्षे (अ)हं
योद्धुकामान् अवस्थितान्
कैर् मया सह योद्धव्यम्
अस्मिन् रणसमुद्यमे

यावत् एतान् निरीक्षे अहम् योद्धुकामान् अवस्थितान्
कैः मया सह योद्धव्यम् अस्मिन् रणसमुद्यमे

जिससे मैं इन्हें देख लूं जो युद्ध की इच्छा लिए खड़े हैं, जिनके साथ, मुझे युद्ध करना है, अभी छिड़ने वाले इस संग्राम में ।

१.२३ योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥

योत्स्यमानान् अवेक्षे (अ)हं
य एते (अ)त्र समागताः
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्
युद्धे प्रियचिकीर्षवः

योत्स्यमानान् अवेक्षे अहम् ये एते अत्र समागताः
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेः युद्धे प्रियचिकीर्षवः

और, देख लूं उन्हें जो युद्ध करने के लिए यहां एकत्र हैं और धृतराष्ट्र के, खोटी बुद्धिवाले पुत्र को युद्ध में प्रसन्न करना चाहते हैं ।

१.२४ संजय उवाच-
एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥

एवम् उक्तो हृषीकेशो
गुडाकेशेन भारत - -
सेनयोर् उभयोर् मध्ये
स्थापयित्वा रथोत्तमम्

एवम् उक्तः हृषीकेशः गुडाकेशेन भारत
सेनयोः उभयोः मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम्

संजय उवाच -
इस प्रकार गुडाकेश (अर्जुन) के कहने पर हे भारत ! हृषीकेश ने दोनों सेनाओं के बीच में उत्तम रथ को खड़ा करके, -

१.२५ भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥

भीष्मद्द्रोणप् प्रमुखतः
सर्वेषां च महीक्षिताम्
उवाच, पार्थ, पश्यै (ए)तान्
समवेतान् कुरून् इति - -

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषाम् च महीक्षिताम्
उवाच पार्थ पश्य एतान् समवेतान् कुरून् इति

भीष्म द्रोण और सब राजाओं के सम्मुख इस प्रकार कहा- "हे पार्थ ! इन एकत्र हुए कौरवों को देख ।"

१.२६ तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥

तत्रा (अ)पश्यत् स्थितान् पार्थः
पितॄन् अथ पितामहान्
आचार्यान् मातुलान् भ्रातॄन्
पुत्रान् पौत्रान् सखींस् तथा

तत्र अपश्यत् स्थितान् पार्थः पितॄन् अथ पितामहान्
आचार्यान् मातुलान् भ्रातॄन् पुत्रान् पौत्रान् सखीन् तथा

अर्जुन ने देखाः- वहां खड़े हैं पिता और दादा,
गुरुजन, मामा, भाईगण, पुत्र पौत्र और सखा लोग,

१.२७ श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ॥

श्वशुरान् सुहृदश् चै (ए)व - -
सेनयोर् उभयोर् अपि - -
तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः
सर्वान् बन्धून् अवस्थितान्

श्वशुरान् सुहृदः च एव सेनयोः उभयोः अपि
तान् समीक्ष्य सः कौन्तेयः सर्वान् बन्धून् अवस्थितान्

और दोनों ही सेनाओं में श्वसुर और स्नेही भी ।
उन सब सम्बन्धियों को खड़े देखकर, उस अर्जुन ने-

१.२८ कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।
अर्जुन उवाच –
दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥

कृपया परया (आ)विष्टो
विषीदन् इदम् अब्रवीत्
दृष्ट्वे (इ)मं स्वजनं कृष्ण – –,
युयुत्सुं समुपस्थितम्

कृपया परया आविष्टः विषीदन् इदम् अब्रवीत्
दृष्ट्वा इमम् स्वजनम् कृष्ण युयुत्सुम् समुपस्थितम्

अत्यन्त करुणा से भरपूर, उदास होते हुए यह कहाः–
अर्जुन उवाच–
हे कृष्ण । इन अपने लोगों को, युद्ध की इच्छा लिये, एक साथ खड़े देखकर,

१.२९ सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥

सीदन्ति मम गात्राणि – –,
मुखं च परिशुष्यति – –
वेपथुश् च शरीरे मे,
रोमहर्षश् च जायते

सीदन्ति मम गात्राणि मुखम् च परिशुष्यति
वेपथुः च शरीरे मे रोमहर्षः च जायते

मेरे अंग शिथिल पड़ रहे हैं और मुँह सूख रहा है । मेरे शरीर में कंपकंपी है और रोंगटे खड़े हैं ।

१.३० गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्
त्वक् चै (ए)व परिदह्यते
न च शक्नोम्य् अवस्थातुं
भ्रमती (इ)व च मे मनः

गाण्डीवम् स्रंसते हस्तात् त्वक् च एव परिदह्यते
न च शक्नोमि अवस्थातुम् भ्रमति इव च मे मनः

गाण्डीव हाथ से खिसका जाता है और त्वचा भी बहुत जलती है । मैं खड़ा नहीं रह सकता और मेरा मन, भटक सा रहा है ।

१.३१ निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥

निमित्तानि च पश्यामि – –
विपरीतानि केशव – –
न चश् श्रेयो (अ)नुपश्यामि – –
हत्वा स्वजनम् आहवे

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव
न च श्रेयः अनुपश्यामि हत्वा स्वजनम् आहवे

और मैं सब लक्षण विपरीत देखता हूं, केशव । और न मुझे, भलाई दिखाई देती है अपने लोगों को युद्ध में मारकर ।

१.३२ न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥

न काङ्क्षे विजयं, कृष्ण – –,
न च राज्यं सुखानि च – –
किं नो राज्येन, गोविन्द – –,
किं भोगैर् जीवितेन वा

न काङ्क्षे विजयम् कृष्ण न च राज्यम् सुखानि च
किम् नः राज्येन गोविन्द किम् भोगैः जीवितेन वा

हे कृष्ण। मुझे विजय की अभिलाषा नहीं। और, न राज्य की और न सुखों की। हे गोविन्द। हमारे लिए राज्य क्या, भोग क्या, अथवा जीवन भी क्या है ?

१.३३ येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥

येषाम् अर्थे काङ्क्षितं नो
राज्यं भोगाः सुखानि च – –
त इमे (अ)वस्थिता युद्धे,
प्राणांस् त्यक्त्वा धनानि च – –

येषाम् अर्थे काङ्क्षितम् नः राज्यम् भोगाः सुखानि च
ते इमे अवस्थिताः युद्धे प्राणान् त्यक्त्वा धनानि च

जिनके लिए हम राज्य, भोग-विलास और सुखों को चाहते हैं, वे ही युद्ध में खड़े हैं, धन सम्पति और प्राणों को त्यागकर –

१.३४ आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः संबन्धिनस्तथा ॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्
तथैव च पितामहाः
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः
श्यालाः संबन्धिनस् तथा

आचार्याः पितरः पुत्राः तथा एव च पितामहाः
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः संबन्धिनः तथा

गुरुजन, पिता पुत्र तथा दादा लोगभी, मामा लोग, श्वशुर, पौत्र, साले और (अन्य) सम्बन्धिगण-

१.३५ एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥

एतान् न हन्तुम् इच्छामि - -
घ्नतो(अ)पि, मधुसूदन - -
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य - -
हेतोः, किं नु महीकृते

एतान् न हन्तुम् इच्छामि घ्नतः अपि मधुसूदन
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किम् नु महीकृते

मै इन्हें नहीं मारना चाहता। चाहे स्वयं मारा जाऊं, मधुसूदन। तीनों लोक के राज्य के लिए भी नहीं; फिर, पृथ्वी के लिए ही क्यों ?

१.३६ निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतान् आततायिनः ।।

निहत्य धार्तराष्ट्रान् नः
का प्रीतिः स्याज् जनार्दन - -
पापम् एवा (आ)श्रयेद् अस्मान्
हत्वै (ए)तान् आततायिनः

निहत्य धार्तराष्ट्रान् नः का प्रीतिः स्यात् जनार्दन
पापम् एव आश्रयेत् अस्मान् हत्वा एतान् आततायिनः

धृतराष्ट्रके पुत्रों को मारकर हमें क्या आनन्द हो सकता है, जनार्दन । हमें तो पाप ही लगेगा, इन आततायियों [२०] की हत्या करके ।

१.३७ तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ।।

तस्मान् ना (अ)र्हा वयं हन्तुं
धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान्
स्वजनं हि कथं हत्वा
सुखिनः स्याम, माधव - -

तस्मात् न अर्हाः वयम् हन्तुम् धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान्
स्वजनम् हि कथम् हत्वा सुखिनः स्याम माधव

अतः हमें अपने बन्धु बान्धव, धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारना नहीं चाहिए । अपने लोगों को मारकर हम सुखी कैसे हो सकते हैं, माधव ।

२० देखिये 'गीता कोश'

१.३८ यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥

यद्य् अप्य् एते न पश्यन्ति - -
लोभोपहतचेतसः
कुलक्क्षायकृतं दोषं
मित्रद्द्रोहे च पातकम्

यद्यपि एते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः
कुलक्षयकृतम् दोषम् मित्रद्रोहे च पातकम्

यद्यपि यह लोग, जिनके मन लोभ से ग्रस्त हैं, कुल के नाश से होने वाले दोष एवं मित्र द्रोह के पाप को नहीं देखते, (तो)-

१.३९ कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥

कथं न ज्ञेयम् अस्माभिः
पापाद् अस्मान् निवर्तितुम्
कुलक्क्षयकृतं दोषम्
प्रपश्यद्भिर् जनार्दन - -

कथम् न ज्ञेयम् अस्माभिः पापात् अस्मात् निवर्तितुम्
कुलक्षयकृतम् दोषम् प्रपश्यद्भिः जनार्दन

क्यों न हमीं समझ जाएं, इस पाप से कैसे छुटकारा पाया जाय ? हम, जो कुलनाश से होने वाले दोष को देखते हैं, हे जनार्दन ।

**१.४० कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥**

कुलक्षाये प्रणश्यन्ति - -
कुलधर्माः सनातनाः
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नम्
अधर्मो (अ)भिभवत्य् उत - -

कुलक्षाये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः
धर्मे नष्टे कुलम् कृत्स्नम् अधर्मः अभिभवति उत

कुल के विनाश से परम्परागत कुलधर्म नष्ट हो जाता है। धर्म के नष्ट होने से सम्पूर्ण कुटुम्ब पर अधर्म छा जाता है । सच ।

**१.४१ अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥**

अधर्माभिभवात् कृष्ण - -,
प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय - -,
जायते वर्णसंकरः

अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः

अधर्म के फैलने से हे कृष्ण । कुटुम्ब की स्त्रियां दुश्चरित्र हो जाती हैं । हे वार्ष्णेय, स्त्रियों के चरित्रहीन होने से वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं ।

१.४२ संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥

संकरो नरकायै (ए)व --
कुलघ्नानां कुलस्य च --
पतन्ति पितरो ह्य् एषां
लुप्तपिण्डोदक क्रियाः

संकरः नरकाय एव कुलघ्नानाम् कुलस्य च
पतन्ति पितरः हि एषाम् लुप्तपिण्डोदकक्रियाः

यह वर्णसंकरता कुलघातकों को और कुल को भी नरक की ओर ले जाती है । इन (वर्णसंकरों) के पूर्वजों का निश्चय ही पतन होता है — पिण्डदान, तर्पण अदि क्रियाएं (जिनकीं) नष्ट हो गई हैं ।

१.४३ दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥

दोषैर् एतैः कुलघ्नानां
वर्णसंकरकारकैः
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः
कुलधर्माश् च शाश्वताः

दोषैः एतैः कुलघ्नानाम् वर्णसंकरकारकैः
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माः च शाश्वताः

कुल के हत्यारों के, इन वर्णसंकर उत्पन्न करने वाले दोषों के कारण, चिरकालीन जातिधर्म व कुलधर्म का विनाश हो जाता है ।

१.४४ उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥

उत्सन्नकुलधर्माणां
मनुष्याणां जनार्दन - -
नरके नियतं वासो
भवती (इ)त्य् अनुशुश्रुम - -

उत्सन्नकुलधर्माणाम् मनुष्याणाम् जनार्दन
नरके नियतम् वासः भवति इति अनुशुश्रुम

जिन मनुष्यों का कुल धर्म नष्ट हुआ है, जनार्दन ! उनका नरक में अवश्य वास होता है। ऐसा सुना है।

१.४५ अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥

अहो बत महत् पापं
कर्तुं व्यवसिता वयम्
यद् राज्य सुखलोभेन - -
हन्तुं स्वजनम् उद्यताः

अहो बत महत्पापम् कर्तुम् व्यवसिताः वयम्
यत् राज्यसुखलोभेन हन्तुम् स्वजनम् उद्यताः

ओ ! हो ! हम कितना बड़ा पाप करने के लिए तत्पर हैं, जो राज्य सुख के लोभ से, अपने लोगों को मारने के लिए खड़े हैं।

१.४६ यदि मामप्रतीकारमशास्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥

यदि माम् अप् प्रतीकारम्
अशस्त्रं शस्त्रपाणयः
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्
तन् मे क्षेमतरं भवेत्

यदि माम् अप्रतीकारम् अशास्त्रम् शास्त्रपाणयः
धार्तराष्ट्राः रणे हन्युः तत् मे क्षेमतरम् भवेत्

यदि मैं प्रतिरोध न करूँ, शस्त्रहीन रहूँ और, हाथ में शस्त्र लिये धृतराष्ट्र के पुत्र मुझे युद्ध में मार भी डालें, तो मेरे लिए अधिक अच्छा होगा।

१.४७ संजय उवाच
एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥

एवम् उक्त्वा (अ)र्जुनः संख्ये
रथोपस्थ उपाविशत्
विसृज्य सशरं चापं
शोकसंविग्नमानसः

एवम् उक्त्वा अर्जुनः संख्ये रथोपस्थे उपाविशत्
विसृज्य सशारम् चापम् शोकसंविग्नमानसः

संजय उवाच –
रणक्षेत्र में ऐसी बातें करके, अर्जुन रथ में पीछे, (धप से) बैठ गया, धनुष बाण फेंक कर, शोकाकुल मन से।

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ।

गीता प्रकाश

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

परिचय-२

जब विषाद ग्रस्त अर्जुन चुप होकर बैठ जाता है तो भगवान् उसे पहले सांख्य दर्शन[१] के अनुसार ज्ञान की बात समझाते हैं (श्लोक ११-३८)।

अर्जुन डांवांडोल हो रहा है। अतः भगवान् फिर उसी ज्ञान को योग[२] के अनुसार बतलाते हैं (श्लोक ३९-५३) और, इसके लिए स्थित बुद्धि की आवश्यकता पर बल देते हैं। स्थित बुद्धि वाले के लक्षण विस्तार से बतलाते हैं। जिनसे, वह पा जाता है परम शान्ति को, ब्राह्मी स्थिति को। (श्लोक ५४-७२)

अध्याय २ का नाम "सांख्य योग" रखा है।

१. देखिए "गीता कोश" – सांख्यम्

२. योग की ये दो परिभाषाएं गीता में दी है :- (देखिए अध्याय २ श्लोक ४८ और ५०)

(i) समत्वं योग उच्यते- समता को ही योग कहते है,

(ii) योगः कर्मसु कौशलम्- कर्म में कुशलता योग है।

श्रीमद्भगवद्गीता

अथ द्वितीयोऽध्यायः

(श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगः)

२.१ **संजय उवाच –**
तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥

तं तथा कृपया (आ)विष्टम् – –
अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्
विषीदन्तम् इदं वाक्यम्
उवाच मधुसूदनः

तम् तथा कृपया आविष्टम् अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्
विषीदन्तम् इदम् वाक्यम् उवाच मधुसूदनः

संजय उवाच–
इस प्रकार करुणा से व्याप्त, बेचैन और आँसूभरी आँखों वाले, उदास मन, उस (अर्जुन) से मधुसूदन ने यह बात कही ।

२.२ **श्री भगवानुवाच –**
कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥

कुतस्त्वा कश्मलम् इदम्
विषमे समुपस्थितम्
अनार्यजुष्टम् अस्वर्ग्यम्
अकीर्तिकरम्, अर्जुन – –

कुतः त्वा कश्मलम् इदम् विषमे समुपस्थितम्
अनार्यजुष्टम् अस्वर्ग्यम् अकीर्तिकरम् अर्जुन

श्री भगवान् उवाच –
इस संकट में तेरे (मन) में यह उदासी कहाँ से आई ? यह अनार्यों से सेवित आचरण, स्वर्ग नहीं, अपयश देने वाला है, अर्जुन ।

२.३ **क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।**
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥

क्लैब्यं मा स्म गमः, पार्थ – –
नै (ए)तत् त्वयि उपपद्यते
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं
त्यक्त्वो (उ)त्तिष्ठ परंतप – –

क्लैब्यम् मा स्म गमः पार्थ न एतत् त्वयि उपपद्यते
क्षुद्रम् हृदयदौर्बल्यम् त्यक्त्वा उत्तिष्ठ परंतप

हे पार्थ । नपुंसकता की ओर मत जा । यह तुझ में शोभा नहीं देती । हृदय की इस क्षुद्र दुर्बलता को त्याग कर, उठ, खड़ा हो जा, परंतप ।

२.४ **अर्जुन उवाच -**
कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥

कथं भीष्मम् अहं संख्ये
द्रोणं च, मधुसूदन - -
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि - -
पूजार्हाव् अरिसूदन - -

कथम् भीष्मम् अहम् संख्ये द्रोणम् च मधुसूदन
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हौ अरिसूदन

अर्जुन उवाच -
हे मधुसूदन ! मैं युद्ध में भीष्म और द्रोण पर किस प्रकार वाणों से प्रहार करूंगा ? वे (दोनों) पूजा के योग्य हैं, अरिसूदन ।

२.५ **गुरूनहत्वा हि महानुभावान्**
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥

गुरून् अहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यम् अपी (इ)ह लोके
हत्वा (अ) र्थकामांस् तु गुरून् इहे (ए)व - -
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप् प्रदिग्धान्

गुरून् अहत्वा हि महानुभावान् श्रेयः भोक्तुम् भैक्ष्यम् अपि इह लोके
हत्वा अर्थकामान् तु गुरून् इह एव भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्

निश्चयही इन महानुभाव गुरुजनों की हत्या करने की अपेक्षा यह अच्छा है कि मैं इस संसार में भीख मांग कर ही खा लूं । ये गुरुजन तो अर्थ की कामना लिए हैं । इनकी हत्या करके मैं, यहां लहू से सने ऐश्वर्य ही तो भोगूंगा ।

२.६ न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम–
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥

न चै (ए)तद् विद्मः कतरन् नो गरीयो,
यद् वा जयेम यदि वा नो जयेयुः
यान् एव हत्वा न जिजीविषामस्
ते (अ)वस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः

न च एतत् विद्मः कतरत् नः गरीयः यद्वा जयेम यदि वा नः जयेयुः
यान् एव हत्वा न जिजीविषामः ते अवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः

और, न (हम) यह जानते हैं, हमारे लिए अधिक अच्छा क्या है, हम उनपर विजय पाएं अथवा वे हम पर विजयी हों । जिन्हें मार कर हम जीना नहीं चाहते, वे सामने खड़े हैं, धृतराष्ट्र के पुत्र ।

२.७ कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः
यच् छ्रेयः स्यान् निश्चितं ब्रूहि तन् मे
शिष्यस् ते (अ)हं शाधि मां त्वाम् प्रपन्नम्

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वाम् धर्मसंमूढचेताः। यत् श्रेयः
स्यात् निश्चितम् ब्रूहि तत् मे शिष्यः ते अहम् शाधि माम् त्वाम् प्रपन्नम्

(मानसिक) दुर्बलता-दोष[1] के कारण मेरा स्वभाव दबा हुआ है । मन धर्म के विषय में भ्रम में है । मैं आपसे पूछता हूं, जो कल्याणप्रद है, निश्चित रूपसे मुझे बतलाइए । मैं आपका शिष्य हूं, मुझे शिक्षा दीजिए । मैं आपकी शरण आया हूं ।

१. सहानुभूति, अनुवेदना (देखिए कोश)

२.८ न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥

न हिप् प्रपश्यामि ममा (अ)पनुद्याद्
यच् छोकम् उच्छोषणम् इन्द्रियाणाम्
अवाप्य भूमाव् असपत्नम् ऋद्धम्
राज्यं सुराणाम् अपि चा (आ)धिपत्यम्

न हि प्रपश्यामि मम अपनुद्यात् यत् शोकम् उच्छोषणम् इन्द्रियाणाम्
अवाप्य भूमौ असपत्नम् ऋद्धम् राज्यम् सुराणाम् अपि च आधिपत्यम्

वास्तवमें, मुझे (ऐसा कुछ) नहीं दिखाई देता, जो इन्द्रियों को सुखाने वाले, मेरे इस शोक को दूर कर सके-पृथ्वी पर, बिना किसी प्रतिद्वंद्वी के, धनधान्य संपन्न राज्य प्राप्त करके (ऐसा होगा), अथवा देवताओं पर भी, प्रभुत्व मिलने से ।

२.९ संजय उवाच -
एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतपः ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥

एवम् उक्त्वा हृषीकेशं
गुडाकेशः परंतपः
न योत्स्य इति गोविन्दम्
उक्त्वा तूष्णीं बभूव ह - -

एवम् उक्त्वा हृषीकेशम् गुडाकेशः परंतपः
न योत्स्ये इति गोविन्दम् उक्त्वा तूष्णीम् बभूव ह

संजय उवाच-
परंतप गुडाकेश (अर्जुन) हृषीकेश को ऐसे कहकर, (फिर) गोविन्द से इस प्रकार बोले, "मैं युद्ध नहीं करूंगा" और एकदम चुप हो गए ।

**२.१० तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥**

तम् उवाच हृषीकेशः
प्रहसन् इव, भारत - -
सेनयोर् उभयोर् मध्ये
विषीदन्तम् इदम् वचः

तम् उवाच हृषीकेशः प्रहसन् इव भारत
सेनयोः उभयोः मध्ये विषीदन्तम् इदम् वचः

हे धृतराष्ट्र । (तब) मुस्कराते हुए से हृषीकेश, दोनों सेनाओं के मध्य, उदास हुए उस अर्जुन को यह वचन बोले -

**२.११ श्रीभगवानुवाच -
अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥**

अशोच्यान् अन्वशोचस् त्वं
प्रज्ञावादांश् च भाषसे
गतासून् अगतासूंश् च - -
ना (अ)नुशोचन्ति पण्डिताः

अशोच्यान् अन्वशोचः त्वम् प्रज्ञावादान् च भाषसे
गतासून् अगतासून् च न अनुशोचन्ति पण्डिताः

**श्रीभगवान् उवाच -
तू उनके लिए शोक संताप करता है जो शोक करने के योग्य नहीं, और तू ज्ञान बघारता है । जो मर गए हैं, और जो जीवित हैं, उनके लिए दुःखी नहीं होते, ज्ञानी लोग ।**

२.१२ न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥

न त्व् एवा (अ)हं जातु ना (आ)सं
न त्वं ने (इ)मे जनाधिपाः
न चै (ए)व न भविष्यामः
सर्वे वयम् अतः परम्

न तु एवं अहम् जातु न आसम् न त्वम् न इमे जनाधिपाः
न च एव न भविष्यामः सर्वे वयम् अतः परम्

वास्तव में ऐसा समय कभी नहीं था, जब मैं नहीं था, तू नहीं था, ये राजा लोग नहीं थे । और भविष्य में भी, ऐसा नहीं होगा, जब हम सब न रहें ।

२.१३ देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

देहिनो (अ)स्मिन् यथा देहे
कौमारम् यौवनं जरा
तथा देहान्तरप्.प्राप्तिर्
धीरस् तत्र न मुह्यति - -

देहिनः अस्मिन् यथा देहे कौमारम् यौवनम् जरा
तथा देहान्तरप्राप्तिः धीरः तत्र न मुह्यति

देहधारी को जिस प्रकार इस देह में बाल्य युवा व वृद्धावस्थाएं आती हैं उसी प्रकार दुसरे देह की प्राप्ति होती है । इस विषय में स्थिर बुद्धिवाले भ्रम में नहीं पड़ते ।

२.१४ मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥

मात्रास्पर्शास् तु , कौन्तेय - -,
शीतोष्णसुखदुःखदाः
आगमापायिनो (अ)नित्यास्
तांस् तितिक्षस्व, भारत - -

मात्रास्पर्शाः तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः
आगमापायिनः अनित्याः तान् तितिक्षस्व भारत

भौतिक वस्तुओं के स्पर्श वास्तव में कौन्तेय, सर्दी-गर्मी, सुख दुःख देने वाले हैं । (किन्तु) ये आने जाने वाले, अल्पकालिक हैं । तू इन्हें सहन कर, भारत ।

२.१५ यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥

यं हि न व्यथयन्त् एते
पुरुषं, पुरुषर्षभ - - - -
समदुःखसुखं धीरम्
सो (अ)मृततत्वाय कल्पते

यम् हि न व्यथयन्ति एते पुरुषम् पुरुषर्षभ
समदुःखसुखम् धीरम् सः अमृतत्वाय कल्पते

हे पुरुष श्रेष्ठ । जिस पुरुष को ये वास्तव में व्यथित नहीं करते, सुख-दुःख में समान, स्थिर बुद्धिवाला, वह अमरत्व पाने योग्य है ।

२.१६ नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

ना (अ)सतो विद्यते भावो
ना (अ)भावो विद्यते सतः
उभयोर् अपि दृष्टो (अ)न्तस्
त्व् अनयोस् तत्त्वदर्शिभिः

न असतः विद्यते भावः न अभावः विद्यते सतः
उभयोः अपि दृष्टः अन्तः तु अनयोः तत्त्वदर्शिभिः

असत् का अस्तित्व नहीं है । सत् के अस्तित्व का, अन्त नहीं है । इन दोनों का अन्तिम रूप, वास्तव में, जाना गया है, तत्त्वज्ञानियों द्वारा ही ।

२.१७ अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥

अविनाशि तु तद् विद्धि - -
येन सर्वम् इदं ततम्
विनाशम् अव्ययस्या (अ)स्य - -
न कश्चित् कर्तुम् अर्हति - -

अविनाशि तु तत् विद्धि येन सर्वम् इदम् ततम्
विनाशम् अव्ययस्य अस्य न कश्चित् कर्तुम् अर्हति

जिससे यह सब व्याप्त है, तू उसे ही अविनाशी जान । इस अविनाशी का विनाश करने में, कोई समर्थ नहीं ।

२.१८ अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥

अन्तवन्त इमे देहा
नित्यस्यो (उ)क्ताः शरीरिणः
अनाशिनो (अ)प्रमेयस्य – –
तस्माद् युद्ध्यस्व, भारत – –

अन्तवन्तः इमे देहाः नित्यस्य उक्ताः शारीरिणः
अनाशिनः अप्रमेयस्य तस्मात् युध्यस्व भारत

चिरस्थायी, अविनाशी, अमापनीय देहधारी की इन देहों का, अन्त है, ऐसा कहा जाता है। अतः तू युद्ध कर भारत।

२.१९ य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥

य एनं वेत्ति हन्तारं,
यश् चै (ए)नं मन्यते हतम्
उभौ तौ न विजानीतो,
ना (अ)यं हन्ति न हन्यते

यः एनम् वेत्ति हन्तारम् यः च एनम् मन्यते हतम्
उभौ तौ न विजानीतः न अयम् हन्ति न हन्यते

वह जो इसे मारने वाला समझता है, और वह, जो मानता है कि यह मारा जाता है, वे दोनों नहीं समझते। न यह मारता है, न मारा जाता है।

२.२० न जायते म्रियते वा कदाचिन्-
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

न जायते म्रियते वा कदाचिन्
ना (अ)यं भूत्वा भविता वा न भूयः
अजो नित्यः शाश्वतो (अ)यं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे

न जायते म्रियते वा कदाचित् न अयम् भूत्वा भविता वा न भूयः
अजः नित्यः शाश्वतः अयम् पुराणः न हन्यते हन्यमाने शरीरे

न (यह) जन्म लेता है व न कभी मरता है । और, ऐसा भी नहीं होगा कि (एक बार) होकर, यह फिर नहीं होगा। यह अजन्मा, नित्य, निरन्तर और पुरातन है । (और), न (यह) मारा जाता है, शरीर का बध करने से ।

२.२१ वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥

वेदा (अ)विनाशिनं नित्यं
य एनम् अजम् अव्ययम्
कथं स पुरुषः पार्थ - -
कं घातयति हन्ति कम्

वेद अविनाशिनम् नित्यम् यः एनम् अजम् अव्ययम्
कथम् सः पुरुषः पार्थ कम् घातयति हन्ति कम्

वह जो इसको अविनाशी, नित्य, अजन्मा, अक्षय जानता है, वह पुरुष कैसे, पार्थ ! किसी को मारने का कारण होता है, कैसे किसी को मारता है ?

२.२२ वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय - -
नवानि गृह्णाति नरो (अ)पराणि - -
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्य् अन्यानि संयाति नवानि देही

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरः अपराणि
तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि अन्यानि संयाति नवानि देही

मनुष्य जिस प्रकार पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नए (वस्त्र) पहन लेता है, उसी प्रकार देहधारी जीर्ण हुए शरीरों को छोड़कर दूसरों में चला जाता है, जो नवीन हैं ।

२.२३ नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

नै (ए)नं छिन्दन्ति शस्त्राणि - -,
नै (ए)नं दहति पावकः
न चै (ए)नं क्लेदयन्त्य् आपो,
न शोषयति मारुतः

न एनम् छिन्दन्ति शस्त्राणि न एनम् दहति पावकः
न च एनम् क्लेदयन्ति आपः न शोषयति मारुतः

न शस्त्र इसे काटते हैं, न अग्नि इसे जलाती है । और, न जल इसे गीला करता है, न वायु सुखाती है ।

२.२४ अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥

अच्छेद्यो (अ)यम् अदाह्यो (अ)यम्
अक्क्लेद्यो (अ)शोष्य एव च - -
नित्यः सर्वगतः स्थाणुर्
अचलो (अ)यं सनातनः

अच्छेद्यः अयम् अदाह्यः अयम् अक्लेद्यः अशोष्यः एव च
नित्य सर्वगतः स्थाणुः अचलः अयम् सनातनः

यह काटा नहीं जा सकता, यह जलाया नहीं जा सकता, न यह गीला हो सकता है, और न सुखाया जा सकता है । यह नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, अचल, सनातन है ।

२.२५ अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥

अव्यक्तो (अ)यम् अचिन्त्यो (अ)यम्
अविकार्यो (अ)यम् उच्यते
तस्माद् एवं विदित्वै (ए)नं
ना (अ)नुशोचितुम् अर्हसि - -

अव्यक्तः अयम् अचिन्त्यः अयम् अविकार्यः अयम् उच्यते
तस्मात् एवम् विदित्वा एनम् न अनुशोचितुम् अर्हसि

यह प्रकट नहीं है, यह कल्पनीय नहीं है, इसे अपरिवर्तनशील कहते हैं । अतः इसे ऐसा जान कर, तुझे शोक नहीं करना चाहिए ।

**२.२६ अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥**

अथ चै (ए)नं नित्यजातं
नित्यं वा मन्यसे मृतम्
तथा (अ)पित् त्वं महाबाहो
नै (ए)नं शोचितुम् अर्हसि – –

अथ च एनम् नित्यजातम् नित्यम् वा मन्यसे मृतम्
तथापि त्वम् महाबाहो न एनम् शोचितुम् अर्हसि

अथवा यदि तू इसे नित्य जन्मने वाला और नित्य मरने वाला मानता है तो भी, हे महाबाहो । इसका तुझे शोक नहीं करना चाहिए ।

**२.२७ जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥**

जातस्य हिद् ध्रुवो मृत्युर्
ध्रुवं जन्म मृतस्य च – –
तस्माद् अपरिहार्ये (अ)र्थे
न त्वं शोचितुम् अर्हसि – –

जातस्य हि ध्रुवः मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च
तस्मात् अपरिहार्ये अर्थे न त्वम् शोचितुम् अर्हसि

वास्तव में जिसका जन्म हुआ है (उसकी) मृत्यु निश्चित है और जिसकी मृत्यु हुई है (उसका) जन्म निश्चित है । इसलिए इन बातों के लिए, जो अनिवार्य हैं, तुझे शोक नहीं करना चाहिए ।

२.२८ अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥

अव्यक्तादीनि भूतानि – –
व्यक्तमध्यानि, भारत – –
अव्यक्तनिधनान्य् ; एव – –,
तत्र का परिदेवना

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत
अव्यक्तनिधनानि एव तत्र का परिदेवना

प्राणियों के आरम्भ की स्थिति अप्रकट है, मध्य में वे दिखाई देते हैं, भारत । विघटन के बाद वे फिर अप्रत्यक्ष हैं । इस का विलाप क्या करना ?

२.२९ आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन –
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रृणोति,
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिद् एनम्
आश्चर्यवद् वदति तथै (ए)व चा (अ)न्यः
आश्चर्यवच् चै (ए)नम् अन्यः श्रृणोति, – –
श्रुत्वा (अ)प्य् एनं वेद न चै (ए)व कश्चित्

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चित् एनम् आश्चर्यवत् वदति तथा एव च अन्यः
आश्चर्यवत् च एनम् अन्यः श्रृणोति श्रुत्वा अपि एनम् वेद न च एव कश्चित्

आश्चर्य-समान कोई इसे देखता है, ऐसे ही कोई दूसरा (इसका) आश्चर्य जैसा वर्णन करता है । और, कोई इसे आश्चर्य जैसा सुनता है । और सुनकर भी इसे कोई, जानता नहीं ।

२.३० देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥

देही नित्यम् अवध्यो (अ)यं
देहे सर्वस्य भारत – –
तस्मात् सर्वाणि भूतानि – –
न त्वं शोचितुम् अर्हसि – –

देही नित्यम् अवध्यः अयम् देहे सर्वस्य भारत
तस्मात् सर्वाणि भूतानि न त्वम् शोचितुम् अर्हसि

सब की देह में, यह देहधारी नित्य है । इसका बध नहीं हो सकता, भारत । अतः किसी भी प्राणी के लिए, तुझे शोक नहीं करना चाहिए ।

२.३१ स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥

स्वधर्मम् अपि चा (अ)वेक्ष्य – –
न विकम्पितुम् अर्हसि – –
धर्म्याद् धि युद्धाच् छ्रेयो (अ)न्यत्
क्षत्रियस्य न विद्यते

स्वधर्मम् अपि च अवेक्ष्य न विकम्पितुम् अर्हसि
धर्म्यात् हि युद्धात् श्रेयः अन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते

और अपने धर्म को देखते हुए भी तुझे डगमगाना नहीं चाहिए । वास्तव में, क्षत्रिय के लिए धर्म-युद्ध से अधिक कल्याणकर, और कुछ नहीं है ।

२.३२ यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥

यदृच्छया चो (उ)पपन्नं
स्वर्गद्व द्वारम् अपावृतम्
सुखिनः क्षत्रियाः, पार्थ – –
लभन्ते युद्धम् ईदृशम्

यदृच्छया च उपपन्नम् स्वर्गद्वारम् अपावृतम्
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धम् ईदृशम्

और, संयोग से आया हुआ (धर्म-युद्ध), मानो स्वर्ग का द्वार खुला है ; सौभाग्यशाली क्षात्रिय ही, पार्थ, प्राप्त करते हैं– ऐसा युद्ध ।

२.३३ अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥

अथ चेत् त्वम् इमं धर्म्यं
संग्रामं न करिष्यसि – –
ततः स्वधर्मं कीर्ति च – –
हित्वा पापम् अवाप्स्यसि – –

अथ चेत् त्वम् इमम् धर्म्यम् संग्रामम् न करिष्यसि
ततः स्वधर्मम् कीर्तिम् च हित्वा पापम् अवाप्स्यसि

अब, यदि तू यह धर्म युद्ध नहीं करेगा, तो अपना धर्म और यश गँवा कर, तू अपने ऊपर पाप लेगा ।

**२.३४ अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥**

अकीर्तिं चा (अ)पि भूतानि - -
कथयिष्यन्ति ते (अ)व्ययाम्
संभावितस्य चा (अ)कीर्तिर्
मरणाद् अतिरिच्यते

अकीर्तिम् च अपि भूतानि कथयिष्यन्ति ते अव्ययाम्
संभावितस्य च अकीर्तिः मरणात् अतिरिच्यते

और सब लोग तेरी अपकीर्ति की चर्चा करेंगे, जो कभी मिटेगी नहीं। और, सम्मानित (पुरुष) के लिए अपयश, मरण से भी बढ़कर है।

**२.३५ भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥**

भयाद् रणाद् उपरतं
मंस्यन्ते त्वां महारथाः
येषां चत् त्वं बहुमतो
भूत्वा यास्यसि लाघवम्

भयात् रणात् उपरतम् मंस्यन्ते त्वाम् महारथाः
येषाम् च त्वम् बहुमतः भूत्वा यास्यसि लाघवम्

महारथी लोग समझेंगे, तू भय के कारण रण से भाग निकला। और, वे जो तुझे बहुत (बड़ा) मानते हैं, तुच्छ समझेंगे।

२.३६ अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥

अवाच्यवादांश् च बहून्
वदिष्यन्ति तवा (अ)हिताः
निन्दन्तस् तव सामर्थ्यं
ततो दुःखतरं नु किम्

अवाच्यवादान् च बहून् वदिष्यन्ति तव अहिताः
निन्दन्तः तव सामर्थ्यम् ततः दुःखतरम् नु किम्

और तेरा अनिष्ट चाहने वाले बहुत कुछ कहेंगे, जो कहना नहीं चाहिए–तेरे सामर्थ्य की निन्दा करते हुए । वास्तव में, इससे अधिक दुःख, और क्या है ?

२.३७ हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥

हतो वा प्राप्स्यसिस् स्वर्गं,
जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्
तस्माद् उत्तिष्ठ, कौन्तेय – –
युद्धाय कृतनिश्चयः

हतः वा प्राप्स्यसि स्वर्गम् जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्
तस्मात् उत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः

यदि तू मारा गया तो स्वर्ग पाएगा, यदि जीत गया तो पृथ्वी को भोगेगा । अतः उठ कौन्तेय, युद्ध के लिए खड़ा हो जा, दृढ निश्चय करके ।

२.३८ सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥

सुख दुःखे समे कृत्वा,
लाभालाभौ, जयाजयौ
ततो युद्धाय युज्यस्व, - -
नै (ए)वं पापम् अवाप्स्यसि- -

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ
ततः युद्धाय युज्यस्व न एवम् पापम् अवाप्स्यसि

सुख और दुःख, लाभ और हानि, जय और पराजय को एक सा मानकर, फिर युद्ध में लग जा । इस प्रकार तुझे पाप नहीं लगेगा ।

२.३९ एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥

एषा ते (अ)भिहिता सांख्ये
बुद्धिर् योगे त्व् इमां शृणु- -
बुद्ध्या युक्तो यया, पार्थ- -,
कर्मबन्धं प्रहास्यसि- -

एषा ते अभिहिता सांख्ये बुद्धिः योगे तु इमाम् शृणु
बुद्ध्या युक्तः यया पार्थ कर्मबन्धम् प्रहास्यसि

यह ज्ञान तुझे सांख्य के अनुसार बतलाया है । अब इसे योग के अनुसार सुन, जिस बुद्धि को पाकर पार्थ ! तू कर्म बन्धन तोड़ फेंकेगा ।[२]

२. यहां "सांख्य" और "योग" से क्रमशः "ज्ञानयोग" और "कर्मयोग" का अर्थ किया गया है ।

**२.४० नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥**

ने (इ)हा (अ)भिक्क्रमनाशो (अ)स्ति- -,
प्रत्यवायो न विद्यते
स्वल्पम् अप्य् अस्य धर्मस्य- -
त्रायते महतो भयात्

न इहं अभिक्रमनाशः अस्ति प्रत्यवायः न विद्यते
स्वल्पम् अपि अस्य धर्मस्य त्रायते महतः भयात्

इस (योग) में जो भी प्रयत्न किए जाँय, नष्ट नहीं होते, न विघ्न आते हैं । इस धर्म का अल्प मात्र (पालन) भी रक्षा करता है, महाभय से ।

**२.४१ व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥**

व्यवसायात्मिका बुद्धिर्
एके (इ)ह कुरुनन्दन - -
बहुशाखा हय् अनन्ताश् च - -
बुद्धयो (अ)व्यवसायिनाम्

व्यवसायात्मिका बुद्धिः एका इह कुरुनन्दन
बहुशाखाः हि अनन्ताः च बुद्धयः अव्यवसायिनाम्

निश्चयात्मिका बुद्धि एक ही है, कुरुनन्दन ! और, अनेक शाखाओं वाली, अनन्त बुद्धियां हैं,- डाँवाडोल विचार वालों की ।

२.४२ यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥

याम् इमां पुष्पितां वाचं
प्रवदन्त्य् अविपश्चितः
वेदवादरताः, पार्थ - -
ना (अ)न्यद् अस्ती (इ)ति वादिनः

याम् इमाम् पुष्पिताम् वाचम् प्रवदन्ति अविपश्चितः
वेदवादरताः पार्थ न अन्यत् अस्ति इति वादिनः

वेद वाक्य में रत, पार्थ ' जो अज्ञानी इस भांति की आलंकारिक बातें करते हैं कि (प्रत्यक्ष जगत् के अतिरिक्त) "और कुछ नहीं है," (उन) -

२.४३ कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥

कामात्मानः स्वर्गपरा
जन्मकर्मफलप् प्रदाम्
क्रियाविशेषबहुलां
भोगैश्वर्यगतिं प्रति- -

कामात्मानः स्वर्गपराः जन्मकर्मफलप्रदाम्
क्रियाविशेषबहुलाम् भोगैश्वर्यगतिम् प्रति

कामना वाले पुरुषों के लिए स्वर्ग सर्वोच्च है, कर्मफल (पुनर) जन्म देने वाला है । नाना प्रकार की विशेष- क्रियाएं हैं, भोग और ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए ।

२.४४ भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥

भोगैश्वर्यप् प्रसक्तानां,
तया (अ)पहृत चेतसाम्
व्यवसायात्मिका बुद्धिः
समाधौ न विधीयते

भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम् तया अपहृतचेतसाम्
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते

(ऐसी बातों से) भोग और ऐश्वर्य में आसक्त रहने वालों का चित्त उन्मत्त हो जाता है । निश्चयात्मिका बुद्धि समाधिमें स्थिर नहीं रहती ।

२.४५ त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥

त्रैगुण्यविषया वेदा
निस्त्रैगुण्यो भवा (अ)र्जुन- -
निर्द्वन्द्वो नित्य सत्त्वस्थो
निर्योगक्क्षेम आत्मवान्

त्रैगुण्यविषयाः वेदाः निस्त्रैगुण्यः भव अर्जुन
निर्द्वन्द्वः नित्यसत्त्वस्थः निर्योगक्षेमः आत्मवान्

तीनों गुण, वेदों के विषय हैं । तू तीनों गुणों से परे हो, अर्जुन । द्वंद्वों से रहित, नित्य सत्त्व में स्थित हो । योगक्षेम[३] से मुक्त, तू आत्मनिष्ठ बन ।

३. जो नहीं है उसे उपलब्ध करना "योग" है, और, जो है, उसका संरक्षण "क्षेम" है ।

२.४६ यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥

यावान् अर्थ उद्पाने
सर्वतः संप्लुतोद्के
तावान् सर्वेषु वेदेषु- -
ब्राह्मणस्य विजानतः

यावान् अर्थः उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः

सब ओर से जल मग्न स्थान में, जितना उपयोग पोखरे का है, उतना ही सब वेदों का है, ब्राह्मण के लिए, जो ज्ञान सम्पन्न है।

२.४७ कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥

कर्मण्य् एवा (अ)धिकारस् ते,
मा फलेषु कदाचन- -
मा कर्मफलहेतुर् भूर्,
मा ते संगो (अ)स्त्व् अकर्मणि- -

कर्मणि एव अधिकारः ते मा फलेषु कदाचन
मा कर्मफलहेतुः भूः मा ते संगः अस्तु अकर्मणि

तेरा अधिकार है एकमात्र कर्म करने में; उसके फल में, कभी नहीं। न कर्मफल तेरा उद्देश्य हो और न अकर्म में तेरी आसक्ति हो।

२.४८ योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

योगस्थः कुरु कर्माणि- -
संगं त्यक्त्वा, धनंजय- -
सिद्ध्य् असिद्ध्योः समो भूत्वा
समत्वं योग उच्यते

यो गस्थः कु रु कर्मा णि सं गम् त्यक्त्वा धनं जय
सिद्ध्यसिद्ध्योः समः भूत्वा समत्वम् योगः उच्यते

योग में स्थित तू कर्म कर, आसक्ति को त्याग कर, धनंजय । सफलता और असफलता में एक सा रह कर । (इस) समता को ही योग कहते हैं ।

२.४९ दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥

दूरेण ह्य् अवरं कर्म- -
बुद्धियोगाद्, धनंजय- -
बुद्धौ शरणम् अन्विच्छ- - ;
कृपणाः फलहेतवः

दूरेण हि अवरम् कर्म बुद्धियोगात् धनं जय
बुद्धौ शरणम् अन्विच्छ कृपणाः फलहे तवः

सचमुच, कर्म कहीं निकृष्ट है, बुद्धियोग से, धनंजय । तू बुद्धि (योग) की शरण ले । वे दया के पात्र हैं, जो फल की आकांक्षा करते हैं ।

२.५० बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥

बुद्धियुक्तो जहाती (इ)ह - -
उभे सुकृत दुष्कृते
तस्माद् योगाय युज्यस्व - -
योगः कर्मसु कौशलम्

बुद्धियुक्तः जहाति इह उभे सुकृतदुष्कृते
तस्मात् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्

जो बुद्धिसे सम्पन्न है, वह अच्छे और बुरे दोनों कर्म यहीं छोड़ देता है । अतएव, तू योग के लिए प्रयत्न कर । कर्म में कुशलता, योग है ।

२.५१ कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि - -
फलं त्यक्त्वा, मनीषिणः
जन्मबन्ध विनिर् मुक्ताः,
पदं गच्छन्त्य् अनामयम्

कर्मजम् बुद्धियुक्ताः हि फलम् त्यक्त्वा मनीषिणः
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदम् गच्छन्ति अनामयम्

विवेकी पुरुष, बुद्धि में रत, कर्म से उत्पन्न फल को त्याग कर, जन्मबन्धन से मुक्त हुए, प्राप्त होते हैं पीड़ा-रहित स्थिति को ।

२.५२ यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥

यदा ते मोहकलिलं
बुद्धिर् व्यति तरिष्यति - -
तदा गन्तासि निर्वेदं
श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च - -

यदा ते मोहकलिलम् बुद्धिः व्यतितरिष्यति
तदा गन्तासि निर्वेदम् श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च

जब तेरी बुद्धि मोह के गँदले से पार उतर जाएगी तब, तू विरत हो जाएगा, जो सुना है और जो सुनना चाहिए, (दोनो) से ।[४]

२.५३ श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥

श्रुतिविप् प्रतिपन्ना ते
यदा स्थास्यति निश्चला
समाधाव् अचला बुद्धिस्
तदा योगम् अवाप्स्यसि - -

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला
समाधौ अचला बुद्धिः तदा योगम् अवाप्स्यसि

श्रुतियों द्वारा विचलित तेरी बुद्धि, जब समाधिमें, अचल, निश्चल भाव से स्थित होगी, तब तू योग को पा जाएगा ।

४. उसके लिए सम्पूर्ण वाङ्मय निरर्थक हो जाता है।

अर्जुन उवाच -

२.५४ स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥

स्थितप् प्रज्ञस्य का भाषा
समाधिस् थस्य, केशव - - -
स्थितधीः किं प्रभाषेत,- -,
किम् आसीतव् व्रजेत किम्

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव
स्थितधीः किम् प्रभाषेत किम् आसीत व्रजेत किम्

अर्जुन उवाच -

हे केशव ! क्या परिभाषा है स्थित बुद्धिवाले की, जो समाधिमें स्थित है । स्थित बुद्धिवाला कैसे बोलता है, कैसे बैठता है, किस प्रकार चलता है ?

२.५५ श्री भगवानुवाच -

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥

प्रजहाति यदा कामान्
सर्वान्, पार्थ, मनोगतान्
आत्मन्य् एवा (आ)त्मना तुष्टः ;
स्थितप्प्रज्ञस् तदो (उ)च्यते

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्
आत्मनि एव आत्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञः तदा उच्यते

श्री भगवानुवाच-

हे पार्थ ! जब मनुष्य, मन में आई सब कामनाओं को त्याग देता है और अपने में अपने से ही संतुष्ट रहता है, तब उसे, स्थित बुद्धि वाला कहते हैं ।

२.५६ दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

दुःखेष्व् अनुद्द्विग्नमनाः,
सुखेषु विगतस्स्पृहः
वीतराग भयक् क्रोधः
स्थितधीर् मुनिर् उच्यते

दुःखेषु अनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीः मुनिः उच्यते

जिसका मन दुःखों में अकुलाता नहीं , सुखों में जो लालसा से मुक्त है, प्रीति भय और क्रोध जिसके छूट गए हैं, वह मुनि स्थित बुद्धि वाला कहलाता है ।

२.५७ यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

यः सर्वत्रा (अ)नभिस् स्नेहस्
तत् तत् प्राप्य शुभाशुभम्
ना (अ)भिनन्दति नद् द्वेष्टि – – ,
तस्यप् प्रज्ञा प्रतिष्ठिता

यः सर्वत्र अनभिस्नेहः तत् तत् प्राप्य शुभाशुम्
न अभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता

जो सब ओर से राग रहित है, शुभ और अशुभ को पाकर, न हर्षित होता है न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थित है ।

**२.५८ यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥**

यदा संहरते चा (अ)यं,
कूर्मो (अ)ङ्गानी (इ)व, सर्वशः
इन्द्रियाणी (इ)न्द्रियार्थेभ्यस्
तस्यप् प्रज्ञा प्रतिष्ठिता

यदा संहरते च अयम् कूर्मः अंगानि इव सर्वशः
इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्यः तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता

और जब यह (पुरुष) इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषयों से समेट लेता है, जैसे कछुआ अंगों को, सब ओर से, तब उसकी बुद्धि स्थित है ।

**२.५९ विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥**

विषया विनिवर्तन्ते
निराहारस्य देहिनः
रसवर्जं, रसो (अ)प्य् अस्य – –,
परं दृष्ट्वा निवर्तते

विषयाः विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः
रसवर्ज रसः अपि अस्य परम् दृष्ट्वा निवर्तते

देहधारी के, जो निराहारी है, विषय छूट जाते हैं, रुचि नहीं । परमात्मा को देखकर उसकी, रुचि भी छूट जाती है ।

२.६० यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥

यततो हृय् अपि, कौन्तेय - - ,
पुरुषस्य विपश्चितः
इन्द्रियाणिप् प्रमाथीनि - -
हरन्तिप् प्रसभं मनः

यततः हि अपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभम् मनः

वास्तव में, कौन्तेय, यत्न करते हुए भी बुद्धिमान् पुरुष की इन्द्रियां, जो प्रमथन कारिणी हैं, उसके मन को बरबस हर लेती हैं ।

२.६१ तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

तानि सर्वाणि संयम्य - -
युक्त आसीत मत्परः
वशे हि यस्ये (इ)न्द्रियाणि - -
तस्यप् प्रज्ञा प्रतिष्ठिता

तानि सर्वाणि संयस्य युक्तः आसीत मत्परः
वशे हि यस्य इन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता

उन सब (इन्द्रियों) को नियन्त्रण में करके, (उसे) मुझ सर्वोच्च में लीन, एकाग्र चित्त हुए बैठना चाहिए । सच में, जिसकी इन्द्रियां वश में हैं, उसकी बुद्धि स्थित है ।

**२.६२ ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥**

ध्यायतो विषयान् पुंसः
संगस् तेषू (उ)पजायते
संगात् संजायते कामः,
कामात् क्रोधो (अ)भिजायते

ध्यायतः विषयान् पुंसः संगः तेषु उपजायते
संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधः अभिजायते

विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की, उन (विषयों) में आसक्ति हो जाती है। आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है और कामना से क्रोध की उत्पत्ति होती है।

**२.६३ क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥**

क्रोधाद् भवति संमोहः,
संमोहात् स्मृति विभ्रमः
स्मृतिम् भ्रंशाद् बुद्धिनाशो,
बुद्धिनाशात् प्रणश्यति - -

क्रोधात् भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः
स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशः बुद्धिनाशात् प्रणश्यति

क्रोध से भ्रम होता है, भ्रम से स्मृति में भ्रान्ति हो जाती है, स्मृतिभ्रम से बुद्धिनाश, बुद्धिनाश से वह (स्वयं) नष्ट हो जाता है।

२.६४ रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥

रागद् द्वेषवियुक्तैस् तु --
विषयान् इन्द्रियैश् चरन्
आत्मवश्यैर् विधेयात्मा,
प्रसादम् अधिगच्छति --

रागद्वेषवियुक्तैः तु विषयान् इन्द्रियैः चरन्
आत्मवश्यैः विधेयात्मा प्रसादम् -अधिगच्छति

परन्तु रागद्वेष से हटाई गई, (और) वश में की हुई इन्द्रियों से विषयों में विचरता हुआ वह, जिसका मन अपने वश में है, शान्ति को प्राप्त करता है ।

२.६५ प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

प्रसादे सर्वदुःखानां
हानिर् अस्यो (उ)पजायते
प्रसन्नचेतसो ह्य् आशु --
बुद्धिः पर्यवतिष्ठते

प्रसादे सर्वदुःखानाम् हानिः अस्य उपजायते
प्रसन्नचेतसः हि आशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते

उस शान्ति में उसके सम्पूर्ण दुःखों का अन्त हो जाता है । वास्तव में, जिसका मन शान्त है उसकी बुद्धि शीघ्र ही स्थित हो जाती है ।

२.६६ नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥

ना (अ)स्ति बुद्धिर् अयुक्तस्य - -
न चा (अ)युक्तस्य भावना
न चा (अ)भावयतः शान्तिर्
अशान्तस्य कुतः सुखम्

न अस्ति बुद्धिः अयुक्तस्य न च अयुक्तस्य भावना
न च अभावयतः शान्तिः अशान्तस्य कुतः सुखम्

असंतुलित (व्यक्ति) के न बुद्धि होती है और, न असंतुलित की कोई विचार-धारा । और, विचार-धारा के बिना शान्ति नहीं । अशान्त को सुख कहां ?

२.६७ इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥

इन्द्रियाणां हि चरतां
यन् मनो (अ)नुविधीयते
तद् अस्य हरतिप् प्रज्ञां
वायुर् नावम् इवा (अ)म्भसि - -

इन्द्रियाणाम् हि चरताम् यत् मनः अनु विधीयते
तत् अस्य हरति प्रज्ञाम् वायुः नावम् इव अम्भसि

जो मन, वास्तव में, भटकती इन्द्रियों के पीछे चलता है, वह उस (पुरुष) की बुद्धि को ऐसे भगा ले जाता है, जैसे वायु नाव को, जल में ।

२.६८ तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

तस्माद् यस्य महाबाहो
निगृहीतानि सर्वशः
इन्द्रियाणी (इ)न्द्रियार्थेभ्यस्
तस्यप् प्रज्ञा प्रतिष्ठिता

तस्मात् यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः
इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्यः तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता

अतएव, हे महाबाहो । जिसकी इन्द्रियां सम्पूर्ण रूप से इन्द्रियों के विषयों से खिंची हुई हैं, उसकी बुद्धि स्थित है ।

२.६९ या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

या निशा सर्वभूतानां
तस्यां जागर्ति संयमी
यस्यां जाग्रति भूतानि - -
सा निशा पश्यतो मुनेः

या निशा सर्वभूतानाम् तस्याम् जागर्ति संयमी
यस्याम् जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतः मुनेः

जो प्राणिमात्र की रात है, स्थित बुद्धि वाला उसमें, जागता है । जिस (समय) में सब प्राणी जागते हैं, वह उस मुनि के लिए रात है, जो देखता है, (तत्त्व को जानता है)[५]

५. यह श्लोक ज्ञानी और अज्ञानी के विपरीत-दर्शी स्वभाव का वर्णन अति सुन्दर ढंग से कर रहा है।

२.७० आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥

आपूर्यमाणम् अचलप् प्रतिष्ठम्
समुद्रम् आपः प्रविशन्ति यद्वत्
तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिम् आप्नोति न कामकामी

आपूर्यमाणम् अचलप्रतिष्ठम् समुद्रम् आपः प्रविशन्ति यद्वत्
तद्वत् कामाः यम् प्रविशन्ति सर्वे सः शान्तिम् आप्नोति न कामकामी

(निरन्तर) नदी नालों से भरते रहने पर भी जैसे समुद्र की मर्यादा अचल रहती है, वैसे ही वह पुरुष जिसमें सब कामनाएं समा जाती हैं शान्ति को प्राप्त होता है। वह नहीं, जो कामनाओं की लालसा करता है।

२.७१ विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥

विहाय कामान् यः सर्वान्
पुमांश् चरति निःस्पृहः
निर्ममो निरहंकारः
स शान्तिम् अधिगच्छति - -

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमान् चरति निःस्पृहः
निर्ममः निरहंकारः सः शान्तिम् अधिगच्छति

जो पुरुष सब कामनाओं को त्यागकर, इच्छा रहित, ममत्वरहित, अहंकार रहित, हो कर विचरता है, वह शान्ति को पा जाता है।

२.७२ एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥

एषा ब्राह्मी स्थितिः, पार्थ – – ,
नै (ए)नाम् प्राप्य विमुह्यति – –
स्थित्वा (अ)स्याम् अन्तकाले (अ)पि – –
ब्रह्मनिर्वाणम् ऋच्छति – –

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ न एनाम् प्राप्य विमुह्यति
स्थित्वा अस्याम् अन्तकाले अपि ब्रह्मनिर्वाणम् ऋच्छति

हे पार्थ । यह ब्राह्मी अवस्था है । इसे पाकर कोई भ्रम में नहीं पड़ता । जो अन्त समय में भी इसमें स्थित हो जाता है, वह प्राप्त करता है–ब्रह्म को, निर्वाण को ।

श्री कृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगोनाम द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः

गीता प्रकाश

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

परिचय-३

स्थित बुद्धि की सराहना सुन कर अर्जुन ने प्रश्न किया कि यदि बुद्धि कर्म से श्रेष्ठ है, तो केशव, आप मुझे घोर कर्म करने के लिए क्यों कहते हैं ?

भगवन् कहते हैं कर्म करने ही पड़ते हैं, उनसे छुटकारा नहीं पाया जा सकता।

अकर्म से कर्म श्रेष्ठ है। यज्ञ[१] कर्म के अतिरिक्त अन्य सब कर्म मनुष्य को बांधते हैं। अतः ये अनासक्त रह कर, करना चाहिए।

यही "कर्म योग" है जो अध्याय ३ का नाम है।

१. इस संदर्भ में, "यज्ञ" का अर्थ जगद्गुरु शंकराचार्य ने विष्णु (परमेश्वर), रामानुज ने बलिदान और महात्मा गांधी ने परोपकार किया है।

श्रीमद्भगवद्गीता

अथ तृतीयोऽध्यायः

(श्री कृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगः)

३.१ **अर्जुन उवाच–**
ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥

ज्यायसी चेत् कर्मणस् ते
मता बुद्धिर् जनार्दन – –
तत् किं कर्मणि घोरे मां
नियोजयसि, केशव – –

ज्यायसी चेत् कर्मणः ते मता बुद्धिः जनार्दन
तत् किम् कर्मणि घोरे माम् नियोजयसि केशव

अर्जुन उवाच –
यदि आपके विचार में बुद्धि कर्म से श्रेष्ठ है जनार्दन, तब आप, मुझे (ऐसे) भयानक कर्म में क्यों लगाते हैं, केशव ?

३.२ **व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।**
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥

व्यामिश्श्रेणे (इ)व वाक्येन - -
बुद्धिं मोहयसी (इ)व मे
तद् एकं वद निश्चित्य - -
येन श्रेयो (अ)हम् आप्नुयाम्

व्यामिश्रेण इव वाक्येन बुद्धिम् मोहयसि इव मे
तत् एकम् वद निश्चित्य येन श्रेयः अहम् आप्नुयाम्

उलझे हुए से वचन कह कर आप मेरी बुद्धि को मानों भ्रम में डालते हैं । इसलिए निश्चय करके एक बात कहिए जो मेरे लिए शुभ है ।

३.३ **श्री भगवानुवाच-**
लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥

लोके (अ)स्मिन् द्विविधा निष्ठा
पुरा प्रोक्ता मया (अ)नघ - -
ज्ञानयोगेन सांख्यानां,
कर्मयोगेन योगिनाम्

लोके अस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मया अनघ
ज्ञानयोगेन सांख्यानाम् कर्मयोगेन योगिनाम्

श्री भगवान् उवाच -
इस लोक में दो प्रकार की आस्थाएं हैं, मैंने पहले कहा है, अनघ । (एक) सांख्यों की ज्ञानयोग द्वारा, (दूसरी) योगियों की कर्मयोग द्वारा ।

३.४ न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥

न कर्मणाम् अनारम्भान्
नैष्कर्म्यम् पुरुषो (अ)श्नुते
न च संन्यसनाद् एव - -
सिद्धिं समधिगच्छति - -

न कर्मणाम् अनारम्भात् नैष्कर्म्यम् पुरुषः अश्नुते
न च संन्यसनात् एव सिद्धिम् समधिगच्छति

न तो कर्मों को आरम्भ न करने से ही मनुष्य, कर्मों (के बन्धनों) से मुक्ति पाता है;[१] और न केवल (कर्मों के) संन्यास द्वारा ही, सिद्धि प्राप्त करता है;-(कारण)

३.५ न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥

न हि कश्चित् क्षणम् अपि - -
जातु तिष्ठत्य् अकर्मकृत्
कार्यते ह्य् अवशः कर्म - -
सर्वः प्रकृतिजैर् गुणैः

न हि कश्चित् क्षणम् अपि जातु तिष्ठति अकर्मकृत्
कार्यते हि अवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैः गुणैः

न कभी कोई एक पल भी, बिना कर्म किये, रह सकता है । प्रकृति से उत्पन्न गुण सब किसी से सचमुच बरबस कर्म कराते हैं ।

१. नैष्कर्म्यम् क्या है ? देखिए "गीता कोश"

३.६ **कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।**
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य – –,
य आस्ते मनसा स्मरन्
इन्द्रियार्थान्, विमूढात्मा,
मिथ्याचारः स उच्यते

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य यः आस्ते मनसा स्मरन्
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः सः उच्यते

कर्मेन्द्रियों को नियन्त्रण में रखकर जो बैठता है, मन से इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करता हुआ, उस विमूढ पुरुष को ढोंगी कहते हैं ।

३.७ **यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।**
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥

यस् त्व् इन्द्रियाणि मनसा
नियम्या (आ)रभते (अ)र्जुन – –
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगम्
असक्तः, स विशिष्यते

यः तु इन्द्रियाणि मनसा नियम्य आरभते अर्जुन
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगम् असक्तः सः विशिष्यते

परन्तु अर्जुन । जो मन से इन्द्रियों को वश में करके कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्मयोग आरम्भ करता है–अनासक्त होकर, वह श्रेष्ठ है ।[२]

२. "कर्मयोग" क्या है ? देखिए २.४७, ४८

३.८ **नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।**
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥

नियतं कुरु कर्मत् त्वं,
कर्मज् ज्यायो ह्य् अकर्मणः
शरीरयात्रा (अ)पि च ते
न प्रसिद्द ध्येद् अकर्मणः

नियतम् कुरु कर्म त्वम् कर्म ज्यायः हि अकर्मणः
शरीरयात्रा अपि च ते न प्रसिद्ध्येत् अकर्मणः

तू निर्धारित कर्म कर । कर्म सचमुच श्रेष्ठ है, अकर्म से । और फिर, तेरे शरीर का निर्वाह भी तो, हो नहीं सकता, अकर्म से ।

३.९ **यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।**
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर ॥

यज्ञार्थात् कर्मणो (अ)न्यत्र – –
लोको (अ)यं कर्मबन्धनः
तदर्थं कर्म, कौन्तेय – –,
मुक्तसंगः समाचर – –

यज्ञार्थात् कर्मणः अन्यत्र लोकः अयम् कर्मबन्धनः
तदर्थम् कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर

यज्ञार्थ कर्म को छोड़कर, यह संसार (अन्य) कर्म से बँधा है । इस कारण कौन्तेय ! तू अनासक्त रह कर, कर्म कर ।[३]

३. यहां 'यज्ञ' का अर्थ जगद्गुरु शंकराचार्य ने विष्णु (परमेश्वर), रामानुज ने बलिदान, और महात्मा गांधी ने परोपकार किया है।

३.१० **सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।**
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा
पुरो (उ)वाचप् प्रजापतिः
अनेन प्रसविष्यध्ध्वम्
एष वो (अ)स्त्व् इष्टकामधुक्

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरा उवाच प्रजापतिः
अनेन प्रसविष्यध्वम् एषः वः अस्तु इष्टकामधुक्

आदि में यज्ञ के साथ साथ मानव जाति को उत्पन्न करके प्रजापति ने कहाः "इससे तुम लोग फलो फूलो । यह तुम्हारी इच्छित कामनाओं को देने वाला होवे", (काम धेनु के सदृश)

३.११ **देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।**
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥

देवान् भावयता (अ)नेन – –,
ते देवा भावयन्तु वः
परस्परं भावयन्तः
श्रेयः परम् अवाप्स्यथ – –

देवान् भावयत अनेन ते देवाः भावयन्तु वः
परस्परम् भावयन्तः श्रेयः परम् अवाप्स्यथ

तुम लोग इसके द्वारा देवताओं का पोषण करो, वे देवता तुम्हारा पोषण करें । एक दूसरे का पोषण करते हुए तुम उच्चतम कल्याण प्राप्त करोगे ।

३.१२ इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥

इष्टान् भोगान् हि वो देवा
दास्यन्ते यज्ञभाविताः
तैर् दत्तान् अपप्रदायै (ए)भ्यो
यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः

इष्टान् भोगान् हि वः देवाः दास्यन्ते यज्ञभाविताः
तैः दत्तान् अप्रदाय एभ्यः यः भुङ्क्ते स्तेनः एव सः

यज्ञ से पोषित देवता, सचमुच तुम्हें इच्छित भोग पदार्थों को देंगे । उनके द्वारा दिए हुए इन (पदार्थों) को, जो बदले में बिना कुछ दिए भोगता है,वह वास्तव में, चोर है ।

३.१३ यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो
मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः
भुञ्जते ते त्व् अघं पापा
ये पचन्त्य् आत्मकारणात्

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तः मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः
भुञ्जते ते तु अघं पापाः ये पचन्ति आत्मकारणात्

जो सन्त यज्ञ से बचा हुआ खाते हैं, वे सब पापों से मुक्त हो जाते हैं । वे पापी, वास्तव में, पाप भक्षण करते हैं जो अपने लिए ही, भोजन बनाते हैं ।

३.१४ अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥

अन्नाद् भवन्ति, भूतानि – –,
पर्जन्याद् अन्नसम्भवः
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो,
यज्ञः कर्मसमुद्भवः

अन्नात् भवन्ति भूतानि पर्जन्यात् अन्नसम्भवः
यज्ञात् भवति पर्जन्यः यज्ञः कर्मसमुद्भवः

प्राणिमात्र की उत्पत्ति अन्न से है, अन्न वर्षा से उपजता है । वर्षा यज्ञ से होती है, यज्ञ, कर्म से उदय होता है ।

३.१५ कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि – –,
ब्रह्मा (अ)क्षरसमुद्भवम्
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म – –
नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्

कर्म ब्रह्मोद्भवम् विद्धि ब्रह्म अक्षरसमुद्भवम्
तस्मात् सर्वगतम् ब्रह्म नित्यम् यज्ञे प्रतिष्ठितम्

कर्म का उद्गम ब्रह्म (अर्थात् वेद) है, तू समझ । (वेद) ब्रह्म अक्षर (अव्यक्त प्रकृति) से उत्पन्न है । इसलिए सर्व व्यापी ब्रह्म सदा यज्ञ में (पूर्णरूप से) स्थित है ।[४]

४. उपर्युक्त दो श्लोकों में वर्णित- यह सृष्टि चक्र है- (प्राणिमात्र-बादल-यज्ञ-कर्म-वेद-अव्यक्त प्रकृति,सर्वव्यापी शुद्ध ब्रह्म) यह ब्रह्म कारणों का परम कारण और स्वयं अकारण है। अतः यज्ञ में सदैव प्रतिष्ठित है, प्रत्येक का मूल कारण होने से।

३.१६ एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं
ना (अ)नुवर्तयती (इ)ह यः
अघायुर् इन्द्रियारामो
मोघं, पार्थ, स जीवति - -

एवम् प्रवर्तितम् चक्रम् न अनुवर्तयति इह यः
अघायुः इन्द्रियारामः मोघम् पार्थ सः जीवति

इस प्रकार से चलाए हुए चक्र का, इस लोक में जो अनुसरण नहीं करता, वह पापजीवी इन्द्रियों के सुख में पड़ा हुआ, हे पार्थ, व्यर्थ जीता है ।

३.१७ यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥

यस् त्व् आत्मरतिर् एवस् स्याद्
आत्मतृप्तश् च मानवः
आत्मन्य् एव च संतुष्टस्
तस्यं कार्यं न विद्यते

यः तु आत्मरतिः एव स्यात् आत्मतृप्तः च मानवः
आत्मनि एव च संतुष्टः तस्य कार्यम् न विद्यते

वास्तव में, जिस मनुष्य का अपने आप[५] से अनुराग है,जो अपने में तृप्त है, और फिर अपने से ही संतुष्ट है, उसके करने के लिए, कुछ नहीं रहता ।

५ भीतरी प्रकाश देखिए प्रवेशिका II

३.१८ नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥

नै (ए)व तस्य कृतेना (अ)र्थो,
ना (अ)कृतेने (इ)ह कश्चन – –
न चा (अ)स्य सर्वभूतेषु – –
कश्चिद् अर्थव्‌व्यपाश्रयः

न एवं तस्य कृतेन अर्थः न अकृतेन इह कश्चन
न च अस्य सर्वभूतेषु कश्चित् अर्थव्यपाश्रयः

इस लोक में किए कर्मों से उसका कोई प्रयोजन नहीं, और न किए कर्मों से भी । और, न सम्पूर्ण प्राणियों में (किसी से) उसका कोई स्वार्थ सम्बन्ध है ।

३.१९ तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥

तस्माद् असक्तः सततं
कार्यम् कर्म समाचर – –
असक्तो ह्य् आचरन् कर्म – –
परम् आप्नोति पूरुषः

तस्मात् असक्तः सततम् कार्यम् कर्म समाचर
असक्तः हि आचरन् कर्म परम् आप्नोति पूरुषः

अतः तू अनासक्त रह कर सदा कर्तव्य कर्म कर । वास्तव में, अनासक्त कर्म करते हुए ही सर्वोच्च को प्राप्त होता है, मनुष्य ।

**३.२० कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥**

कर्मणै (ए)व हि संसिद्धम्
आस्थिता जनकादयः
लोकसंग्रहम् एवा (अ)पि – –
संपश्यन् कर्तुम् अर्हसि – –

कर्मणा एव हि संसिद्धिम् आस्थिताः जनकादयः
लोकसंग्रहम् एव अपि संपश्यन् कर्तुम् अर्हसि

सचमुच, केवल कर्म से ही जनक इत्यादि ने पूर्ण सिद्धि को प्राप्त किया । एकमात्र, लोक कल्याण को देखते हुए भी, तुझे कर्म करना चाहिए ।

**३.२१ यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥**

यद् यद् आचरतिश् श्रेष्ठस्
तत् तद् एवे (इ)तरो जनः
स यत् प्रमाणं कुरुते
लोकस् तद् अनुवर्तते

यत् यत् आचरति श्रेष्ठः तत् तत् एव इतरः जनः
सः यत् प्रमाणम् कुरुते लोकः तत् अनुवर्तते

जो जो श्रेष्ठ पुरुष करता है, दूसरे लोग केवल वही (करते हैं), जो मापदण्ड वह बना देता है, संसार उसका अनुसरण करता है ।

३.२२ न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥

न मे पार्था (अ)स्ति कर्तव्यं
त्रिषु लोकेषु किंचन - -
ना (अ)नवाप्तम् अवाप्तव्यं
वर्त एव च कर्मणि - -

न मे पार्थ अस्ति कर्तव्यम् त्रिषु लोकेषु किंचन
न अनवाप्तम् अवाप्तव्यम् वर्ते एव च कर्मणि

हे पार्थ ! तीनों लोकों में ऐसा कुछ नहीं है जो मेरे करने के लिए हो । और, न (ऐसा कुछ) अप्राप्य है, जो प्राप्त करने के योग्य हो, फिर भी, मैं कर्म करता रहता हूँ ।

३.२३ यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

यदि ह्य् अहं न वर्तेयं
जातु कर्मण्य् अतन्द्रितः
मम वर्त्मा (अ)नुवर्तन्ते
मनुष्याः पार्थ सर्वशः

यदि हि अहम् न वर्तेयम् जातु कर्मणि अतन्द्रितः
मम वर्त्म अनुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः

सचमुच, यदि मैं सदा काम में, बिना अलसाए न लगा रहूँ , तो मेरे ही पथ का अनुसरण करने लग जाएंगे मनुष्य, पार्थ, हर कहीं ।

**३.२४ उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥**

उत्सीदेयुर् इमे लोका
न कुर्यां कर्म चेद् अहम्
संकरस्य च कर्ता स्याम्,
उपहन्याम् इमाः प्रजाः

उत्सीदेयुः इमे लोकाः न कुर्याम् कर्म चेत् अहम्
संकरस्य च कर्ता स्याम् उपहन्याम् इमाः प्रजाः

यदि मैं कर्म न करूं तो ये लोक नष्ट भ्रष्ट हो जाएं, और, मैं सारी अव्यवस्था का कर्ता, और इन (सब) लोगों का नाश करने वाला होऊं ।

**३.२५ सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥**

सक्ताः कर्मण्य् अविद्वांसो
यथा कुर्वन्ति, भारत - -
कुर्याद् विद्वांस् तथा (अ)सक्तश्
चिकीर्षुर् लोकसंग्रहम्

सक्ताः कर्मणि अविद्वांसः यथा कुर्वन्ति भारत
कुर्यात् विद्वान् तथा असक्तः चिकीर्षुः लोकसंग्रहम्

जिस प्रकार अज्ञानी (जन) कर्म में आसक्त होकर व्यवहार करते हैं, भारत ! उसी प्रकार ज्ञानी (पुरुष) को (कर्म) करना चाहिए,- अनासक्त रहकर, लोक कल्याण की इच्छा से ।

**३.२६ न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥**

न बुद्धिभेदं जनयेद्
अज्ञानां कर्मसंगिनाम्
जोषयेत् सर्वकर्माणि - -
विद्वान् युक्तः समाचरन्

न बुद्धिभेदम् जनयेत् अज्ञानाम् कर्मसंगिनाम्
जोषयेत् सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन्

कर्म में आसक्त अज्ञानियों की बुद्धि को भ्रम में नहीं डालना चाहिए । विद्वान् पुरुष को चाहिए, सब कर्मों में (उनकी) रूचि कराए, (स्वयं) सन्तुलित कर्म करते हुए ।

**३.२७ प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥**

प्रकृतेः क्रियमाणानि - -
गुणैः कर्माणि सर्वशः
अहंकार विमूढात्मा
कर्ता (अ)हम् इति मन्यते

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः
अहंकारविमूढात्मा कर्ता अहम् इति मन्यते

प्रकृति के गुणों द्वारा कर्म, सब कहीं किए जाते हैं । (पर) अहंकार से मोहित (व्यक्ति) ऐसा मानता है कि "कर्ता मैं हूं ।"

३.२८ तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥

तत्त्ववित् तु, महाबाहो
गुणकर्म विभागयोः
गुणा गुणेषु वर्तन्त – –
इति मत्वा न सज्जते

तत्त्ववित् तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः
गुणाः गुणेषु वर्तन्ते इति मत्वा न सज्जते

हे महाबाहो । गुण और कर्म के विभाजन को ठीक-ठीक जानने वाला, ऐसा मान कर कि गुण गुणों में रहते हैं,[६] आसक्त नहीं होता ।

३.२९ प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥

प्रकृतेर् गुणसंमूढाः
सज्जन्ते गुणकर्मसु – –
तान् अकृत्स्नविदो मन्दान्
कृत्स्नविन् न विचालयेत्

प्रकृतेः गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु
तान् अकृत्स्नविदः मन्दान् कृत्स्नवित् न विचालयेत्

प्रकृति के गुणों से मोहित (पुरुष) गुणों द्वारा उत्पन्न कर्मों में आसक्त रहते हैं । ये मन्द बुद्धि लोग सारी बात नहीं जानते । सर्वज्ञानी को चाहिए, इन्हें विचलित न करे ।

६. अर्थात् इन्द्रियां अपने-अपने विषयों में रमती हैं ।

३.३० मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥

मयि सर्वाणि कर्माणि - -
संन्यस्या (अ)ध्यात्मचेतसा
निराशीर् निर्म्ममो भूत्वा
युध्यस्व विगतजूज्वरः

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्य अध्यात्मचेतसा
निराशीः निर्ममः भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः

अध्यात्म बुद्धि से सर्व कर्मों को मुझ में अर्पण करके, आशा और ममत्व रहित होकर, तू युद्ध कर, बिना किसी शोक-संताप के ।

३.३१ ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥

ये मे मतम् इदं नित्यम्
अनुतिष्ठन्ति मानवाः
श्रद्धावन्तो (अ)नसूयन्तो,
मुच्यन्ते ते (अ)पि कर्म्मभिः

ये मे मतम् इदम् नित्यम् अनुतिष्ठन्ति मानवाः
श्रद्धावन्तः अनसूयन्तः मुच्यन्ते ते अपि कर्मभिः

जो मनुष्य मेरे इस मत का नित्य अनुसरण करते हैं, श्रद्धावान् हैं, छिद्रान्वेषण नहीं करते, वे भी कर्मों से मुक्त हो जाते हैं ।

३.३२ ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥

ये त्व् एतद् अभ्यसूयन्तो,
ना (अ)नुतिष्ठन्ति मे मतम्
सर्वज्ञानविमूढांस् तान्
विद्धि नष्टान् अचेतसः

ये तु एतत् अभ्यसूयन्तः न अनुतिष्ठन्ति मे मतम्
सर्वज्ञानविमूढान् तान् विद्धि नष्टान् अचेतसः

इसके विपरीत, जो मेरे मत का अनुसरण नहीं करते, इस में छिद्रान्वेषण करते हैं, जो हर ज्ञान से विमूढ हैं, तू नष्ट हुआ समझ, उन अज्ञानियों को।

३.३३ सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः
प्रकृतेर् ज्ञानवान् अपि - -
प्रकृतिं यान्ति भूतानि - -
निग्रहः किं करिष्यति - -

सदृशम् चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेः ज्ञानवान् अपि
प्रकृतिम् यान्ति भूतानि निग्रहः किम् करिष्यति

ज्ञानी पुरुष भी अपनी प्रकृति के अनुसार ही व्यवहार करता है। सब प्राणी अपने स्वभाव का अनुसरण करते हैं। (ऐसी स्थिति में बलपूर्वक किया निरोध-) निग्रह क्या करेगा ?

३.३४ इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥

इन्द्रियस्ये (इ)न्द्रियस्या (अ)र्थे
रागद्द्वेषौ व्यवस्थितौ
तयोर् न वशम् आगच्छेत्
तौ हय् अस्य परिपन्थिनौ

इन्द्रियस्य इन्द्रियस्य अर्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ
तयोः न वशम् आगच्छेत् तौ हि अस्य परिपन्थिनौ

प्रत्येक इन्द्रिय की विषयवस्तु में राग और द्वेष बैठे हुए हैं । इनके वश में नहीं आना चाहिए । ये दोनों वास्तव में उसके (मनुष्य के) पथ के बाधक हैं ।

३.३५ श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः
परधर्मात् स्वनुष्ठितात्
स्वधर्मे निधनं श्रेयः ,
परधर्मो भयावहः

श्रेयान् स्वधर्मः विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्
स्वधर्मे निधनम् श्रेयः परधर्मः भयावहः

भले ही गुणरहित हो, अपना धर्म श्रेष्ठ है पराये धर्म की अपेक्षा, जो भली भांति निभाया जाए । अपने धर्म में मरना भला है, परधर्म भय प्रद है ।

३.३६ **अर्जुन उवाच -**
अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥

अथ केनप् प्रयुक्तो (अ)यं
पापं चरति पूरुषः
अनिच्छन्न् अपि, वार्ष्णेय - -,
बलाद् इव नियोजितः

अथ केन प्रयुक्तः अयम् पापम् चरति पूरुषः
अनिच्छन् अपि वार्ष्णेय बलात् इव नियोजितः

अर्जुन उवाच -
फिर यह मनुष्य, किससे प्रेरित होकर पाप का आचरण करता है, इच्छा न रहते हुए भी । हे वार्ष्णेय ! मानों बलपूर्वक विवश किया गया हो ।

३.३७ **श्री भगवानुवाच -**
काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥

काम एष्क् क्रोध एष - -
रजो गुण समुद्भवः
महाशनो महापाप्मा,
विद्ध्य् एनम् इह वैरिणम्

कामः एष क्रोधः एषः रजोगुणसमुद्भवः
महाशनः महापाप्मा विद्धि एनम् इह वैरिणम्

श्री भगवान् उवाच -
यह काम, यह क्रोध, रजोगुण से उत्पन्न है । यह (काम) सब कुछ निगलने वाला है, महापापी है । इस संसार में, तू इसे शत्रु जान ।

३.३८ **धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।**
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥

धूमेना (आ)व्रियते वह्निर्
यथा (आ)दर्शो मलेन च --
यथो (उ)ल्बेना (आ)वृतो गर्भस्
तथा तेने (इ)दम् आवृतम्

धूमेन आव्रियते वह्निः यथा आदर्शः मलेन च
यथा उल्बेन आवृतः गर्भः तथा तेन इदम् आवृतम्

धुएं से जैसे, अग्नि ढकी रहती है और धूल से दर्पण; जैसे गर्भ झिल्ली से घिरा रहता है, वैसे ही इस (काम) ७ से यह (ज्ञान) ८ ढका है ।

३.३९ **आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।**
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥

आवृतं ज्ञानम् एतेन --
ज्ञानिनो नित्यवैरिणा
कामरूपेण, कौन्तेय --,
दुष्पूरेणा (अ)नलेन च --

आवृतम् ज्ञानम् एतेन ज्ञानिनः नित्यवैरिणा
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेण अनलेन च

इस (काम) द्वारा ज्ञान ढका रहता है । यह ज्ञानी पुरुष का नित्य का वैरी है । और कौन्तेय कभी तृप्त न होने वाली कामनाएं ज्वाला हैं ।

७ और ८ देखिए नीचे श्लोक ३.३९

३.४० इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिर्
अस्या (अ)धिष्ठानम् उच्यते
एतैर् विमोहयत्य् एष - -
ज्ञानम् आवृत्य देहिनम्

इन्द्रियाणि मनः बुद्धिः अस्य अधिष्ठानम् उच्यते
एतैः विमोहयति एषः ज्ञानम् आवृत्य देहिनम्

इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि इसके आधार स्थान कहे जाते हैं। इनके द्वारा ज्ञान को ढककर, यह मोह में डाल देता है, देहधारी को।

३.४१ तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥

तस्मात् त्वम् इन्द्रियाण्य् आदौ
नियम्य, भरतर्षभ - -,
पाप्मानं प्रजहि ह्य् एनं
ज्ञानविज्ञाननाशनम्

तस्मात् त्वम् इन्द्रियाणि आदौ नियम्य भरतर्षभ
पाप्मानम् प्रजहि हि एनम् ज्ञानविज्ञाननाशनम्

अतः पहले तू इन्द्रियों को नियंत्रण में करके, भरतर्षभ! इस पापी को निश्चय ही मार डाल। यह ज्ञान विज्ञान का नाश करने वाला है।

३.४२ इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥

इन्द्रियाणि पराण्य् आहुर्
इन्द्रियेभ्यः परं मनः
मनसस् तु परा बुद्धिर्
यो बुद्धेः परतस् तु सः

इन्द्रियाणि पराणि आहुः इन्द्रियेभ्यः परम् मनः
मनसः तु परा बुद्धिः यः बुद्धेः परतः तु सः

कहते हैं, इन्द्रियां श्रेष्ठ हैं, इन्द्रियों से श्रेष्ठ मन है । फिर, मन से श्रेष्ठ बुद्धि है, परन्तु जो वास्तव में, बुद्धि से भी परे है, वह "वह" है ।

३.४३ एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा,
संस्तभ्या (आ)त्मानम् आत्मना
जहि शत्रुं, महाबाहो,
कामरूपम् दुरासदम्

एवम् बुद्धेः परम् बुद्ध्वा संस्तभ्य आत्मानम् आत्मना
जहि शत्रुम् महाबाहो कामरूपम् दुरासदम्

इस प्रकार "उसे" बुद्धि से श्रेष्ठ जानते हुए, अपने को अपने द्वारा स्थिर करके, तू शत्रु को मार डाल महाबाहो, जो काम के रूप में है, (जिसे) पकड़ पाना कठिन है ।

श्री कृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः समाप्तः

गीता प्रकाश

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

परिचय-४

अध्याय ३ में "कर्म योग" क्या है, बतलाया गया है। अध्याय ४ में भगवान् , कर्म योग का इतिहास बतलाते हैं। कर्म, अकर्म और विकर्म के भेद समझाते हैं। कर्म जो करने ही पड़ते हैं, कैसे करना चाहिएं ?

कर्मों का आरम्भ किसी कामना से नहीं करना चाहिए और न कर्म फल में आसक्ति होनी चाहिए। यही कर्म संन्यास है।

आगे भगवान् नाना रूप यज्ञों का वर्णन करते हैं जो कर्म जनित हैं।

सर्व कर्मों की पूर्ण रूप से पराकाष्ठा ज्ञान में है। ज्ञान यज्ञ सर्व श्रेष्ठ है।

अध्याय ४ का नाम है "ज्ञान कर्म-संन्यास योग"।

श्रीमद्भगवद्गीता

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(श्री कृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानकर्मसंन्यास योगः) *

४.१ श्रीभगवानुवाच-
इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥

इमं विवस्वते योगं
प्रोक्तवान् अहम् अव्ययम्
विवस्वान् मनवे प्राह - -
मनुर् इक्ष्वाकवे (अ)ब्रवीत्

इमम् विवस्वते योगम् प्रोक्तवान् अहम् अव्ययम्
विवस्वान् मनवे प्राह मनुः इक्ष्वाकवे अब्रवीत्

भगवान् उवाच -
इस अक्षय योग[1] को मैंने सूर्य से कहा था, सूर्य ने मनु को बतलाया, मनु ने इक्ष्वाकु से कहा ।

१. अध्याय ३ में बतलाया- कर्मयोग
* इस अध्याय का दूसरा नाम है - ज्ञान (अथवा ज्ञानविभाग) योग

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

४.६ अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥

अजो (अ)पि सन् अव्ययात्मा
भूतानाम् ईश्वरो (अ)पि सन्
प्रकृतिं स्वाम् अधिष्ठाय - -
संभवाम्य् आत्ममायया

अजः अपि सन् अव्ययात्मा भूतानाम् ईश्वरः अपि सन्
प्रकृतिम् स्वाम् अधिष्ठाय सम्भवामि आत्ममायया

अजन्मा, अविनाशी होते हुए भी, (और) सब प्राणियों का ईश्वर होने पर भी, मैं जन्म लेता हूँ–अपनी प्रकृति पर आधारित, अपनी माया से ।

४.७ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

यदा यदा हि धर्मस्य - -
ग्लानिर् भवति, भारत - -
अभ्युत्थानम् अधर्मस्य - -
तदा (आ)त्मानं सृजाम्य् अहम्

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिः भवति भारत
अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदा आत्मानम् सृजामि अहम्

वास्तव में, जब-जब धर्म का पतन होता है भारत । अधर्म बढ़ने लगता है, तब मैं अपने आपको व्यक्त करता हूँ ।

४.८ **परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।**
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

परित्राणाय साधूनां,
विनाशाय च दुष्कृताम्
धर्मसंस्थापनार्थाय - -
संभवामि युगे युगे

परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे

साधु पुरुषों की रक्षा के निमित्त, दुष्टों का विनाश करने के लिए, तथा धर्म की भलीभाँति स्थापना करने के हित, मैं युग-युग में (प्रकट) होता हूँ ।

४.९ **जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।**
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

जन्म कर्म च मे दिव्यम्
एवं यो वेत्ति तत्त्वतः
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म - -
नै (ए)ति, माम् एति सो (अ)र्जुन - -

जन्म कर्म च मे दिव्यम् एवम् यः वेत्ति तत्त्वतः
त्यक्त्वा देहम् पुनः जन्म न एति माम् एति सः अर्जुन

मेरे दिव्य जन्म और कर्म को जो इस प्रकार ठीक ठीक जानता है, वह देह त्याग कर पुनर्जन्म नहीं लेता । वह मुझसे आ मिलता है, अर्जुन ।

४.१० वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ।

वीतरागभयक् क्रोधा
मन्मया माम् उपाश्रिताः
बहवो ज्ञानतपसा
पूता मद्भावम् आगताः

वीतरागभयक्रोधाः मन्मया माम् उपाश्रिताः
बहवः ज्ञानतपसा पूताः मद्भावम् आगताः

राग, भय और क्रोध से रहित, मुझमें लीन, मेरी शरण लिए, ज्ञानरूपी तप से पवित्र हुए अनेक मेरे स्वरूप को प्राप्त हो गए हैं।

४.११ ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते
तांस् तथै (ए)व भजाम्य् अहम्
मम वर्त्मा (अ)नुवर्तन्ते
मनुष्याः पार्थ सर्वशः

ये यथा माम् प्रपद्यन्ते तान् तथा एव भजामि अहम्
मम वर्त्म अनुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः

जो जैसे मेरे पास आते हैं, मै भी वैसे ही उनका स्वागत करता हूँ । मनुष्य मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं, पार्थ ! सर्वत्र ।

४.१२ कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥

कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं
यजन्त इह देवताः
क्षिप्रं हि मानुषे लोके
सिद्धिर् भवति कर्मजा

कांक्षान्तः कर्मणाम् सिद्धिम् यजन्ते इह देवताः
क्षिप्रम् हि मानुषे लोके सिद्धिः भवति कर्मजा

कर्मों की सफलता चाहने वाले, इस संसार में देवताओं के लिए यज्ञ करते हैं । वास्तव में, मनुष्य लोक में सिद्धि, शीघ्र ही उत्पन्न होती है, कर्मों से ।

४.१३ चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं
गुणकर्मविभागशः
तस्य कर्तारम् अपि मां
विद्ध्य् अकर्तारम् अव्ययम्

चातुर्वर्ण्य मया सृष्टम् गुणकर्मविभागशः
तस्य कर्तारम् अपि माम् विद्धि अकर्तारम् अव्ययम्

गुण और कर्म के विभागानुसार चारों वर्ण मेरे द्वारा उत्पन्न हुए थे । उनका कर्ता होने पर भी, तू मुझे समझ–अकर्त्ता, अविनाशी ।

४.१४ न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥

न मां कर्माणि लिम्पन्ति, - -
न मे कर्मफले स्पृहा
इति मां यो (अ)भिजानाति - -
कर्मभिर् न स बध्यते

न माम् कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा
इति माम् यः अभिजानाति कर्मभिः न सः बध्यते

न मुझे कर्म प्रभावित करते हैं । न मुझको कर्म फल की इच्छा है । इस प्रकार जो मुझे जानता है, वह कर्मों से नहीं बंधता ।

४.१५ एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म - -
पूर्वैर् अपि मुमुक्षुभिः
कुरु कर्मै (ए)व तस्मात् त्वं
पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्

एवम् ज्ञात्वा कृतम् कर्म पूर्वैः अपि मुमुक्षुभिः
कुरु कर्म एव तस्मात् त्वम् पूर्वैः पूर्वतरम् कृतम्

ऐसा जानकर, मोक्ष के अभिलाषी पूर्वजों ने भी कर्म किए । अतः तू भी कर्म कर, जैसे पुरखों ने पूर्व काल में, किए थे ।

४.१६ किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥

किं कर्म किम् अकर्मे (इ)ति - -
कवयो (अ)प्य् अत्र मोहिताः
तत् ते कर्मप् प्रवक्ष्यामि - -
यज् ज्ञात्वा मोक्ष्यसे (अ)शुभात्

किम् कर्म किम् अकर्म इति कवयः अपि अत्र मोहिताः
तत् ते कर्म प्रवक्ष्यामि यत् ज्ञात्वा मोक्ष्यसे अशुभात्

"कर्म क्या है, अकर्म क्या है"; इस प्रकार ("विचार" करते हुए), इस विषय में ज्ञानी पुरुष भी भ्रम में हैं । अतः मैं तुझे बतलाऊंगा कर्म (क्या है), जिसे जान कर तू अमंगल से मुक्त हो जाएगा ।

४.१७ कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥

कर्मणो ह्य् अपि बोद्धव्यं
बोद्धव्यं च विकर्मणः
अकर्मणश् च बोद्धव्यं
गहना कर्मणो गतिः

कर्मणः हि अपि बोद्धव्यम् बोद्धव्यम् च विकर्मणः
अकर्मणः च बोद्धव्यम् गहना कर्मणः गतिः

वास्तव में, जानना चाहिए कर्म (का स्वरूप) क्या है और यह भी जानना चाहिए "विकर्म" (का स्वरूप) क्या है, और फिर जानना चाहिए "अकर्म" (का स्वरूप) क्या है । कर्म की राह कठिन है ।

**४.१८ कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥**

कर्मण्य् अकर्म यः पश्येद्
अकर्मणि च कर्म यः
स बुद्धिमान् मनुष्येषु - -
स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्

कर्मणि अकर्म यः पश्येत् अकर्मणि च कर्म यः
सः बुद्धिमान् मनुष्येषु सः युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्

जो कर्म में अकर्म देखता है और जो अकर्म में कर्म, वह मनुष्यों में बुद्धिमान् है। वह (योग) युक्त है–सब कर्म करते हुए भी। [२]

**४.१९ यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥**

यस्य सर्वे समारम्भाः
कामसंकल्पवर्जिताः
ज्ञानाग्निदग्ध कर्माणं
तम् आहुः पण्डितं बुधाः

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम् तम् आहुः पण्डितम् बुधाः

जिसके सब कार्य आरम्भ होते हैं, कामना और कल्पना से विमुक्त हो कर, ज्ञानाग्नि से जिसके कर्म भस्म हो गए हैं, उसे बुद्धिमान् लोग ज्ञानी कहते हैं।

२. कर्म और अकर्म में भेद न देखना, ज्ञानी की साम्यावस्था का, यह अनुपम चित्रण है।

४.२० त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः ॥

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं
नित्यतृप्तो निराश्रयः
कर्मण्य् अभिप् प्रवृत्तो (अ)पि – –
नै (ए)व किंचित् करोति सः

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गम् नित्यतृप्तः निराश्रयः
कर्मणि अभिप्रवृत्तः अपि न एव किंचित् करोति सः

कर्मफल की आसक्ति को त्यागकर, सदैव संतुष्ट, बिना किसी पर निर्भर, काम में लगा हुआ भी, वह कुछ भी नहीं करता है।

४.२१ निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥

निराशीर् यतचित्तात्मा
त्यक्तसर्वपरिग्रहः
शारीरं केवलं कर्म – –
कुर्वन् ना (आ)प्नोति किल्बिषम्

निराशीः यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः
शारीरम् केवलम् कर्म कुर्वन् न आप्नोति किल्बिषम्

जो किसी प्रकार की आशा नहीं रखता, जिसका मन और अन्तःकरण वश में है, जिसने सब-कुछ संग्रह करना त्याग दिया है, केवल शरीर का कर्म करते हुए, वह पाप में नहीं फंसता।

४.२२ यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥

यदृच्छालाभसंतुष्टो,
द्वन्द्वातीतो विमत्सरः
समः सिद्धाव् असिद्धौ च - -
कृत्वा (अ)पि न निबध्यते

यदृच्छालाभसंतुष्टः द्वन्द्वातीतः विमत्सरः
समः सिद्धौ असिद्धौ च कृत्वा अपि न निबध्यते

अनायास प्राप्त वस्तुओं से संतुष्ट, द्वंद्वों से परे, ईर्ष्यारहित, सफलता और असफलता में समान रहने वाला, कर्म करके भी बन्धन में नहीं पड़ता ।

४.२३ गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥

गतसङ्गस्य मुक्तस्य - -
ज्ञानावस्थितचेतसः
यज्ञाया (आ)चरतः, कर्म - -
समग्रं प्रविलीयते

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः
यज्ञाय आचरतः कर्म समग्रम् प्रविलीयते

जिसकी आसक्ति चली गई है, जो मुक्त है, जिसका चित्त ज्ञान में स्थित है, यज्ञ के लिए जिसका आचरण है, उसके सम्पूर्ण कर्म विलीन हो जाते हैं ।

४.२४ ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥

ब्रह्मा (अ)र्पणं ब्रह्म हविर्
ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्
ब्रह्मै (ए)व तेन गन्तव्यं
ब्रह्मकर्म समाधिना

ब्रह्म अर्पणम् ब्रह्म हविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्
ब्रह्म एव तेन गन्तव्यम् ब्रह्मकर्मसमाधिना

(जिसके लिए) अर्पण ब्रह्म है, हवि ब्रह्म है, ब्रह्माग्नि में ब्रह्म द्वारा ही जो होम करता है, उसे ब्रह्म ही प्राप्त होता है- जिसके कर्म और चिन्तन में एक मात्र ब्रह्म है ।

४.२५ दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥

दैवम् एवा (अ)परे यज्ञं
योगिनः पर्युपासते
ब्रह्माग्नाव् अपरे यज्ञं
यज्ञेनै (ए)वो (उ)पजुह्वति - -

दैवम् एव अपरे यज्ञम् योगिनः पर्युपासते
ब्रह्माग्नौ अपरे यज्ञम् यज्ञेन एव उपजुह्वति

कुछ योगी जन एकमात्र देवताओं के निमित्त यज्ञ करके उपासना करते हैं । और फिर कुछ दूसरे, ब्रह्माग्नि में, यज्ञ द्वारा केवल यज्ञ का ही हवन करते हैं ।[१]

१. श्लोक के उत्तरार्ध में "यज्ञ" का अर्थ आचार्य ने "आत्मा" किया है- और फिर कुछ दूसरे, ब्रह्माग्नि में अपने द्वारा अपना (अपनेपन का) ही हवन करते हैं ।

४.२६ श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥

श्रोत्रादीनी (इ)न्द्रियाण्य् अन्ये
संयमाग्निषु जुह्वति - -
शब्दादीन् विषयान् अन्य - -
इन्द्रियाग्निषु जुह्वति - -

श्रोत्रादीनि इन्द्रियाणि अन्ये संयमाग्निषु जुह्वति
शब्दादीन् विषयान् अन्ये इन्द्रियाग्निषु जुह्वति

कोई श्रवणादि इन्द्रियों का हवन संयम की अग्नि में करते हैं, और कोई शब्दादि विषयों का हवन इन्द्रियाग्नि में करते हैं ।

४.२७ सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥

सर्वाणी (इ)न्द्रियकर्माणि - -
प्राणकर्माणि चा (अ)परे
आत्मसंयमयोगाग्नौ
जुह्वति ज्ञानदीपिते

सर्वाणि इन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि च अपरे
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते

और कोई दूसरे सम्पूर्ण इन्द्रिय- क्रियाओं और प्राण- क्रियाओं का हवन करते हैं, आत्मसंयम की योगाग्नि में- ज्ञान से प्रज्वलित ।

४.२८ द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥

द्रव्ययज्ञास् तपोयज्ञा
योगयज्ञास् तथा (अ)परे
स्वाध्याय ज्ञानयज्ञाश् च - -
यतयः संशितव्रताः

द्रव्ययज्ञाः तपोयज्ञाः योगयज्ञाः तथा अपरे
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः च यतयः संशितव्रताः

इस प्रकार और कई दूसरे द्रव्य-यज्ञ करने वाले हैं, तप-यज्ञ करने वाले हैं, योग-यज्ञ करने वाले हैं, स्वाध्याय से ज्ञान-यज्ञ करने वाले हैं और यति लोग हैं, कठिन व्रत करने वाले ।

४.२९ अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥

अपाने जुह्वतिप् प्राणं
प्राणे (अ)पानं तथा (अ)परे
प्राणापानगती रुद्ध्वा
प्राणायामपरायणाः

अपाने जुह्वति प्राणम् प्राणे अपानम् तथा अपरे
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः

ऐसे ही कई अपान वायु (भीतर जाने वाली श्वास) का होम प्राण वायु (बाहर आने वाली श्वास) में करते हैं। और कई प्राण वायु का हवन अपान में करते हैं। और कई प्राण अपान की गतियों को रोक कर प्राणायाम का ही आश्रय लेते हैं।

**४.३० अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥**

अपरे नियताहाराः
प्राणान् प्राणेषु जुह्वति - -
सर्वे (अ)प्य् एते यज्ञविदो
यज्ञक् क्षपितकल्मषाः

अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुहृवति
सर्वे अपि एते यज्ञविदः यज्ञक्षपितकल्मषाः

और कई नियमित आहार करने वाले प्राणों का प्राणों में ही हवन करते हैं। यह सब ही यज्ञ के ज्ञाता हैं। यज्ञ द्वारा इनके पाप दूर हो गए हैं।

**४.३१ यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥**

यज्ञशिष्टामृतभुजो
यान्ति ब्रह्म सनातनम्
ना (अ)यं लोको (अ)स्त्य् अयज्ञस्य - -
कुतो (अ)न्यः कुरुसत्तम - -

यज्ञशिष्टामृतभुजः यान्ति ब्रह्म सनातनम्
न अयम् लोकः अस्ति अयज्ञस्य कुतः अन्यः कुरुसत्तम

यज्ञ से बचे हुए को अमृत समझ खाने वाले, शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। यज्ञ न करने वाले के लिए यह लोक नहीं है। फिर परलोक कैसा, हे कुरुश्रेष्ठ !

४.३२ **एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥**

एवं बहुविधा यज्ञा
वितता ब्रह्मणो मुखे
कर्मजान् विद्धि तान् सर्वान्
एवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे

एवम् बहुविधाः यज्ञाः विततः ब्रह्मणः मुखे
कर्मजान् विद्धि तान् सर्वान् एवम् ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे

इस प्रकार नाना रूप यज्ञों का वेद में विस्तार से वर्णन है । उन सब को तू कर्मजनित समझ । ऐसा समझने पर तू मुक्त हो जाएगा ।

४.३३ **श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥**

श्रेयान् द्रव्यमयाद् यज्ञाज्
ज्ञानयज्ञः, परंतप – –
सर्वं कर्मा (अ)खिलं पार्थ – –
ज्ञाने परिसमाप्यते

श्रेयान् द्रव्यमयात् यज्ञात् ज्ञानयज्ञः परंतप
सर्वम् कर्म अखिलम् पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते

द्रव्य-यज्ञ की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ अधिक श्रेष्ठ है, परन्तप । सब कर्मों की पूर्ण रूप से पराकाष्ठा, हे पार्थ, ज्ञान में है ।

**४.३४ तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥**

तद् विद्धिप् प्रणिपातेन - -
परिप् प्रश्नेन सेवया
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं
ज्ञानिनस् तत्त्वदर्शिनः

तत् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानम् ज्ञानिनः तत्त्वदर्शिनः

तू इस (ज्ञान) को जान ले, विनय पूर्वक, भली प्रकार प्रश्न करते हुए, सेवा भाव से । तुझे ज्ञान का उपदेश देंगे- ज्ञानी लोग, तत्त्व को जानने वाले ।

**४.३५ यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥**

यज् ज्ञात्वा न पुनर् मोहम्
एवं यास्यसि पाण्डव - -
येन भूतान्य् अशेषेण - -
द्रक्ष्यस्य् आत्मन्य् अथो मयि - -

यत् ज्ञात्वा न पुनः मोहम् एवम् यास्यसि पाण्डव
येन भूतानि अशेषेण द्रक्ष्यसि आत्मनि अथो मयि

इसे जानकर तू फिर इस प्रकार भ्रम में नहीं पड़ेगा, पाण्डव । इसके द्वारा तू निश्शेष, सम्पूर्ण प्राणियों को अपने में देखेगा, और फिर मुझमें ।

४.३६ अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥

अपि चेद् असि पापेभ्यः
सर्वेभ्यः पापकृत्तमः
सर्वं ज्ञानप्‌लवेनै (ए)व – –
वृजिनं संतरिष्यसि – –

अपि चेद् असि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः
सर्वम् ज्ञानप्लवेन एव वृजिनम् संतरिष्यसि

यदि तू सब पापियों से भी बढ़कर पाप करने वाला है तो भी केवल ज्ञान नौका से तू सब पापों को पार कर जायेगा ।

४.३७ यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥

यथै (ए)धांसि समिद्धो (अ)ग्निर्
भस्मसात् कुरुते (अ)र्जुन – –
ज्ञानाग्निः सर्वक्कर्माणि – –
भस्मसात् कुरुते तथा

यथा एधांसि समिद्धः अग्निः भस्मसात् कुरुते अर्जुन
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा

जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधन को राख कर देती है,अर्जुन, वैसे ही ज्ञानाग्नि सब कर्मों को भस्म कर देती है ।

४.३८ न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥

न हि ज्ञानेन सदृशं
पवित्रम् इह विद्यते
तत् स्वयं योगसंसिद्धः
कालेना (आ)त्मनि विन्दति - -

न हि ज्ञानेन सदृशम् पवित्रम् इह विद्यते
तत् स्वयम् योगसंसिद्धः कालेन आत्मनि विन्दति

वास्तव में, इस लोक में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला और कुछ नहीं है । वह जो स्वयं योग में सिद्ध है, अपने आप में इसे पा लेता है- समय पाकर ।

४.३९ श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥

श्रद्धावान्ल् लभते ज्ञानं
तत्परः संयतेन्द्रियः
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिम्
अचिरेणा (अ)धिगच्छति - -

श्रद्धावान् लभते ज्ञानम् तत्परः संयतेन्द्रियः
ज्ञानम् लब्ध्वा पराम् शान्तिम् अचिरेण अधिगच्छति

श्रद्धावान् पुरुष, जो दृढसंकल्प है, जिसकी इन्द्रियां नियंत्रित हैं, ज्ञान प्राप्त कर लेता है (और) ज्ञान पाकर वह परम शान्ति को तुरन्त ही पा जाता है ।

४.४० अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नाऽयं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥

अज्ञश् चा (अ)श्रद्दधानश् च - -
संशयात्मा विनश्यति - -
ना (अ)यं लोको (अ)स्ति न परो
न सुखं संशयात्मनः

अज्ञः च अश्रद्दधानः च संशयात्मा विनश्यति
न अयम् लोकः अस्ति न परः न सुखम् संशयात्मनः

अज्ञानी, श्रद्धाहीन और संशय करने वाला (व्यक्ति) नष्ट हो जाता है । शंका करने वाले के लिए, न यह लोक है न परलोक, न सुख ।

४.४१ योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥

योगसंन्यस्तकर्माणं
ज्ञानसंछिन्नसंशयम्
आत्मवन्तं, न कर्माणि - -
निबध्नन्ति धनंजय - -

योगसंन्यस्तकर्माणम् ज्ञानसंछिन्नसंशयम्
आत्मवन्तम् न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय

जिसने योग द्वारा कर्म त्याग दिया है, जिसने ज्ञान से संशय काट दिया है, जो अपने को वश में किए है, उसे कर्म नहीं बांधते, धनंजय ।

**४.३८ न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥**

न हि ज्ञानेन सदृशं
पवित्रम् इह विद्यते
तत् स्वयं योगसंसिद्धः
कालेना (आ)त्मनि विन्दति – –

न हि ज्ञानेन सदृशम् पवित्रम् इह विद्यते
तत् स्वयम् योगसंसिद्धः कालेन आत्मनि विन्दति

वास्तव में, इस लोक में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला और कुछ नहीं है । वह जो स्वयं योग में सिद्ध है, अपने आप में इसे पा लेता है– समय पाकर ।

**४.३९ श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥**

श्रद्धावान्ल् लभते ज्ञानं
तत्परः संयतेन्द्रियः
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिम्
अचिरेणा (अ)धिगच्छति – –

श्रद्धावान् लभते ज्ञानम् तत्परः संयतेन्द्रियः
ज्ञानम् लब्ध्वा पराम् शान्तिम् अचिरेण अधिगच्छति

श्रद्धावान् पुरुष, जो दृढसंकल्प है, जिसकी इन्द्रियां नियंत्रित हैं, ज्ञान प्राप्त कर लेता है (और) ज्ञान पाकर वह परम शान्ति को तुरन्त ही पा जाता है ।

४.४० अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नाऽयं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥

अज्ञश् चा (अ)श्रद्दधानश् च - -
संशयात्मा विनश्यति - -
ना (अ)यं लोको (अ)स्ति न परो
न सुखं संशयात्मनः

अज्ञः च अश्रद्दधानः च संशयात्मा विनश्यति
न अयम् लोकः अस्ति न परः न सुखम् संशयात्मनः

अज्ञानी, श्रद्धाहीन और संशय करने वाला (व्यक्ति) नष्ट हो जाता है । शंका करने वाले के लिए, न यह लोक है न परलोक, न सुख ।

४.४१ योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥

योगसंन्यस्तकर्माणं
ज्ञानसंछिन्नसंशयम्
आत्मवन्तं, न कर्माणि - -
निबध्नन्ति धनंजय - -

योगसंन्यस्तकर्माणम् ज्ञानसंछिन्नसंशयम्
आत्मवन्तम् न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय

जिसने योग द्वारा कर्म त्याग दिया है, जिसने ज्ञान से संशय काट दिया है, जो अपने को वश में किए है, उसे कर्म नहीं बांधते, धनंजय ।

४.४२ तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छिन्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥

तस्माद् अज्ञानसंभूतं
हृत्स्थं ज्ञानासिना (आ)त्मनः
छित्त्वै (ए)नं संशयं, योगम्
आतिष्ठो (उ)त्तिष्ठ भारत – –

तस्मात् अज्ञानसंभूतम् हृत्स्थम् ज्ञानासिना आत्मनः
छित्त्वा एनम् संशयम् योगम् आतिष्ठ उत्तिष्ठ भारत

अतः अज्ञान से उत्पन्न मन में बैठे हुए इस संशय को आत्मज्ञान के कृपाण से काट कर योग का अभ्यास कर । उठ, खड़ा हो जा, भारत !

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः
समाप्तः

गीता प्रकाश

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

परिचय–५

अध्याय ३ में "कर्म योग" और ४ में "कर्म संन्यास" की चर्चा की गई है। अब भगवान् कह रहे हैं – ये दोनो ही परम कल्याणकारक हैं। पर, "कर्म संन्यास" की अपेक्षा "कर्म योग" निश्चय ही श्रेष्ठ है।

योगी के गुण–कर्म विस्तार से बतलाते हैं। योगी सर्वत्र समदर्शी है। जो स्थान सांख्यजन-संन्यासी - प्राप्त करते हैं, कर्म योगी भी वहीं पहुंच जाता है।

अध्याय ५ का नाम है "संन्यास योग।"

श्रीमद्भगवद्गीता

अथ पञ्चमोऽध्यायः

(श्रीकृष्णार्जुनसंवादे संन्यासयोगः)

५.१ **अर्जुन उवाच —**
संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥

संन्यासं कर्मणां, कृष्ण, – –
पुनर् योगं च शंससि – –
यच् छ्रेय एतयोर् एकं
तन् मे ब्रूहि सुनिश्चितम्

संन्यासम् कर्मणाम् कृष्ण पुनः योगम् च शंससि
यत् श्रेयः एतयोः एकम् तत् मे ब्रूहि सुनिश्चितम्

अर्जुन उवाच -
हे कृष्ण ! आप कर्म-संन्यास की प्रशंसा करते हैं और फिर योग की । इन दोनों में जो एक, अधिक कल्याणकर है वह मुझे बतलाइए, भली प्रकार से, निश्चय करके ।

५.२ श्रीभगवानुवाच –
संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥

संन्यासः कर्मयोगश् च – –
निः श्रेयसकराव् उभौ
तयोस् तु कर्मसंन्यासात्
कर्मयोगो विशिष्यते

संन्यासः कर्मयोगः च निः श्रेयसकरौ उभौ
तयोः तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगः विशिष्यते

श्री भगवान् उवाच –
संन्यास और कर्मयोग दोनों ही परम कल्याणकारक हैं।
इन दोनों में कर्म-संन्यास की अपेक्षा कर्मयोग निश्चय ही श्रेष्ठ है।

५.३ ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी
यो नद् द्वेष्टि न काङ्क्षाति – –
निर्द्वन्द्वो हि, महाबाहो,
सुखं बन्धात् प्रमुच्यते

ज्ञेयः सः नित्यसंन्यासी यः न द्वेष्टि न काङ्क्षति
निर्द्वन्द्वः हि महाबाहो सुखम् बन्धात् प्रमुच्यते

उसे सदा संन्यासी जानना चाहिए जो न द्वेष करता है, न लालसा। वास्तव में, द्वंद्वों से मुक्त, महाबाहो। वह बड़ी सरलता से बन्धन से छुटकारा पा जाता है।

५.४ **सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।**
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥

सांख्ययोगौ पृथग् बालाः
प्रवदन्ति, न पण्डिताः
एकम् अप्य् आस्थितः सम्यग्
उभयोर् विन्दते फलम्

सांख्ययोगौ पृथक् बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः
एकम् अपि आस्थितः सम्यक् उभयोः विन्दते फलम्

सांख्य और योग[१] भिन्न भिन्न हैं, ऐसा बालक कहते हैं, ज्ञानी नहीं। जो किसी एक में भी भली प्रकार स्थित है, वह दोनों का फल पा लेता है।

५.५ **यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।**
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥

यत् सांख्यैः प्राप्यते स्थानं
तद् योगैर् अपि गम्यते
एकं सांख्यं च योगं च - -
यः पश्यति स पश्यति - -

यत् सांख्यैः प्राप्यते स्थानम् तत् योगैः अपि गम्यते
एकम् सांख्यम् च योगम् च यः पश्यति सः पश्यति

जो स्थान सांख्य जन प्राप्त करते हैं, योगी भी वहीं पहुंचते हैं। सांख्य और योग को जो एक रूप देखता है, वही देखता है, (तत्त्व को समझता है)

१. यहां योग का अर्थ है "कर्मयोग" और सांख्य का "ज्ञानयोग द्वारा संन्यास"...राधाकृष्णन्

५.६ **संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।**
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥

संन्यासस् तु, महाबाहो,
दुःखम् आप्तुम् अयोगतः
योगयुक्तो मुनिर् ब्रह्म – –
न चिरेणा (अ)धिगच्छति – –

संन्यासः तु महाबाहो दुःखम् आप्तुम् अयोगतः
योगयुक्तः मुनिः ब्रह्म नचिरेण अधिगच्छति

वास्तव में, संन्यास प्राप्त करना कठिन है, महाबाहो । बिना योग के । योग में रमा हुआ मुनि, बिना विलम्ब ब्रह्म को पहुंच जाता है ।

५.७ **योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।**
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥

योगयुक्तो विशुद्धात्मा
विजितात्मा जितेन्द्रियः
सर्वभूतात्मभूतात्मा
कुर्वन्न् अपि न लिप्यते

योगयुक्तः विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन् अपि न लिप्यते

जो योग में रमा है, जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, जिसने अपने पर विजय पाई है, इन्द्रियों को जीता है, सर्व प्राणियों की आत्मा जिसकी (अपनी) आत्मा हो गई है, वह कर्म करते हुए भी, उस में लिप्त नहीं होता ।

५.८ नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ॥

नै (ए)व किंचित् करोमी (इ)ति - -
युक्तो मन्येत तत्त्ववित्
पश्यञ् शृण्वन् स्पृशञ् जिघ्रन्न्
अश्नन् गच्छन् स्वपञ् श्वसन्

न एव किंचित् करोमि इति युक्तः मन्येत तत्त्ववित्
पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् गच्छन् स्वपन् श्वसन्

"मैं कुछ भी नहीं करता हूँ", ऐसा उसे मानना चाहिए जो योग युक्त है, तत्त्व को जानता है । देखते, सुनते, स्पर्श करते, सूंघते, खाते, चलते, सोते, श्वास लेते,-

५.९ प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥

प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्न्
उन्मिषन् निमिषन्न् अपि - -
इन्द्रियाणी (इ)न्द्रियार्थेषु - -
वर्तन्त, इति धारयन्

प्रलपन् विसृजन् गृह्णन् उन्मिषन् निमिषन् अपि
इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेषु वर्तन्ते इति धारयन्

बोलते, आदान प्रदान करते, आंखें खोलते और बंद करते हुए भी वह ऐसी धारणा रखता है कि - "इन्द्रियां अपने अपने विषयों में लगी हुई हैं"।

**५.१० ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥**

ब्रह्मण्य् आधाय कर्माणि - -
संगम् त्यक्त्वा करोति यः
लिप्यते न स पापेन - -
पद्मपत्रम् इवा (अ)म्भसा

ब्रह्मणि आधाय कर्माणि संगम् त्यक्त्वा करोति यः
लिप्यते न सः पापेन पद्मपत्रम् इव अम्भसा

जो, ब्रह्म में अर्पण करके, कर्मों को करता है, आसक्ति त्यागकर, वह पाप से लिप्त नहीं होता, जैसे कमल पत्र, जल से ।

**५.११ कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥**

कायेन मनसा बुद्ध्या,
केवलैर् इन्द्रियैर् अपि - -
योगिनः कर्म कुर्वन्ति,- -
संगं त्यक्त्वा (आ)त्मशुद्धये

कायेन मनसा बुद्धया केवलैः इन्द्रियैः अपि
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगम् त्यक्त्वा आतमशुद्धये

शरीर से, मन से, बुद्धि से (और) केवल इन्द्रियों से भी योगी लोग कर्म करते हैं- आसक्ति त्यागकर, अन्तःकरण की शुद्धि के लिए ।

५.१२ युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा
शान्तिम् आप्नोति नैष्ठिकीम्
अयुक्तः कामकारेण – –
फले सक्तो निबध्यते

युक्तः कर्मफलम् त्यक्त्वा शान्तिम् आप्नोति नैष्ठिकीम्
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तः निबध्यते

युक्त (पुरुष) कर्म फल को त्याग कर शान्ति को प्राप्त करता है, जो चिर स्थित है। अयुक्त (पुरुष), कामना से प्रेरित, (कर्म) फल में आसक्त हुआ, बन्धन में रहता है।

५.१३ सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥

सर्वकर्माणि मनसा
संन्यस्या (आ)स्ते सुखं वशी
नवद्वारे पुरे, देही,
नै (ए)व कुर्वन् न कारयन्

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्य आस्ते सुखम् वशी
नवद्वारे पुरे देही न एव कुर्वन् न कारयन्

सब कर्मों को मन से त्याग कर, अपने को वश में रखने वाला, देहधारी सुख से रहता है, इस नौ द्वारों की नगरी (शरीर) में; न कुछ करते हुए, (और) न कुछ करने का, कारण होते हुए।

५.१४ न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि - -
लोकस्य सृजतिप् प्रभुः
न कर्मफल संयोगं
स्वभावस् तु प्रवर्तते

न कर्तृत्वम् न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः
न कर्मफलसंयोगम् स्वभावः तु प्रवर्तते

ईश्वर, मनुष्यों के न कर्तापन की, न कर्मों की रचना करता है । (और) न कर्म और फल के संयोग की । वास्तव में, (यह सब उनके) स्वभाव से होता है ।

५.१५ नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥

ना (आ)दत्ते कस्यचित् पापं
न चै (ए)व सुकृतं विभुः
अज्ञानेना (आ)वृतं ज्ञानं
तेन मुह्यन्ति जन्तवः

न आदत्ते कस्यचित् पापम् न च एव सुकृतम् विभुः
अज्ञानेन आवृतम् ज्ञानम् तेन मुह्यन्ति जन्तवः

ईश्वर, न किसी के पाप को लेता है और न पुण्य को ही । अज्ञान से ज्ञान घिरा रहता है । इससे लोग भ्रम में आ जाते हैं ।

५.१६ ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥

ज्ञानेन तु तद् अज्ञानं
येषां नाशितम् आत्मनः
तेषाम् आदित्यवज् ज्ञानम्
प्रकाशयति तत् परम्

ज्ञानेन तु तत् अज्ञानम् येषाम् नाशितम् आत्मनः
तेषाम् आदित्यवत् ज्ञानम् प्रकाशयति तत् परम्

वास्तव में, जिनका वह अज्ञान आत्मज्ञान से नष्ट हो गया है, उनका ज्ञान सूर्य के समान है, और प्रदर्शित करता है,-उस सर्वोच्च को ।

५.१७ तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥

तद्बुद्धयस् तदात्मानस्
तन्निष्ठास् तत्परायणाः
गच्छन्त्य् अपुनरावृत्तिं,
ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः

तद्बुद्धयः तदात्मानः तन्निष्ठाः तत्परायणाः
गच्छन्ति अपुनरावृत्तिम् ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः

जिनकी बुद्धि उसी में लगी हुई है, जिनकी वही आत्मा है, जो उसी में स्थित हैं, उसी में लीन हैं वे ऐसे स्थान पर पहुँचते हैं जहाँ से फिर लौट कर आना नहीं होता-ज्ञान से उनके सब पाप, धुल चुके हैं ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

५.१८ विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

विद्याविनयसंपन्ने
ब्राह्मणे गवि हस्तिनि - -
शुनि चै (ए)व श्वपाके च - -
पण्डिताः सम्दर्शिनः

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि
शुनि च एव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः

विद्या और नम्रता से परिपूर्ण ब्राह्मण में, गाय, हाथी और श्वान में, और चांडाल में भी, ज्ञानी लोग एक समान दृष्टि रखते हैं ।

५.१९ इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥

इहै (ए)व तैर् जितः सर्गो
येषां साम्ये स्थितं मनः
निर्दोषं हि समं ब्रह्म - -
तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः

इह एव तैः जितः सर्गः येषाम् साम्ये स्थितम् मनः
निर्दोषम् हि समम् ब्रह्म तस्मात् ब्रह्मणि ते स्थिताः

इस पृथ्वी पर ही वे सम्पूर्ण सृष्टि-क्रम को वश में कर लेते हैं, जिनका मन समता में स्थित है । ब्रह्म, वास्तव में, निर्दोष और सम है; अतः, वे ब्रह्म में स्थित हैं ।

५.२० न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ॥

न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य – –
नो (उ)द्विजेत् प्राप्य चा (अ)प्रियम्
स्थिरबुद्धिर असंमूढो
ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः

न प्रहृष्येत् प्रियम् प्राप्य न उद्विजेत् प्राप्य च अप्रियम्
स्थिरबुद्धिः असंमूढः ब्रह्मवित् ब्रह्मणि स्थितः

जो न हर्षित होता है, प्रिय को पाकर और न उद्विग्न होता है, अप्रिय को पाकर, जिसकी बुद्धि स्थिर है, जो मोहरहित है, वह ब्रह्म को जानता है, ब्रहम में स्थित है ।

५.२१ बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥

बाह्यस्पर्शेष्व् असक्तात्मा
विन्दत्य् आत्मनि यत् सुखम्
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा
सुखम् अक्षयम् अश्नुते

बाह्यस्पर्शेषु असक्तात्मा विन्दति आत्मनि यत् सुखम्
सः ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखम् अक्षयम् अश्नुते

जो स्वयं बाह्य पदार्थों के सम्पर्क में आसक्त नहीं, (ऐसा पुरुष) अपने में ही जिस सुख का अनुभव करता है, वही अक्षय सुख है, जिसे वह, योग द्वारा ब्रह्म में लीन हुआ, भोगता है ।

**५.२२ ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥**

ये हि संस्पर्शजा भोगा
दुःखयोनय एव ते
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय - -
न तेषु रमते बुधः

ये हि संस्पर्शजाः भोगाः दुःखयोनयः एव ते
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः

वास्तव में, सम्पर्क से उत्पन्न जो सुख-आनन्द हैं, वे एक मात्र दुःख के स्रोत हैं। उनका आदि है, अन्त है, कौन्तेय। उनमें बुद्धिमान् मनुष्य अनुरक्त नहीं होता।

**५.२३ शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥**

शक्नोती (इ)है (ए)व यः सोढुं
प्राक् शरीरविमोक्षणात्
कामक् क्रोधोद्भवं वेगं
स युक्तः स सुखी नरः

शक्नोति इह एव यः सोढुम् प्राक् शरीरविमोक्षणात्
कामक्रोधोद्भवम् वेगम् सः युक्तः सः सुखी नरः

इस लोक में भी शरीर छोड़ने से पहले, जो काम और क्रोध से उत्पन्न वेग को सहन करने में समर्थ है, वही योगी है, वही सुखी मनुष्य है।

२४ योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥

यो (अ)न्तः सुखो (अ)न्तरारामस्
तथा (अ)न्तर् ज्योतिर् एव यः
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं
ब्रह्मभूतो (अ)धिगच्छति - -

यः अन्तःसुखः अन्तरारामः तथा अन्तर्ज्योतिः एव यः
सः योगी ब्रह्मनिर्वाणम् ब्रह्मभूतः अधिगच्छति

जो अपने में सुखी है, अपने में आनन्दमय है, जिसके अन्तरतम में प्रकाश ही (प्रकाश) है, वह योगी, ब्रह्मरूप होकर, पा जाता है-ब्रह्म को, निर्वाण को ।

२५ लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणम्
ऋषयः क्षीणकल्मषाः
छिन्नद् द्वैधा यतात्मानः ,
सर्वभूतहिते रताः

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणम् ऋषयः क्षीणकल्मषाः
छिन्नद्वैधाः यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः

ब्रह्मनिर्वाण को प्राप्त करते हैं, (ऐसे) ऋषिगण जिनके पाप नष्ट हो गए हैं, दुविधाएं मिट गई हैं, जिन्होंने अपने को वश में कर लिया है और जो सर्व प्राणियों के कल्याण में संलग्न हैं ।

५.२६ कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥

कामक् क्रोधवियुक्तानां
यतीनां यतचेतसाम्
अभितो, ब्रह्मनिर्वाणं
वर्तते, विदितात्मनाम्

कामक्रोधवियुक्तानाम् यतीनाम् यतचेतसाम्
अभितः ब्रह्मनिर्वाणम् वर्तते विदितात्मनाम्

काम और क्रोध से जो अलग हो गए हैं, जिन यतियों का चित्त वश में है, ब्रह्म-निर्वाण उनके आसपास ही रहता है- जिन्होंने अपने को जान लिया है ।

५.२७ स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥

स्पर्शान् कृत्वा बहिर् बाह्यान्श्
चक्षुश् चै (ए)वा (अ)न्तरे भ्रुवोः
प्राणापानौ समौ कृत्वा
नासाभ्यन्तरचारिणौ

स्पर्शान् कृत्वा बहिः बाह्यान् चक्षुः च एव अन्तरे भ्रुवोः
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ

बाहरी सम्पर्कों को बहिष्कृत करके, दृष्टि को दोनों भ्रकुटियों के मध्य में ही स्थित रखके, और नासाछिद्रों में आते जाते अपान और प्राण वायु (की गति) को एक समान करके -

**५.२८ यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥**

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्
मुनिर् मोक्षपरायणः
विगतेच्छाभयक् क्रोधो
यः, सदा मुक्त एव सः

यतेन्द्रियमनोबुद्धिः मुनिः मोक्षपरायणः
विगतेच्छाभयक्रोधः यः सदा मुक्तः एव सः

जिसकी इन्द्रियां, मन और बुद्धि वश में हैं, जिस मुनि का लक्ष्य मोक्षय है, इच्छा, भय और क्रोध जिसके दूर हो गए हैं, वह सदा मुक्त ही है; (और)

**५.२९ भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥**

भोक्तारं यज्ञतपसां
सर्वलोक महेश्वरम्
सुहृदं सर्वभूतानां,
ज्ञात्वा मां शान्तिम् ऋच्छति --

भोक्तारम् यज्ञतपसाम् सर्वलोकमहेश्वरम्
सुहृदम् सर्वभूतानाम् ज्ञात्वा माम् शान्तिम् ऋच्छति

मुझको यज्ञों और तपों का भोक्ता, सब लोकों का महान् ईश्वर, और सब प्राणियों का हितैषी जानकर, वह शान्ति पाता है ।

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे संन्यासयोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः

गीता प्रकाश

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

परिचय-६

अध्याय ६ में भगवान् फिर कहते हैं कर्म फल पर निर्भर न होकर जो कर्तव्य कर्म करता है वही संन्यासी है, वही योगी है। योगाभ्यास और मन को वश में करने की विधि बतलाते हैं। मन चंचल है, वश में लाना कठिन है, पर अभ्यास और वैराग्य से उसे वश में किया जा सकता है।

योग एक संयम है। सम्पूर्ण कामनाओं का पूर्णतः त्याग कर के, इन्द्रियों को सब ओर से नियन्त्रित करके, धैर्य युक्त बुद्धि से मन को अपने में स्थिर करके, और कुछ भी चिन्तन नहीं करना चाहिए। 'ऐसे ध्यान से जो योगी मुझ को भजता है वह कहीं भी रहते हुए मुझमें रहता है।'

यह "ध्यान योग" है जो अध्याय ६ का नाम है।

श्रीमद्भगवद्गीता

अथ षष्ठोऽध्यायः

(श्री कृष्णार्जुनसंवादे ध्यानयोगः)

६.१ **श्रीभगवानुवाच–**
अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥

अनाश्रितः कर्मफलं
कार्यं कर्म करोति यः
स संन्यासी च योगी च,– –
न निरग्निर् न च (अ)क्रियः

अनाश्रितः कर्मफलम् कार्यम् कर्म करोति यः
सः संन्यासी च योगी च न निरग्निः न च अक्रियः

श्री भगवान् उवाच –
कर्म फल पर निर्भर न होकर, जो कर्तव्य कर्म करता है, वही संन्यासी है और योगी है । वह नहीं जो अग्नि का उपयोग नहीं करता और न (कोई) कर्म ।

६.२ यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥

यं संन्यासम् इति प्राहुर्
योगं तं विद्धि, पाण्डव – –
न ह्य् असंन्यस्तसंकल्पो
योगी भवति कश्चन – –

यम् संन्यासम् इति प्राहुः योगम् तम् विद्धि पाण्ड
न हि असंन्यस्तसंकल्पः योगी भवति कश्चन

इस प्रकार जिसे संन्यास कहते हैं, तू उसे योग समझ पाण्डव । वास्तव में, फलाशाओं का त्याग किए बिना कोई योगी नहीं होता ।

६.३ आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥

आरुरुक्षोर् मुनेर् योगं
कर्म कारणम् उच्यते
योगारूढस्य तस्यै (ए)व – –
शमः कारणम् उच्यते

आरुरुक्षोः मुनेः योगम् कर्म कारणम् उच्यते
योगारूढस्य तस्य एव शमः कारणम् उच्यते

योग में स्थित होने की इच्छा वाले मुनि के लिए कहा जाता है–कर्म साधन है । जो योग में स्थित है, उसके लिए, कहते हैं, एकमात्र साधन है, शम– (अन्तःकरण और इन्द्रियों का निग्रह) ।

६.४ यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥

यदा हि ने (इ)न्द्रियार्थेषु - -
न कर्मस्व् अनुषज्जते
सर्वसंकल्पसंन्यासी
योगारूढस् तदो (उ)च्यते

यदा हि न इन्द्रियार्थेषु न कर्मसु अनुषज्जते
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढः तदा उच्यते

वास्तव में, जब मनुष्य न इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होता है, न कर्मों में, तब वह, सब संकल्पों को त्यागने वाला, योगारूढ कहलाता है ।

६.५ उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

उद्धरेद् आत्मना (आ)त्मानं,
ना (आ)त्मानम् अवसादयेत्
आत्मै (ए)व ह्य् आत्मनो बन्धुर्
आत्मै (ए)व रिपुर् आत्मनः

उद्धरेत् आत्मना आत्मानम् न आत्मानम् अवसादयेत्
आत्मा एव हि आत्मनः बन्धुः आत्मा एव रिपुः आत्मनः

(मनुष्य को) स्वयं अपने को अपने (बल) से ऊपर उठाना चाहिए । अपने को नीचे, गिराना नहीं चाहिए । वास्तव में, (मनुष्य) स्वयं ही अपना एकमात्र मित्र है, स्वयं ही अपना शत्रु भी ।

६.६ **बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।**
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥

बन्धुर् आत्मा (आ)त्मनस् तस्य - -
येना (आ)त्मै (ए)वा (आ)त्मना जितः
अनात्मनस् तु शत्रुत्वे
वर्तेता (आ)त्मै (ए)व शत्रुवत्

बन्धुः आत्मा आत्मनः तस्य येन आत्मा एव आत्मना जितः
अनात्मनः तु शत्रुत्वे वर्तेत आत्मा एव शत्रुवत्

वह स्वयं अपना मित्र है, जिसने केवल अपने से अपने को जीत लिया है । जिसने अपने आप पर विजय नहीं पाई, वह वास्तव में, अपने साथ वैर विरोध करने में, एकमात्र शत्रु जैसा व्यवहार करता है ।

६.७ **जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।**
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥

जितात्मनः प्रशान्तस्य - -
परमात्मा समाहितः
शीतोष्णसुखदुःखेषु - -
तथा मानापमानयोः

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः

जिसने अपने को जीत लिया है और शान्तिपूर्ण है, उसका "परमात्मा" एक समान रहता है,- सर्दी गर्मी में और सुख दुःख में; और, वैसे ही मान अपमान में ।[१]

१. (यहाँ "परमात्मा" शब्द आत्मा के लिए प्रयुक्त हुआ है अर्थात् वह स्वयं एक समान रहता है ।)

६.८ ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा,
कूटस्थो विजितेन्द्रियः
युक्त इत्य् उच्यते योगी,
समलोष्टाश्मकाञ्चनः

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थः विजितेन्द्रियः
युक्तः इति उच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः

जो अपने में ज्ञान और विज्ञान से तृप्त है, जो दृढ स्थित है, जिसने इन्द्रियों को जीत लिया है, ऐसा योगी (ईश्वर) "युक्त" कहलाता है । उसके लिए मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण एक समान हैं ।

६.९ सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥

सुहृन्मित्रार् युदासीन-
मध्यस्थद् द्वेष्यबन्धुषु - -
साधुष्व् अपि च पापेषु, - -
समबुद्धिर् विशिष्यते

सुहृन्मित्रायुदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु
साधुषु अपि च पापेषु समबुद्धिः विशिष्यते

जो प्रिय जनों में, मित्रों में, शत्रुओं में, तटस्थ जनों में, मध्यस्थों में, द्वेष करने योग्य लोगों और बन्धुओं में, साधु और पापियों में भी, समबुद्धिहै, वह श्रेष्ठ है ।

६.१० योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥

योगी युञ्जीत सततम्
आत्मानं रहसि स्थितः
एकाकी यतचित्तात्मा
निराशीर् अपरिग्रहः

योगी युञ्जीत सततम् आत्मानम् रहसि स्थितः
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीः अपरिग्रहः

योगी निरन्तर अपने को योगाभ्यास में लगाए,[२] गुप्त स्थान में अकेले बैठकर, अपने आप को और मनको नियन्त्रित करके, आशारहित होकर और अनावश्यक धन-सामग्री का संग्रह त्यागकर–

६.११ शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य – –
स्थिरम् आसनम् आत्मनः
न (अ)त्युच्छ्रितं ना (अ)तिनीचं
चैलाजिन कुशोत्तरम्

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरम् आसनम् आत्मनः
न अत्युच्छ्रितम् न अतिनीचम् चैलाजिनकुशोत्तरम्

पवित्र स्थान में अपना स्थिर आसन जमा कर, जो न बहुत ऊंचा हो न बहुत नीचा– क्रमशः कुश, चर्म और वस्त्र रखा हो,

२.अपने को परमात्मा में जोड़ना "योग" है।

६.१२ तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥

तत्रै (ए)काग्रं मनः कृत्वा,
यतचित्तेन्द्रियक्क्रियः
उपविश्या (आ)सने युञ्ज्याद्
योगम् आत्मविशुद्धये

तत्र एकाग्रम् मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः
उपविश्य आसने युञ्ज्यात् योगम् आत्मविशुद्धये

वहां, मन को एकाग्र करके, चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रख कर, आसन पर बैठकर, योग का अभ्यास करे- अन्तःकरण की शुद्धि के लिए।

६.१३ समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥

समं कायशिरोग्रीवं
धारयन् अचलं स्थिरः
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं,
दिशश् चा (अ)नवलोकयन्

समम् कायशिरोग्रीवम् धारयन् अचलम् स्थिरः
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रम् स्वम् दिशः च अनवलोकयन्

धड़, ग्रीवा और सिर एक सीध में करके; अचल, स्थिर हुआ, अपनी नाक की नोक पर दृष्टि रख कर, इधर उधर न देखते हुए-

६.१४ प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥

प्रशान्तात्मा विगतभीर्
ब्रह्मचारिव्रते स्थितः
मनः संयम्य मच्चित्तो
युक्त आसीत मत्परः

प्रशान्तात्मा विगतभीः ब्रह्मचारिव्रते स्थितः
मनः संयम्य मच्चित्तः युक्तः आसीत मत्परः

जो अपने में शान्त है, जिसके भय दूर हो गए हैं, जो ब्रह्मचारियों के व्रत में दृढ है, जिसका मन वश में है, चित्त मुझमें लीन है, वह बैठे, मुझे सर्वोच्च मानते हुए ।

६.१५ युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥

युञ्जन्न् एवं सदा (आ)त्मानं
योगी नियतमान्सः
शान्तिम् निर्वाणपरमां
मत्संस्थाम् अधिगच्छति - -

युञ्जन् एवम् सदा आत्मानम् योगी नियतमानसः
शान्तिम् निर्वाणपरमाम् मत्संस्थाम् अधिगच्छति

इस प्रकार सदा अपने को योगाभ्यास में लगाए, मन को वश में किए, योगी पा जाता है, शान्ति को, परम निर्वाण को, जो मुझमें स्थित हैं ।

६.१६ नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥

ना (अ)त्यश् नतस् तु योगो (अ)स्ति, - -
न चै (ए)कान्तम् अनश्नतः
न चा (अ)तिस् स्वप्नशीलस्य, - -
जाग्रतो नै (ए)व चा (अ)र्जुन - -

न अति अश्नतः तु योगः अस्ति न च एकान्तम् अनश्नतः
न च अति स्वप्नशीलस्य जाग्रतः न एव च अर्जुन

वास्तव में, योग उसके लिए नहीं है जो अधिक खाता है, और न उसके लिए जो एकदम नहीं खाता, और न उसके लिए जो अधिक निद्रालु है, और न उसके लिए जो जागरण ही करता है, अर्जुन !

६.१७ युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

युक्ताहार विहारस्य, - -
युक्तचेष्टस्य कर्मसु - -
युक्तस् स्वप्नावबोधस्य,--
योगो भवति दुःखहा

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगः भवति दुःखहा

जिसका खाना पीना और मनोरंजन संतुलित है, कर्म करने में जिसका आचरण नियंत्रित है, जिसका सोना, जागना नियमित है, उसकेलिए योग, दुःखनाशक होता है।

६.१८ यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥

यदा विनियतं चित्तम्
आत्मन्य् एवा (अ)वतिष्ठते
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो,
युक्त इत्य् उच्यते तदा

यदा विनियतम् चित्तम् आत्मनि एव अवतिष्ठते
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यः युक्तः इति उच्यते तदा

जब भली प्रकार से वश में किया हुआ मन, एकमात्र अपने में स्थिर हो जाता है, सब काम्य वस्तुओं की इच्छाओं को त्यागकर,- तब ऐसा कहते हैं कि "वह (योग) युक्त है" ।

६.१९ यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥

यथा दीपो निवातस्थो
ने (इ)ङ्गते सो (उ)पमा स्मृता
योगिनो यतचित्तस्य - -
युञ्जतो योगम् आत्मनः

यथा, दीपः निवातस्थः न इङ्गते सा उपमा स्मृता
योगिनः यतचित्तस्य युञ्जतः योगम् आत्मनः

"जैसे दीपक वायुरहित स्थान में झिलमिलाता नहीं" इस उपमा का स्मरण हो आता है, (उस) योगी के लिए, जिसका नियन्त्रित चित्त, योग के अभ्यास में अपने को लीन किए हुए है ।

६.२० यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥

यत्रो (उ)परमते चित्तं
निरुद्धं योगसेवया
यत्र चै (ए)वा (आ)त्मना (आ)त्मानं
पश्यन् आत्मनि तुष्यति - -

यत्र उपरमते चित्तम् निरुद्धम् योगसेवया
यत्र च एव आत्मना आत्मानम् पश्यन् आत्मनि तुष्यति

जहां योग के अभ्यास से वश में हुआ मन शान्त है और जहां अपने से, अपने को, अपने में देखते हुए वह संतुष्ट है; (और-)

६.२१ सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥

सुखम् आत्यन्तिकं यत् तद्
बुद्धिग्राह्यम् अतीन्द्रियम्
वेत्ति, यत्र न चै (ए)वा (अ)यं
स्थितश् चलति तत्त्वतः

सुखम् आत्यन्तिकम् यत् तत् बुद्धिग्राहयम् अतीन्द्रियम्
वेत्ति यत्र न च एव अयम् स्थितः चलति तत्त्वतः

जो इस (संन्तुष्टि) में अनुभव करता है उस परम सुख को जो बुद्धि गम्य है, इन्द्रियों से परे है; और, एक मात्र जहां स्थित हुआ, वह परम तत्त्व से विचलित नहीं होता;-

६.२२ यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥

यं लब्ध्वा चा (अ)परं लाभं
मन्यते ना (अ)धिकं ततः
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन - -
गुरुणा (अ)पि विचाल्यते

यम् लब्ध्वा च अपरम् लाभम् मन्यते न अधिकम् ततः
यस्मिन् स्थितः न दुःखेन गुरुणा अपि विचाल्यते

और, जिसे पाकर, किसी और लाभ को उससे अधिक नहीं मानता; उसमें स्थित हुआ वह भारी दुःख से भी डगमगाता नहीं; (और, ऐसी स्थिति-)

६.२३ तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥

तं विद्याद् दुःखसंयोग -
वियोगं योगसंज्ञितम्
स निश्चयेन योक्तव्यो
योगो (अ)निर्विण्णचेतसा

तम् विद्यात् दुःखसंयोगवियोगम् योगसंज्ञितम्
सः निश्चयेन योक्तव्यः योगः अनिर्विण्णचेतसा

जो दुःख के स्पर्श से रहित है, उस को योग नाम से जानना चाहिए । इस योग का अभ्यास करना चाहिए, निश्चय पूर्वक, निराश न हुए मन से ।

६.२४ संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥

संकल्पप्रभवान् कामांस्
त्यक्त्वा सर्वान् अशेषतः
मनसै (ए)वे (इ)न्द्रियग्रामं
विनियम्य समन्ततः

संकल्पप्रभवान् कामान् त्यक्त्वा सर्वान् अशेषतः
मनसा एव इन्द्रियग्रामम् विनियम्य समन्ततः

कल्पना से उत्पन्न संपूर्ण कामनाओं का पूर्णतः त्याग करके, मन द्वारा समस्त इन्द्रियों को भी सब ओर से भली प्रकार नियन्त्रित करके–

६.२५ शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥

शनैः शनैर् उपरमेद् ,
बुद्ध्या धृतिगृहीतया
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा,
न किंचित् अपि चिन्तयेत्

शनैः शनैः उपरमेत् बुद्ध्या धृतिगृहीतया
आत्मसंस्थम् मनः कृत्वा न किंचित् अपि चिन्तयेत्

धीरे धीरे, उसे शान्ति प्राप्त करनी चाहिए, धैर्य युक्त बुद्धि से; मन को अपने में स्थिर करके, उसे और कुछ भी चिन्तन नहीं करना चाहिए ।

६.२६ यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥

यतो यतो निश्चरति - -
मनश् चञ्चलम् अस्थिरम्
ततस्ततो नियम्यै (ए)तद्
आत्मन्य् एव वशं नयेत्

यतः यतः निश्चरति मनः चञ्चलम् अस्थिरम्
ततः ततः नियम्य एतत् आत्मनि एव वशम् नयेत्

जहां जहां चंचल, अस्थिर मन भागता है, वहां वहां से उसे नियंत्रण में करके, एक मात्र अपने वश में लाना चाहिए ।

६.२७ प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥

प्रशान्तमनसं ह्य् एनं
योगिनं सुखम् उत्तमम्
उपैति, शान्तरजसं,
ब्रह्मभूतम् अकल्मषम्

प्रशान्तमनसम् हि एनम् योगिनम् सुखम् उत्तमम्
उपैति शान्तरजसम् ब्रह्मभूतम् अकल्मषम्

जिसका मन शान्त है, निश्चय ही, ऐसे योगी को उत्तम सुख प्राप्त होता है; उसके रजोगुण शान्त हो जाते हैं, वह ब्रह्म मय हो जाता है- निष्पाप ।

६.२८ युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥

युञ्जन्न् एवं सदा (आ)त्मानं
योगी विगतकल्मषः
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शम्
अत्यन्तं सुखम् अश्नुते

युञ्जन् एवम् सदा आत्मानम् योगी विगतकल्मषः
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शम् अत्यन्तम् सुखम् अश्नुते

इस प्रकार सदा अपने को योगाभ्यास में लगाते हुए, योगी, जिसके पाप मिट गए हैं, ब्रह्म स्पर्श के परम सुख को, सरलता से प्राप्त करता है ।

६.२९ सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥

सर्वभूतस्थम् आत्मानं,
सर्वभूतानि चा (आ)त्मनि - -
ईक्षते योगयुक्तात्मा,
सर्वत्र समदर्शनः

सर्वभूतस्थम् आत्मानम् सर्वभूतानि च आत्मनि
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः

जो अपने को सब चराचर में और सब चराचर को अपने में देखता है, वह योग में लीन हुआ सर्वत्र समदर्शी है ।

६.३० यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

यो मां पश्यति सर्वत्र, - -
सर्वं च मयि पश्यति - -
तस्या (अ)हं नप् प्रणश्यामि, - -
स च मे नप् प्रणश्यति - -

यः माम् पश्यति सर्वत्र सर्वम् च मयि पश्यति
तस्य अहम् न प्रणश्यामि सः च मे न प्रणश्यति

जो हर कहीं मुझ को देखता है और सब को मुझमें देखता है, मैं उसके लिए लुप्त नहीं होता और न वह मेरे लिए लुप्त होता है।

६.३१ सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥

सर्वभूतस्थितं यो मां
भजत्, एकत्वम् आस्थितः
सर्वथा वर्तमानो (अ)पि, - -
स योगी मयि वर्तते

सर्वभूतस्थितम् यः माम् भजति एकत्वम् आस्थितः
सर्वथा वर्तमानः अपि सः योगी मयि वर्तते

सारी सृष्टि में स्थित मुझको, जो भजता है एकत्व में लीन हुआ, वह योगी कहीं भी रहते हुए, मुझमें रहता है।

६.३२ आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र – –
समं पश्यति यो (अ)र्जुन –
सुखं वा यदि वा दुःखं,
स योगी परमो मतः

आत्मौपम्येन सर्वत्र समम् पश्यति यः अर्जुन
सुखम् वा यदि वा दुःखम् सः योगी परमः मतः

जो अपने ही जैसा, सब कहीं (सबको) एक समान देखता है, अर्जुन । चाहे सुख हो या दुःख, वह योगी श्रेष्ठ माना जाता है[१] ।

६.३३ अर्जुन उवाच–
योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥

यो (अ)यं योगस् त्वया प्रोक्तः
साम्येन, मधुसूदन – –
एतस्या (अ)हं न पश्यामि – –
चञ्चलत्वात् स्थितिं स्थिराम्

यः अयम् योगः त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन
एतस्य अहम् न पश्यामि चञ्चलत्वात् स्थितिम् स्थिराम्

अर्जुन उवाच –
जो यह समता से प्राप्त होने वाला योग आपने कहा है, मधुसूदन । मैं, चंचलता के कारण, इसकी स्थिति, दृढ नहीं देखता ।

१. २९ से ३२ तक के चार श्लोकों में समदर्शन की अनुभूति का कितना सुन्दर वर्णन है ।

६.३४ चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

चञ्चलं हि मनः, कृष्ण, - -
प्रमाथि बलवद् दृढम्
तस्या (अ)हं निग्रहं मन्ये
वायोर् इव सुदुष्करम्

चञ्चलम् हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवत् दृढम्
तस्य अहम् निग्रहम् मन्ये वायोः इव सुदुष्करम्

हे कृष्ण । मन वास्तव में, चंचल है :- प्रचण्ड, बलवान् और हठी । मैं सोचता हूँ उसे वश में करना बहुत कठिन है, जैसे वायु को ।

६.३५ श्रीभगवानुवाच-
असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

असंशयं, महाबाहो,
मनो दुर्निग्रहं चलम्
अभ्यासेन तु कौन्तेय - -
वैराग्येण च गृह्यते

असंशयं महाबाहो मनः दुर्निग्रहम् चलम्
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते

श्री भगवान् उवाच -
निस्संदेह महाबाहो । चंचल मन को वश में लाना कठिन है, पर कौन्तेय । अभ्यास और वैराग्य से इसे वश में किया जा सकता है ।

६.३६ असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥

असंयतात्मना योगो
दुष्प्राप इति मे मतिः
वश्यात्मना तु यतता
शक्यो (अ)वाप्तुम् उपायतः

असंयतात्मना योगः दुष्प्रापः इति मे मतिः
वश्यात्मना तु यतता शक्यः अवाप्तुम् उपायतः

मेरा ऐसा विचार है, जिसका अपने पर नियन्त्रण नहीं, उसके लिए योग प्राप्त करना कठिन है । परन्तु, जिसने अपने को वश में किया है, उसके लिए प्राप्त करना, सम्भव है, प्रयत्न करते हुए, उपाय (साधन) से ।

६.३७ अर्जुन उवाच-
अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥

अयतिः श्रद्धयो (उ)पेतो
योगाच् चलितमानसः
अप्राप्य योगसंसिद्धिं
कां गतिं कृष्ण गच्छति - -

अयतिः श्रद्धया उपेतः योगात् चलितमानसः
अप्राप्य योगसंसिद्धिम् काम् गतिम् कृष्ण गच्छति

अर्जुन उवाच -
जिसका अपने पर नियन्त्रण नहीं, पर, जो श्रद्धा से सम्पन्न है,(किन्तु) मन जिसका योग से भटक गया है, वह योग द्वारा प्राप्य पूर्ण सिद्धि को न पाते हुए, हे कृष्ण । किस अवस्था को पहुंचता है ?

६.३८ **कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।**
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥

कच्चिन् नो (उ)भयविभ्रष्टश्
छिन्नाभ्रम् इव नश्यति - -
अप्रतिष्ठो, महाबाहो,
विमूढो ब्रह्मणः पथि - -

कच्चित् न उभयविभ्रष्टः छिन्नाभ्रम् इव नश्यति
अप्रतिष्ठः महाबाहो विमूढः ब्रह्मणः पथि

कहीं यह दोनों ओर से भ्रष्ट मनुष्य, छिन्न-भिन्न बादल जैसा, नष्ट तो नहीं हो जाता ? महाबाहो ! डावांडोल हुआ, ब्रह्म की राह में भ्रमित ?

६.३९ **एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।**
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥

एतन् मे संशयं, कृष्ण, - -
छेत्तुम् अर्हस्य् अशेषतः
त्वदन्यः संशयस्या (अ)स्य - -
छेत्ता न ह्य् उपपद्यते

एतत् मे संशयम् कृष्ण छेत्तुम् अर्हसि अशेषतः
त्वदन्यः संशयस्य अस्य छेत्ता न हि उपपद्यते

हे कृष्ण ! यह मेरा संशय, पूर्ण रूपसे दूर करने के योग्य, आप हैं । आपके अतिरिक्त इस सन्देह को मिटाने वाला, वास्तव में, कोई दूसरा मिल नहीं सकता ।

६.४० श्रीभगवानुवाच-
पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति ॥

पार्थ, नै (ए)वे (इ)ह ना (अ)मुत्र - -
विनाशस् तस्य विद्यते -
न हि कल्याणकृत् कश्चिद्
दुर्गतिं, तात, गच्छति - -

पार्थ न एव इह न अमुत्र विनाशः तस्य विद्यते
न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिम् तात गच्छति

श्री भगवान् उवाच -
हे पार्थ । न इस लोक में और न परलोक में उसका[४] विनाश होता है । वास्तव में, कोई भी कल्याण (सम्पादन) करने वाला (मनुष्य), दुर्गति को प्राप्त नहीं होता, हे प्रिय मित्र ।

६.४१ प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥

प्राप्य पुण्यकृतां लोकान्,
उषित्वा शाश्वतीः समाः
शुचीनां श्रीमतां गेहे
योगभ्रष्टो (अ)भिजायते

प्राप्य पुण्यकृताम् लोकान् उषित्वा शाश्वतीः समाः
शुचीनाम् श्रीमताम् गेहे योगभ्रष्टः अभिजायते

पुण्यकर्ता मनुष्योंके (मिलने वाले) लोकों को प्राप्त करके, वहां अनेक वर्षों तक रह कर, वह पवित्र श्रीसम्पन्न लोगों के घर में जन्म लेता है,-योग से भटका हुआ पुरुष ।

४. ऐसे मनुष्य का जो श्रद्धा से सम्पन्न है पर योग से भटक गया है। (देखिए ६.३७)

६.४२ अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥

अथवा योगिनाम् एव - -
कुले भवति धीमताम्
एतद् धि दुर्लभतरं
लोके जन्म यद् ईदृशम्

अथवा योगिनाम् एव कुले भवति धीमताम्
एतत् हि दुर्लभतरम् लोके जन्म यत् ईदृशम्

अथवा, बुद्धिमान योगियों के कुल में भी उसका जन्म हो सकता है। परन्तु, जो ऐसा जन्म है, इस संसार में और भी दुर्लभ है।

६.४३ तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं
लभते पौर्वदेहिकम्
यतते च ततो भूयः
संसिद्धौ, कुरुनन्दन - -

तत्र तम् बुद्धिसंयोगम् लभते पौर्वदेहिकम्
यतते च ततः भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन

वहां उसे पूर्व-देह से सम्बन्धित (योग-युक्त) बुद्धि का संयोग मिल जाता है, और, तब वह फिर से परम सिद्धि के लिए प्रयत्न करता है, कुरुनन्दन।

६.४४ पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥

पूर्वाभ्यासेन तेनै (ए)व - -
ह्रियते ह्य् अवशो (अ)पि सः
जिज्ञासुर् अपि योगस्य - -
शब्दब्रह्मा (अ)तिवर्तते

पूर्वाभ्यासेन तेन एव ह्रियते हि अवशः अपि सः
जिज्ञासुः अपि योगस्य शब्दब्रह्म अतिवर्तते

पहले के उस अभ्यास के कारण, वह बरबस आगे ही खिंचा चला जाता है । योग का जिज्ञासु, वेद से भी परे पहुँच जाता है ।

६.४५ प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥

प्रयत्नाद् यतमानस् तु - -
योगी संशुद्धकिल्बिषः
अनेकजन्मसंसिद्धस्
ततो याति परां गतिम्

प्रयत्नात् यतमानः तु योगी संशुद्धकिल्बिषः
अनेकजन्मसंसिद्धः ततः याति पराम् गतिम्

दृढता से प्रयास करते हुए, वास्तव में, योगी, जिसके पाप पूर्णतः धुल गए हैं, अनेक जन्मों में, पूर्णसिद्ध होता है, तब (कहीं) परम गति को पाता है ।

६.४६ तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

तपस्विभ्यो (अ)धिको योगी,
ज्ञानिभ्यो (अ)पि मतो (अ)धिकः
कर्मिभ्यश् चा (अ)धिको योगी,
तस्माद् योगी भवा (अ)र्जुन - -

तपस्विभ्यः अधिकः योगी ज्ञानिभ्यः अपि मतः अधिकः
कर्मिभ्यः च अधिकः योगी तस्मात् योगी भव अर्जुन

तपस्वियों की अपेक्षा योगी बढ़कर है, ज्ञानियों की अपेक्षा भी वह अधिक श्रेष्ठ माना जाता है, और कर्मठ व्यक्तियों से भी योगी बड़ा है । अतः तू योगी बन, अर्जुन ।

६.४७ योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥

योगिनाम् अपि सर्वेषां,
मद्गतेना (अ)न्तरात्मना
श्रद्धावान् भजते यो मां,
स मे युक्ततमो मतः

योगिनाम् अपि सर्वेषाम् मद्गतेन अन्तरात्मना
श्रद्धावान् भजते यः माम् सः मे युक्ततमः मतः

सम्पूर्ण योगियों में भी, जो अन्तरतम से मुझ में लीन है, श्रद्धावान् है, मेरा भजन करता है, वह (योगी) सर्वोत्तम है, मेरे विचार में ।

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ध्यानयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः समाप्तः

गीता प्रकाश

परिचय-७

अध्याय ६ में ध्यान योग द्वारा मन को वश में करने की विधि बतलाई गई है। अध्याय ७ में योगाभ्यास करते हुए मनुष्य किस प्रकार "मुझ को पूर्ण रूप से जान लेगा," यह ज्ञान भगवान् बतलाते हैं (श्लोक ७.२)

यह ज्ञान क्या है ? "मुझसे अधिक श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। सब गुणों और जीवों का शाश्वत मूल कारण मैं हूँ"। अपनी दोनों प्रकार की प्रकृतियों का वर्णन भी विस्तार से करते हैं "सब कुछ मुझ में है, पर मैं किसी में नहीं।" यह मूल ज्ञान है जो भगवान् विज्ञान सहित[१] बतला रहे हैं।

अध्याय ७ का नाम है "ज्ञान विज्ञान योग"।

१. मनुष्य जब अपने में किसी ज्ञान की अनुभूति करके दूसरों को बतलाता है, वह ज्ञान की बात विज्ञान सहित कहता है।

श्रीमद्भगवद् गीता

अथ सप्तमोऽध्यायः

(श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगः)

७.१ **श्रीभगवानुवाच –**
मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥

मय्य् आसक्तमनाः पार्थ – –
योगं युञ्जन् मदाश्रयः
असंशयं समग्रं मां
यथा ज्ञास्यसि तच् छृणु – –

मयि आसक्तमनाः पार्थ योगम् युञ्जन् मदाश्रयः
असंशयम् समग्रम् माम् यथा ज्ञास्यसि तत् शृणु

श्री भगवान् उवाच –
हे पार्थ । मुझ में मन लीन किए, मेरा आश्रय लेकर, योगमें जुटा तू, निस्सन्देह पूर्ण रूप से, मुझे जिस प्रकार जान लेगा, वह सुन ।

७.२ ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥

ज्ञानं ते (अ)हं सविज्ञानम्
इदं वक्ष्याम्य् अशेषतः
यज् ज्ञात्वा ने (इ)ह भूयो (अ)न्यज्
ज्ञातव्यम् अवशिष्यते

ज्ञानम् ते अहम् सविज्ञानम् इदम् वक्ष्यामि अशेषतः
यत् ज्ञात्वा न इह भूयः अन्यत् ज्ञातव्यम् अवशिष्यते

तुझे यह ज्ञान,[१] मैं विज्ञान सहित, पूर्ण रूप से बतलाऊंगा, जिसे जानकर, इस लोक में फिर और कुछ जानने योग्य रह नहीं जाता ।

७.३ मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥

मनुष्याणां सहस्रेषु – –
कश्चिद् यतति सिद्धये
यतताम् अपि सिद्धानां
कश्चिन् मां वेत्ति तत्त्वतः

मनुष्याणाम् सहस्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये
यतताम् अपि सिद्धानाम् कश्चित् माम् वेत्ति तत्त्वतः

सहस्रों मनुष्यों में से कोई एक सिद्ध होने का प्रयत्न करता है । प्रयत्न करने वाले सिद्ध पुरुषों में भी, कोई एक मुझको यथार्थ रूप में जानता है ।

१. ज्ञान का अर्थ है शास्त्रीय ज्ञान; वस्तुओं और विषयों का बोध, जानकारी; ऐसे ज्ञान की अनुभूति विज्ञान है। ईश्वर सर्वत्र है यह ज्ञान की बात (धार्मिक ग्रन्थों में लिखी) है। जब मनुष्य स्वयं अपने में इसका अनुभव करके दूसरों को बतलाता है, वह ज्ञान की बात विज्ञान सहित कहता है।

७.४ **भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।**
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥

भूमिर् आपो (अ)नलो वायुः
खं मनो बुद्धिर् एव च--
अहंकार इती (इ)यं मे
भिन्ना प्रकृतिर् अष्टधा

भूमिः आपः अनलः वायुः खम् मनः बुद्धिः एव च
अहंकारः इति इयम् मे भिन्ना प्रकृतिः अष्टधा

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, और अहंकार भी- इस प्रकार, मेरी यह (जड़ात्मिका) प्रकृति, आठ प्रकार विभाजित हुई है ।

७.५ **अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।**
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥

अपरे (इ)यम् , इतस् त्व् अन्यां
प्रकृतिं विद्धि मे पराम्
जीवभूतां, महाबाहो,
यये (इ)दं धार्यते जगत्

अपरा इयम् इतः तु अन्याम् प्रकृतिम् विद्धि मे पराम्
जीवभूताम् महाबाहो यया इदम् धार्यते जगत्

(पर) यह है, निम्नश्रेणी की । तू, वास्तव में इससे (भिन्न) मेरी दूसरी (चैतन्यात्मिका) प्रकृति को जान जो श्रेष्ठ है, प्राणियों का जीवन है, महाबाहो । जिसके द्वारा यह संसार थमा हुआ है ।

७.६ **एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।**
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥

एतद्द योनीनि भूतानि - -
सर्वाणी (इ)त्य् उपधारय - -
अहं कृत्स्नस्य जगतः
प्रभवः प्रलयस् तथा

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणि इति उपधारय
अहम् कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयः तथा

यह उत्पत्ति स्थान है सब प्राणियों का, ऐसा तू समझ । (पर) सम्पूर्ण जगत् का उद्गम-स्थान मैं हूँ । वैसे ही, (उसके लिए) प्रलय भी;

७.७ **मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।**
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

मत्तः परतरं ना (अ)न्यत्
किंचिद् अस्ति, धनंजय - -
मयि सर्वम् इदं प्रोतं,
सूत्रे मणिगणा इव - -

मत्तः परतरम् न अन्यत् किंचित् अस्ति धनंजय
मयि सर्वम् इदम् प्रोतम् सूत्रे मणिगणा इव

मुझ से अधिक श्रेष्ठ, और कुछ भी नहीं है, धनंजय ।
यह सब मुझ में गुँथा हुआ है, जैसे धागे में मणियाँ ।

७.८ रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥

रसो (अ)हम् अप्सु, कौन्तेय, - -
प्रभा (अ)स्मि शशिसूर्ययोः
प्रणवः सर्ववेदेषु, - -
शब्दः खे, पौरुषं नृषु - -

रसः अहम् अप्सु कौन्तेय प्रभा अस्मि शशिसूर्ययोः
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषम् नृषु

जल में स्वाद, मै हूं । कौन्तेय । चन्द्र सूर्य की दीप्ति मै हूं । सब वेदों में ओंकार, आकाश में शब्द और पुरुषों में पराक्रम,

७.९ पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च, - -
तेजश् चा (अ)स्मि विभावसौ
जीवनं सर्वभूतेषु, - -
तपश् चा (अ)स्मि तपस्विषु - -

पुण्यः गन्धः पृथिव्याम् च तेजः च अस्मि विभावसौ
जीवनम् सर्वभूतेषु तपः च अस्मि तपस्विषु

पृथ्वी में पवित्र गन्ध और अग्नि में तेज, मै हूं । सब प्राणियों में जीवन और तपस्वियों में तप, मै हूं ।

**७.१० बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥**

बीजं मां सर्वभूतानां
विद्धि, पार्थ, सनातनम्
बुद्धिर् बुद्धिमताम् अस्मि, - -
तेजस् तेजस्विनाम् अहम्

बीजम् माम् सर्वभूतानाम् विद्धि पार्थ सनातनम्
बुद्धिः बुद्धिमताम् अस्मि तेजः तेजस्विनाम् अहम्

सम्पूर्ण जीवों का शाश्वत मूल कारण, तू मुझे जान, पार्थ । बुद्धिमानों की बुद्धि, मैं हूं ; तेजस्वियों का तेज, मैं हूं ।

**७.११ बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरूद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥**

बलं बलवतां च (अ)हं
कामरागविवर्जितम्
धर्माविरूद्धो भूतेषु - -
कामो (अ)स्मि, भरतर्षभ - -

बलम् बलवताम् च अहम् कामरागविवर्जितम्
धर्माविरूद्धः भूतेषु कामः अस्मि भरतर्षभ

और मैं बलवानों का बल हूं, जो काम और राग से रहित है । जो धर्म के प्रतिकूल नही, प्राणियों में काम मैं हूं , भरतर्षभ ।

७.१२ ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥

ये चै (ए)व सात्त्विका भावा,
राजसास् तामसाश् च ये
मत्त एवे (इ)ति तान् विद्धि, - -
न त्व् अ्हं तेषु, ते मयि - -

ये च एव सात्त्विकाः भावाः राजसाः तामसाः च ये
मत्तः एव इति तान् विद्धि न तु अहम् तेषु ते मयि

और जो चित्तवृत्तियां हैं-सात्त्विकी, राजसी और तामसी, ये भी मुझ से ही हैं, तू ऐसा जान । वास्तव में, मैं उनमें नहीं, वे मुझ में हैं ।

७.१३ त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥

त्रिभिर् गुणमयैर् भावैर्
एभिः सर्वम् इदं जगत्
मोहितं, ना (अ)भिजानाति - -
माम् एभ्यः परम् अव्ययम्

त्रिभिः गुणमयैः भावैः एभिः सर्वम् इदम् जगत्
मोहितम् न अभिजानाति माम् एभ्यः परम् अव्ययम्

इन तीन गुणों वाली मनोवृत्तियों से मोहित हुआ यह सम्पूर्ण जगत् , मुझ को नहीं पहचानता, जो (इनसे) परे हूं, अविनाशी हूं ।

७.१४ दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

दैवी ह्य् एषा गुणमयी
मम माया दुरत्यया
माम् एव ये प्रपद्यन्ते
मायाम् एतां तरन्ति ते

दैवी हि एषा गुणमयी मम माया दुरत्यया
माम् एव ये प्रपद्यन्ते मायाम् एताम् तरन्ति ते

वास्तव में, यह मेरी दैवी, गुणोंवाली माया, पार करने में कठिन है । जो एकमात्र, मेरा आश्रय लेते हैं, वे इस माया को पार कर जाते हैं ।

७.१५ न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥

न मां दुष्कृतिनो मूढाः
प्रपद्यन्ते नराधमाः
मायया (अ)पहृतज्ञाना,
आसुरं भावम् आश्रिताः

न माम् दुष्कृतिनः मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः
मायया अपहृतज्ञानाः आसुरम् भावम् आश्रिताः

मेरे पास दुष्कर्म करने वाले मूढ, अधम मनुष्य नहीं पहुंचते - माया द्वारा जिन का ज्ञान हर लिया गया है, वे आसुरी स्वभाव के आश्रय में रहते हैं ।

७.१६ चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

चतुर्विधा भजन्ते मां
जनाः सुकृतिनो (अ)र्जुन - -
आर्तो जिज्ञासुर् अर्थार्थी
ज्ञानी च, भरतर्षभ - -

चतुर्विधाः भजन्ते माम् जनाः सुकृतिनः अर्जुन
आर्तः जिज्ञासुः अर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ

सुकर्म करने वाले चार प्रकार के मनुष्य मेरा भजन करते हैं, अर्जुन । दुःखी, जिज्ञासु, धन की इच्छावाले, और ज्ञानी, भरतर्षभ ।

७.१७ तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त - -
एकभक्तिर् विशिष्यते
प्रियो हि ज्ञानिनो (अ)त्यर्थम्
अहं, स च ममप् प्रियः

तेषाम् ज्ञानी नित्ययुक्तः एकभक्तिः विशिष्यते
प्रियः हि ज्ञानिनः अत्यर्थम् अहम् सः च मम प्रियः

उनमें, ज्ञानी, (मुझ में) निरन्तर लीन हुआ, एक (ही में) भक्तिवाला श्रेष्ठ है । वास्तव में, मैं ज्ञानी को अत्यन्त प्रिय हूं, और वह मुझे प्रिय है ।

७.१८ उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥

उदाराः सर्व एवै (ए)ते,
ज्ञानी त्व् आत्मै (ए)व मे मतम्
आस्थितः स हि युक्तात्मा
माम् एवा (अ)नुत्तमां गतिम्

उदाराः सर्वे एव एते ज्ञानी तु आत्मा एव मे मतम्
आस्थितः सः हि युक्तात्मा माम् एव अनुत्तमाम् गतिम्

ये सभी श्रेष्ठ हैं। (परन्तु) ज्ञानी, सच में मेरा अपना रूप है। (यह) मेरा विचार है। वास्तव में, वह एक मात्र मुझमें लीन हुआ-स्थित है। इससे उत्तम गति नहीं है।

७.१९ बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

बहूनां जन्मनाम् अन्ते
ज्ञानवान् मां प्रपद्यते
वासुदेवः सर्वम् इति, - -
स महात्मा सुदुर्लभः

बहूनाम् जन्मनाम् अन्ते ज्ञानवान् माम् प्रपद्यते
वासुदेवः सर्वम् इति सः महात्मा सुदुर्लभः

अनेक जन्मों के अन्त में ज्ञानी पुरूष मुझे पा लेता है। "वासुदेव ही सब कुछ है" इस प्रकार (जानने वाला), वह महात्मा, अत्यन्त दुर्लभ है।

**७.२० कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥**

कामैस् तैस् तैर् हृत ज्ञाना
प्रपद्यन्ते (अ)न्यदेवताः
तं तं नियमम् आस्थाय, - -
प्रकृत्या नियताः स्वया

कामैः तैः तैः हृतज्ञानाः प्रपद्यन्ते अन्यदेवताः
तम् तम् नियमम् आस्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया

जिन जिन कामनाओं द्वारा (मनुष्यों का) ज्ञान हर लिया गया है, (उन उन कामनाओं के लिए) वे दूसरे दूसरे देवताओं की शरण लेते हैं, उन उन (देवताओं) के नियमों का पालन करते हैं, अपनी-अपनी प्रकृति से विवश हुए ।

**७.२१ यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥**

यो यो यां यां तनुं भक्तः
श्रद्धया (अ)र्चितुम् इच्छति - -
तस्य तस्या (अ)चलां श्रद्धां
ताम् एव विदधाम्यहम्

यः यः याम् याम् तनुम् भक्तः श्रद्धया अर्चितुम् इच्छति
तस्य तस्य अचलाम् श्रद्धाम् ताम् एव विदधामि अहम्

जिस जिस रूप आकार को, जो जो भक्त श्रद्धा से पूजना चाहता है, उसकी उसी श्रद्धा को मैं, उस (देवता) में दृढ बना देता हूं ।

७.२२ स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥

स तया श्रद्धया युक्तस्
तस्या (आ)राधनम् ईहते
लभते च ततः कामान्
मयै (ए)व विहितान् हि तान्

सः तया श्रद्धया युक्तः तस्याः राधनम् ईहते
लभते च ततः कामान् मया एव विहितान् हि तान्

उसी श्रद्धा से युक्त होकर वह (उसी आकार की) पूजा करना चाहता है, और (वह) उससे कामनाओं को प्राप्त करता है । वास्तव में, ये भी, लाभ मेरे ही द्वारा निर्धारित हैं ।

७.२३ अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥

अन्तवत् तु फलं तेषां
तद् भवत्य् अल्पमेधसाम्
देवान् देवयजो यान्ति, - -
मद्भक्ता यान्ति माम् अपि - -

अन्तवत् तु फलम् तेषाम् तत् भवति अल्पमेधसाम्
देवान् देवयजः यान्ति मद्भक्ताः यान्ति माम् अपि

उन अल्पबुद्धि वालों के उस फल का वास्तव में अन्त आ जाता है । जो देवताओं को पूजते हैं वे देवताओं के पास जाते हैं; मेरे भक्त मेरे ही पास आते हैं ।

७.२४ अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥

अव्यक्तं व्यक्तिम् आपन्नं
मन्यन्ते माम् अबुद्धयः
परं भावम् अजानन्तो
ममा (अ)व्ययम् अनुत्तमम्

अव्यक्तम् व्यक्तिम् आपन्नम् मन्यन्ते माम् अबुद्धयः
परम् भावम् अजानन्तः मम अव्ययम् अनुत्तमम्

मुझ अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष हुआ मानते हैं, अविवेकी लोग । वे मेरी सर्वोपरि सत्ता को नहीं जानते, जो अक्षय है, सर्वश्रेष्ठ है ।

७.२५ नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥

ना (अ)हं प्रकाशः सर्वस्य – –
योगमाया समावृतः
मूढो (अ)यं ना (अ)भिजानाति – –
लोको माम् अजम् अव्ययम्

न अहम् प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः
मूढः अयम् न अभिजानाति लोकः माम् अजम् अव्ययम्

मैं सब किसी के लिए प्रकट नहीं हूं, योगमाया से ढका हुआ होने से । यह मोहग्रस्त संसार मुझे नहीं पहचानता, (कि मैं) अजन्मा, अव्यय (हूं) ।

७.२६ वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥

वेदा (अ)हं समतीतानि - -
वर्तमानानि चा (अ)र्जुन - -
भविष्याणि च भूतानि;- -
मां तु वेद न कश्चन - -

वेद अहम् समतीतानि वर्तमानानि च अर्जुन
भविष्याणि च भूतानि माम् तु वेद न कश्चन

मैं जानता हूं, जो भूतकाल में थे और जो वर्तमान में हैं, अर्जुन। और, उन प्राणियों को (भी), जो भविष्य में होंगे। (पर) वास्तव में, मुझे कोई नहीं जानता।

७.२७ इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥

इच्छाद्वेष समुत्थेन - -
द्वन्द्वमोहेन भारत - -
सर्वभूतानि संमोहं
सर्गे यान्ति, परंतप - -

इच्छाद्वेषसमुतथेन द्वन्द्वमोहेन भारत
सर्वभूतानि संमोहम् सर्गे यान्ति परंतप

इच्छा और द्वेष से उत्पन्न, द्वंद्व-मोह के कारण, भारत, संसार में सब प्राणी, मोहग्रस्त हुए फिरते हैं, परंतप।

७.२८ येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

येषां त्व् अन्तगतं पापं
जनानां पुण्यकर्मणाम्
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता
भजन्ते मां दृढव्व्रताः

येषाम् तु अन्तगतम् पापम् जनानाम् पुण्यकर्मणाम्
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः भजन्ते माम् दृढव्रताः

वास्तव में, जिन पुण्यवान् मनुष्यों के पापों का अन्त हो गया है वे, द्वंद्व-मोह से मुक्त, मेरा भजन करते हैं- दृढ निश्चय वाले ।

७.२९ जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥

जरामरण मोक्षाय - -
माम् 'आश्रित्य यतन्ति ये
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नम्
अध्यात्मं कर्म चा (अ)खिलम्

जरामरणमोक्षाय माम् आश्रित्य यतन्ति ये
ते ब्रह्म तत् विदुः कृत्स्नम् अध्यातमम् कर्म च अखिलम्

वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त होने के लिए, जो मेरा आश्रय लेकर प्रयत्न करते हैं, वे जान लेते हैं उस ब्रह्म को, पूर्ण अध्यात्म (विद्या) को और सम्पूर्ण कर्म [२] को । (और),

२. कर्म क्या है ? देखिए अध्याय ८ श्लोक ३

७.३० साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥

साधिभूताधिदैवं मां
साधियज्ञं च ये विदुः
प्रयाणकाले (अ)पि च मां
ते विदुर् युक्तचेतसः

साधिभूताधिदैवम् माम् साधियज्ञम् च ये विदुः
प्रयाणकाले अपि च माम् ते विदुः युक्तचेतसः

अधिभूत,[१] अधिदैव[१] और अधियज्ञ[१] के साथ जो मुझे जानते हैं, वे (महा) प्रयाण के समय भी मुझे जानते रहते हैं, उनका चित्त (मुझ में) जुड़ा रहता है ।

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः समाप्तः

१. अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ शब्दों की व्याख्या, अर्जुन के पूछने पर, अगले अध्याय में, भगवान् करते हैं। कोश में दिए अर्थ इस प्रकार हैं :

अधिभूत	(न.)	परमात्मा, परब्रह्म
अधिदैव	(न.)	किसी वस्तु का अधिष्ठाता देवता,
	(पु.)	अन्तर्यामी पुरुष
अधियज्ञ	(पु.)	प्रधान यज्ञ, परमेश्वर

भगवान् कह रहे हैं, "महाप्रयाण के समय मोक्ष प्राप्ति के लिए अनेकानेक धार्मिक सिद्धान्तों की आवश्यकता नहीं। जो यह जानता रहता है कि सम्पूर्ण जड़-चेतनादि में (अधिभूत) क्या है, देवताओं का अन्तर्यामी पुरुष (अधिदैव) कौन है और यज्ञ में सदैव उपस्थित रहने वाला (अधियज्ञ) कौन है, वह मुझे पा लेता है।" हर स्थिति में एक वही है। 'अधिभूत' उसका भौतिक पहलू है, 'अधिदैव' उसका दैवी रूप है, और सदा यज्ञ में स्थित, 'अधियज्ञ' भी वही है। इस प्रकार उस परब्रह्म को सम्पूर्णतः जानना चाहिए, मोक्ष प्राप्ति के लिए।

गीता प्रकाश

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

परिचय-८

अध्याय ७ में भगवान् ने कहा है "मुझ से अधिक श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है" । अब अपने परमधाम का संक्षेप में वर्णन करते हैं, जो शाश्वत है।

सब (जड़-चेतनादि) दिन[1] निकलते अव्यक्त से प्रक्ट हो, रात[1] होते लुप्त हो जाते हैं, उसी अव्यक्त में। इस अव्यक्त से परे एक और अव्यक्त अस्तित्व है जो शाश्वत है, सब का नाश होने पर भी नष्ट नहीं होता। यह अव्यक्त "अक्षर" है। "यह मेरा परमधाम है, जिसे पाकर मनुष्य फिर नहीं लौटता। और, यह एकनिष्ठ भक्ति द्वारा प्राप्य है।"

अध्याय ८ का नाम है - "अक्षर ब्रह्म योग" ।

१. ब्रह्मा का दिन सहस्र युग तक का है और उसकी रात्रि का अन्त सहस्र युग के पश्चात् होता है। (श्लोक ८.१७)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

श्रीमद्भगवद् गीता

अथाष्टमोऽध्यायः

(श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगः)

८.१ **अर्जुन उवाच -**
किं तद् ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥

किं तद् ब्रह्म किम् अध्यात्मं
किं कर्म फुरुषोत्तम - -
अधिभूतं च किं प्रोक्तम्,
अधिदैवं किम् उच्यते

किम् तत् ब्रह्म किम् अध्यात्मम् किम् कर्म पुरुषोत्तम
अधिभूतम् च किम् प्रोक्तम् अधिदैवम् किम् उच्यते

अर्जुन उवाच -
हे पुरुषोत्तम ! वह ब्रह्म क्या है ? अध्यात्म क्या है ? कर्म क्या है ? और अधिभूत किसे कहते हैं ? अधिदैव किसे कहा जाता है ?

८.२ अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥

अधियज्ञः कथं को (अ)त्र - -
देहे (अ)स्मिन्, मधुसूदन - -
प्रयाणकाले च कथं
ज्ञेयो (अ)सि नियतात्मभिः

अधियज्ञः कथम् कः अत्र देहे अस्मिन् मधुसूदन
प्रयाणकाले च कथम् ज्ञेयः असि नियतात्मभिः

यहां इस शरीर में अधियज्ञ कौन है, कैसे है, मधुसूदन । और प्रयाण करने के समय आप कैसे जाने जाते हैं-उनके द्वारा, जिन्होंने स्वयं को वश में किया है ।

८.३ श्रीभगवान् उवाच -
अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥

अक्षरं ब्रह्म परमं,
स्वभावो (अ)ध्यात्मम् उच्यते
भूतभावोद्भवकरो
विसर्गः कर्मसंज्ञितः

अक्षरम् ब्रह्म परमम् स्वभावः अध्यात्मम् उच्यते
भूतभावोद्भवकरः विसर्गः कर्मसंज्ञितः

श्रीभगवान् उवाच -
ब्रह्म अक्षय है, सर्वोपरि है । उसके मूल स्वरूप के ज्ञान को अध्यात्म कहते हैं । जड़ चेतनादि के अस्तित्व को उत्पन्न करने वाली क्रिय-विसर्ग-का नाम कर्म[१] है ।

१. संभाव्यतः, यहां "कर्म" से "ईश्वरीय कर्म" की ओर संकेत है- सृष्टि की रचना और संरक्षण ।

८.४ अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥

अधिभूतं क्षरो भावः ,
पुरुषश् चा (अ)धिदैवतम्
अधियज्ञो (अ)हम् एवा (अ)त्र - -
देहे, देहभृतां वर - -

अधिभूतम् क्षरः भावः पुरुषः च अधिदैवतम्
अधियज्ञः अहम् एव अत्र देहे देहभृताम् वर

(भौतिक जगत् में) नाशवान् अस्तित्व 'अधिभूत' है और (देवों में अन्तर्यामी) पुरुष 'अधिदैव' है । 'अधियज्ञ' यहां इस देह में, (अन्तर्यामी रूप से) एक मात्र मैं हूं, हे । देहधारियों में श्रेष्ठ ।[१]

८.५ अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥

अन्तकाले च माम् एव - -
स्मरन् , मुक्त्वा कलेवरम्
यः प्रयाति स मद्भावं
याति, ना (अ)स्त्य् अत्र संशयः

अन्तकाले च माम् एव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्
यः प्रयाति सः मद्भावम् याति न अस्ति अत्र संशयः

और, अन्तकाल में जो एकमात्र मेरा स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है वह मेरे स्वरूप में मिल जाता है, इसमें सन्देह नहीं।

१. यह तीन उस "एक" के ही रूप हैं। देखिए अध्याय ७ के अन्त में हमारी टिप्पणी।

८.६ यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥

यं यं वा (अ)पि स्मरन् भावं
त्यजत्य् अन्ते कलेवरम्
तं-तम् एवै (ए)ति, कौन्तेय, - -
सदा तद्भावभावितः

यम् यम् वा अपि स्मरन् भावम् त्यजति अन्ते कलेवरम्
तम् तम् एव एति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः

जिस जिस भी रूप आकार का स्मरण करते हुए (मनुष्य) देह त्यागता है वह उसे ही प्राप्त करता है, कौन्तेय । सदा उस रूप में लीन रहने से ।

८.७ तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः ॥

तस्मात् सर्वेषु कालेषु - -
माम् अनुस्मर युध्य च - -
मय्य् अर्पितमनोबुद्धिर्
माम् एवै (ए)ष्यस्य् असंशयः

तस्मात् सर्वेषु कालेषु माम् अनुस्मर युध्य च
मयि अर्पितमनोबुद्धिः माम् एव एष्यसि असंशयः

अतः सब समय मेरा स्मरण कर, और, युद्ध कर । मुझ में मन और बुद्धि को अर्पण किए हुए, एकमात्र मुझे प्राप्त कर लेगा (तू), संदेहरहित हुआ ।

८.८ अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥

अभ्यासयोगयुक्तेन - -
चेतसा ना (अ)न्यगामिना
परमं पुरुषं दिव्यं
याति, पार्था (अ)नुचिन्तयन्

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना
परमम् पुरुषम् दिव्यम् याति पार्थ अनुचिन्तयन्

अभ्यास से योग में लीन हुआ, अन्य कहीं न भटकते हुए चित्त से, (मनुष्य) सर्वोपरि दिव्य पुरुष को पा जाता है, पार्थ ! उसका मनन चिन्तन करते हुए ।

८.९ कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥

कविं पुराणम् अनुशासितारम्
अणोर् अणीयांसम् अनुस्मरेद् यः
सर्वस्य धातारम् अचिन्त्यरूपम्
आदित्यवर्णं, तमसः परस्तात्

कविं पुराणम् अनुशासितारम् अणोः अणीयांसम् अनुस्मरेत् यः
सर्वस्य धातारम् अचिन्त्यरूपम् आदित्यवर्णम् तमसः परस्तात्

जो स्मरण करता है उसका–जो सर्वज्ञ, पुरातन, संसार का शासक है, लघु से भी लघु है, सब का पालन कर्त्ता है, जिसका स्वरूप अकल्पनीय है, जो सूर्य सा देदीप्यमान है, अन्धकार से परे है ;

८.१० प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

प्रयाणकाले मनसा (अ)चलेन - -
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैं (ए)व - -
भ्रुवोर् मध्ये प्राणम् आवेश्य सम्यक् ,
स तं परं पुरुषम् उपैति दिव्यम्

प्रयाणकाले मनसा अचलेन भक्त्या युक्तः योगबलेन च एव
भ्रुवोः मध्ये प्राणम् आवेश्य सम्यक् सः तम् परम् पुरुषम् उपैति दिव्यम्

प्रस्थान समय में, निश्चल मन से, भक्ति सहित लीन हुआ और एकमात्र योग बल से दोनों भृकुटियों के बीच श्वास को भली प्रकार स्थिर कर के, वह पा जाता है उस सर्वोच्च दिव्य पुरुष को ।

८.११ यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥

यद् अक्षरं वेदविदो वदन्ति - -
विशन्ति यद् यतयो वीतरागाः
यद् इच्छन्तो ब्रह्मचर्यचरन्ति, - -
तत् ते पदं संग्रहेणप् प्रवक्ष्ये

यत् अक्षरम् वेदविदः वदन्ति विशन्ति यत् यतयः वीतरागाः
यत् इच्छन्तः ब्रह्मचर्यम् चरन्ति तत् ते पदम् संग्रहेण प्रवक्ष्ये

जिसे वेद को जानने वाले "अक्षर" कहते हैं, रागरहित यति लोग जिसमें प्रवेश करते हैं, जिसकी इच्छा करते हुए लोग ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, उस (परम) पद को, मैं तुझे संक्षेप में बतलाऊंगा ।

८.१२ सर्व द्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरूध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥

सर्वद् द्वाराणि संयम्य, - -
मनो हृदि निरूध्य च - -
मूर्ध्न्य् आधाया (आ)त्मनः प्राणम्
आस्थितो योगधारणाम्

सर्व द्वाराणि संयम्य मनः हृदि निरूध्य च
मूर्ध्नि आधाय आत्मनः प्राणम् आस्थितः योगधारणाम्

(शरीर के) सब द्वारों को नियन्त्रण में रखकर और मन को हृदय में रोक कर, प्राणों को मस्तक में स्थापित करके, योग में एकाग्र स्थिर हुआ, -

८.१३ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

ओम् इत्य् एकाक्षरं ब्रह्म - -
व्याहरन् , माम् अनुस्मरन्
यः प्रयाति त्यजन् देहं,
स याति परमां गतिम्

ओम् इति एकाक्षरम् ब्रह्म व्याहरन् माम् अनुस्मरन्
यः प्रयाति त्यजन् देहम् सः याति परमाम् गतिम्

इस प्रकार, एकाक्षर ब्रह्म "ओम्" का उच्चारण करते, मेरा स्मरण करते हुए, जो देह त्याग कर प्रस्थान करता है, वह सर्वोच्च गति को पा जाता है ।

८.१४ अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

अनन्यचेताः सततं
यो मां स्मरति नित्यशः
तस्या (अ)हं सुलभः, पार्थ, - -
नित्ययुक्तस्य योगिनः

अनन्यचेताः सततम् यः माम् स्मरति नित्यशः
तस्य अहम् सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः

जो सदा एकाग्र मन से मुझे निरन्तर स्मरण करता है, उसके लिए मैं सरलता से प्राप्य हूँ, पार्थ । - सदैव लीन रहने वाले योगी के लिए ।

८.१५ मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महाऽत्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥

माम् उपेत्य पुनर्जन्म - -
दुःखालयम् अशाश्वतम्
नाप्नुवन्ति महात्मानः
संसिद्धिं परमां गताः

माम् उपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयम् अशाश्वतम्
न आप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिम् परमाम् गताः

मुझे पाकर महात्मा लोग पुनर्जन्म को, जो दुःखों का घर है, अस्थायी है, प्राप्त नहीं होते । (कारण) वे तो सर्वोच्च सिद्धि को पहुंच (ही) चुके हैं ।

८.१६ आ ब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥

आ ब्रह्मभुवनाल् लोकाः
पुनरावर्तिनो (अ)र्जुन - -
माम् उपेत्य तु, कौन्तेय, - -
पुनर्जन्म न विद्यते

आ ब्रह्मभुवनात् लोकाः पुनरावर्तिनः अर्जुन
माम् उपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते

हे अर्जुन, ब्रह्मलोक तक के लोकों से फिर लौटना पड़ता है । (पर) मुझे पाकर वास्तव में, कौन्तेय ! पुनर्जन्म नहीं होता ।

८.१७ सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥

सहस्रयुगपर्यन्तम्
अहर् यद् ब्रह्मणो विदुः
रात्रिं युगसहस्रान्तां,
ते (अ)होरात्रविदो जनाः

सहस्रयुगपर्यन्तम् अहः यत् ब्रह्मणः विदुः
रात्रिम् युगसहस्रान्ताम् ते अहोरात्रविदः जनाः

ब्रह्मा का दिन सहस्र युग तक का है, और (उसकी) रात्रि का अन्त सहस्र युग के पश्चात् होता है, जो ऐसा जानते हैं, वे लोग (उसके) दिन और रात को जानते हैं–

८.१८ **अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।**
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥

अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः
प्रभवन्त्य् अहरागमे
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते
तत्रै (ए)वा (अ)व्यक्तसंज्ञके

अव्यक्तात् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्ति अहरागमे
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्र एव अव्यक्तसंज्ञके

सब, (जड़-चेतनादि) अव्यक्त से प्रकट हो, दिन निकलते उमड़ पड़ते हैं। रात होते, वे लुप्त हो जाते हैं उसीमें– जिसका नाम अव्यक्त है;

८.१९ **भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।**
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥

भूतग्रामः स एवा (अ)यं
भूत्वाभूत्वा प्रलीयते
रात्र्यागमे (अ)वशः, पार्थ, – –
प्रभवत्य् अहरागमे

भूतग्रामः सः एव अयम् भूत्वा भूत्वा प्रलीयते
रात्र्यागमे अवशः पार्थ प्रभवति अहरागमे

उन जड़-चेतनादि का, यह समुदाय भी, उत्पन्न हो हो कर, रात होते बरबस लय हो जाता है, पार्थ। दिन होने पर (फिर) प्रकट हो जाता है।

८.२० परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥

परस् तस्मात् तु भावो (अ)न्यो
(अ)व्यक्तो (अ)व्यक्तात् सनातनः
यः स सर्वेषु भूतेषु – –
नश्यत्सु न विनश्यति – –

परः तस्मात् तु भावः अन्यः अव्यक्तः अव्यक्तात् सनातनः
यः सः सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति

वास्तव में, इस अव्यक्त से परे एक और अव्यक्त अस्तित्व है जो इसकी अपेक्षा, शाश्वत है–जो सब जड़-चेतनादि का नाश होने पर भी, नष्ट नहीं होता ।

८.२१ अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

अव्यक्तो (अ)क्षर इत्य् उक्तस्
तम् आहुः परमां गतिम्
यं प्राप्य न निवर्तन्ते
तद् धाम परमं मम – –

अव्यक्तः अक्षरः इति उक्तः तम् आहुः परमाम् गतिम्
यम् प्राप्य न निवर्तन्ते तत् धाम परमम् मम

ऐसे अव्यक्त को "अक्षर" कहते हैं । उसे परम गति कहा गया है, जिसे पा कर (मनुष्य) फिर नहीं लौटते । वह मेरा परम धाम है ।

**८.२२ पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥**

पुरुषः स परः, पार्थ, - -
भक्त्या लभ्यस् त्व् अनन्यया
यस्या (अ)न्तः स्थानि भूतानि - -
येन सर्वम् इदं ततम्

पुरुषः सः परः पार्थ भक्त्या लभ्यः तु अनन्यया
यस्य अन्तः स्थानि भूतानि येन सर्वम् इदम् ततम्

वह परम पुरुष, पार्थ ! निश्चय ही एकनिष्ठ भक्ति से प्राप्य है । उसमें सब प्राणी स्थित हैं, यह सब (ब्रह्माण्ड) उससे व्याप्त है ।

**८.२३ यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥**

यत्र काले त्व् अनावृत्तिम्
आवृत्तिम् चै(ए)व योगिनः
प्रयाता यान्ति, तं कालं
वक्ष्यामि, भरतर्षभ - -

यत्र काले तु अनावृत्तिम् आवृत्तिम् च एव योगिनः
प्रयाताः यान्ति तम् कालम् वक्ष्यामि भरतर्षभ

वास्तव में, जिस काल में प्रस्थान करने पर योगी लौट कर नहीं आते, और जिस काल में लौट आते हैं, वह भी मैं तुझे बतलाऊंगा, भरतर्षभ !

**८.२४ अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥**

अग्निर् ज्योतिर् अहः शुक्लः
षण्मासा उत्तरायणम्
तत्रप् प्रयाता गच्छन्ति - -
ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः

अग्निः ज्योतिः अहः शुक्लः षण्मासाः उत्तरायणम्
तत्र प्रयाताः गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदः जनाः

अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्ल पक्ष, उत्तरायण के छः महीने, उस समय में प्रस्थान करने वाले ब्रह्मवेत्ता लोग, ब्रह्म को पाते हैं ।

**८.२५ धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥**

धूमो रात्रिस् तथा कृष्णः
षण्मासा दक्षिणायनम्
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्
योगी प्राप्य निवर्तते

धूमः रात्रिः तथा कृष्णः षण्मासाः दक्षिणायनम्
तत्र चान्द्रमसम् ज्योतिः योगी प्राप्य निवर्तते

धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष तथा दक्षिणायन के छः महीने, उस समय में (जाने वाला) योगी, चन्द्र-ज्योति प्राप्त करके, लौट आता है ।

८.२६ शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥

शुक्लकृष्णे गती ह्य् एते
जगतः शाश्वते मते
एकया यात्य् अनावृत्तिम्
अन्यया (आ)वर्तते पुनः

शुक्लकृष्णे गती हि एते जगतः शाश्वते मते
एकया याति अनावृत्तिम् अन्यया आवर्तते पुनः

प्रकाश और अन्धकार, वास्तव में, संसार के ये दो मार्ग शाश्वत माने गए हैं। एक से वह जाता है जो लौटता नहीं, दूसरे से वह, जो फिर लौट आता है।

८.२७ नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥

नै (ए)ते सृती, पार्थ, जानन्
योगी मुह्यति कश्चन - -
तस्मात् सर्वेषु कालेषु - -
योगयुक्तो भवा (अ)र्जुन - -

न एते सृती पार्थ जानन् योगी मुह्यति कश्चन
तस्मात् सर्वेषु कालेषु योगयुक्तः भव अर्जुन

इन दो मार्गों को जानता हुआ, पार्थ ! योगी कभी मोह में नहीं पड़ता। अतः सब समय में तू योग में लीन रह, अर्जुन।

८.२८ वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चै (ए)व - -
दानेषु यत् पुण्यफलं प्रदिष्टम्
अत्येति तत् सर्वम् इदम् विदित्वा
योगी परं स्थानम् उपैति चा (आ)द्यम्

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु च एव दानेषु यत् पुण्यफलम् प्रदिष्टम्
अत्येति तत् सर्वम् इदम् विदित्वा योगी परम् स्थानम् उपैति च आद्यम्

वेद, यज्ञ, तप, और दान में जो पुण्यफल निर्धारित हैं उन सब से परे वह योगी पहुंच जाता है जो इन (दो मार्गों) को जानता है, और, वह सर्वोपरि आदि स्थान को पा लेता है ।

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगो नामाष्टमोऽध्यायः समाप्तः

गीता प्रकाश

परिचय-९

सांतवें अध्याय के आरम्भ में (७.२) भगवान् ने 'विज्ञान सहित ज्ञान' के बतलाने की बात कही थी। उसी प्रसंग में आठवें अध्याय में अपने धाम "अक्षर" की चर्चा की।

अब "विज्ञान सहित ज्ञान" की बात आगे करते हैं जिसे जानकर और कुछ जानने योग्य रह नहीं जाता। "यह सम्पूर्ण संसार मुझ अप्रत्यक्ष रूप वाले से व्याप्त है। सब कुछ मुझ में स्थित है, मैं उसमें स्थित नहीं। तू मेरा ही भजन कर"। इन ज्ञान की बातों को परम गोपनीय राजविद्या कहा है।

अध्याय ९ का नाम है, "राजविद्या राजगुह्य योग "।[१]

१. यह अध्याय, अध्याय ७ और ८ का विस्तार रूप है। अध्याय १० का "परिचय" भी देखें

श्रीमद्भगवद् गीता

अथ नवमोऽध्यायः

(श्री कृष्णार्जुनसंवादे राजविद्या राजगुह्ययोगः)

९.१ **श्रीभगवानुवाच -**
इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥

इदं तु ते गुह्यतमं
प्रवक्ष्याम्य् अनसूयवे
ज्ञानं विज्ञानसहितम्,
यज् ज्ञात्वा मोक्ष्यसे (अ)शुभात्

इदम् तु ते गुह्यतमम् प्रवक्ष्यामि अनसूयवे
ज्ञानम् विज्ञानसहितम् यत् ज्ञात्वा मोक्ष्यसे अशुभात्

श्रीभगवान् उवाच -

अब, यह गुप्त से भी गुप्त ज्ञान तुझे - जो छिद्रान्वेषण नहीं करता - मैं, विज्ञान[१] सहित बतलाऊँगा । जिसे जानकर तू मुक्त हो जाएगा - अशुभ से, (पाप से) ।

१. देखिए अध्याय (७) श्लोक (२)

९.२ राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥

राजविद्या राजगुह्यं
पवित्रम् इदम् उत्तमम्
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं,
सुसुखं कर्तुम् अव्ययम्

राजविद्या राजगुह्यम् पवित्रम् इदम् उत्तमम्
प्रत्यक्षावगमम् धर्म्यम् सुसुखम् कर्तुम् अव्ययम्

यह, राजविद्या (है, पर) परम रहस्यमय, पवित्र, तुरत, बोधगम्य, धर्मसंगत, अभ्यास करने में सरल, (और) अविनाशी है ।

९.३ अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥

अश्रद्दधानाः पुरुषा
धर्मस्या (अ)स्य, परंतप - -
अप्राप्य मां निवर्तन्ते
मृत्युसंसारवर्त्मनि - -

अश्रद्दधानाः पुरुषाः धर्मस्य अस्य परंतप
अप्राप्य माम् निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि

जो पुरुष इस धर्म में श्रद्धा नहीं रखते, वे, हे परंतप । मुझे प्राप्त न करके लौट आते है, मृत्युलोक की राह में - जीवन-मरण के चक्र में ।

९.४ **मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।**
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥

मया ततम् इदं सर्वं
जगद् अव्यक्तमूर्तिना
मत्स्थानि सर्वभूतानि, – –
न चा (अ)हं तेष्व् अवस्थितः

मया ततम् इदम् सर्वम् जगत् अव्यक्तमूर्तिना
मत्स्थानि सर्वभूतानि न च अहम् तेषु अवस्थितः

यह सम्पूर्ण संसार मुझ, अप्रत्यक्ष रूप वाले से व्याप्त है । सब जड़-चेतनादि मुझ में स्थित हैं, और मैं उनमें स्थित नहीं ;

९.५ **न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।**
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥

न च मत्स्थानि भूतानि;– –
पश्य मे योगम् ऐश्वरम्
भूतभृन् न च भूतस्थो
– – ममा (आ)त्मा भूतभावनः

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगम् ऐश्वरम्
भूतभृत् न च भूतस्थः मम आत्मा भूतभावनः

और (फिर) न सब जड़-चेतनादि मुझ में स्थित हैं,[२] तू देख, मेरे सर्व श्रेष्ठ योग को । जड़-चेतनादि का आधार होते हुए भी, उनमें स्थित नहीं हूं, (परन्तु), मैं स्वयं उनका भरण पोषण करने वाला हूँ ।

२. श्लोक ४ और ५ में जो विरोध प्रतीत हो रहा है वह दो भिन्न दृष्टियों से देखने के कारण है– व्यावहारिक और पारमार्थिक ।

९.६ यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥

यथा (आ)काशस्थितो नित्यं
वायुः सर्वत्रगो महान्
तथा सर्वाणि भूतानि - -
मत्स्थानी (इ)त्य् उपधारय - -

यथा आकाशस्थितः नित्यम् वायुः सर्वत्रगः महान्
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानि इति उपधारय

जैसे, महान् वायु सब कहीं बहता हुआ आकाश में सदैव स्थित है वैसे ही सब जड़-चेतनादि, मुझ में स्थित हैं - तू ऐसा जान ।

९.७ सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥

सर्वभूतानि, कौन्तेय, - -
- - प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्
कल्पक्ष्ये पुनस् तानि - -
- - कल्पादौ विसृजाम्य् अहम्

सर्व भूतानि कौन्तेय प्रकृतिम् यान्ति मामिकाम्
कल्पक्षये पुनः तानि कल्पादौ विसृजामि अहम्

सब जड़-चेतनादि, कौन्तेय ! कल्प के अन्त में मेरी प्रकृति में समा जाते हैं । फिर उनको, कल्प के आरम्भ में, मैं प्रकट करता हूं ।

९.८ प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥

प्रकृतिं स्वाम् अवष्टभ्य – –
विसृजामि पुनः पुनः
भूतग्रामम् इमम् कृत्स्नम्
अवशं प्रकृतेर् वशात्

प्रकृतिं स्वाम् अवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः
भूतग्रामम् इमम् कृत्स्नम् अवशम् प्रकृतेः वशात्

अपनी प्रकृति का आश्रय लेकर, मैं बार बार उत्पन्न करता हूं, इस सम्पूर्ण जड़-चेतनादि समुदाय को, जो निस्सहाय है, (मेरी) प्रकृति के वश में होने से ।

९.९ न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥

न च मां तानि कर्माणि – –
निबध्नन्ति, धनंजय – –
उदासीनवद् आसीनम्
असक्तं तेषु कर्मसु – –

न च माम् तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय
उदासीनवत् आसीनम् असक्तम् तेषु कर्मसु

और, न ये कर्म मुझे बांधते हैं, धनंजय ! मैं आसक्तिरहित, तटस्थ सा विराजमान रहता हूं , इन कर्मों में ।

९.१० मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥

मया (अ)ध्यक्षेण प्रकृतिः
सूयते सचराचरम्
हेतुना (अ)नेन, कौन्तेय, - -
जगद् विपरिवर्तते

मया अध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्
हेतुना अनेन कौन्तेय जगत् विपरिवर्तते

मेरे निरीक्षण में प्रकृति उत्पन्न करती है - चर और अचर को । इस कारण, हे कौन्तेय ! संसार चलता रहता है ।

९.११ अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥

अवजानन्ति मां मूढाः
मानुषीं तनुम् आश्रितम्
परं भावम् अजानन्तो
मम भूतमहेश्वरम्

अवजानन्ति माम् मूढाः मानुषीम् तनुम् आश्रितम्
परम् भावम् अजानन्तः मम भूतमहेश्वरम्

मूढ लोग मेरा तिरस्कार करते हैं कि मैं मनुष्य शरीर का आश्रय लेता हूं । वे नहीं जानते मेरे सर्वोपरि स्वरूप को, जो सब प्राणियों का परमेश्वर हैः

९.१२ मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥

मोघाशा मोघकर्माणो
मोघज्ञाना विचेतसः
राक्षसीम् आसुरीं चै (ए)व – –
प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः

मोघाशाः मोघकर्माणः मोघज्ञानाः विचेतसः
राक्षसीम् आसुरीम् च एव प्रकृतिम् मोहिनीम् श्रिताः

उनकी आशाएं व्यर्थ हैं, कर्म निष्फल और ज्ञान निरर्थक हैं । वे विवेक हीन राक्षसी और आसुरी वृत्ति का ही सहारा लेते हैं, जो मोह-भ्रम में डालने वाली है ।

९.१३ महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥

महात्मानस् तु मां, पार्थ, – –
दैवीं प्रकृतिम् आश्रिताः
भजन्त्य् अनन्यमनसो
ज्ञात्वा भूतादिम् अव्ययम्

महात्मानः तु माम् पार्थ दैवीम् प्रकृतिम् आश्रिताः
भजन्ति अनन्यमनसः ज्ञात्वा भूतादिम् अव्ययम्

वस्तुतः, महात्मा लोग मुझे, पार्थ ! दैवी प्रकृति का सहारा लेकर, एक मन से भजते हैं, जानते हुए कि मैं, जड़-चेतनादि का आदि-आरम्भ हूं, अविनाशी ।

९.१४ सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥

सततं कीर्तयन्तो मां,
यतन्तश् च दृढव्रताः
नमस्यन्तश् च मां भक्त्या
नित्ययुक्ता उपासते

सततम् कीर्तयन्तः माम् यतन्तः च दृढव्रताः
नमस्यन्तः च माम् भक्त्या नित्ययुक्ताः उपासते

निरन्तर मेरा गुणगान करते, प्रयत्नशील और अटल निश्चयवाले, भक्तिसहित मुझे नमस्कार करते और सदैव लीन रहते हुए, उपासना करते हैं।

९.१५ ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥

ज्ञानयज्ञेन चा (अ)प्य् अन्ये
यजन्तो माम् उपासते
एकत्वेन पृथक्त्वेन
बहुधा विश्वतोमुखम्

ज्ञानयज्ञेन च अपि अन्ये यजन्तः माम् उपासते
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्

और दूसरे (लोग) भी ज्ञानयज्ञ द्वारा, यज्ञ करते हुए, मेरी उपासना करते हैं - एक रूपमें, भिन्न-भिन्न रूप में (और) अनेक रूप में- विश्वव्यापी जो हूँ।

९.१६ अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥

अहं क्रतुर् अहं यज्ञः
स्वधा (अ)हम् अहम् औषधम्
मन्त्रो (अ)हम् अहम् एवा (आ)ज्यम्
अहम् अग्निर् अहं हुतम्

अहम् क्रतुः अहम् यज्ञः स्वधा अहम् अहम् औषधम्
मन्त्रः अहम् अहम् एव आज्यम् अहम् अग्निः अहम् हुतम्

मैं क्रतु[३], मैं यज्ञ[४], स्वधा[५] मैं, औषधि मैं हूं ।
मंत्र मैं हूं, घृत भी मैं हूं, मैं अग्नि, आहुति मैं हूं ;

९.१७ पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ॥

पिता (अ)हम् अस्य जगतो
मांता धाता पितामहः
वेद्यं पवित्रम् ओंकार - -
ऋक् साम यजुर् एव च - -

पिता अहम् अस्य जगतः माता धाता पितामहः
वेद्यम् पवित्रम् ओंकार ऋक् साम यजुः एव च

मैं इस जगत् का पिता, माता, पालन पोषण करने वाला और पितामह हूं । और जो कुछ पवित्र जानने योग्य है,–ओउम् , ऋक् , साम और यजुर्वेद भी;

३ श्रौतयज्ञ ४ स्मार्त यज्ञ ५ पितरों को अर्पित अन्न

**९.१८ गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ।।**

गतिर् भर्ता प्रभुः साक्षी
निवासः शरणं सुहृत
प्रभवः प्रलयः स्थानं
निधानं बीजम् अव्ययम्

गतिः भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणम् सुहृत्
प्रभवः प्रलयः स्थानम् निधानम् बीजम् अव्ययम्

गति, पति, प्रभु, साक्षी, आवास, आश्रय, स्नेही मित्र, उद्‌गम, प्रलय, आधार, भण्डार, अक्षय बीज; (सब मैं हूं।)

**९.१९ तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ।।**

तपाम्य् अहम् अहं वर्षं
निगृह्णाम्य् उत्सृजामि च - -
अमृतं चै (ए)व मृत्युश् च - -
सद् असच् चा (अ)हम्, अर्जुन - -

तपामि अहम् अहम् वर्षम् निगृह्णामि उत्सृजामि च
अमृतम् च एव मृत्युः च सत् असत् च अहम् अर्जुन

तपता मैं हूं,[६] वर्षा मैं करता हूं,[७] उसे रोकता और छोड़ता मैं हूं । और, अमृतत्व और मृत्यु, सत् और असत् भी, मैं हूं, अर्जुन ।

६ सूर्य रूप में। ७ मेघ रूप से।

९.२० त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैर् इष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते
ते पुण्यम् आसाद्य सुरेन्द्रलोकम्
अश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्

त्रैविद्याः माम् सोमपाः पूतपापाः यज्ञैः इष्ट्वा स्वर्गतिम् प्रार्थयन्ते
ते पुण्यम् आसाद्य सुरेन्द्रलोकम् अश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्

तीनो वेदों के ज्ञाता, सोमरस पीने वाले, पापों से मुक्त हुए, यज्ञों द्वारा मेरी पूजा करके स्वर्ग प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं। वे पुनीत इन्द्रलोक में पहुंचकर, देवताओं के दिव्य भोगों का स्वर्ग में सेवन करते हैं।

९.२१ ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते ॥

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति - -
एवं त्रयीधर्मम् अनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते

ते तम् भुक्त्वा स्वर्गलोकम् विशालम् क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकम् विशन्ति
एवम् त्रयीधर्मम् अनुप्रपन्नाः गतागतम् कामकामाः लभन्ते

वे उस विशाल स्वर्ग लोक का भोग करके, पुण्य क्षय होने पर, मृत्यु लोक में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार तीनों (वेदों में कहे) धर्म के आश्रित, कामना की इच्छावालों को आवागमन प्राप्त होता है।

९.२२ अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

अनन्याश् चिन्तयन्तो मां
ये जनाः पर्युपासते
तेषां नित्याभियुक्तानां
योगक्क्षेमं वहाम्य् अहम्

अनन्याः चिन्तयन्तः माम् ये जनाः पर्युपासते
तेषाम् नित्याभियुक्तानाम् योगक्षेमम् वहामि अहम्

अनन्य भाव से चिन्तन करते हुए जो लोग मेरी उपासना करते हैं, उन, सदैव लीन रहने वालों का योगक्षेम[८] मैं सँभाले रहता हूं।

९.२३ येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥

ये (अ)प्य् अन्यद्देवता भक्ता
यजन्ते श्रद्धया (अ)न्विताः
ते (अ)पि माम् एव, कौन्तेय, --
यजन्त्य् अविधिपूर्वकम्

ये अपि अन्यदेवता भक्ताः यजन्ते श्रद्धया अन्विताः
ते अपि माम् एव कौन्तेय यजन्ति अविधिपूर्वकम्

दूसरे देवताओं के भक्त भी, जो श्रद्धापूर्वक (उनके लिए) यज्ञ करते हैं, वे भी मेरे ही लिए यज्ञ करते हैं, कौन्तेय ! (भले ही) विधिपूर्वक न हो ।

८ जो नहीं है उसे प्राप्त करना "योग" है और जो है उस की रक्षा "क्षेम" है।

९.२४ अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥

अहं हि सर्वयज्ञानां
भोक्ता च प्रभुर् एव च - -
न तु माम् अभिजानन्ति - -
तत्त्वेना (अ)तश् च्यवन्ति ते

अहम् हि सर्वयज्ञानाम् भोक्ता च प्रभुः एव च
न तु माम् अभिजानन्ति तत्त्वेन अतः च्यवन्ति ते

वस्तुतः मैं सब यज्ञों का भोक्ता हूं और स्वामी भी । और वे, सच में मुझे नहीं जानते यथार्थ रूपसे, इसलिए (उनका) पतन होता है ।

९.२५ यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥

यान्ति देवव्रता देवान्,
पितॄन् यान्ति पितृव्रताः
भूतानि यान्ति भूतेज्या,
यान्ति मद्याजिनो (अ)पि माम्

यान्ति देवव्रताः देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः
भूतानि यान्ति भूतेज्याः यान्ति मद्याजिनः अपि माम्

देवताओं की पूजा करने वाले देवताओं को जा मिलते हैं । पितरों की पूजा करने वाले पितरों को जा मिलते हैं । भूतों के लिए यज्ञ करने वाले भूतों से जा मिलते हैं, परन्तु मेरे लिए यज्ञ करने वाले, मुझ को प्राप्त होते हैं।

**९.२६ पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥**

पत्रं पुष्पं फलं तोयं
यो मे भक्त्या प्रयच्छति --
तद् अहं भक्त्युपहृतम्
अश्नामि प्रयतात्मनः

पत्रम् पुष्पम् फलम् तोयम् यः मे भक्त्या प्रयच्छति
तत् अहम् भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः

पत्र, पुष्प, फल, जल, जो मुझे भक्ति पूर्वक अर्पण किया जाय, उसे मैं स्वीकार करता हूं:- भक्ति सहित अर्पण होने से, ऐसे व्यक्ति द्वारा जो प्रयत्नशील, (स्वच्छ) हृदय वाला है ।

**९.२७ यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥**

यत् करोषि यद् अश्नासि --
यज् जुहोषि ददासि यत्
यत् तपस्यसि, कौन्तेय --
तत् कुरुष्व मदर्पणम्

यत् करोषि यत् अश्नासि यत् जुहोषि ददासि यत्
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्

तू जो करे, जो खाए, जो हवन करे, जो दान दे, जो तप करे, कौन्तेय ! वह मुझे अर्पण करते हुए कर ।

१.२८ शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥

शुभा शुभफलैर् एवं
मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः
संन्यासयोग युक्तात्मा,
विमुक्तो, माम् उपैष्यसि - -

शुभाशुभफलैः एवम् मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तः माम् उपैष्यसि

इस प्रकार शुभ अशुभ फल देने वाले कर्मों के बन्धनों से तू मुक्त हो जाएगा । संन्यास योग से अपने को संतुलित किए, मुक्त हुआ, तू मुझको प्राप्त करेगा ।

१.२९ समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥

समो (अ)हं सर्वभूतेषु, = =
न मे द्वेष्यो (अ)स्ति न प्रियः
ये भजन्ति तु मां भक्त्या - -
मयि ते तेषु चा (अ)प्य् अहम्

समः अहम् सर्वभूतेषु न मे द्वेष्यः अस्ति न प्रियः
ये भजन्ति तु माम् भक्त्या मयि ते तेषु च अपि अहम्

मैं सब जड़-चेतनादि में समान रूप से हूं । न मुझे किसी से द्वेष है न प्रेम । वास्तव में, जो मुझे श्रद्धा सहित भजते हैं वे मुझ में हैं और मैं भी, उन में हूं ।

९.३० अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

अपि चेत् सुदुराचारो,
भजते माम् अनन्यभाक्
साधुर् एव स मन्तव्यः,
सम्यग् व्यवसितो हि सः

अपि चेत् सुदुराचारः भजते माम् अनन्यभाक्
साधुः एव सः मन्तव्यः सम्यक् व्यवसितः हि सः

यदि महा दुराचारी भी एकनिष्ठ होकर मेरा भजन करता है, (तो) उसे भी साधु मानना चाहिए। वास्तव में, उसने जो निश्चय किया है, वह उचित है ।

९.३१ क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

क्षिप्प्रं भवति धर्मात्मा,
शश्वच् छान्तिं निगच्छति – –
कौन्तेय प्रतिजानीहि, – –
न मे भक्तः प्रणश्यति – –

क्षिप्रम् भवति धर्मात्मा शश्वत् शान्तिम् निगच्छति
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति

वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है, निरन्तर शान्ति को प्राप्त करता है । कौन्तेय ! तू निश्चित रूपसे जान, मेरा भक्त नष्ट नहीं होता ।

९.३२ मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

मां हि, पार्थ, व्यपाश्रित्य - -
ये (अ)पिस् स्युः पापयोनयः
स्त्रियो वैश्यास् तथा शूद्रास्
ते (अ)पि यान्ति परां गतिम्

माम् हि पार्थ व्यपाश्रित्य ये अपि स्युः पापयोनयः
स्त्रियः वैश्याः तथा शूद्राः ते अपि यान्ति पराम् गतिम्

हे पार्थ । वास्तव में मेरी शरण लेने पर, चाहे जो भी हों पाप योनि वाले- स्त्रियां, वैश्य तथा शूद्र - वे भी सर्वोच्च गति को प्राप्त हो जाते हैं ।

९.३३ किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥

किं पुनर् ब्राह्मणाः पुण्या
भक्ता राजर्षयस् तथा
अनित्यम् असुखं लोकम्
इमं प्राप्य भजस्व माम्

किम् पुनः ब्राह्मणाः पुण्याः भक्ताः राजर्षयः तथा
अनित्यम् असुखम् लोकम् इमम् प्राप्य भजस्व माम्

फिर पुण्यवान् ब्राह्मणों और निष्ठावान् राजर्षियों का क्या कहना ! (अतः) इस अनित्य, सुखरहित संसार को पाकर, तू मेरा भजन कर ।

**९.३४ मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥**

मन्मना भव मद्भक्तो
मद्याजी मां नमस्कुरू - -
माम् एवै (ए)ष्यसि युक्त्वै (ए)वम्
आत्मानं मत्परायणः

मन्मनाः भव मद्भक्तः मद्याजी माम् नमस्कुरु
माम् एव एष्यसि युक्त्वा एवम् आत्मानम् मत्परायणः

मुझ में मन लगा, मेरा भक्त बन, मेरे निमित्त यज्ञ कर, मुझे नमस्कार कर । तू मेरे ही पास आएगा अपने में इस प्रकार संतुलित होकर, मुझ में लीन हुआ ।

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः
समाप्तः

गीता प्रकाश

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

परिचय-१०

अध्याय ९ में परम गोपनीय राजविद्या की चर्चा हुई। यह इतनी महत्त्वपूर्ण है कि भगवान् फिर इसे संक्षेप में दोहराते हैं : "मेरी उत्पत्ति को कोई नहीं जानता। मैं अजन्मा, अनादि और सब लोकों का परमेश्वर हूं। मेरे संकल्प से ही सब कुछ उत्पन्न हुआ है, जड़-चेतनादि के स्वभाव भी"।

यह सब सुनने के बाद अर्जुन ने कहा "यह सच है, भगवन् , कि आप की उत्पत्ति को कोई नहीं जानता, न देवता, न दानव। अब आप ही कृपा करके बतलाइए अपनी दिव्य विभूतियों को, जिनके द्वारा आप सब लोकों में व्याप्त हुए रहते हैं"।

आगे श्लोक २०-४२ में दिव्य विभूतियों का वर्णन है। इन्हें जानकर मनुष्य सर्वत्र भगवान् का चिन्तन करता रहता है।

अध्याय १० का नाम है "विभूतियोग"।

श्रीमद्भगवद् गीता

अथ दशमोऽध्यायः

(श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगः)

१०.१ **श्रीभगवानुवाच –**
भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ।।

भूय एव, महाबाहो,
शृणु मे परमं वचः
यत् ते (अ)हं प्रीयमाणाय – –
वक्ष्यामि हितकाम्यया

भूयः एव महाबाहो शृणु मे परमम् वचः
यत् ते अहम् प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया

श्रीभगवान् उवाच –
फिर भी, हे महाबाहो । मेरा परम वचन सुन, जो तुझे अपने प्रिय (मित्र) को–मैं कहूंगा, (तेरे) हित की इच्छा से ।

१०.२ न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥

न मे विदुः सुरगणाः
प्रभवं न महर्षयः
अहम् आदिर् हि देवानां
महर्षीणां च सर्वशः

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवम् न महर्षयः
अहम् आदिः हि देवानाम् महर्षीणाम् च सर्वशः

न देवता लोग जानते हैं मेरी उत्पत्ति को, न महर्षिगण । वास्तव में, मैं देवताओं और महर्षियों का आदि-आरम्भ हूं, सब प्रकार से ।

१०.३ यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

यो माम् अजम् अनादिं च - -
वेत्ति लोकमहेश्वरम्
असंमूढः स -मर्त्येषु - -
सर्वपापैः प्रमुच्यते

यः माम् अजम् अनादिम् च वेत्ति लोकमहेश्वरम्
असंमूढः सः मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते

जो मुझे अजन्मा अनादि और सब लोकों का परमेश्वर जानता है वह, मनुष्यों में मोह-भ्रम से रहित, सब पापों से मुक्त हो जाता है ।

१०.४ बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥

बुद्धिर् ज्ञानम् असंमोहः
क्षमा सत्यं दमः शमः
सुखं दुःखं भवो (अ)भावो
भयं चा (अ)भयम् एव च - -

बुद्धिः ज्ञानम् असंमोहः क्षमा सत्यम् दमः शमः
सुखम् दुःखम् भवः अभावः भयम् च अभयम् एव च

बुद्धि, ज्ञान, मोह-भ्रम का अभाव, क्षमा, सत्य, इन्द्रिय निग्रह, मनःशान्ति, सुख-दुःख, उत्पत्ति और विनाश, भय, और अभय भी; और

१०.५ अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥

अहिंसा समता तुष्टिस्
तपो दानम् यशो (अ)यशः
भवन्ति भावा भूतानां,
मत्त एव, पृथग्विधाः

अहिंसा समता तुष्टिः तपः दानम् यशः अयशः
भवन्ति भावाः भूतानाम् मत्तः एव पृथग्विधाः

अहिंसा समचित्तता, सन्तोष, तप, दान यश, अयश, ये जड़-चेतनादि के स्वभाव हैं, मुझ से ही उत्पन्न होते हैं, भिन्न-भिन्न हैं ।

१०.६ महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥

महर्षयः सप्त पूर्वे
चत्वारो मनवस् तथा
मद्भावा मानसा जाता
येषाम् लोक इमाः प्रजाः

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारः मनवः तथा
मद्भावाः मानसाः जाताः येषाम् लोके इमाः प्रजाः

सप्त महर्षि, उनसे पहले के चार (सनकादि) और (चौदह) मनु भी-(जो सब) मुझ में लीन रहते हैं- मेरे संकल्प से उत्पन्न हुए हैं और उनसे इस संसार के सब प्राणी ।

१०.७ एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥

एतां विभूतिं योगं च - -
मम यो वेत्ति तत्त्वतः
सो (अ)विकम्पेन योगेन - -
युज्यते ना (अ)त्र संशयः

एताम् विभूतिम् योगम् च मम यः वेत्ति तत्त्वतः
सः अविकम्पेन योगेन युज्यते न अत्र संशयः

मेरी इस प्रभु सत्ता और योग को जो यथार्थ रूप से जानता है, वह अविचल योग से (मुझ में) तल्लीन हुआ रहता है । इस में सन्देह नहीं ।

१०.८ अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥

अहं सर्वस्य प्रभवो
मत्तः सर्वं प्रवर्तते
इति मत्वा भजन्ते मां
बुधा भावसमन्विताः

अहम् सर्वस्य प्रभवः मत्तः सर्वम् प्रवर्तते
इति मत्वा भजन्ते माम् बुधाः भावसमन्विताः

मैं सब का उद्गम-स्रोत हूं। सब कुछ मुझ से विकसित है। ऐसा मान कर बुद्धिमान् लोग मेरा भजन करते हैं, भाव-विभोर हुए।

१०.९ मच्चितता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥

मच्चित्ता मद्गतप्प्राणा
बोधयन्तः परस्परम्
कथयन्तश् च मां नित्यं
तुष्यन्ति च रमन्ति च - -

मच्चितताः मद्गतप्राणाः बोधयन्तः परस्परम्
कथयन्तः च माम् नित्यम् तुष्यन्ति च रमन्ति च

जिनका मन मुझ में लीन है, प्राण मुझ में हैं वे, एक दूसरे को समझाते और सदैव मेरा गुणगान करते हुए, संतुष्ट रहते हैं और आनन्दित होते हैं, और

**१०.१० तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥**

तेषां सततयुक्तानां
भजतां प्रीतिपूर्वकम्
ददामि बुद्धियोगं तं
येन माम् उपयान्ति ते

तेषाम् सततयुक्तानाम् भजताम् प्रीतिपूर्वकम्
ददामि बुद्धियोगम् तम् येन माम् उपयान्ति ते

उन सब को, जो निरन्तर लीन रहते हुए प्रेम पूर्वक भजन करने वाले हैं, मैं समत्व बुद्धि दे देता हूं जिसके द्वारा वे मुझको प्राप्त करते हैं ।

**१०.११ तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥**

तेषाम् एवा (अ)नुकम्पार्थम्
अहम् अज्ञानजं तमः
नाशयाम्य् आत्मभावस्थो,
ज्ञानदीपेन भास्वता

तेषाम् एव अनुकम्पार्थम् अहम् अज्ञानजम् तमः
नाशयामि आत्मभावस्थः ज्ञानदीपेन भास्वता

केवल उन पर दया करने के लिए मैं, (उनके) अज्ञान से उत्पन्न अन्धकार को नष्ट कर देता हूं, (उनके) अन्तःकरण में स्थित होकर, प्रकाश-मय ज्ञान दीप से ।

१०.१२ अर्जुन उवाच–
परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥

परं ब्रह्म परं धाम – –
पवित्रं परमं भवान्
पुरुषं शाश्वतं दिव्यम्
आदिदेवम् अजं विभुम्

परम् ब्रह्म परम् धाम पवित्रम् परमम् भवान्
पुरुषम् शाश्वतम् दिव्यम् आदिदेवम् अजम् विभुम्

अर्जुन उवाच –
आप परम ब्रह्म हैं, परम धाम हैं, परम पवित्र हैं, सनातन दिव्य पुरुष हैं, आदिदेव, अजन्मा और सर्व व्यापी, (प्रभु) –

१०.१३ आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥

आहुस् त्वाम् ऋषयः सर्वे
देवर्षिर् नारदस् तथा
असितो देवलो व्यासः,
स्वयं चै (ए)वब् ब्रवीषि मे

आहुः त्वाम् ऋषयः सर्वे देवर्षिः नारदः तथा
असितः देवलः व्यासः स्वयम् च एव ब्रवीषि मे

सब ऋषिगण (ऐसा ही) आप को कहते हैं – देवर्षि नारद, असित, देवल, व्यास और फिर स्वयं आप भी मुझ को (ऐसा ही) बतलाते हैं ।

१०.१४ सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥

सर्वम् एतद् ऋतं मन्ये
यन् मां वदसि केशव – –
न हि ते भगवन् व्यक्तिं
विदुर् देवा न दानवाः

सर्वम् एतत् ऋतम् मन्ये यत् माम् वदसि केशव
न हि ते भगवन् व्यक्तिम् विदुः देवाः न दानवाः

यह सब, जो आप मुझ से कहते हैं, मैं सच मानता हूं, केशव ! वास्तव में, हे भगवन् ! आपकी अभिव्यक्ति को न देवता जानते हैं, न दानव ।

१०.१५ स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥

स्वयम् एवा (आ)त्मना (आ)त्मानं
वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम – –
भूतभावन भूतेश – –
देवदेव जगत्पते

स्वयम् एव आत्मना आत्मानम् वेत्थ त्वम् पुरुषोत्तम
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते

आप स्वयं ही अपने को अपने द्वारा जानते हैं, पुरुषोत्तम ! हे जड़-चेतनादि की उत्पत्ति के कर्त्ता, हे भूतेश्वर, हे देवताओं के देव, हे जगत् स्वामिन् ।

१०.१६ वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥

वक्तुम् अर्हस्य् अशेषेण - -
दिव्या ह्य् आत्मविभूतयः
याभिर् विभूतिभिर् लोकान्
इमांस् त्वं व्याप्य तिष्ठसि - -

वक्तुम् अर्हसि अशेषेण दिव्याः हि आत्मविभूतयः
याभिः विभूतिभिः लोकान् इमान् त्वम् व्याप्य तिष्ठसि

कृपाकर आप ही पूर्ण रूपसे बतलाइए अपनी दिव्य विभूतियों को, जिन विभूतियों के द्वारा आप इन सब लोकों में व्याप्त हुए रहते हैं ।

१०.१७ कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥

कथं विद्याम् अहं, योगिन्स्
त्वां सदा परिचिन्तयन्
केषु-केषु च भावेषु - -
चिन्त्यो (अ)सि भगवन् मया

कथम् विद्याम् अहम् योगिन् त्वाम् सदा परिचिन्तयन्
केषु केषु च भावेषु चिन्त्यः असि भगवन् मया

कैसे आप को मैं जानूँ, हे योगिन् ! सदा मनन चिन्तन करते हुए, और, किन किन रूपों-आकारों में आप का चिन्तन किया जा सकता है, भगवन्, मेरे द्वारा,

१०.१८ विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि श्रृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥

विस्तरेणा (आ)त्मनो योगं
विभूतिं च, जनार्दन - -
भूयः कथय तृप्तिर् हि - -
श्रृण्वतो ना (अ)स्ति मे (अ)मृतम्

विस्तरेण आत्मनः योगम् विभूतिम् च जनार्दन
भूयः कथय तृप्तिः हि श्रृण्वतः न अस्ति मे अमृतम्

विस्तार से अपना योग और विभूति, हे जनार्दन ! फिर कहिए । वास्तव में, मेरी तृप्ति नहीं होती, आप की अमृतवाणी सुनते, (सुनते) ।

१०.१९ श्रीभगवानुवाच -
हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥

हन्त ते कथयिष्यामि - -
दिव्या ह्य् आत्मविभूतयः
प्राधान्यतः, कुरुश्श्रेष्ठ, - -
ना (अ)स्त्य् अन्तो विस्तरस्य मे

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्याः हि आत्मविभूतयः
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ न अस्ति अन्तः विस्तरस्य मे

श्रीभगवान् उवाच -
ठीक है । मैं तुझे, अपनी दिव्य विभूतियां बतलाऊँगा, जो मुख्य-मुख्य हैं, कुरुश्रेष्ठ ! (कारण), अन्त नहींहै , मेरे विस्तार का ।

१०.२० अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥

अहम् आत्मा, गुडाकेश, - - -
सर्वभूताशयस् स्थितः
अहम् आदिश् च मध्यं च - -
भूतानाम् अन्त एव च - -

अहम् आत्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः
अहम् आदिः च मध्यम् च भूतानाम् अन्तः एव च

मैं आत्मा हूं, गुडाकेश, सब प्राणियों के हृदय में स्थित । और, मैं आदि और मध्य हूं जड़-चेतनादि का, और अन्त भी ।

१०.२१ आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥

आदित्यानाम् अहं विष्णुर्
ज्योतिषां रविर् अंशुमान
मरीचिर् मरुताम् अस्मि, - -
नक्षत्राणाम् अहं शशी

आदित्यानाम् अहम् विष्णुः ज्योतिषाम् रविः अंशुमान्
मरीचिः मरुताम् अस्मि नक्षत्राणाम् अहम् शशी

आदित्यों में मैं विष्णु[१] हूं, ज्योतियों में प्रकाशमान सूर्य, मरुतों में मरीचि मैं हूं, तारा-पुंजों में, मैं चन्द्रमा हूं ।

१. एक आदित्य का नाम

**१०.२२ वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥**

वेदानां सामवेदो (अ)स्मि, - -
देवानाम् अस्मि वासवः
इन्द्रियाणां मनश् चा (अ)स्मि, - -
भूतानाम् अस्मि चेतना

वेदानाम् सामवेदः अस्मि देवानाम् अस्मि वासवः
इन्द्रियाणाम् मनः च अस्मि भूतानाम् अस्मि चेतना

वेदों में मैं सामवेद हूं, देवताओं में मैं वासव (इन्द्र) हूं, और इन्द्रियों में मैं मन हूं, प्राणियों में मैं चेतना हूं ।

**१०.२३ रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥**

रुद्राणां शंकरश् चा (अ)स्मि, - -
वित्तेशो यक्षरक्षसाम्
वसूनां पावकश् चा (अ)स्मि, - -
मेरू शिखरिणाम् अहम्

रुद्राणाम् शंकरः च अस्मि वित्तेशः यक्षरक्षसाम्
वसूनाम् पावकः च अस्मि मेरुः शिखरिणाम् अहम्

और, रुद्रों में शंकर मैं हूं, यक्ष और राक्षसों में कुबेर, वसुओं में पावक (अग्नि) मैं हूं और मेरु हूं पर्वत-शिखाओं में, मैं ।

१०.२४ पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥

पुरोधसां च मुख्यं मां
विद्धि, पार्थ, बृहस्पतिम्
सेनानीनाम् अहं स्कन्दः,
सरसाम् अस्मि सागरः

पुरोधसाम् च मुख्यम् माम् विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्
सेनानीनाम् अहम् स्कन्दः सरसाम् अस्मि सागरः

और पुरोहितों में मुख्य, मुझे, पार्थ । तू बृहस्पति जान । सेनापतियों में मैं स्कन्द[२] हूं, सरोवरों में मैं सागर हूं ।

१०.२५ महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥

महर्षीणां भृगुर् अहं,
गिराम् अस्म्य् एकम् अक्षरम्
यज्ञानां जपयज्ञो (अ)स्मि, - -
स्थावराणां हिमालयः

महर्षीणाम् भृगुः अहम् गिराम् अस्मि एकम् अक्षरम्
यज्ञानाम् जपयज्ञः अस्मि स्थावराणाम् हिमालयः

महर्षियों में भृगु मैं, वाणियों में मैं हूं एकाक्षर (ओम्), यज्ञों में जपयज्ञ मैं हूं, जो अचल हैं, उनमें हिमालय ।

२. कार्तिकेय

१०.२६ **अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।**
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्
देवर्षीणां च नारदः
गन्धर्वाणां चित्ररथः,
सिद्धानां कपिलो मुनिः

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम् देवर्षीणाम् च नारदः
गन्धर्वाणाम् चित्ररथः सिद्धानाम् कपिलः मुनिः

सब वृक्षों में पीपल और देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ; जो सिद्ध हैं, उनमें कपिल मुनि ।

१०.२७ **उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।**
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥

उच्चैःश्रवसम् अश्वानां
विद्धि माम् अमृतोद्भवम्
ऐरावतं गजेन्द्राणां,
नराणां च नराधिपम्

उच्चैःश्रवसम् अश्वानाम् विद्धि माम् अमृतोद्भवम्
ऐरावतम् गजेन्द्राणाम् नराणाम् च नराधिपम्

घोड़ों में, अमृत मंथन के समय उत्पन्न हुआ उच्चैःश्रवा मुझे जान, हाथियों में ऐरावत और मनुष्यों में राजाधिराज ।

१०.२८ आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥

आयुधानाम् अहं वज्रं,
धेनूनाम् अस्मि कामधुक्
प्रजनश् चा (अ)स्मि कन्दर्पः,
सर्पाणाम् अस्मि वासुकिः

आयुधानाम् अहम् वज्रम् धेनूनाम् अस्मि कामधुक्
प्रजनः च अस्मि कन्दर्पः सर्पाणाम् अस्मि वासुकिः

अस्त्रों में मैं वज्र, गायों में, मैं हूं कामधेनु । और, जन्म दाताओं में मैं कामदेव हूँ, सर्पो में मैं हूं वासुकि ।

१०.२९ अनन्तश्चास्मि नागानां वरूणो यादसामहम् ।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥

अनन्तश् चा (अ)स्मि नागानां,
वरूणो यादसाम् अहम्
पितृणाम् अर्यमा चा (अ)स्मि, - -
यमः संयमताम् अहम्

अनन्तः च अस्मि नागानाम् वरूणः यादसाम् अहम्
पितृणाम् अर्यमा च अस्मि यमः संयमताम् अहम्

और, शेषनाग हूं मैं, नागों में । जल-जन्तुओं में मैं वरूण और पितरों में अर्यमा[३] मैं हूं, शासकों में यम मैं (हूं) ।

३. पितरों के गणों में से एक, पितरों के देवता ।

१०.३० प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥

प्रह्लादश् चा (अ)स्मि दैत्यानां,
कालः कलयताम् अहम्
मृगाणां च मृगेन्द्रो (अ)हं,
वैनतेयश् च पक्षिणाम्

प्रह्लादः च अस्मि दैत्यानाम् कालः कलयताम् अहम्
मृगाणां च मृगेन्द्रः अहम् वैनतेयः च पक्षिणाम्

और प्रह्लाद मैं हूं दैत्यों में, गणना करने वालों में काल मैं हूं और पशुओं में सिंह मैं हूं, और पक्षियों में (हूं) गरुड़ ।

१०.३१ पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥

पवनः पवताम् अस्मि, - -
रामः शस्त्रभृताम् अहम्
झषाणां मकरश् चा (अ)स्मि, - -
स्रोतसाम् अस्मि, जाह्नवी

पवनः पवताम् अस्मि रामः शस्त्रभृताम् अहम्
झषाणाम् मकरः च अस्मि स्रोतसाम् अस्मि जाह्नवी

शुद्ध-स्वच्छ करने वालों में, पवन मैं हूं, शस्त्रधारियों में राम मैं हूं । और, मत्स्यों में घड़ियाल, मैं हूं । सरिताओं में मैं हूं, गंगा ।

१०.३२ सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥

सर्गाणाम् आदिर् अन्तश् च – –
मध्यं चै (ए)वा (अ)हम्, अर्जुन – –
अध्यात्मविद्या विद्यानां,
वादः प्रवदतामहम्

सर्गाणाम् आदिः अन्तः च मध्यम् च एव अहम् अर्जुन
अध्यात्मविद्या विद्यानाम् वादः प्रवदताम् अहम्

सृष्टियों का आदि, अन्त और मध्य भी, मैं हूं, अर्जुन । विद्याओं में अध्यात्मविद्या, परस्पर तर्क वितर्क करने वालों में वाद,[४] मैं (हूं) ।

१०.३३ अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥

अक्षराणाम् अकारो (अ)स्मि, – –
द्वन्द्वः सामासिकस्य च – –
अहम् एवा (अ)क्षयः कालो,
धाता (अ)हं विश्वतोमुखः

अक्षराणाम् अकारः अस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च
अहम् एव अक्षयः कालः धाता अहम् विश्वतोमुखः

अक्षरों में "अ" मैं हूं और समासों में, द्वंद्व (समास)। मैं अविनाशी काल भी हूं । भरण पोषण करने वाला मैं हूं – सब ओर मुख किये ।

४. शास्त्रार्थ के तीन स्वरूप होते हैं – जल्प वितण्डा और वाद । उचित अनुचित का ध्यान न करते हुए अपने पक्ष का मण्डन और दूसरे का खन्डन – जल्प है । केवल दूसरे पक्ष का खन्डन वितण्डा है । जो तत्त्वनिर्णय के उद्देश्य से किया जाय, वह वाद है । सर्वश्रेष्ठ ।

१०.३४ मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥

मृत्युः सर्वहरश् चा (अ)हम्
उद्भवश् च भविष्यताम्
कीर्तिः श्रीर् वाक् च नारीणां
स्मृतिर् मेधा धृतिः क्षामा

मृत्युः सर्वहरः च अहम् उद्भवः च भविष्यताम्
कीर्तिः श्रीः वाक् च नारीणाम् स्मृतिः मेधा धृतिः क्षमा

और मृत्यु, सब का संहार करने वाली, मैं हूं और उद्गम हूं, भविष्य में आने वालों का । और, स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाणी, स्मृति, बुद्धि, धृति और क्षमा[५] ।

१०.३५ बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥

बृहत्साम तथा साम्नां,
गायत्री छन्दसाम् अहम्
मासानां मार्गशीर्षो (अ)हम्
ऋतूनां कुसुमाकरः

बृहत्साम तथा साम्नाम् गायत्री छन्दसाम् अहम्
मासानाम् मार्गशीर्षः अहम् ऋतूनाम् कुसुमाकरः

और ऐसे ही, (गायन करने योग्य) स्तोत्रों में बृहत्साम,[६] छन्दों में गायत्री, मैं हूं । महीनों में मार्गशीर्ष मैं, ऋतुओं में बसन्त ।

५. वाणी, क्षमा, कीर्ति, श्री, स्मृति, बुद्धि और धृतिः वाणी सरस्वती हैं-ब्रह्मा जी की पुत्री; अन्य प्रजापति दक्ष की कन्याएं हैं । क्षमा का व्याह प्रजापति पुलह से हुआ और शेष पांचों का धर्म से । ये धर्म पत्नियां हैं । ब्रह्माजी ने इनको धर्म का द्वार निश्चित किया है , अर्थात् इन के द्वारा धर्म में प्रवेश होता है । देखिए महाभारत आदि पर्व अध्याय ६६ श्लोक १४-१५ । यहां गीता में भगवान् इन देवियों को अपनी विभूतियां कह रहे हैं।

६. सामवेद में एक गीत विशेष जिसके द्वारा इन्द्र की स्तुति गाई जाती है।

**१०.३६ द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥**

द्यूतं छलयताम् अस्मि, - -
तेजस् तेजस्विनाम् अहम्
जयो (अ)स्मि, व्यवसायो (अ)स्मि, - -
सत्त्वं सत्त्ववताम् अहम्

द्यूतम् छलयताम् अस्मि तेजः तेजस्विनाम् अहम्
जयः अस्मि व्यवसायः अस्मि सत्त्वम् सत्त्ववताम् अहम्

छलियों-कपटियों में, जुआ मैं हूं । तेजस्वियों का, तेज मैं हूं । विजय मैं हूं, दृढ संकल्प मैं हूं । सत्त्वगुण वालों का, सात्त्विकभाव मैं हूं ।

**१०.३७ वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥**

वृष्णीनां वासुदेवो (अ)स्मि, - -
पाण्डवानां धनंजयः
मुनीनाम् अप्य् अहं व्यासः,
कवीनाम् उशना कविः

वृष्णीनाम् वासुदेवः अस्मि पाण्डवानाम् धनंजयः
मुनीनाम् अपि अहम् व्यासः कवीनाम् उशना कविः

यादवों में, मैं वासुदेव हूं ; पाण्डवों में धनंजय । मुनियों में भी, मैं व्यास हूं । कवियों में उशना [७] कवि ।

७ (शुक्राचार्य)

१०.३८ दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥

दण्डो दमयताम् अस्मि, - -
नीतिर् अस्मि जिगीषताम्
मौनं चै (ए)वा (अ)स्मि गुह्यानां,
ज्ञानं ज्ञानवताम् अहम्

दण्डः दमयताम् अस्मि नीतिः अस्मि जिगीषताम्
मौनम् च एव अस्मि गुह्यानाम् ज्ञानम् ज्ञानवताम् अहम्

दण्ड देने वालों (राजाओं) का राजदण्ड मैं हूं । विजय की अभिलाषा करने वालों में, मैं नीति हूं और गोपनीय बातों में, मौन भी मैं हूं । ज्ञानियों का ज्ञान, हूं मैं ।

१०.३९ यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥

यच् चा (अ)पि सर्वभूतानां
बीजं तद् अहम् अर्जुन - -
न तद् अस्ति विना यत् स्यान्
मया भूतं चराचरम्

यत् च अपि सर्वभूतानाम् बीजम् तत् अहम् अर्जुन
न तत् अस्ति विना यत् स्यात् मया भूतम् चराचरम्

और जो भी, सब जड़-चेतनादि का बीज है, वह मैं हूं, अर्जुन । न ऐसा कुछ है, जो मेरे बिना रह सके, जड़-जंगम :अस्तित्व में ।

१०.४० नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥

ना (अ)न्तो (अ)स्ति मम दिव्यानां
विभूतीनां, परंतप – –
एष तू (उ)द्देशतः प्रोक्तो
विभूतेर् विस्तरो मया

न अन्तः अस्ति मम दिव्यानाम् विभूतीनाम् परंतप
एषः तु उद्देशतः प्रोक्तः विभूतेः विस्तरः मया

अन्त नहीं है मेरी दिव्य विभूतियों का, परन्तप । वास्तव में, दृष्टान्त रूप से कहा गया है, विभूतियों का यह विस्तार, मेरे द्वारा ।

१०.४१ यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ॥

यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं
श्रीमद् ऊर्जितम् एव वा
तत् तद् एवा (अ)वगच्छत् त्वं,
मम तेजों (अं)श संभवम्

यत् यत् विभूतिमत् सत्त्वम् श्रीमत् ऊर्जितम् एव वा
तत् तत् एव अवगच्छ त्वम् मम तेजोंऽशसंभवम्

जो जो अस्तित्व वैभवमय, समृद्धि पूर्ण, और शक्तिशाली भी है, उस उस को तू ऐसा मान ले कि वह मेरे ही तेज के अंश से उत्पन्न है ।

**१०.४२ अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥**

अथवा बहुनै (ए)तेन - -
किं ज्ञातेन तवा (अ)र्जुन - -
विष्टभ्या (अ)हम् इदं कृत्स्नम्
एकांशेन स्थितो जगत्

अथवा बहुना एतेन किम् ज्ञातेन तव अर्जुन
विष्टभ्य अहम् इदम् कृत्स्नम् एकांशेन स्थितः जगत्

पर इस विस्तृत ज्ञान से, तुझे क्या, अर्जुन ? इस संपूर्ण जगत् को अपने एक अंश से ही व्याप्त करके, मैं स्थित हूं ।

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः समाप्तः

गीता प्रकाश

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

परिचय-११

भगवान् की उत्पत्ति को कोई नहीं जानता न देवता, न दानव। वह केवल अपनी विभूतियों द्वारा ही जाने जा सकते हैं, जिनका वर्णन अध्याय १० में हुआ।

फिर अर्जुन ने कहा, "परमेश्वर, मैं देखना चाहता हूं जैसा आप अपने को कहते हैं – आप के ईश्वरीय स्वरूप को"।

इसके लिए भगवान् उसे दिव्य चक्षु प्रदान करते हैं कि वह विश्व रूप के दर्शन कर सके।

विश्वरूप की स्तुति, और दर्शन का वर्णन श्लोक १५ से ४६ तक है।

अध्याय ११ का नाम है "विश्व रूप दर्शन योग"।

श्रीमद्भगवद् गीता

अथ एकादशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णार्जुनसंवादेविश्वरूपदर्शनयोगः)

११.१ अर्जुन उवाच-

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥

मदनुग्रहाय परमं
गुह्यम् अध्यात्मसंज्ञितम्
यत् त्वयो (उ)क्तं वचस् तेन - -
मोहो (अ)यं विगतो मम - -

मदनुग्रहाय परमम् गुह्यम् अध्यात्मसंज्ञितम्
यत् त्वया उक्तम् वचः तेन मोहः अयम् विगतः मम

अर्जुन उवाच -
मुझ पर दया करके जो परम गोपनीय, अध्यात्म सम्बंधी वचन आपने कहा, उससे मेरा यह मोह दूर हो गया है ।

११.२ भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥

भवाप्ययौ हि भूतानां
श्रुतौ विस्तरशो मया
त्वत्तः, कमलपत्राक्ष, - -
माहात्म्यम् अपि चा (अ)व्ययम्

भवाप्ययौ हि भूतानाम् श्रुतौ विस्तरशः मया
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यम् अपि च अव्ययम्

वास्तव में, सब जड़-चेतनादि की उत्पत्ति और विनाश को विस्तार से मैंने सुना है आपसे, हे कमलनेत्र ! और, आप की अविनाशी महिमा को भी ।

११.३ एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥

एवम् एतद् यथा (आ)त्थत् त्वम्
आत्मानं, परमेश्वर - -
द्रष्टुम् इच्छामि ते रूपम्
ऐश्वरं, पुरुषोत्तम - -

एवम् एतत् यथा आत्थ त्वम् आत्मानम् परमेश्वर
द्रष्टुम् इच्छामि ते रूपम् ऐश्वरम् पुरुषोत्तम

इस प्रकार, यह जैसा आप अपने को कहते हैं, परमेश्वर, मैं देखना चाहता हूं,-आपके उसी ईश्वरीय स्वरूप को, पुरुषोत्तम !

११.४ मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥

मन्यसे यदि तच् छक्यं
मया द्रष्टुम् इतिप् प्रभो
योगेश्वर, ततो मे त्वं
दर्शया (आ)त्मानम् अव्ययम्

मन्यसे यदि तत् शक्यम् मया द्रष्टुम् इति प्रभो
योगेश्वर ततः मे त्वम् दर्शय आत्मानम् अव्ययम्

यदि प्रभो आप समझते हैं मेरे द्वारा उस (स्वरूप) को इस प्रकार देखना सम्भव है, तब हे योगेश्वर । आप मुझे दिखलाइए, अपना अविनाशी (रूप) ।

११.५ श्रीभगवानुवाच-
पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥

पश्य मे, पार्थ, रूपाणि - -
शतशो (अ)थ सहस्रशः
नानाविधानि दिव्यानि - -
नानावर्णाकृतीनि च - -

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशः अथ सहस्रशः
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च

श्री भगवान् उवाच-
पार्थ । देख मेरे सैंकड़ों और सहस्रों रूप - नाना प्रकार के, दिव्य, भिन्न भिन्न रंग और आकृति के ।

११.६ पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥

पश्या (आ)दित्यान् वसून् रुद्रान्
अश्विनौ मरुतस् तथा
बहून्य् अदृष्ट पूर्वाणि - -
पश्या (आ)श्चर्याणि भारत - -

पश्य आदित्यान् वसून् रुद्रान् अश्विनौ मरुतः तथा
बहूनि अदृष्टपूर्वाणि पश्य आश्चर्याणि भारत

देख । (बारह) आदित्य, (आठ) वसु, (ग्यारह) रुद्र, (दोनों) अश्विनीकुमार और (उनचास) मरुत् । बहुत से, पहले न देखे हुए चमत्कार देख, भारत ।

११.७ इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥

इहै (ए)कस्थं जगत् कृत्स्नं
पश्या (अ)द्य सचराचरम्
मम देहे, गुडाकेश, - -
यच् चा (अ)न्यद् द्रष्टुम् इच्छसि - -

इह एकस्थम् जगत् कृत्स्नम् पश्य अद्य सचराचरम्
मम देहे गुडाकेश यत् च अन्यत् द्रष्टुम् इच्छसि

यहां (मुझ) एक ही में स्थित सम्पूर्ण चल और अचल जगत् को, एक साथ तू आज देख, मेरी देह में, गुडाकेश । और जो कुछ भी तू देखना चाहता है, (देख) ।

११.८ न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥

न तु माम् शक्यसे द्रष्टुम्
अनेनै (ए)वस् स्वचक्षुषा
दिव्यम् ददामि ते चक्षुः
पश्य मे योगम् ऐश्वरम्

न तु माम् शक्यसे द्रष्टुम् अनेन एव स्वचक्षुषा
दिव्यम् ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगम् ऐश्वरम्

वास्तव में, अपनी इन आंखों से मुझे देखना भी, तेरे लिए सम्भव नहीं। मैं तुझे दिव्य चक्षु देता हूं, देख मेरे ईश्वरीय योग को ।

११.९ संजय उवाच-
एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥

एवम् उक्त्वा ततो राजन्,
महायोगेश्वरो हरिः
दर्शयामास पार्थाय - -
परमं रूपम् ऐश्वरम्

एवम् उक्त्वा ततः राजन् महायोगेश्वरः हरिः
दर्शयामास पार्थाय परमम् रूपम् ऐश्वरम्

संजय उवाच -
यह कह कर, हे राजन् ! तब महान् योगेश्वर हरि ने दिखलाया, पार्थ को, अपना परम ईश्वरीय रूप-

११.१० अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् * ॥

अनेक वक्त्र नयनम्
अनेकाद् भुतदर्शनम्
अनेक दिव्याभरणम्,
दिव्यानेको द्यतायुधम्

अ ने क व क्त्र न य न म् अ ने का द् भु त द र्श न म्
अ ने क दि व्या भ र णा म् दि व्या ने को द्य ता यु ध म्

(जिसमें) अनेक मुख और नेत्र हैं, अनेक अद्भुत झांकियां हैं, नाना प्रकार के दिव्य आभूषण हैं, बहुत से ईश्वरीय शस्त्र उठे हुए हैं, -

११.११ दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं,
दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवम्
अनन्तं विश्वतोमुखम्

दि व्य मा ल्या म्ब र ध र म् दि व्य ग न्धा नु ले प न म्
स र्वा श्च र्य म य म् दे व म् अ न न्त म् वि श्व तो मु ख म्

(और जो) दिव्य मालाएं और वस्त्र पहने, दिव्य गन्धमय लेप युक्त, सर्व चमत्कारों से पूर्ण, देवता, अनन्त, सब ओर मुख किए है।

* विश्व-रूपका वर्णन इस श्लोक से आरम्भ हो रहा है। यह दृश्य इतना भव्य है कि शब्दों में उतारा नहीं जा सकता। श्लोकों की विषय भाषा, मानों यही कह रही है - डा. राधा कृष्णन्।

११.८ न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥

न तु माम् शक्यसे द्रष्टुम्
अनेनै (ए)वस् स्वचक्षुषा
दिव्यम् ददामि ते चक्षुः
पश्य मे योगम्म् ऐश्वरम्

न तु माम् शक्यसे द्रष्टुम् अनेन एव स्वचक्षुषा
दिव्यम् ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगम् ऐश्वरम्

वास्तव में, अपनी इन आंखों से मुझे देखना भी, तेरे लिए सम्भव नहीं। मैं तुझे दिव्य चक्षु देता हूं, देख मेरे ईश्वरीय योग को ।

११.९ संजय उवाच-
एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥

एवम् उक्त्वा ततो राजन्,
महायोगेश्वरो हरिः
दर्शयामास पार्थाय - -
परमं रूपम् ऐश्वरम्

एवम् उक्त्वा ततः राजन् महायोगेश्वरः हरिः
दर्शयामास पार्थाय परमम् रूपम् ऐश्वरम्

संजय उवाच -
यह कह कर, हे राजन् ! तब महान् योगेश्वर हरि ने दिखलाया, पार्थ को, अपना परम ईश्वरीय रूप-

११.१० अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् * ॥

अनेक वक्त्र नयनम्
अनेकाद् भुतदर्शनम्
अनेक दिव्याभरणम्,
दिव्यानेको द्यतायुधम्

अनेकवक्त्रनयनम् अनेकाद्भुतदर्शनम्
अनेकदिव्याभरणाम् दिव्यानेकोद्यतायुधम्

(जिसमें) अनेक मुख और नेत्र हैं, अनेक अद्भुत झांकियां हैं, नाना प्रकार के दिव्य आभूषण हैं, बहुत से ईश्वरीय शस्त्र उठे हुए हैं, -

११.११ दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं,
दिव्यगन्धानुलेपनम्,
सर्वाश्चर्यमयं देवम्
अनन्तं विश्वतोमुखम्

दिव्यमाल्याम्बरधरम् दिव्यगन्धानुलेपनम्
सर्वाश्चर्यमयम् देवम् अनन्तम् विश्वतोमुखम्

(और जो) दिव्य मालाएं और वस्त्र पहने, दिव्य गन्धमय लेप युक्त, सर्व चमत्कारों से पूर्ण, देवता, अनन्त, सब ओर मुख किए है ।

* विश्व-रूपका वर्णन इस श्लोक से आरम्भ हो रहा है। यह दृश्य इतना भव्य है कि शब्दों में उतारा नहीं जा सकता । श्लोकों की विषय भाषा, मानों यही कह रही है - डा. राधा कृष्णन् ।

११.१२ दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥

दिवि सूर्यसहस्रस्य - -
भवेद् युगपद् उत्थिता
यदि भाः, सदृशी सा स्याद्
भासस् तस्य महात्मनः

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेत् युगपत् उत्थिता
यदि भाः सदृशी सा स्यात् भासः तस्य महात्मनः

आकाश में सहस्रों सूर्यों का प्रकाश यदि एक साथ फूट पड़े, सम्भव है, वह समान हो सके, ज्योति के, उस महात्मा की ।

११.१३ तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥

तत्रै (ए)कस्थं जगत् कृत्स्नं
प्रविभक्तम् अनेकधा
अपश्यद् देवदेवस्य - -
शरीरे पाण्डवस् तदा

तत्र एकस्थम् जगत् कृत्स्नम् प्रविभक्तम् अनेकधा
अपश्यत् देवदेवस्य शरीरे पाण्डवः तदा

वहां (उस) एक ही में स्थित, सम्पूर्ण जगत् को, नाना प्रकार से विभाजित हुआ, देखा - देवाधिदेव के शरीर में, पाण्डव ने तब ।

११.१४ ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥

ततः स विस्मयाविष्टो
हृष्टरोमा धनंजयः
प्रणम्य शिरसा देवं
कृताञ्जलिर् अभाषत - -

ततः सः विस्मयाविष्टः हृष्टरोमा धनंजयः
प्रणम्य शिरसा देवम् कृताञ्जलिः अभाषत

तब वह आश्चर्य से भरा, रोमांचित हुआ, धनंजय, हाथ जोड़, सिर झुका, देव को प्रणाम कर बोला -

११.१५ अर्जुन उवाच-
पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थं
ऋषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥

पश्यामि देवांस् तव, देव, देहे,
सर्वांस् तथा भूतविशेषसंघान्
ब्रह्माणम् ईशं कमलासनस्थम्
ऋषींश् च सर्वान् उरगांश् च दिव्यान्

पश्यामि देवान् तव देव देहे सर्वान् तथा भूतविशेषसंघान्
ब्रह्माणम् ईशम् कमलासनस्थम् ऋषीन् च सर्वान् उरगान् च दिव्यान्

अर्जुन उवाच-
हे देव ! मैं आपकी देह में देखता हूं, देवताओं को, तथा नाना प्रकार के जड़-चेतनादि के समस्त समुदायों को, कमलासन पर स्थित भगवान् ब्रह्मा को, और ऋषियों को, और सब सर्पों को, जो दिव्य हैं ।

११.१६ अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतो (अ)नन्तरूपम्
ना(अ)न्तं न मध्यं न पुनस् तवा (आ)दिं
पश्यामि, विश्वेश्वर, विश्वरूप – –

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम् पश्यामि त्वाम् सर्वतः अनन्तरूपम्
न अन्तम् न मध्यम् न पुनः तव आदिम् पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप

अनेक भुजाएं, उदर, मुख, नेत्र, मैं देखता हूं, सब ओर आपका अनन्त रूप । न अन्त, न मध्य और फिर न आपका आदि–आरम्भ, देखता हूं । हे विश्वेश्वर ! हे विश्वरूप !

११.१७ किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्
दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च, – –
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद् ,
दीप्तानलार्कद् द्युतिम् अप्रमेयम्

किरीटिनम् गदिनम् चक्रिणम् च तेजोराशिम् सर्वतः दीप्तिमन्तम्
पश्यामि त्वाम् दुर्निरीक्ष्यम् समन्तात् दीप्तानलार्कद्युतिम् अप्रमेयम्

मुकुट गदा और चक्र सहित, प्रकाश पुंज, सर्वत्र जगमगाते हुए आपको देख रहा हूं ; आखें चौंधिया रही हैं । सब ओर से प्रज्वलित अग्नि और सूर्य के समान प्रकाश है, अमित अपार ।

११.१८ त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥

त्वम् अक्षरं परमं वेदितव्यं,
त्वम् अस्य विश्वस्य परं निधानम्
त्वम् अव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस् त्वं पुरुषो मतो मे

त्वम् अक्षरम् परमम् वेदितव्यम् त्वम् अस्य विश्वस्य परम् निधानम्
त्वम् अव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनः त्वम् पुरुषः मतः मे

आप अक्षय हैं, सर्वोपरि जानने योग्य हैं। इस जगत् के आप ही सर्वश्रेष्ठ आधार हैं। आप अविनाशी हैं, शाश्वत धर्म के संरक्षक हैं। सनातन पुरुष आप ही हैं, मेरे विचार में।

११.१९ अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥

अनादिमध्यान्तम् अनन्तवीर्यम् ,
अनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं,
स्वतेजसा विश्वम् इदं तपन्तम्

अनादिमध्यान्तम् अनन्तवीर्यम् अनन्तबाहुम् शशिसूर्यनेत्रम्
पश्यामि त्वाम् दीप्तहुताशवक्त्रम् स्वतेजसा विश्वम् इदम् तपन्तम्

(आपका) न आदि है, न मध्य, न अन्त। आप असीम शक्तिशाली हैं, असंख्य भुजाएं हैं। शशि और सूर्य आपके नेत्र हैं। मैं देखता हूं आपका मुख प्रज्वलित अग्नि सा है। आप अपने तेज से इस विश्व को तपा रहे हैं।

११. २० द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥

द्यावापृथिव् व्योर् इदम् अन्तरं हि – –
व्याप्तं त्वयै (ए)केन दिशश् च सर्वाः
दृष्ट्वा (अ)द्भुतं रूपम् उग्रं तवे (इ)दं
लोकत्त्रयं प्रव्यथितं महात्मन्

द्यावापृथिव्योः इदम् अन्तरम् हि व्याप्तम् त्वया एकेन दिशः च सर्वाः
दृष्ट्वा अद्भुतम् रूपम् उग्रम् तव इदम् लोकत्रयम् प्रव्यथितम् महात्मन्

वास्तव में, आकाश पृथ्वी के बीच यह अंतराल और सब दिशाएं, अकेले आप से व्याप्त हैं । आपके इस अद्भुत भयंकर रूप को देख कर तीनों लोक प्रकंपित हो रहे हैं, महात्मन् !

११. २१ अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति – –
केचिद् भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति – –
स्वस्ती (इ)त्य् उक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः

अमी हि त्वाम् सुरसंघाः विशन्ति केचित् भीताः प्राञ्जलयः गृणन्ति
स्वस्ति इति उक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः स्तुवन्ति त्वाम् स्तुतिभिः पुष्कलाभिः

(यह देखो) ये देवताओं के समुदाय आप में ही प्रवेश कर रहे हैं । कई भयभीत हुए, हाथ जोड़कर आपका गुणगान कर रहे हैं । इसी प्रकार महर्षियों और सिद्धों के समूह "स्वस्ति" कहते हुए आपका यशोगान कर रहे हैं, स्तोत्रों द्वारा, गूंजते हुए ।

११.२२ रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वे (अ)श्विनौ मरुतश् चो (ऊ)ष्मपाश् च - -
गन्धर्व यक्षासुरसिद्धसंघा,
वीक्षान्ते त्वां विस्मिताश् चै (ए)व सर्वे

रुद्रादित्याः वसवः ये च साध्याः विश्वे अश्विनौ मरुतः च ऊष्मपाः च गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः वीक्षन्ते त्वाम् विस्मिताः च एव सर्वे

ये (ग्यारह) रुद्र, (बारह) आदित्य (आठ) वसु और साध्यगण, विश्वेदेव (अग्नि), दोनों अश्विनीकुमार, और (उनचास) मरुत् और ऊष्मपा पितरगण, गन्धर्व, यक्ष, असुर और सिद्धों के समूह, आपको देख रहे हैं, आश्चर्यचकित होकर, और भी, सब

११.२३ रूपं महतते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरूपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥

रूपं महत् ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरूपादम्
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं,
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास् तथा (अ)हम्

रूपम् महत् ते बहुवक्त्रनेत्रम् महाबाहो बहुबाहूरूपादम् बहूदरम् बहुदंष्ट्राकरालम् दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथिताः तथा अहम्

हे महाबाहो । आपका विशाल आकार देखकर- जिसमें अनेक मुख और नेत्र हैं, अनेक भुजाएं, जंघाएं और पैर हैं, अनेकों उदर हैं, अनेकों विकराल दन्त हैं,- सब लोक भयभीत हैं, और मैं भी ।

११. २४ नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥

नभःस्पृशं दीप्तम् अनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्
दृष्ट्वा हि त्वां, प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च, विष्णो

नभःस्पृशम् दीप्तम् अनेकवर्णम् व्यात्ताननम् दीप्तविशालनेत्रम्
दृष्ट्वा हि त्वाम् प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिम् न विन्दामि शमम् च विष्णो

आकाश को छूते, अनेक रंगों में जगमगाते, खुले मुंह और विशाल तेजस्वी नेत्रों वाले, आपको देख कर मेरा मन सचमुच कांप रहा है । मैं धैर्य और शान्ति नहीं पा रहा हूं, हे विष्णो ।

११. २५ दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि - -
दृष्ट्वै (ए)व कालानलसन्निभानि - -
दिशो न जाने न लभे च शर्म, - -
प्रसीद, देवेश, जगन्निवास - -

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वा एव कालानलसन्निभानि
दिशः न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास

और, आपके विकराल दाँतो वाले मुख को देख कर, जो कालाग्नि के ही समान है, मुझे दिशाएं नहींजान पड़तीं और न आश्रय मिलता है । (अब) प्रसन्न होइए । हे देवेश । हे जगन्निवास ।

११. २६ अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे, सहै (ए)वा (अ)वनिपालसंघैः
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस् तथा (अ)सौ,
सहा (अ)स्मदीयैर् अपि योधमुख्यैः

अमी च त्वाम् धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सह एव अवनिपालसंघैः
भीष्मः द्रोणः सूतपुत्रः तथा असौ सह अस्मदीयैः अपि योधमुख्यैः

ये धृतराष्ट्र के पुत्र और साथ में सब राजाओं के समुदाय भी, भीष्म, द्रोण तथा सूतपुत्र (कर्ण) और साथ में अपनी ओर के मुख्य योद्धा भी,

११. २७ वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति, - -
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि - -
केचिद् विलग्ना दशनान्तरेषु - -
संदृश्यन्ते चूर्णितैर् उत्तमांगैः

वक्त्राणि ते त्वरमाणाः विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि
केचित् विलग्नाः दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैः उत्तमांगैः

उतावले हुए, आप के भयानक विकराल दन्तों वाले मुख में प्रवेश कर रहे हैं । कोई दांतों के बीच चिपके हुए दिखाई देते हैं, चूरचूर हुए शिरों साथ ।

११. २८ यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥

यथा नदीनां बहवो (अ)म्बुवेगाः
समुद्रम् एवा (अ)भिमुखा द्रवन्ति – –
तथा तवा (अ)मी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्य् अभिविज्ज्वलन्ति – –

यथा नदीनाम् बहवः अम्बुवेगाः समुद्रम् एव अभिमुखाः द्रवन्ति
तथा तव अमी नरलोकवीराः विशन्ति वक्त्राणि अभिविज्ज्वलन्ति

जिस प्रकार नदियों की अनेक प्रचण्ड धाराएं एक मात्र समुद्र की ओर दौड़ती हैं, वैसे ही ये मनुष्य लोक के वीर पुरुष प्रवेश कर रहे हैं आपके मुखों में, धधकती लपटों वाले ।

११. २९ यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका–
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः
तथै (ए)व नाशाय विशन्ति लोकास्
तवा (अ)पि वक्त्राणि समृद्धवेगाः

यथा प्रदीप्तम् ज्वलनम् पतंगा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः
तथा एव नाशाय विशन्ति लोकाः तव अपि वक्त्राणि समृद्धवेगाः

जैसे पतंगे धधकती लौ में द्रुतगति से प्रवेश करते हैं, नष्ट होने के लिए, उसी प्रकार ये लोग भी, एक मात्र नष्ट होने के लिए, आप के मुखों में प्रवेश करते हैं; बढ़ते हुए वेग से ।

११.३० लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्
लोकान् समग्रान् वदनैर् ज्वलद्भिः
तेजोभिर् आपूर्य जगत् समग्रम्
भासस् तवो (उ)ग्राः प्रतपन्ति, विष्णो

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्तात् लोकान् समग्रान् वदनैः ज्वलद्भिः
तेजोभिः आपूर्य जगत् समग्रम् भासः तव उग्राः प्रतपन्ति विष्णो

अपने जलते हुए मुखों द्वारा सम्पूर्ण लोकों को निगलते हुए, आप (उन्हें) सब ओर से चाट रहे हैं। सम्पूर्ण जगत् को अपने तेज से भरकर आप का उग्र प्रकाश, (उसे) पूर्णतः तपा रहा है, हे विष्णो ।

११.३१ आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥

आख्याहि मे को भवान् उग्ररूपो
नमो (अ)स्तु ते देववरप्, प्रसीद - -
विज्ञातुम् इच्छामि भवन्तम् आद्यं
न हिप् प्रजानामि तवप् प्रवृतितम्

आख्याहि मे कः भवान् उग्ररूपः नमः अस्तु ते देववर प्रसीद
विज्ञातुम् इच्छामि भवन्तम् आद्यम् न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्

मुझे बतलाइए आप भयंकर रूपवाले कौन हैं ? आप को नमस्कार हैं । हे देववर ! प्रसन्न होइए । मैं जानना चाहता हूं, आप के आदि रूप को । सच में, मैं नहीजानता, आप की चेष्टाओं को ।

११.३२ श्रीभगवानुवाच-
कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥

कालो (अ)स्मि लोकक् क्षयकृत् प्रवृद्धो
लोकान् समाहर्तुम् इहप् प्रवृत्तः
ऋते (अ)पि त्वाम् न भविष्यन्ति सर्वे
ये (अ)वस्थिताः प्रत्य् अनीकेषु योधाः

कालः अस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धः लोकान् समाहर्तुम इह प्रवृत्तः
ऋते अपि त्वाम् न भविष्यन्ति सर्वे ये अवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः

श्रीभगवान् उवाच -
मैं विशाल काल हूं । लोकों का नाश करने वाला ।
लोकों का संहार करने के लिए, यहां प्रकट हुआ हूं ।
बिना तेरे (युद्ध किए) भी, भविष्य में नहीं होंगे-
ये सब, जो प्रतिद्वंद्वी सेनाओं में खड़े हैं, योद्धागण ।

११.३३ तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून्भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥

तस्मात् त्वम् उत्तिष्ठ, यशो लभस्व, - -
जित्वा शत्रून् भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम्
मयै (ए)वै (ए)ते निहताः पूर्वम् एव, - -
निमित्तमात्रं भव, सव्यसाचिन्

तस्मात् त्वम् उत्तिष्ठ यशः लभस्व जित्वा शत्रून् भुंक्ष्व राज्यम् समृद्धम्
मया एव एते निहताः पूर्वम् एव निमित्तमात्रम् भव सव्यसाचिन्

अतएव तू उठ, यश प्राप्त कर । शत्रुओं को जीत कर
धन-धान्य से सम्पन्न राज्य को भोग । ये तो मेरे
ही द्वारा, पहले ही मार डाले गए हैं । तू निमित्तमात्र
बन, सव्यसाची ।

११.३४ द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च,- -
कर्णंतथा (अ)न्यान् अपि योधवीरान्
मया हतान्स् त्वं जहि, मा व्यथिष्ठा,
युध्यस्व, जेतासि रणे सपत्नान्

द्रोणम् च भीष्मम् च जयद्रथम् च कर्णम् तथा अन्यान् अपि योधवीरान्
मया हतान् त्वम् जहि मा व्यथिष्ठाः युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्

द्रोण और भीष्म और जयद्रथ और कर्ण, इस प्रकार अन्य योद्धाओं को भी, (जो) मेरे द्वारा मारे जा चुके हैं, तू मार डाल । दुःखी मत हो । युद्ध कर । तू जीत लेगा रण में, शत्रुओं को ।

११.३५ संजय उवाच-
एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥

एतच् छ्रुत्वा वचनं केशवस्य, - -
कृताञ्जलिर् वेपमानः किरीटी
नमस्कृत्वा भूय एवा (आ)ह कृष्णं,
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य - -

एतत् श्रुत्वा वचनम् केशवस्य कृताञ्जलिः वेपमानः किरीटी
नमस्कृत्वा भूयः एव आह कृष्णम् सगद्गदम् भीतभीतः प्रणम्य

संजय उवाच -
केशव के ये वचन सुनकर, हाथ जोड़ कांपते हुए किरीटधारी (अर्जुन) ने नमस्कार करके कृष्ण को ही फिर कहा, - रुद्ध कण्ठ से, भयभीत हुए, प्रणाम करके-

११. ३६ अर्जुन उवाच-
स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥

स्थाने, हृषीकेश, तवप् प्रकीर्त्या
जगत् प्रहृष्यत्य् अनुरज्यते च - -
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति - -
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत् प्रहृष्यति अनुरज्यते च
रक्षांसि भीतानि दिशः द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः

अर्जुन उवाच -
यह उचित है, हृषीकेश ! कि संसार आपके गुणों का कीर्तन करके आनन्द मनाता है, और प्रसन्न होता है। राक्षस भयभीत हुए हर दिशा में भाग रहे हैं और, सब (आप को) नमस्कार कर रहें हैं, सिद्धों के समुदाय ।

११. ३७ कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥

कस्माच् च ते न नमेरन्, महात्मन्
गीरयसे ब्रह्मणो (अ)प्य् आदिकर्त्रे
अनन्त देवेश जगन्निवास, - -
त्वम् अक्षरं सद् असत् तत्परं यत्

कस्मात् च ते न नमेरन् महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणः अपि आदिकर्त्रे
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वम् अक्षरम् सत् असत् तत्परम् यत्

और क्यों न वे नमस्कार करें, हे महात्मन् ! आप को । जो ब्रह्मा से भी श्रेष्ठ हैं, आदिकर्ता हैं । हे अनन्त ! हे देवेश ! हे जगन्निवास ! आप अविनाशी हैं, सत् हैं, असत् हैं; और जो इन से परे है, (आप हैं) ।

११. ३८ त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥

त्वम् आदिदेवः पुरुषः पुराणस्
त्वम् अस्य विश्वस्य परं निधानम्
वेत्ता (अ)सि वेद्यं च परं च धाम, - -
त्वया ततं विश्वम् अनन्तरूप - -

त्वम् आदिदेवः पुरुषः पुराणः त्वम् अस्य विश्वस्य परम् निधानम्
वेत्ता असि वेद्यम् च परम् च धाम त्वया ततम् विश्वम् अनन्तरूप

आप आदिदेव हैं । पुरुष पुरातन हैं । इस विश्व के सर्वोपरि आश्रय आप हैं । आप ज्ञाता हैं, ज्ञेय हैं और परम धाम हैं । विश्व आप से व्याप्त है, हे अनन्तरूप !

११. ३९ वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥

वायुर् यमो (अ)ग्निर् वरुणः शशांकः
प्रजापतिस् त्वं प्रपितामहश् च - -
नमो नमस् ते (अ)स्तु सहस्रकृत्वः
पुनश् च भूयो (अ)पि नमो नमस् ते

वायुः यमः अग्निः वरुणः शशांकः प्रजापतिः त्वम् प्रपितामहः च
नमः नमः ते अस्तु सहस्रकृत्वः पुनः च भूयः अपि नमः नमः ते

आप वायु , यम, अग्नि, वरुण, चन्द्र और प्रजापति हैं । आप पितामह (ब्रह्मा के भी पिता) हैं, आप को नमस्कार है, सहस्रों बार नमस्कार है । और फिर नमस्कार है, फिर नमस्कार है, आप को ।

११.४० नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥

नमः पुरस्ताद् अथ पृष्ठतस् ते
नमो (अ)स्तु ते सर्वत एव, सर्व - -
अनन्तवीर्या (अ)मितविक्रमस् त्वं
सर्वसमाप्नोषि ततो (अ)सि सर्वः

नमः पुरस्तात् अथ पृष्ठतः ते नमः अस्तु ते सर्वतः एव सर्व
अनन्तवीर्य अमितविक्रमः त्वम् सर्वम् समाप्नोषि ततः असि सर्वः

अब आप को आगे की ओर से नमस्कार है, पीछे की ओर से, और सब ओर से भी नमस्कार है, हे सर्वरूप। हे अनन्तवीर्य, आप की शक्ति असीम है, आप सब में व्याप्त हैं, अतः आप ही सब-कुछ हैं[१] -

११.४१ सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥

सखे (इ)ति मत्वा प्रसभं यद् उक्तं
हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे (इ)ति - -
अजानता महिमानं तवे (इ)दं
मया प्रमादात् प्रणयेन वा (अ)पि - -

सखा इति मत्वा प्रसभम् यत् उक्तम् हे कृष्ण हे यादव हे सखे इति
अजानता महिमानम् तव इदम् मया प्रमादात् प्रणयेन वा अपि

"सखा" ऐसा मानकर, दुराग्रहपूर्वक जो मैंने कहा "हे-कृष्ण" "हे यादव" "हे सखे", यह आपकी इस महिमा को न जानते हुए, मेरे द्वारा असावधानी, अथवा स्नेह से ही, (कहा गया)

१. यह भाव बारबार देहराया गया है

११.४२ यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥

यच् चा (अ)वहासार्थम् असत्कृतो (अ)सि - -
विहारशय्यासनभोजनेषु - -
एको (अ)थवा (अ)प्य् अच्युत, तत्समक्षं,
तत् क्षामये त्वाम् अहम् अप्रमेयम्

यत् च अवहासार्थम् असत्कृतः असि विहारशय्यासनभोजनेषु
एकः अथवा अपि अच्युत तत्समक्षम् तत् क्षामये त्वाम् अहम् अप्रमेयम्

और, जो हासपरिहास में आप का असम्मान हुआ है,- आमोद-प्रमोद में, विश्राम करते, बैठते, भोजन करते अकेले अथवा किसी के सामने,- हे अच्युत, उसके लिए मैं आप से क्षमा की विनती करता हूं, हे अमित-अपार !

११.४३ पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥

पिता (अ)सि लोकस्य चराचरस्य - -
त्वम् अस्य, पूज्यश्च गुरुर् गरीयान्
न त्वत् समो (अ)स्त्य् अभ्यधिकः कुतो (अ)न्यो,
लोकत्रये (अ)प्य् अप्प्रतिमप्प्रभाव - -

पिता असि लोकस्य चराचरस्य त्वम् अस्य पूज्यः च गुरुः गरीयान्
न त्वत्समः अस्ति अभ्यधिकः कुतः अन्यः लोकत्रये अपि अप्रतिमप्रभाव

आप पिता हैं, इस चर और अचर जगत् के । आप इसके पूज्य हैं, गुरु हैं और उससे भी बढ़कर हैं । आप के समान कोई नहीं है । फिर दूसरा, और बढ़कर कहां से होगा, तीनों लोकों में भी । हे अनुपम प्रभाववाले ।

११.४४ तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥

तस्मात् प्रणम्यप् प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वाम् अहम् ईशम् ईड्यम्
पिते (इ)व पुत्रस्य सखे (इ)व सख्युः
प्रियः प्रियाया (अ)र्हसि देव सोढुम्

तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय कायम् प्रसादये त्वाम् अहम् ईशम् ईड्यम्
पिता इव पुत्रस्य सखा इव सख्युः प्रियः प्रियायाः अर्हसि देव सोढुम्

इसलिए साष्टांग दण्डवत् करके, शरीर झुकाकर, मैं आप वन्दनीय ईश्वर को, प्रसन्न होने की प्रार्थना करता हूं । जैसे पिता पुत्र के, मित्र मित्र के, प्रेमी प्रिया के, उसी प्रकार हे देव । आप मेरे (व्यवहार) सहन कीजिए ।

११.४५ अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥

अदृष्टपूर्वंहृषितो (अ)स्मि दृष्ट्वा
भयेन चप् प्रव्यथितं मनो मे
तद् एव मे दर्शय देव, रूपं,
प्रसीद, देवेश, जगन्निवास - -

अदृष्टपूर्वम् हृषितः अस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितम् मनः मे
तत् एव मे दर्शय देव रूपम् प्रसीद देवेश जगन्निवास

पहले न देखे हुए (विश्व रूप) को देखकर मैं प्रसन्न हूं ; पर भय से मेरा मन व्यथित है । हे देव ! मुझे उस (पहले) रूप को ही दिखलाइए । प्रसन्न होइए । हे देवेश, हे जगन्निवास ।

११.४६ किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तम्
इच्छामि त्वां द्रष्टुम् अहं तथै (ए)व - -
तेनै (ए)व रूपेण चतुर्भुजेन - -
सहस्रबाहो, भव विश्वमूर्ते

किरीटिनम् गदिनम् चक्रहस्तम् इच्छामि त्वाम् द्रष्टुम् अहम् तथा एव तेन एव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते

मैं देखना चाहता हूँ आपको, उसी प्रकार (पहले रूप में) मुकुट धारण किए, गदा लिए, हाथ में चक्र भी वही चतुर्भुज रूप हो जाइए । हे सहस्रबाहो, हे विश्वमूर्ते ।

११.४७ श्रीभगवानुवाच-
मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥

मया प्रसन्नेन तवा (अ)र्जुने (इ)दं
रूपं परं दर्शितम् आत्मयोगात्
तेजोमयं विश्वम् अनन्तम् आद्यं
यन् मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्

मया प्रसन्नेन तव अर्जुन इदम् रूपम् परम् दर्शितम् आत्मयोगात् तेजोमयम् विश्वम् अनन्तम् आद्यम् यत् मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्

श्री भगवान् उवाच -
मैंने प्रसन्न होकर तुझे, अर्जुन ! यह परम श्रेष्ठ रूप दिखलाया है अपने योगबल से - तेजोमय, विश्वव्यापी, अनन्त, (और) आदि का । जो मेरा रूप तूने देखा है, पहले किसी ने नहीं (देखा) ।

११.४८ न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥

न वेदयज्ञाध्ययनैर्, न दानैर्
न चक् क्रियाभिर् न तपोभिर् उग्रैः
एवं रूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन, कुरुप्प्रवीर – –

न वेदयज्ञाध्ययनैः न दानैः न च क्रियाभिः न तपोभिः उग्रैः
एवं रूपः शक्यः अहम् नृलोके द्रष्टुम् त्वदन्येन कुरुप्रवीर

न वेद पढ़कर, न यज्ञ करके, न अध्ययन द्वारा, न दान देकर, न क्रियाओं द्वारा, और न भीषण तप करके, सम्भव है मनुष्य लोक में मुझे इस रूप में देखना किसी का, तेरे अतिरिक्त, कुरुप्रवीर !

११.४९ मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरम् ईदृङ् ममे (इ)दम्
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस् त्वं
तद् एव मे रूपम् इदं प्रपश्य – –

मा ते व्यथा मा च विमूढभावः दृष्ट्वा रूपम् घोरम् ईदृक् मम इदम्
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनः त्वम् तत् एव मे रूपम् इदम् प्रपश्य

तू व्याकुल मत हो, और भ्रम में मत पड़- मेरे ऐसे, इस भयंकर रूप को देख कर। भय रहित हो, प्रसन्न मन से मेरा यह वही रूप तू देख।

११.५० संजय उवाच–
इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥

इत्य् अर्जुनं वासुदेवस् तथो (उ)क्त्वा,
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः
आश्वासयामास च भीतम् एनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर् महात्मा

इति अर्जुनम् वासुदेवः तथा उक्त्वा स्वकम् रूपम् दर्शयामास भूयः
आश्वासयामास च भीतम् एनम् भूत्वा पुनः सौम्यवपुः महात्मा

संजय उवाच–
इस प्रकार अर्जुन को ऐसा कह कर वासुदेव ने फिर अपना (पहलेवाला) रूप दिखलाया । और, धीरज बँधाया उस भयभीत हुए को, फिर शान्त स्वरूप होकर, महात्मा ने ।

अर्जुन उवाच–
११.५१ **दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।**
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥

दृष्ट्वे (इ)दं मानुषं रूपं
तव सौम्यं जनार्दन - -
इदानीम् अस्मि संवृत्तः
सचेताः प्रकृतिं गतः

दृष्ट्वा इदम् मानुषम् रूपम् तव सौम्यम् जनार्दन
इदानीम् अस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिम् गतः

अर्जुन उवाच–
आपके इस मानवीय सौम्य रूप को देख कर, हे जनार्दन ! मैं अब सचेत हो गया हूं, सामान्य स्थिति में आ गया हूं ।

११.५२ श्रीभगवानुवाच-
सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥

सुदुर् दर्शम् इदं रूपं
दृष्टवान् असि यन् मम - -
देवा अप्य् अस्य रूपस्य - -
नित्यं दर्शनकांक्षिणः

सुदुर्दर्शम् इदम् रूपम् दृष्टवानसि यत् मम
देवाः अपि अस्य रूपस्य नित्यम् दर्शनकांक्षिणः

श्री भगवान् उवाच-
अति कठिन है, मेरे इस स्वरूप को देखना, जिसे तूने देखा है- देवता लोग भी इस स्वरूप के दर्शन को, सदैव इच्छुक रहते हैं ।

११.५३ नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥

ना (अ)हं वेदैर् न तपसा
न दानेन न चे (इ)ज्यया
शक्य एवं विधो द्रष्टुं,
दृष्टवान् असि मां यथा

न अहम् वेदैः न तपसा न दानेन न च इज्यया
शक्यः एवंविधः द्रष्टुम् दृष्टवान् असि माम् यथा

न वेद पढ़ने से, न तप करने से, न दान देने से और न यज्ञ करने से सम्भव है, इस प्रकार देखना, जैसा तूने मुझे देखा है ।

**११.५४ भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥**

भक्त्या त्व् अनन्यया शक्य - -
अहम् एवं विधो (अ)र्जुन - -
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन - -
प्रवेष्टुं च, परंतप - -

भक्त्या तु अनन्यया शक्यः अहम् एवंविधः अर्जुन
ज्ञातुम् द्रष्टुम् च तत्त्वेन प्रवेष्टुम् च परंतप

परन्तु, अर्जुन । अनन्य भक्ति द्वारा संभव है, इस प्रकार यथार्थ रूप मे मुझे जानना, देखना और मुझ में समा जाना । परंतप ।

**११.५५ मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥**

मत्कर्मकृन् मत्परमो
मद्भक्तः संग वर्जितः
निर्वैरः सर्वभूतेषु - -
यः स माम् एति, पाण्डव - -

मत्कर्मकृत् मत्परमः मद्भक्तः संगवर्जितः
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः सः माम् एति पाण्डव

जो मेरे निमित्त काम करता है, मैं जिसके लिए सर्वश्रेष्ठ हूं, जो मेरा भक्त है. आसक्ति से मुक्त है, सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति द्वेष रहित है, वह मुझे पा जाता है; पाण्डव !

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्यायः
समाप्तः

गीता प्रकाश

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

परिचय-१२

अध्याय ९ में परम गोपनीय राजविद्या का ज्ञान देकर भगवान् अर्जुन से कहते हैं - "तू निश्चित रूप से जान, मेरा भक्त, जो भी हो, जैसा भी हो, कभी नष्ट नहीं होता।"

अध्याय ११ में विश्वरूप दर्शाने के बाद भगवान् फिर कहते हैं - "मुझे इस प्रकार देख लेना कदापि सम्भव नहीं है- न वेद पढ़ने से, न तप करने से और न यज्ञ करने से ही। परन्तु, अर्जुन, अनन्य भक्ति द्वारा यह सम्भव है - यथार्थ रूप से मुझे जानना, देखना और मुझ में समा जाना"।

अध्याय १२ में ऐसी भक्ति की विधियों का वर्णन है- नाम है: "भक्ति योग"।

श्रीमद्भगवद् गीता

अथ द्वादशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगः)

अर्जुन उवाच–

**१२.१ एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥**

एवं सततयुक्ता ये
भक्तास् त्वां पर्युपासते
ये चा (अ)प्य् अक्षरम् अव्यक्तं,
तेषाम् के योगवित्तमाः

एवम् सततयुक्ताः ये भक्ताः त्वाम् पर्युपासते
ये च अपि अक्षरम् अव्यक्तम् तेषाम् के योगवित्तमाः

अर्जुन उवाच–
इस प्रकार जो भक्त गण सदैव लीन हुए आप की उपासना करते हैं, और (वे)जो अप्रत्यक्ष अविनाशी की ही (उपासना करते हैं), उनमें से कौन योग-(ज्ञान) श्रेष्ठ हैं ।

१२.२ **श्रीभगवानुवाच-**
मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥

मय्य् आवेश्य मनो ये मां
नित्ययुक्ता उपासते
श्रद्धया परयो (उ)पेतास्
ते मे युक्ततमा मताः

मयि आवेश्य मनः ये माम् नित्ययुक्ताः उपासते
श्रद्धया परया उपेताः ते मे युक्ततमाः मताः

श्री भगवान् उवाच-
जो मुझमें मन स्थिर करके नित्य लीन हुए मेरी उपासना करते हैं, परम श्रद्धा से युक्त-वे योग में लीन रहने वालों में श्रेष्ठ हैं, मेरे विचार में ।

१२.३ **ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।**
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥

ये त्व् अक्षरम् अनिर्देश्यम्
अव्यक्तम् पर्युपासते
सर्वत्रगम् अचिन्त्यं च - -
कूटस्थम् अचलं ध्रुवम्

ये तु अक्षरम् अनिर्देश्यम् अव्यक्तम् पर्युपासते
सर्वत्रगम् अचिन्त्यम् च कूटस्थम् अचलम् ध्रुवम्

परन्तु, जो अविनाशी, अनिर्वचनीय, अप्रत्यक्ष, सर्वव्यापी, अकल्पनीय, और दृढ-स्थिर अचल, अटल की उपासना करते हैं, (और)

१२.४ **संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।**
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥

संनियम्ये (इ)न्द्रियग्रामं,
सर्वत्र समबुद्धयः
ते प्राप्नुवन्ति माम् एव, --
सर्वभूतहिते रताः

संनियम्य इन्द्रियग्रामम् सर्वत्र समबुद्धयः
ते प्राप्नुवन्ति माम् एव सर्वभूतहिते रताः

जो सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके, सर्वत्र सम बुद्धि रखते हैं, वे भी मुझे प्राप्त कर लेते हैं–प्राणिमात्र के कल्याण में लीन, (रहते हुए) (पर)

१२.५ **क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।**
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥

क्लेशो (अ)धिकतरस् तेषाम्
अव्यक्तासक्तचेतसाम्
अव्यक्ता हि गतिर् दुःखं
देहवद्भिर् अवाप्यते

क्लेशः अधिकतरः तेषाम् अव्यक्तासक्तचेतसाम्
अव्यक्ता हि गतिः दुःखम् देहवद्भिः अवाप्यते

उनको अधिक कष्ट होता है जिनका चित्त अप्रत्यक्ष में लगा है । वास्तव में, अप्रत्यक्ष की राह कठिन है, देहधारी द्वारा पा लेना ।

१२.६ ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि – –
मयि संन्यस्य, मत्पराः
अनन्येनै (ए)व योगेन – –
मां ध्यायन्त उपासते

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः
अनन्येन एव योगेन माम् ध्यायन्तः उपासते

सच में, जो समस्त कर्मों को मुझ पर छोड़कर, मुझ में दत्तचित्त हुए, एकनिष्ठ योग द्वारा मेरा ही चिंतन करते हुए, उपासना करते हैं --

१२.७ तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥

तेषाम् अहं समुद्धर्ता
मृत्युसंसारसागरात्
भवामि न चिरात्, पार्थ, – –
मय्य् आवेशितचेतसाम्

तेषाम् अहम् समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्
भवामि न चिरात् पार्थ मयि आवेशितचेतसाम्

उनका मैं, मृत्युमय संसार सागर से, बिना विलम्ब उद्धार करता हूं, पार्थ । मुझ में जिनका चित्त स्थिर है ।

**१२.८ मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥**

मय्य् एव मन आधत्स्व, - -
मयि बुद्धिं निवेशय - -
निवसिष्यसि मय्य् एव - -
अत ऊर्ध्वं न संशयः

मयि एव मनः आधत्स्व मयि बुद्धिम् निवेशय
निवसिष्यसि मयि एव अतः ऊर्ध्वम् न संशयः

(अपना) मन केवल मुझ में लगा । (अपनी) बुद्धि मुझ में स्थिर कर । तदुपरान्त तू मुझ में ही निवास करेगा, इसमें संशय नहीं ।

**१२.९ अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥**

अथ चित्तं समाधातुं
न शक्नोषि मयि स्थिरम्
अभ्यासयोगेन ततो
माम् इच्छा (आ)प्तुं, धनंजय - -

अथ चित्तम् समाधातुम् न शक्नोषि मयि स्थिरम्
अभ्यासयोगेन ततः माम् इच्छ आप्तुम् धनंजय

यदि तू अपना मन मुझ में नहीं लगा सकता, स्थिरता से, तो अभ्यास योग द्वारा मुझे पाने की इच्छा कर, धनंजय ।

१२.१० अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥

अभ्यासे (अ)प्य् असमर्थो (अ)सि, - -
मत्कर्मपरमो भव - -
मदर्थम् अपि कर्माणि - -
कुर्वन् सिद्धिम् अवाप्स्यसि - -

अभ्यासे अपि असमर्थः असि मत्कर्मपरमः भव
मदर्थम् अपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिम् अवाप्स्यसि

यदि अभ्यास में भी तू असमर्थ है तो मेरे लिए किए कर्म ही, तेरे लिए सर्वोपरि हों । मेरे लिए कर्म करते हुए भी, तू सिद्धि को प्राप्त होगा ।

१२.११ अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥

अथै (ए)तद् अप्य् अशक्तो (अ)सि - -
कर्तुं मद्योगम् आश्रितः
सर्व कर्म फलत्त्यागं
ततः कुरु यतात्मवान्

अथ एतत् अपि अशक्तः असि कर्तुम् मद्योगम् आश्रितः
सर्वकर्मफलत्यागम् ततः कुरुयतात्मवान्

यदि यह भी करने में तू असमर्थ है, तो मेरे योग का आश्रय लेते हुए, सब कर्म-फल त्याग दे, अपने को वश में किए हुए ।

१२.१२ श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥

श्रेयो हि ज्ञानम् अभ्यासाज्
ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते
ध्यानात् कर्मफलत्यागस्
त्यागाच् छान्तिर् अनन्तरम्

श्रेयः हि ज्ञानम् अभ्यासात् ज्ञानात् ध्यानम् विशिष्यते
ध्यानात् कर्मफलत्यागः त्यागात् शान्तिः अनन्तरम्

वास्तव में ज्ञान श्रेष्ठ है- अभ्यास से । ज्ञान से - ध्यान उत्कृष्ट है, (और) ध्यान से, कर्मफलत्याग । (ऐसे) त्याग से, तत्काल शान्ति (मिलती है) ।

१२.१३ अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करूण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥

अद्द्वेष्टा सर्वभूतानां
मैत्रः करूण एव च - -
निर्ममो निरहंकारः
समदुःखसुखः क्षमी

अद्वेष्टा सर्वभूतानाम् मैत्रः करुणः एव च
निर्ममः निरहंकारः समदुःखसुखः क्षामी

जो सब जड़-चेतनादि के प्रति द्वेषरहित, हितैषी और दयालु भी है, ममत्व रहित, अहंकार रहित, दुःख सुख में समान, क्षमावान् है, --

१२.१४ संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

संतुष्टः सततं योगी
यतात्मा दृढनिश्चयः
मय्य् अर्पितमनोबुद्धिर्
यो मद्भक्तः स मे प्रियः

संतुष्टः सततम् योगी यतात्मा दृढनिश्चयः
मयि अर्पितमनोबुद्धिः यः मद्भक्तः सः मे प्रियः

निरन्तर संतोषी है जो योगी, जिसने अपने को वश में किया है, जिसका निश्चय दृढ है, जिसने मन और बुद्धि को मुझ में लगा दिया है, वह मेरा भक्त, मुझे प्रिय है ।

१२.१५ यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥

यस्मान् नो (उ)द्विजते लोको,
लोकान् नो (उ)द्विजते च यः
हर्षामर्ष भयोद्वेगैर्
मुक्तो, यः स च मे प्रियः

यस्मात् न उद्विजते लोकः लोकात् न उद्विजते च यः
हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तः यः सः च मे प्रियः

जिससे संसार को कष्ट नहींहोता और जो (स्वयं) संसार से व्याकुल नहीं, और जो हर्ष, क्रोध, और भय की आकुलता से मुक्त है, वह मुझे प्रिय है ।

**१२.१६ अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥**

अनपेक्षः शुचिर् दक्ष – –
उदासीनो गतव्व्यथः
सर्वारम्भपरित्त्यागी,
यो मद्भक्तः स मे प्रियः

अनपेक्षः शुचिः दक्षः उदासीनः गतव्यथः
सर्वारम्भपरित्यागी यः मद् भक्तः सः मे प्रियः

जिसे कोई चाह नहीं,जो पवित्र है, कार्यकुशल है, विरक्त है, जिसका दुःखदर्द दूर हो गया है, जिसने सब (सकाम) कार्यारम्भ छोड़ दिए हैं, वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है ।

**१२.१७ यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥**

यो न हृष्यति नद् द्वेष्टि – –
न शोचति न कांक्षति – –
शुभाशुभपरित्त्यागी
भक्तिमान्, यः स मे प्रियः

यः न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः सः मे प्रियः

जो न हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न लालसा, जिसने शुभ अशुभ को त्याग दिया है, जो भक्तिमय है, वह मुझे प्रिय है ।

**१२.१८ समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संग विवर्जितः ॥**

समः शत्रौ च मित्रे च, - -
तथा मानापमानयोः
शीतोष्णसुखदुःखेषु - -
समः, संग विवर्जितः

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संग विवर्जितः

शत्रु और मित्र में एक भाव (रखनेवाला) और उसी प्रकार मान और अपमान में, सर्दी में, गर्मी में, सुख में और दुःख में, एक समान, आसक्ति से मुक्त, --

**१२.१९ तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥**

तुल्यनिन्दास्तुतिर् मौनी,
संतुष्टो येन केनचित्
अनिकेतः स्थिरमतिर्
भक्तिमान् मे प्रियो नरः

तुल्यनिन्दास्तुतिः मौनी संतुष्टः येन केनचित्
अनिकेतः स्थिरमतिः भक्तिमान् मे प्रियः नरः

जिसे निन्दा और स्तुति एक सी हैं, जिसने मौन धारण किया है, जो, जो कुछ मिल जाए उसमें संतुष्ट है, जो एक स्थान से बंधा नहीं, जिसकी बुद्धि स्थिर है, जो भक्तिमय है, वह पुरुष मुझे प्रिय है ।

**१२.२० ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥**

ये तु धर्म्यामृतम् इदं
यथोक्तं पर्युपासते
श्रद्धधाना मत्परमा
भक्तास् ते (अ)तीव मे प्रियाः

ये तु धर्म्यामृतम् इदम् यथा उक्तम् पर्युपासते
श्रद्दधानाः मत्परमाः भक्ताः ते अतीव मे प्रियाः

वास्तव में, जो धर्मप्राप्य इस अमृत (ज्ञान) की, उक्त कथनानुसार[१] उपासना करते हैं,- श्रद्धा से परिपूर्ण, मुझे सर्वोपरि जानते हुए,- वे भक्त लोग मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः समाप्तः

१. जैसा ऊपर श्लोक १३-१९ में कहा है

परिचय-१३

अध्याय ७ में भगवान् ने कहा कि मैं तुझे ज्ञान की बात विज्ञान सहित बतलाऊंगा। यह बात अध्याय ७, ८ और ९ में क्रमशः बतलाई गई। पर यह क्रम अध्याय १०. ११ और १२ में टूट गया। अब अध्याय १३ में इसे फिर आरम्भ करते हैं। यह ज्ञान वार्ता की धारा आगे पन्द्रहवें अध्याय तक चलती है - प्रत्येक अध्याय मानों इस ज्ञान का एक विभाग है।

अध्याय ७ में भगवान् ने अपनी दो प्रकार की प्रकृति की बात कही - जड़ात्मिका और चैतन्यात्मिका। चैतन्यात्मिका श्रेष्ठ है, प्राणियों का जीवन है। इसे यहां 'पुरुष कहा है। यह 'पुरुष' और (जड़ात्मिका) प्रकृति दोनों अनादि हैं। सत्त्व, रज और तम तीन प्रकृति के ही गुण हैं।

अध्याय ११ में विश्व रूप दर्शन के द्वारा अर्जुन ने प्रत्यक्ष अनुभव किया कि परमेश्वर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। अब क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विचार द्वारा बतलाते हैं कि मनुष्य के शरीर में भी वही परमेश्वर-पुरुष -निवास करता है। जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के संयोग से है।

अध्याय १३ का नाम है - "क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग"।

श्रीमद्भगवद् गीता

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगः)

१३.० * अर्जुन उवाच-

प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च ।
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ॥

प्रकृतिं पुरुषं चै (ए)व, - -
क्षेत्रं क्षेत्रज्ञम् एव च - -
एतद् वेदितुम् इच्छामि - -,
ज्ञानं ज्ञेयं च, केशव - -

प्रकृतिं पुरुषं च एव क्षेत्रम् क्षेत्रज्ञम् एव च
एतत् वेदितुम् इच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव

अर्जुन उवाच-
प्रकृति और पुरुष भी, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ भी, ज्ञान और ज्ञेय, मैं ये जानना चाहता हूं, केशव !

* यह श्लोक कई गीता-संस्करणों में नही दिया रहता । इसे मिला कर कुल ७०१ श्लोक हो जाते हैं जब कि गीता में कुल ७०० श्लोक ही माने जाते हैं । अतः यह गणना में नहीलिया जाता ।

१३.१ श्री भगवानुवाच-
इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥

इदं शरीरं, कौन्तेय, - -
क्षेत्रम् इत्य् (अ)भिधीयते
एतद् यो वेत्ति तं प्राहुः
क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः

इदम् शरीरम् कौन्तेय क्षेत्रम् इति अभिधीयते
एतत् यः वेत्ति तम् प्राहुः क्षेत्रज्ञः इति तत् विदः

श्री भगवान् उवाच-
यह शरीर, कौन्तेय, क्षेत्र है, ऐसा कहा जाता है ।
जो इसे जानता है उसे, क्षेत्रज्ञ,- ऐसा कहते हैं,
(क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विषयक ज्ञान को) जानने वाले ।

१३.२ क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥

क्षेत्रज्ञं चा (अ)पि मां विद्धि - -
सर्वक्क्षेत्रेषु, भारत - -
क्षेत्रक्क्षेत्रज्ञयोर् ज्ञानं
यत् तज् ज्ञानं मतं मम - -

क्षेत्रज्ञम् च अपि माम् विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः ज्ञानम् यत् तत् ज्ञानम् मतम् मम

और तू मुझे ही क्षेत्रज्ञ समझ, समस्त क्षेत्रों में,
भारत ! क्षेत्र क्षेत्रज्ञ का जो ज्ञान है, वही ज्ञान है,
मेरे मत में ।

१३.३ तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥

तत् क्षेत्रं यच् च यादृक् च, - -
यद्विकारि यतश् च यत्
स च यो यत्प्रभावश् च, - -
तत् समासेन मे शृणु- -

तत् क्षेत्रम् यत् च यादृक् च यद्विकारि यतः च यत्
सः च यः यत्प्रभावः च तत् समासेन मे शृणु

वह क्षेत्र क्या है, और किस प्रकार का है, और उसके रूपान्तर क्या हैं, और वह कहाँ से (उत्पन्न) है; और, वह (क्षेत्रज्ञ) क्या है, और, उसका प्रभाव क्या है, यह (सब) तू मुझसे, संक्षेप में सुन ।

१३.४ ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥

ऋषिभिर् बहुधा गीतं
छन्दोभिर् विविधैः पृथक्
ब्रह्मसूत्रपदैश् चै (ए)व - -
हेतुमद्भिर् विनिश्चितैः

ऋषिभिः बहुधा गीतम् छन्दोभिः विविधैः पृथक्
ब्रह्मसूत्रपदैः च एव हेतुमद्भिः विनिश्चितैः

ऋषियों ने (इसे) अनेक प्रकार से गाया है - विविध छन्दों द्वारा, भिन्न भिन्न रीति से और ब्रह्मसूत्र के पदों में भी, जो तर्क संगत हैं, निर्णायक ।

**१३.५ महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥**

महाभूतान्य् अहंकारो,
बुद्धिर् अव्यक्तम् एव च - -
इन्द्रियाणि दशै (ए)कं च, - -
पञ्च चे (इ)न्द्रियगोचराः

महाभूतानि अहंकारः बुद्धिः अव्यक्तम् एव च
इन्द्रियाणि दश एकम् च पञ्च च इन्द्रियगोचराः

(पंच) महाभूत, अहंकार, बुद्धि और अव्यक्त (प्रकृति) भी, इन्द्रियां दस और एक, (मन) और इन्द्रियों के पांच विषय;

**१३.६ इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥**

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं,
संघातश् चेतना धृतिः
एतत् क्षेत्रं समासेन - -
सविकारम् उदाहृतम्

इच्छा द्वेषः सुखम् दुःखम् संघातः चेतना धृतिः
एतत् क्षेत्रम् समासेन सविकारम् उदाहृतम्

इच्छा, द्वेष, सुख, दुख, संघटित शरीर, चेतना, धैर्य, ये (सब) संक्षेप में, क्षेत्र कहलाते हैं-विकारों सहित ।

**१३.७ अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥**

अमानित्वम् अदम्भित्वम्
अहिंसा क्षान्तिर् आर्जवम्
आचार्योपासनं शौचं
स्थैर्यम् आत्मविनिग्रहः

अमानित्वम् अदम्भित्वम् अहिंसा क्षान्तिः आर्जवम्
आचार्योपासनम् शौचम् स्थैर्यम् आत्मविनिग्रहः

"अमानित्व",[१] दम्भहीनता, अहिंसा, क्षमाभाव, सरलता, आचार्य की सेवा, शुद्धता, स्थिरता, आत्मसंयम -

**१३.८ इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधि दुःखदोषानुदर्शनम् ॥**

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यम्
अनहंकार एव च - -
जन्ममृत्युजरा व्याधि- -
दुःखदोषानुदर्शनम्

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यम् अनहंकारः एव च
जन्म मृत्यु जराव्याधि दुःखदोषानुदर्शनम्

इन्द्रियों के विषयों में उदासीनता, और अहंकार का अभाव भी, जन्म-मरण, जरा, व्याधि और दुःख के दोष (ही) देखना-

१. दूसरों से सम्मानित होने की अभिलाषा का अभाव।

१३.९ असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥

असक्तिर् अनभिष्वंगः
पुत्रदारगृहादिषु - -
नित्यं च समचित्तत्वम्
इष्टानिष्टोपपत्तिषु - -

असक्तिः अनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु
नित्यम् च समचित्ततत्वम् इष्टानिष्टोपपत्तिषु

अनासक्ति, पुत्र, पत्नी और घर आदि में लिप्त न रहना, और प्रिय और अप्रिय घटनाओं में, निरन्तर समचित्तता,

१३.१० मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वं अरतिर्जनसंसदि ॥

मयि चा (अ)नन्ययांगेन - -
भक्तिर् अव्यभिचारिणी
विविक्तदेशासेवित्वम्
अरतिर् जनसंसदि - -

मयि च अनन्ययोगेन भक्तिः अव्यभिचारिणी
विविक्तदेशसेवित्वम् अरतिः जनसंसदि

और, मुझ में एकनिष्ठ योग द्वारा भक्ति, जो भटके नहीं, एकान्त स्थान का सेवन, जन समूह से अरुचि-

१३.११ अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं
तत्त्वज्ञानार्थ दर्शनम्
एतज् ज्ञानम् इति प्रोक्तम्
अज्ञानं यद् अतो (अ)न्यथा

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम् तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्
एतत् ज्ञानम् इति प्रोक्तम् अज्ञानम् यत् अतः अन्यथा

अध्यात्म ज्ञान में स्थिरता, तत्त्वज्ञान के विषय की अनुभूति, –यही (सब) ज्ञान है, ऐसा कहते हैं। जो अज्ञान है, इसके विपरीत है ।

१३.१२ ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥

ज्ञेयं यत् तत् प्रवक्ष्यामि, – –
यज् ज्ञात्वा (अ)मृतम् अश्नुते
अनादिमत् परं ब्रह्म, – –
न सत् तन् ना (अ)सद् उच्यते

ज्ञेयम् यत् तत् प्रवक्ष्यामि यत् ज्ञात्वा अमृतम् अश्नुते
अनादिमत् परम् ब्रह्म न सत् तत् न असत् उच्यते

जो जानने योग्य है, वह मैं बतलाऊंगा, जिसे जान कर, प्राप्त होता है अमरत्व, –अनादि, सर्वोपरि ब्रह्म, जो न सत् , न असत् कहलाता है ।

१३.१३ सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

सर्वतः पाणिपादं तत्,
सर्वतो (अ)क्षिशिरोमुखम्
सर्वतः श्रुतिमल् लोके,
सर्वम् आवृत्य तिष्ठति - -

सर्वतः पाणिपादम् तत् सर्वतः अक्षिशिरोमुखम्
सर्वतः श्रुतिमत् लोके सर्वम् आवृत्य तिष्ठति

सब कहीं उसके हाथ पैर हैं, सर्वत्र नेत्र, सिर और मुख हैं, सब ओर कान हैं, वह जगत् में रहता है; सब को ढके हुए,

१३.१४ सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥

सर्वेन्द्रिय गुणाभासं,
सर्वेन्द्रियविवर्जितम्
असक्तं सर्वभृच् चै (ए)व, - -
निर्गुणं गुणभोक्तृ च - -

सर्वेन्द्रियगुणाभासम् सर्वेन्द्रियविवर्जितम्
असक्तम् सर्वभृत् च एव निर्गुणम् गुणभोक्तृ च

उसमें सब इन्द्रियों के गुणों की झलक मिलती है, वह सब इन्द्रियों से रहित है, अलिप्त है, पर सब का भरण-पोषण करता है, और, निर्गुण होते हुए भी गुणों का भोक्ता है,

१३.१५ बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥

बहिर् अन्तश् च भूतानाम्
अचरं चरम् एव च--
सूक्ष्मतत्वात् तद् अविज्ञेयं,
दूरस्थं चा (अ)न्तिके च तत्

बहिः अन्तः च भूतानाम् अचरम् चरम् एव च
सूक्ष्मत्वात् तत् अविज्ञेयम् दूरस्थम् च अन्तिके च तत्

जड़-चेतनादि के बाहर और भीतर है, चर और अचर भी है, सूक्ष्म होने से, वह ठीक-ठीक जाना नहीं जाता, दूर स्थित है, और निकट भी,– वह ।

१३.१६ अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥

अविभक्तं च भूतेषु --
विभक्तम् इव च स्थितम्
भूतभर्तृ च तज् ज्ञेयं,
ग्रसिष्णुप् प्रभविष्णु च --

अविभक्तम् च भूतेषु विभक्तम् इव च स्थितम्
भूतभर्तृ च तत् ज्ञेयम् ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च

और (वह) अविभाजित है, फिर भी जड़-चेतनादि में मानों विभाजित हुआ रहता है । और, उसे प्राणियों का पालन-पोषण करने वाला जानना चाहिए,–भक्षण करने वाला और उत्पन्न करने वाला भी ।

१३.१७ ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥

ज्योतिषाम् अपि तज् ज्योतिस्
तमसः परम् उच्यते
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं,
हृदि सर्वस्य विष्ठितम्

ज्योतिषाम् अपि तत् ज्योतिः तमसः परम् उच्यते
ज्ञानम् ज्ञेयम् ज्ञानगम्यम् हृदि सर्वस्य विष्ठितम्

वह ज्योतियों की भी ज्योति है, अन्धकार से वह परे कहा जाता है । वह ज्ञान है, ज्ञेय है और ज्ञान से ही प्राप्य है । सब के हृदय में वह विराजमान है ।

१३.१८ इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥

इतिक् क्षेत्रं तथा ज्ञानं
ज्ञेयं चो (उ)क्तं समासतः
मद्भक्त एतद् विज्ञाय,
मद्भावायो (उ)पपद्यते

इति क्षेत्रम् तथा ज्ञानम् ज्ञेयम् च उक्तम् समासतः
मद्भक्तः एतत् विज्ञाय मद्भावाय उपपद्यते

इस प्रकार क्षेत्र और ज्ञान और ज्ञेय को, संक्षेप में बतलाया है । मेरा भक्त इसे जानकर, मेरी स्थिति को पहुंचने के योग्य होता है ।

**१३.१९ प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥**

प्रकृतिं पुरूषं चै (ए)व - -
विद्ध्य् अनादी उभाव् अपि - -
विकारांश् च गुणांश् चै (ए)व - -
विद्धिप् प्रकृतिसंभवान्

प्रकृतिम् पुरुषम् च एव विद्धि अनादी उभौ अपि
विकारान् च गुणान् च एव विद्धि प्रकृतिसंभवान्

प्रकृति और पुरूष भी, तू समझ, दोनों अनादि ही हैं । और, विकार[२] और गुणों[३] को भी, प्रकृति से उत्पन्न हुआ जान । (पुरूष क्या है ? देखिए श्लोक १३.२२)

**१३.२० कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥**

कार्य करण कर्तृत्वे
हेतुः प्रकृतिर् उच्यते
पुरुषः सुखदुःखानां
भोक्तृत्वे हेतुर् उच्यते

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिः उच्यते
पुरुषः सुखदुःखानाम् भोक्तृत्वे हेतुः उच्यते

कार्य[४], और करण[५] को उत्पन्न करने में, प्रकृति, कारण कही जाती है । सुख दुःख भोगने में पुरूष[६] कारण कहा जाता है ।

२. विकार क्या है, श्लोक १३.५ से ६ में इनकी गणना की है.
३. सत्त्व रज तम तीन गुण हैं ।
४. पंच महाभूत - आकाश, वायु अग्नि जल और पृथ्वी और उनके विषय - शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध- इन दसों का तथा इनके संघात रूप शरीर का वाचक "कार्य" शब्द है अथवा, जो कुछ उत्पन्न हुआ है "कार्य" कहलाता है ।
५. बुद्धि, अहंकार, मन, पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ और पांचों कर्मेन्द्रियां - इन तेरह का वाचक करण है ।
६. प्रकृति जड़ है, पुरूष असंग है । दोनो में भोक्तापन की सम्भावना नहीं । पर दोनों के संग से पुरूष में भोक्तापन का आभास है - अतः उसे कारण कहा है ।

**१३.२१ पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥**

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि – –
भुंक्ते प्रकृतिजान् गुणान्
कारणं गुणसंगो (अ)स्य – –
सद् असद् योनिजन्मसु – –

पुरुषः प्रकृतिस्थः हि भुंक्ते प्रकृतिजान् गुणान्
कारणम् गुणसंगः अस्य सदसद्योनिजन्मसु

वास्तव में, प्रकृति में स्थित पुरुष, प्रकृति से उत्पन्न गुणों को भोगता है । गुणों में आसक्ति, कारण है– इस (पुरुष) के अच्छी और बुरी योनियों में जन्म लेने का ।

**१३.२२ उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥**

उपद्द्रष्टा (अ)नुमन्ता च, – –
भर्ता भोक्ता महेश्वरः
परमात्मे (इ)ति चा (अ)प्यु उक्तो,
देहे (अ)स्मिन् पुरुषः परः

उपद्रष्टा अनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः
परमात्मा इति च अपि उक्तः देहे अस्मिन् पुरुषः परः

सर्वसाक्षी, अनुमति देने वाला और पालन-पोषण करने वाला, भोक्ता महेश्वर, और ऐसे जो "परमात्मा" भी कहलाता है, (वही) इस शरीर में सर्वो परि पुरुष[७] है ।

७ श्लोक १९ से २२ में "पुरुष" का वर्णन है । अध्याय ७ में भगवान् ने अपनी दो प्रकार की प्रकृति का वर्णन किया है । एक निम्नश्रेणी की है, दूसरी श्रेष्ठ है जो प्राणियों का जीवन है । इसी प्रकृति को यहां श्लोक १९, २० और २१ में "पुरुष" कहा है । श्लोक २२ में वर्णित "परमात्मा" ही "पुरुष" है ।

१३.२३ य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥

य एवं वेत्ति पुरुषं
प्रकृतिं च गुणैः सह - -
सर्वथा वर्तमानो (अ)पि - -
न स भूयो (अ)भिजायते

यः एवम् वेत्ति पुरुषम् प्रकृतिम् च गुणैः सह
सर्वथा वर्तमानः अपि न सः भूयः अभिजायते

जो इस प्रकार जानता है पुरुष को, और, प्रकृति को गुणों सहित, वह, हर प्रकार का व्यवहार करते हुए भी, फिर जन्म नहीं लेता ।

१३.२४ ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥

ध्यानेना (आ)त्मनि पश्यन्ति - -
केचिद् आत्मानम् आत्मना
अन्ये सांख्येन योगेन, - -
कर्मयोगेन चा (अ)परे

ध्यानेन आत्मनि पश्यन्ति केचित् आत्मानम् आत्मना
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन च अपरे

कुछ लोग ध्यान द्वारा अपने में देखते हैं, अपने को, अपने से; और, कोई सांख्य योग द्वारा, और कोई दूसरे, कर्म योग द्वारा ।

१३. २५ अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥

अन्ये त्व् एवम् अजानन्तः
श्रुत्वा (अ)न्येभ्य उपासते
ते (अ)पि चा (अ)तितरन्त्य् एव - -
मृत्युं श्रुतिपरायणाः

अन्ये तु एवम् अजानन्तः श्रुत्वा अन्येभ्यः उपासते
ते अपि च अतितरन्ति एव मृत्युम् श्रुतिपरायणाः

और दूसरे, जो वास्तव में इससे अनजान हैं, औरों से सुन कर उपासना करते हैं, और, वे भी मृत्यु (सागर) को पार कर जाते हैं - सुने हुए पर श्रद्धा रखकर ।

१३. २६ यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजंगमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥

यावत् संजायते किंचित्
सत्त्वं स्थावरजंगमम्
क्षेत्रक्षेत्रज्ञ संयोगात्
तद् विद्धि भरतर्षभ - -

यावत् संजायते किंचित् सत्त्वम् स्थावरजंगमम्
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् तत् विद्धि भरतर्षभ

जो कुछ भी उत्पन्न होता है,-कोई भी वस्तु , प्राणी, जड़-जंगम, -वह क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही है, ऐसा तू समझ, भरतर्षभ ।

१३. २७ समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥

समं सर्वेषु भूतेषु – –
तिष्ठन्तं, परमेश्वरम्
विनश्यत्स्व् अविनश्यन्तं,
यः पश्यति स पश्यति – –

समम् सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तम् परमेश्वरम्
विनश्यत्सु अविनश्यन्तम् यः पश्यति सः पश्यति

एक समान सब प्राणियों में स्थित परमेश्वर,- नाशवानों में अविनाशी, को जो देखता है, वही (ठीक ठीक) देखता है ।

१३. २८ समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥

समं पश्यन् हि सर्वत्र – –
समवस्थितम् ईश्वरम्
न हिनस्त्य् आत्मना (आ)त्मानं,
ततो याति परां गतिम्

समम् पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितम् ईश्वरम्
न हिनस्ति आत्मना आत्मानम् ततः याति पराम् गतिम्

वास्तव में, एक समान जो देखता है, सब स्थानों में एक से स्थित ईश्वर को, वह अपने द्वारा अपना अनिष्ट नहीं करता, और, इस प्रकार परम गति को पा जाता है ।

१३. २५ अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥

अन्ये त्व् एवम् अजानन्तः
श्रुत्वा (अ)न्येभ्य उपासते
ते (अ)पि चा (अ)तितरन्त्य् एव - -
मृत्युं श्रुतिपरायणाः

अन्ये तु एवम् अजानन्तः श्रुत्वा अन्येभ्यः उपासते
ते अपि च अतितरन्ति एव मृत्युम् श्रुतिपरायणाः

और दूसरे, जो वास्तव में इससे अनजान हैं, औरों से सुन कर उपासना करते हैं, और, वे भी मृत्यु (सागर) को पार कर जाते हैं - सुने हुए पर श्रद्धा रखकर।

१३. २६ यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजंगमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥

यावत् संजायते किंचित्
सत्त्वं स्थावरजंगमम्
क्षेत्रक्षेत्रज्ञ संयोगात्
तद् विद्धि भरतर्षभ - -

यावत् संजायते किंचित् सत्त्वम् स्थावरजंगमम्
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् तत् विद्धि भरतर्षभ

जो कुछ भी उत्पन्न होता है,-कोई भी वस्तु , प्राणी, जड़-जंगम, -वह क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही है, ऐसा तू समझ, भरतर्षभ !

१३. २७ समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥

समं सर्वेषु भूतेषु - -
तिष्ठन्तं, परमेश्वरम्
विनश्यत्स्व् अविनश्यन्तं,
यः पश्यति स पश्यति - -

समम् सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तम् परमेश्वरम्
विनश्यत्सु अविनश्यन्तम् यः पश्यति सः पश्यति

एक समान सब प्राणियों में स्थित परमेश्वर,- नाशवानों में अविनाशी, को जो देखता है, वही (ठीक ठीक) देखता है ।

१३. २८ समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥

समं पश्यन् हि सर्वत्र - -
समवस्थितम् ईश्वरम्
न हिनस्त्य् आत्मना (आ)त्मानं,
ततो याति परां गतिम्

समम् पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितम् ईश्वरम्
न हिनस्ति आत्मना आत्मानम् ततः याति पराम् गतिम्

वास्तव में, एक समान जो देखता है, सब स्थानों में एक से स्थित ईश्वर को, वह अपने द्वारा अपना अनिष्ट नहीं करता, और, इस प्रकार परम गति को पा जाता है ।

१३. २९ प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥

प्रकृत्यै (ए)व च कर्माणि - -
क्रियमाणानि सर्वशः
यः पश्यति, तथा (आ)त्मानम्
अकर्तारं स पश्यति - -

प्रकृत्या एव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः
यः पश्यति तथा आत्मानम् अकर्तारम् सः पश्यति

और, प्रकृति द्वारा ही सब कहीं कर्म किए जा रहे हैं, ऐसा जो देखता है, और अपने को अकर्ता (मानता-है), वही (ठीक ठीक) देखता है ।

१३. ३० यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥

यदा भूतपृथग्भावम्
एकस्थम् अनुपश्यति - -
तत एव च विस्तारं,
ब्रह्म संपद्यते तदा

यदा भूतपृथग्भावम् एकस्थम् अनुपश्यति
ततः एव च विस्तारम् ब्रह्म संपद्यते तदा

जब वह जड़-चेतनादि के भिन्न-भिन्न अस्तित्वों को एक ही में स्थित देखता है और उसी (एक) से (इनके) विस्तार को, तब वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है ।

१३.३१ **अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।**
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥

अनादित्वान् निर्गुणत्वात्
परमात्मा (अ)यम् अव्ययः
शरीरस्थो (अ)पि, कौन्तेय, - -
न करोति न लिप्यते

अनादित्वात् निर्गुणत्वात् परमात्मा अयम् अव्ययः
शरीरस्थः अपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते

अनादि और निर्गुण होने के कारण, यह परमात्मा अविनाशी, शरीर में स्थित होते हुए भी, कौन्तेय । न कुछ करता है, न लिप्त होता है ।

१३.३२ **यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।**
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्याद्
आकाशं नो (उ)पलिप्यते
सर्वत्रा (अ)वस्थितो देहे
तथा (आ)त्मा नो (उ)पलिप्यते

यथा सर्वगतम् सौक्ष्म्यात् आकाशम् न उपलिप्यते
सर्वत्र अवस्थितः देहे तथा आत्मा न उपलिप्यते

सूक्ष्म होने के कारण जैसे सर्वव्यापी आकाश पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वैसे ही शरीर में हर कहीं स्थित होते हुए भी, (परम्) आत्मा लिप्त नहीं होता ।

१३.३३ **यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।**
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥

यथा प्रकाशयत्य् एकः
कृत्स्नं लोकम् इमं रविः
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं
प्रकाशयति, भारत - -

यथा प्रकाशयति एकः कृत्स्नम् लोकम् इमम् रविः
क्षेत्रम् क्षेत्री तथा कृत्स्नम् प्रकाशयति भारत

जैसे एक सूर्य इस सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है उसी प्रकार क्षेत्र का स्वामी, सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है, भारत !

१३.३४ **क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।**
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर् एवम्
अन्तरं, ज्ञानचक्षुषा
भूतप्प्रकृतिमोक्षं च, - -
ये विदुर् यान्ति ते परम्

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः एवम् अन्तरम् ज्ञानचक्षुषा
भूतप्रकृतिमोक्षम् च ये विदुः यान्ति ते परम्

इस प्रकार जो ज्ञान चक्षु द्वारा क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को, और प्रकृति (के बन्धन) से प्राणियों की मुक्ति होने को जानते हैं, वे सर्वोपरि (ब्रह्म) को पा जाते हैं ।

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः
समाप्तः

गीता प्रकाश

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

परिचय-१४

अध्याय १३ में प्रकृति और पुरुष क्या हैं बतलाते हुए भगवान् ने कहा सत्त्व, रज और तम प्रकृति के गुण हैं।

ये गुण प्रकृति से ही उत्पन्न हैं और देह धारी को शरीर में बांध कर रखते हैं।

कौन गुण कब प्रबल हो जाता है, उसका क्या प्रभाव है, इत्यादि बातों की व्याख्या अध्याय १४ में की गई है। यह भी बतलाया गया है कि इन तीन गुणों को कैसे पार किया जा सकता है और उसका फल क्या है।

अध्याय १४ का नाम है "गुणत्रय विभाग योग"।

श्रीमद्भगवद् गीता

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

(श्री कृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगः)

१४.१ **श्री भगवानुवाच–**
परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥

परं भूयः प्रवक्ष्यामि – –
ज्ञानानां ज्ञानम् उत्तमम्
यज् ज्ञात्वा मुनयः सर्वे
परां सिद्धिम् इतो गताः

परम् भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानाम् ज्ञानम् उत्तमम्
यत् ज्ञात्वा मुनयः सर्वे पराम् सिद्धिम् इतः गताः

श्रीभगवान् उवाच–
मैं फिर से बतलाऊंगा उस ज्ञान को जो सब ज्ञानों में श्रेष्ठ है, जिसे जान कर यहां से, समस्त मुनि लोग परम सिद्धि को पहुँचे हैं ।

**१४.२ इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥**

इदं ज्ञानम् उपाश्रित्य - -
मम साधर्म्यम् आगताः
सर्गे (अ)पि नो (उ)पजायन्ते,
प्रलये न व्यथन्ति च - -

इदम् ज्ञानम् उपाश्रित्य मम साधर्म्यम् आगताः
सर्गे अपि न उपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च

इस ज्ञान का सहारा लेकर मेरे स्वरूप को प्राप्त हुए (लोग), उत्पत्ति काल में भी जन्म नहीं लेते, और प्रलय काल में, दुःखी नहीं होते ।

**१४.३ मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥**

मम योनिर् महद् ब्रह्म, - -
तस्मिन् गर्भं दधाम्य् अहम्
संभवः सर्वभूतानां
ततो भवति भारत - -

मम योनिः महत् ब्रह्म तस्मिन् गर्भम् दधामि अहम्
संभवः सर्वभूतानाम् ततः भवति भारत

विशाल अव्यक्त प्रकृति मेरी योनि है, मैं उसमें गर्भ स्थापित करता हूं । सब जड़-चेतनादि की तब, उत्पत्ति होती है, भारत !

**१४.४ सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥**

सर्वयोनिषु, कौन्तेय, – –
मूर्तयः संभवन्ति याः
तासां ब्रह्म महद् योनिर्
अहं बीजप् प्रदः पिता

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः
तासाम् ब्रह्म महत् योनिः अहम् बीजप्रदः पिता

सब योनियों में, कौन्तेय । जो भी मूर्ति–आकार उत्पन्न होते हैं, उनका गर्भस्थल, विशाल अव्यक्त प्रकृति है, मैं बीज डालने वाला पिता हूं ।

**१४.५ सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥**

सत्त्वं रजस् तम इति – –
गुणाः प्रकृति संभवाः
निबध्नन्ति महाबाहो,
देहे देहिनम् अव्ययम्

सत्त्वम् रजः तमः इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः
निबध्नन्ति महाबाहो, देहे देहिनम् अव्ययम्

सत्त्व, रज, और तम, ऐसे प्रकृति से उत्पन्न (तीन) गुण हैं । हे महाबाहो । वे शरीर में जकड़ कर रखते हैं, देहधारी को – जो अक्षय है ।

१४.६ तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ॥

तत्र सत्त्वं, निर्मलत्वात्,
प्रकाशकम् अनामयम्
सुखसंगेन बध्नाति, - -
ज्ञानसंगेन चा (अ)नघ - -

तत्र सत्त्वम् निर्मलत्वात् प्रकाशकम् अनामयम्
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन च अनघ

इनमें, सत्त्वगुण, निर्मल होने के कारण प्रकाश देने वाला और आरोग्यकर है । यह (देहधारी को) बांध लेता है - सुख और ज्ञान की आसक्ति के साथ, अनघ !

१४.७ रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम् ॥

रजो रागात्मकं विद्धि, - -
तृष्णासंग समुद्भवम्
तन् निबध्नाति, कौन्तेय, - -
कर्मसंगेन देहिनम्

रजः रागात्मकम् विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम्
तत् निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम्

रजोगुण, तू समझ, अनुराग और वासनामय है, तृष्णा और आसक्ति का स्रोत है । वह बांध लेता है कौन्तेय ! देहधारी को, कर्म की आसक्ति के साथ ।

१४.८ तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥

तमस् त्व् अज्ञानजं विद्धि, – –
मोहनम् सर्व देहिनाम्
प्रमादालस्य निद्राभिस्
तन् निबध्नाति, भारत – –

तमः तु अज्ञानजम् विद्धि मोहनम् सर्वदेहिनाम्
प्रमादालस्यनिद्राभिः तत् निबध्नाति भारत

परन्तु तमोगुण को, तू अज्ञान से उत्पन्न हुआ समझ, जो सब देहधारियों को मोह में डालने वाला है; (और), उसे (देहधारी को) प्रमाद, आलस और निद्रा से बांधता है, भारत ।

१४.९ सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥

सत्त्वं सुखे संजयति, – –
रजः कर्मणि, भारत – –
ज्ञानम् आवृत्य तु तमः
प्रमादे संजयत्य् उत – –

सत्त्वम् सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत
ज्ञानम् आवृत्य तु तमः प्रमादे संजयति उत

सत्त्वगुण (देहधारी को) सुख में लगाता है, रजोगुण कर्म में, भारत । परन्तु, तमोगुण, ज्ञान को ढक कर भ्रम-भ्रान्ति में आसक्ति उत्पन्न कराता है । सच ।

**१४.१० रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥**

रजस् तमश् चा (अ)भिभूय - -
सत्त्वं भवति, भारत - -
रजः सत्त्वं तमश् चै (ए)व, - -
तमः सत्त्वं रजस् तथा

रजः तमः च अभिभूय सत्त्वम् भवति भारत
रजः सत्त्वम् तमः च एव तमः सत्त्वम् रजः तथा

रज और तम को पराजित करके सत्त्वगुण प्रबल होता है, भारत । और रजोगुण, सत्त्व और तम को । उसी प्रकार, तमोगुण, सत्त्व और रज को, (पराजित करके) ।

**१४.११ सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥**

सर्वद्द्वारेषु देहे (अ)स्मिन्
प्रकाश उपजायते
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्
विवृद्धं सत्त्वम् इत्य् उत - -

सर्वद्वारेषु देहे अस्मिन् प्रकाशः उपजायते
ज्ञानम् यदा तदा विद्यात् विवृद्धम् सत्त्वम् इति उत

इस देह के सब द्वारों में, ज्ञान का प्रकाश, जब फूट पड़ता है, तब ऐसा जानना चाहिए कि सत्त्वगुण की सचमुच, वृद्धि हुई है ।

१४.१२ लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥

लोभः प्रवृत्तिर्- आरम्भः
कर्मणाम् अशमः स्पृहा
रजस्य् एतानि जायन्ते
विवृद्धे भरतर्षभ - -

लोभः प्रवृत्तिः आरम्भः कर्मणाम् अशमः स्पृहा
रजसि एतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ

लोभ, संसार में अनुरक्ति, कर्मों को आरम्भ करने की इच्छा, अशान्ति और लालसा - ये उत्पन्न होते हैं, बढ़े हुए रजोगुण में, भरतर्षभ ।

१४.१३ अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥

अप्रकाशो (अ)प्रवृत्तिश्च, - -
प्रमादो मोह एव च - -
तमस्य् एतानि जायन्ते
विवृद्धे, कुरुनन्दन - -

अप्रकाशः अप्रवृत्तिः च प्रमादः मोहः एव च
तमसि एतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन

अज्ञान, किसी भी काम को करने की अनिच्छा, असावधानी और मोह भी, ये उत्पन्न होते हैं, बढ़े हुए तमोगुण में, कुरुनन्दन ।

**१४.१४ यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥**

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु – –
प्रलयं याति देहभृत्
तदो (अ)त्तमविदां लोकान्
अमलान् प्रतिपद्यते

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयम् याति देहभृत्
तदा उत्तमविदाम् लोकान् अमलान् प्रतिपद्यते

वास्तव में, बढ़े हुए सत्त्वगुण में, जब देहधारी विलय को प्राप्त होता है, तब वह, उनके निर्मल लोकों को पा जाता है,–जो सर्वोच्च को जानते हैं ।

**१४.१५ रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥**

रजसिप् प्रलयं गत्वा
कर्मसंगिषु जायते
तथा प्रलीनस् तमसि, – –
मूढयोनिषु जायते

रजसि प्रलयम् गत्वा कर्मसंगिषु जायते
तथा प्रलीनः तमसि मूढयोनिषु जायते

रजोगुण में विलय को प्राप्त होकर (वह) उनके बीच जन्म लेता है जो कर्म में आसक्त हैं । और इसी प्रकार, तमोगुण में विलय को प्राप्त हुआ, मूढ-योनियों में जन्म लेता है ।

१४.१६ कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥

कर्मणः सुकृतस्या (आ)हुः
सात्त्विकं निर्मलं फलम्
रजसस् तु फलं दुःखम्
अज्ञानं तमसः फलम्

कर्मणः सुकृतस्य आहुः सात्त्विकम् निर्मलम् फलम्
रजसः तु फलम् दुःखम् अज्ञानम् तमसः फलम्

कहते हैं, सत्कर्म का फल सात्त्विक और निर्मल है, रजोगुण का फल, वास्तव में, दुःख है, (और) अज्ञान, तमोगुण का फल है ।

१४.१७ सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥

सत्त्वात् संजायते ज्ञानं,
रजसो लोभ एव च - -
प्रमादमोहौ तमसो
भवतो (अ)ज्ञानम् एव च - -

सत्त्वात् संजायते ज्ञानम् रजसः लोभः एव च
प्रमादमोहौ तमसः भवतः अज्ञानम् एव च

सत्त्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगुण से एकमात्र लोभ । भ्रम-भ्रांति और मोह, तमोगुण से आते हैं, और अज्ञान भी ।

१४.१८ ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥

ऊर्ध्वंगच्छन्ति सत्त्वस्था,
मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः
जघन्यगुणवृत्तिस्था
अधो गच्छन्ति तामसाः

ऊर्ध्वम् गच्छन्ति सत्त्वस्थाः मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः
जघन्यगुणवृत्तिस्थाः अधः गच्छन्ति तामसाः

वे ऊपर की ओर उठते हैं, जो सत्त्व गुण में स्थित हैं; बीच में वे रहते हैं, जो रजोगुण वाले हैं, और निकृष्ट गुण वृति वाले, अधोगति को जाते हैं, तामसी ।

१४.१९ नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥

ना (अ)न्यं गुणेभ्यः कर्तारं
यदा द्रष्टा (अ)नुपश्यति - -
गुणेभ्यश् च परं वेत्ति, - -
मद्भावं सो (अ)धिगच्छति - -

न अन्यम् गुणेभ्यः कर्तारम् यदा द्रष्टा अनुपश्यति
गुणेभ्यः च परम् वेत्ति मद्भावम् सः अधिगच्छति

(तीनों) गुणों के अतिरिक्त और कोई कर्त्ता नहीं है, जब देखने वाला इस (बात) का अनुभव करता है और जानता है (उसे), जो गुणों से परे है, (तब) वह मेरे स्वरूप को प्राप्त हो जाता है ।

१४.२० गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥

गुणान् एतान् अतीत्यत् त्रीन्
देही देहसमुद्भवान्
जन्म मृत्यु जरा दुःखैर्
विमुक्तो (अ)मृतम् अश्नुते

गुणान् एतान् अतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान्
जन्ममृत्युजरादुःखैः विमुक्तः अमृतम् अश्नुते

देह को उत्पन्न करने वाले इन तीन गुणोंको, देहधारी जब पार कर लेता है, वह, जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और दुखों से मुक्त हुआ, अमरत्व को प्राप्त करता है ।

१४.२१ अर्जुन उवाच-
कैर्लिंगैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥

कैर्लिंगैस् त्रीन् गुणान् एतान्
अतीतो भवतिप्, प्रभो
किमाचारः कथं चै (ए)तांस्
त्रीन् गुणान् अतिवर्तते

कैः लिंगैः त्रीन् गुणान् एतान् अतीतः भवति प्रभो
किमाचारः कथम् च एतान् त्रीन् गुणान् अतिवर्तते

अर्जुन उवाच-

हे प्रभो ! उसके लक्षण क्या हैं, जिसने इन तीनों गुणों को पार किया है; उसका आचरण क्या है, और वह कैसे इन तीनों गुणों को लांघ जाता है ?[1]

१. त्रिगुणातीत के लक्षण के सम्बन्ध में यहाँ से अध्यायान्त तक का प्रकरण लगभग वैसा ही है जो स्थितप्रज्ञ (२.५५) या प्रियभक्त (१२.१२) का है।

१४.२२ श्रीभगवानुवाच–
प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च – –
मोहम् एव च, पाण्डव – –
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि, – –
न निवृत्तानि कांक्षति – –

प्रकाशम् च प्रवृतिम् च मोहम् एव च पाण्डव
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति

श्री भगवान् उवाच–
हे पाण्डव ! प्रकाश (सत्त्व), प्रवृत्ति (रज), और मोह (तम) के भी प्राप्त होने पर जो न उनसे द्वेष करता है (और) उनके दूर हो जाने पर, न आकांक्षा;

१४.२३ उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेंगतें ॥

उदासीनवद् आसीनो
गुणैर् यो न विचाल्यते
गुणा वर्तन्त इत्य् एव – –
यो (अ)वतिष्ठति नें (इ)गते

उदासीनवत् आसीनः गुणैः यः न विचाल्यते
गुणाः वर्तन्ते इति एव यः अवतिष्ठति न इंगते

तटस्थ सा स्थित हुआ, जो गुणों द्वारा विचलित नहीं होता, (यह मानते हुए कि) गुणों का चक्र इसी प्रकार चलता है,– दृढ स्थिर रहता है, डगमगाता नहीं ;

१४.२४ समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥

समदुःखसुखः स्वस्थः
समलोष्टाश्मकाञ्चनः
तुल्यप् प्रियाप्रियो धीरस्
तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः
तुल्यप्रियाप्रियः धीरः तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः

जो सुख दुःख में एक सा है, अपने आप में स्थित है, जिसके लिए मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण एक समान हैं, जिसके लिए प्रिय और अप्रिय एक बराबर हैं, जो धैर्यवान् है, निन्दा और आत्मप्रशंसा जिसके लिए एक ही हैं;-

१४.२५ मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥

मानापमानयोस् तुल्यस्
तुल्यो मित्रारिपक्षयोः
सर्वारम्भपरित्यागी
गुणातीतः स उच्यते

मानापमानयोः तुल्यः तुल्यः मित्रारिपक्षयोः
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः सः उच्यते

जो मान और अपमान में एक सा रहता है, जिसके लिए मित्र और शत्रु पक्ष एक से हैं, जिसने सब (सकाम) कार्यारम्भ छोड़ दिए हैं, उसे, "गुणों से परे चला गया" कहते हैं।

१४.२६ मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

मां च यो (अ)व्यभिचारेण – –
भक्तियोगेन सेवते
स गुणान् समतीत्यै (ए)तान्
ब्रह्मभूयाय कल्पते

माम् च यः अव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते
सः गुणान् समतीत्य एतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते

और, जो एकनिष्ठ भक्ति-योग से मेरी आराधना करता है, वह इन गुणों को पूर्णतः पार कर के, ब्रह्म रूप होने के योग्य होता है।

१४.२७ ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥

ब्रह्मणो हिप् प्रतिष्ठा (अ)हम्
अमृतस्या (अ)व्ययस्य च – –
शाश्वतस्य च धर्मस्य, – –
सुखस्यै (ऐ)कान्तिकस्य च – –

ब्रह्मणः हि प्रतिष्ठा अहम् अमृतस्य अव्ययस्य च
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्य ऐकान्तिकस्य च

वास्तव में मैं (निवास) स्थान हूं – ब्रह्म का, अमरत्व और अविनाशी का, और सदैव बने रहने वाले धर्म का, और अनन्त सुख का।

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः
समाप्तः ।

परिचय-१५

अध्याय १३ में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ ज्ञान के अन्तर्गत प्रकृति और पुरुष का वर्णन किया है। प्रकृति जड़ है। पुरुष अकर्ता है, तटस्थ रहता है पर दोनो के संयोग से पुरुष में भोक्तापन का आभास होता है। यह द्वैत-ज्ञान, सांख्यमतानुसार है।

अध्याय १४ में प्रकृति के उन गुणों की व्याख्या है जो देहधारी को शरीर में बांध कर रखते हैं।

अब १५वें अध्याय में अद्वैत मतानुसार ईश्वर की सर्वव्यापकता का पुनः निरूपण करते हैं। यह क्षर से परे है, अक्षर से भी श्रेष्ठ है। इसे वेद में "पुरुषोत्तम" कहा है।

अध्याय १५ का नाम है "पुरुषोत्तम योग"[१] ।

१. अध्यात्म विषयक संपूर्ण प्रक्रिया का, इस अध्याय में, अद्वितीय वर्णन है, संक्षेप में।

श्रीमद्भगवद् गीता

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरूषोत्तम योगः)

१५.१ **श्रीभगवानुवाच-**
ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥

ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम्
अश्वत्थं प्राहुर् अव्ययम्
छन्दांसि यस्य पर्णानि, - -
यस् तं वेद स वेदवित्

ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम् अश्वत्थम् प्राहुः अव्ययम्
छन्दांसि यस्य पर्णानि यः तम् वेद सः वेदवित्

श्रीभगवान् उवाच-
जिसकी जड़ें ऊपर हैं, शाखाएं नीचे हैं उस "अश्वत्थ" वृक्ष को अविनाशी कहा गया है । उसके पत्ते, वेद हैं । जो उसे जानता है, वह वेद का ज्ञाता है[१] ।

१. यह ब्रह्म वृक्ष अथवा संसार वृक्ष का वर्णन है। जड़ें ऊपर (ब्रह्म में) हैं, शाखाएं नीचे, (संसार में) । दूसरे श्लोक में जो नीचे की ओर फैली जड़ों का संकेत है, वे अमौलिक और अनेक हैं, जैसी बट वृक्ष की ।

१५.२ अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥

अधश् चो (ऊ)र्ध्वं प्रसृतास् तस्य शाखा
गुणप्प्रवृद्धा विष्यप् प्रवालाः
अधश्च मूलान्य् अनुसंततानि, - -
कर्मानुबन्धीनि मनुष्य लोके

अधः च ऊर्ध्वम् प्रसृताः तस्य शाखाः गुणप्रवृद्धाः विषयप्रवालाः
अधः च मूलानि अनुसंततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके

उस (वृक्ष) की शाखाएं नीचे ऊपर फैली हैं । ये गुणों से पोषित हैं, विषय इनकी कोपलें हैं । जो जड़ें उसके नीचे की ओर फैली हैं, वे कर्मों के बन्धन हैं - मनुष्य लोक में ।

१५.३ न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥

न रूपम् अस्ये (इ)ह तथो (उ)पलभ्यते,
ना (अ)न्तो न चा (आ)दिर् न च संप्रतिष्ठा
अश्वत्थम् एनं सुविरूढमूलम्
असंग शस्त्रेण दृढेन छित्त्वा

न रूपम् अस्य इह तथा उपलभ्यते न अन्तः न च आदिः न च संप्रतिष्ठा
अश्वत्थम् एनम् सुविरूढमूलम् असंग शस्त्रेण दृढेन छित्त्वा

इस (वृक्ष) का, इस प्रकार का रूप, यहां उपलब्ध नहीं, न अन्त है और न आदि, और न कोई आधार है । इस अश्वत्थ को, जिसकी जड़ें अति दृढ हैं, अनासक्ति के कठोर शस्त्र से काट कर--

१५.४ ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ।
तमेव चाद्यं पुरूषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ।।

ततः पदं तत् परिमार्गितव्यं,
यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः
तम् एव चा (आ)द्यं पुरूषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी

ततः पदम् तत् परिमार्गितव्यम् यस्मिन् गताः न निवर्तन्ति भूयः
तम् एव च आद्यम् पुरूषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी

तब, उस स्थान को भली प्रकार ढूंढना चाहिए, जहां पहुंचकर, फिर लौटना नहीं पड़ता । और, (यह कहते हुए ढूंढना चाहिए कि) मैं एकमात्र उस आदि पुरूष की शरण में जाता हूं, जहां से यह पुरातन सृष्टिचक्र चल पड़ा है ।

१५.५ निर्मानमोहा जितसंगदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ।।

निर्मानमोहा जितसंग दोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः
द्वन्द्वैर् विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्
गच्छन्त्य् अमूढाः पदम् अव्ययं तत्

निर्मानमोहाः जितसंगदोषाः अध्यात्मनित्याः विनिवृत्तकामाः
द्वन्द्वैः विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैः गच्छन्ति अमूढाः पदम् अव्ययम् तत्

मान और मोह से रहित, जिन्होंने आसक्ति दोषों को जीत लिया है, जो अध्यात्म ज्ञान[२] में सदा स्थिर हैं, जिनकी कामनाएं पूर्णतः शांत हो गई हैं, जो सुखदुःख नाम के द्वंद्वों से मुक्त हैं, वे ज्ञानीजन पहुंच जाते हैं, उस अविनाशी स्थान को ।

२. देखिए श्लोक ८.३

१५.६ न तद् भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

न तद् भासयते सूर्यो,
न शशांको न पावकः
यद् गत्वा न निवर्तन्ते
तद् धाम परमं मम – –

न तत् भासयते सूर्यः न शशांकः न पावकः
यत् गत्वा न निवर्तन्ते तत् धाम परमम् मम

न उसको सूर्य प्रकाशित करता है, न चन्द्रमा, न अग्नि । जहां जाकर लौटते नहीं, वह मेरा सर्वोत्तम धाम है ।

१५.७ ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

ममै (ए)वां (अं)शो जीवलोके
जीवभूतः सनातनः
मनः षष्ठानी (इ)न्द्रियाणि – –
प्रकृतिस्थानि कर्षति – –

मम एव अंशः जीवलोके जीवभूतः सनातनः
मनःषष्ठानि इन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति

मेरा ही अंश सनातन, जीवलोक में जीव (रूप) होकर, मन सहित छः, इन्द्रियों को, जो प्रकृति में स्थित हैं, खींचता है ।

**१५.८ शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥**

शरीरं यद् अवाप्नोति - -
यच् चा (अ)प्य् उत्क्रामती (ई)श्वरः
गृहीत्वै (ए)तानि संयाति, - -
वायुर् गन्धान् इवा (आ)शयात्

शरीरम् यत् अवाप्नोति यत् च अपि उत्क्रामति ईश्वरः
गृहीत्वा एतानि संयाति वायुः गन्धान् इव आशयात्

ईश्वर (का अंश 'जीव') जब शरीर धारण करता है, और, जब उससे प्रस्थान भी करता है, तब वह इन (मन और पांचो ज्ञान इन्द्रियों) को साथ लेकर जाता है, जैसे वायु गन्ध को, उसके (पुष्प आदि) स्थान से ।

**१५.९ श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥**

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च - -
रसनं घ्राणम् एव च - -
अधिष्ठाय, मनश् चा (अ)यं
विषयान् उपसेवते

श्रोत्रम् चक्षुः स्पर्शनम् च रसनम् घ्राणम् एव च
अधिष्ठाय मनः च अयम् विषयान् उपसेवते

कान, आंख और त्वचा, जिह्वा और नासिका, और मन का भी, आधार लेकर यह (जीव) विषयों का सेवन करता है ।

१५.१० उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥

उत्क्रामन्तं स्थितं वा (अ)पि - -
भुञ्जानं वा गुणान्वितम्
विमूढा ना (अ)नुपश्यन्ति - -
पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः

उत्क्रामन्तम् स्थितम् वा अपि भुञ्जानम् वा गुणान्वितम्
विमूढाः न अनुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः

(शरीर से) जाते हुए अथवा ठहरे हुए, भोग करते अथवा गुणों के साथ जुड़े हुए (इस) को, मोह में पड़े लोग नहीं देखते। देखते हैं, ज्ञान नेत्रों वाले।

१५.११ यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥

यतन्तो योगिनश् चै (ए)नं
पश्यन्त्य् आत्मन्य् अवस्थितम्
यतन्तो (अ)प्य् अकृतात्मानो
नै (ए)नं पश्यन्त्य् अचेतसः

यतन्तः योगिनः च एनम् पश्यन्ति आत्मनि अवस्थितम्
यतन्तः अपि अकृतात्मानः न एनम् पश्यन्ति अचेतसः

और, प्रयत्न करते हुए योगी इसे देखते हैं - अपने में स्थित हुआ। परन्तु, जिन्होंने अपने को सुसंस्कृत नहीं किया है, वे प्रयत्न करते हुए भी इसे नहीं देखते, बुद्धिहीन हैं।

१५.१२ यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥

यद् आदित्यगतं तेजो
जगद्द भासयते (अ)खिलम्
यच् चन्द्रमसि, यच् चा (अ)ग्नौ,
तत् तेजो विद्धि मामकम्

यत् आदित्यगतम् तेजः जगत् भासयते अखिलम्
यत् चन्द्रमसि यत् च अग्नौ तत् तेजः विद्धि मामकम्

जो सूर्य में स्थित तेज, अखण्ड जगत् को प्रकाशित करता है, जो चन्द्रमा में और अग्नि में है, वह तेज, तू समझ, मेरा है ।

१५.१३ गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥

गाम् आविश्य च भूतानि --
धारयाम्य् अहम् ओजसा
पुष्णामि चौ (औ)षधीः सर्वाः
सोमो भूत्वा रसात्मकः

गाम् आविश्य च भूतानि धारयामि अहम् ओजसा
पुष्णामि च औषधीः सर्वाः सोमः भूत्वा रसात्मकः

और, पृथ्वी में समाकर (समस्त) जड़-चेतनादि को, अपने बल से मैं थामे रहता हूं । और, सब वनस्पतियों का मैं पोषण करता हूं, रसमय चन्द्रमा होकर ।

**१५.१४ अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥**

अहं वैश्वानरो भूत्वा,
प्राणिनां देहम् आश्रितः
प्राणापानसमायुक्तः,
पचाम्य् अन्नं चतुर्विधन्

अहम् वैश्वानरः भूत्वा प्राणिनाम् देहम् आश्रितः
प्राणापानसमायुक्तः पचामि अन्नम् चतुर्विधम्

मैं वैश्वानर (जठराग्नि) होकर, प्राणियों के शरीर में प्रविष्ट हुआ, आने जाने वाली श्वासों से मिल कर चारों प्रकार के भोजन[३] पचाता हूं ।

**१५.१५ सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥**

सर्वस्य चा (अ)हं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर् ज्ञानम् अपोहनं च - -
वेदैश् च सर्वैर् अहम् एव वेद्यो
वेदान्तकृद् वेदविद् एव चा (अ)हम्

सर्वस्य च अहम् हृदि संनिविष्टः मत्तः स्मृतिः ज्ञानम् अपोहनम् च
वेदैः च सर्वैः अहम् एव वेद्यः वेदान्तकृत् वेदवित् एव च अहम्

और, सब के हृदय में, मैं बैठा हुं । स्मृति और ज्ञान मुझसे हैं और (उनका) विस्मरण भी; और, सब वेदों द्वारा जानने योग्य भी मैं हूं । वेदान्त का कर्ता और वेद जानने वाला भी मैं हूं ।

(३) भक्ष्य, चोष्य, लेह्य, और पेय ।

१५.१६ द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥

द्वाव् इमौ पुरुषौ लोके
क्षरश् चा (अ)क्षर एव च - -
क्षरः सर्वाणि भूतानि, - -
कूटस्थो (अ)क्षर उच्यते

द्वौ इमौ पुरुषौ लोके क्षरः च अक्षरः एव च
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थः अक्षरः उच्यते

इस संसार में दो पुरुष हैं - क्षर और अक्षर,[४] सम्पूर्ण जड़-चेतनादि को क्षर, और जो इनमें दृढ स्थित है, उसे अक्षर कहते हैं ।

१५.१७ उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥

उत्तमः पुरुषस् त्व् अन्यः
परमात्मे (इ)त्य् उदाहृतः
यो लोकत्रयम् आविश्य - -
बिभर्त्य् अव्यय ईश्वरः

उत्तमः पुरुषः तु अन्यः परमात्मा इति उदाहृतः
यः लोकत्रयम् आविश्य बिभर्ति अव्ययः ईश्वरः

वास्तव में, सर्वोपरि पुरुष कोई और है - वह ऐसे 'परमात्मा' कहलाता है, जो तीनों लोकों में समाकर, उनका भरण पोषण करता है, वह अव्यय है, ईश्वर है।

४. अर्थात् नाशवान् और अविनाशी ।

**१५.१८ यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरूषोत्तमः ॥**

यस्मात् क्षरम् अतीतो (अ)हम्
अक्षराद् अपि चो (उ)त्तमः
अतो (अ)स्मि लोके वेदे च - -
प्रथितः पुरूषोत्तमः

यस्मात् क्षरम् अतीतः अहम् अक्षरात् अपि च उत्तमः
अतः अस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः

क्योंकि मैं क्षर से परे हूं और अक्षर से भी श्रेष्ठ हूं, अतएव लोक और वेद में मुझे 'पुरूषोत्तम' कहा है ।

**१५.१९ यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरूषोत्तमम् ।
स सर्वविद् भजति मां सर्वभावेन भारत ॥**

यो माम् एवम् असंमूढो
जानाति पुरुषोत्तमम्
स सर्वविद् भजति मां
सर्वभावेन भारत - -

यः माम् एवम् असंमूढः जानाति पुरुषोत्तमम्
सः सर्ववित् भजति माम् सर्वभावेन भारत

जो मोहरहित पुरूष मुझे इस प्रकार 'पुरूषोत्तम' जानता है, वह सब कुछ जानता है और मुझे भजता है, सर्वभाव से, भारत ।

**१५.२० इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।
एतद् बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥**

इति गुह्यतमं शास्त्रम्
इदम् उक्तं मया (अ)नघ - -
एतद्द बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात्
कृतकृत्यश् च, भारत - -

इति गुह्यतमम् शास्त्रम् इदम् उक्तम् मया अनघ
एतत् बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यः च भारत

इस प्रकार यह सर्व गोपनीय शास्त्र, मैं ने कहा है, अनघ ! इसे जान कर (मनुष्य) को बुद्धिमान, और (उसके) कर्त्तव्य कर्म सम्पूर्ण, हो जाना चाहिएं हे भारत !

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः
समाप्तः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

परिचय-१६

अध्याय ७ में ऐसे ज्ञान का विज्ञान सहित उपदेश किया है जिससे मनुष्य पूर्ण रूप से भगवान् को जान ले। यह उपदेश करते- करते श्लोक ७.२४ में भगवान् ने उन अविवेकी लोगों का उल्लेख मात्र किया "जो मुझ अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष मानते हैं"।

और फिर, अध्याय ९ में परम गोपनीय राजविद्या बतलाते हुए कहते हैं "मूढ़ लोग मेरा तिरस्कार करते हैं कि मैं मनुष्य शरीर का आश्रय लेता हूं। ऐसे लोग स्वयं राक्षसी और आसुरी वृत्ति का सहारा लिए रहते हैं।"

अध्याय १६ में दैवी और आसुरी स्वभाव वालों का विस्तार से वर्णन करते हैं- विषमताएं बतलाते हुए।

अध्याय १६ का नाम है "दैवासुर संपद् विभाग योग"।

श्रीमद्भगवद् गीता

अथ षोडशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसंपद्विभागयोगः)

१६.१ श्रीभगवानुवाच-
अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्
ज्ञानयोगव् व्यवस्थितिः
दानं दमश् च, यज्ञश् च, - -
स्वाध्यायस् तप आर्जवम्

अभयम् सत्त्वसंशुद्धिः ज्ञानयोगव्यवस्थितिः
दानम् दमः च यज्ञः च स्वाध्यायः तपः आर्जवम्

श्रीभगवान् उवाच-
निर्भयता, अन्तःकरण की शुद्धता, ज्ञान और योग में दृढता, दान, इन्द्रियसंयम और यज्ञ, स्वाध्याय, तप और सरलता;

१६.२ **अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।**
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥

अहिंसा सत्यम् अक्रोधस्
त्यागः शान्तिर् अपैशुनम्
दया भूतेष्व् अलोलुप्त्वं,
मार्दवं ह्रीर् अचापलम्

अहिंसा सत्यम् अक्रोधः त्यागः शान्तिः अपैशुनम्
दया भूतेषु अलोलुप्त्वम् मार्दवम् ह्रीः अचापलम्

अहिंसा, सत्य, क्रोध का न होना, त्याग, शान्ति, पीठ पीछे निन्दा न करना, प्राणि मात्र में दया, लिप्सा का अभाव, मृदुता, शील संकोच, अचपलता;

१६.३ **तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।**
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥

तेजः क्षमा धृतिः शौचम्
अद्रोहो ना (अ)तिमानिता
भवन्ति संपदं दैवीम्
अभिजातस्य, भारत - -

तेजः क्षमा धृतिः शौचम् अद्रोहः नातिमानिता
भवन्ति संपदम् दैवीम् अभिजातस्य भारत

तेज, क्षमा, सहनशक्ति, पवित्रता, द्वेषरहित होना, अपने को अधिक न मानना, ये हैं उसकी सम्पदाएं- जो दैवी स्वभाव से उत्पन्न हुआ है, भारत !

१६.४ **दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥**

दम्भो दर्पो (अ)भिमानश् च, - -
क्रोधः पारुष्यम् एव च - -
अज्ञानं चा (अ)भिजातस्य, - -
पार्थ, संपदम् आसुरीम्

दम्भः दर्पः अभिमानः च क्रोधः पारुष्यम् एव च
अज्ञानम् च अभिजातस्य पार्थ संपदम् आसुरीम्

पाखण्ड, उद्दण्डता और घमण्ड, क्रोध और कर्कशता, और अज्ञान भी; ये हैं उसकी सम्पदाएं, पार्थ । - जो आसुरी स्वभाव से उत्पन्न हुआ है ।

१६.५ **दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥**

दैवी संपद् विमोक्षाय, - -
निबन्धाया (आ)सुरी मता
मा शुचः, संपदं दैवीम्
अभिजातो (अ)सि, पाण्डव - -

दैवी संपत् विमोक्षाय निबन्धाय आसुरी मता
मा शुचः संपदम् दैवीम् अभिजातः असि पाण्डव

दैवी सम्पदाएं, मुक्त करने के लिए हैं, आसुरी, बन्धन में डालने के लिए हैं, ऐसा माना जाता है । तू शोक मत कर । तू (तो) दैवी सम्पदाएं (ही) लेकर उत्पन्न हुआ है, पाण्डव ।

१६.६ द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥

द्वौ भूतसर्गौ लोके (अ)स्मिन्,
दैव आसुर एव च - -
दैवो विस्तरशः प्रोक्त, - -
आसुरं पार्थ मे शृणु - -

द्वौ भूतसर्गौ लोके अस्मिन् दैवः आसुरः एव च
दैवः विस्तरशः प्रोक्तः आसुरम् पार्थ मे शृणु

इस लोक में दो प्रकार के प्राणी उत्पन्न होते हैं - दैवी और आसुरी भी। (ऊपर) दैवी प्राणियों का वर्णन विस्तार से किया है, (अब) आसुरी लोगों के विषय में पार्थ ! मुझसे सुन।

१६.७ प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च - -
जना न विदुर् आसुराः
न शौचं ना (अ)पि चा (आ)चारो,
न सत्यं तेषु विद्यते

प्रवृत्तिम् च निवृत्तिम् च जनाः न विदुः आसुराः
न शौचम् न अपि च आचारः न सत्यम् तेषु विद्यते

आसुरी लोग नहीं जानते क्या करना चाहिए, और (जो करते हैं, उससे) कैसे मुक्ति पांए। न उनमें पवित्रता है, और न आचरण भी, और न सत्यता।

१६.८ असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥

असत्यम् अप्प्रतिष्ठं ते
जगद् आहुर् अनीश्वरम्
अपरस्परसंभूतं,
किम् अन्यत् कामहैतुकम्

असत्यम् अप्रतिष्ठम् ते जगत् आहुः अनीश्वरम्
अपरस्परसंभूतम् किम् अन्यत् कामहैतुकम्

वे कहते हैं, संसार असत्य, निराधार और बिना ईश्वर के है। एक दूसरे के संयोग से उत्पन्न हुआ है, विषयवासना के अतिरिक्त, (इसका), और क्या हेतु है;

१६.९ एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥

एतां दृष्टिम् अवष्टभ्य, - -
नष्टात्मानो (अ)ल्पबुद्धयः
प्रभवन्त्य् उग्रकर्माणः,
क्षयाय जगतो (अ)हिताः

एताम् दृष्टिम् अवष्टभ्य नष्टात्मानः अल्पबुद्धयः
प्रभवन्ति उग्रकर्माणः क्षयाय जगतः अहिताः

इस दृष्टिकोण से जकड़े हुए, भ्रष्ट-लोग, अल्पबुद्धि, भयंकर कर्म करने वाले, उत्पन्न होते हैं,- संसार का नाश करने के लिए, उसके शत्रु ।

**१६.१० काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद् गृहीत्वासद्ग्राहान् प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥**

कामम् आश्रित्य दुष्पूरं,
दम्भमानमदान्विताः
मोहाद् गृहीत्वा (अ)सद्ग्राहान्,
प्रवर्तन्ते (अ)शुचिव् व्रताः

कामम् आश्रित्य दुष्पूरम् दम्भमानमदान्विताः
मोहात् गृहीत्वा असद्ग्राहान् प्रवर्तन्ते अशुचिव्रताः

कभी न तृप्त होने वाली इच्छाओं का आसरा लेकर, ढोंग, घमण्ड और उन्माद से भरे हुए, मोह के कारण दुर्व्यसनों को पकड़े हुए, ये कर्म करते हैं, अशुद्ध निश्चय वाले ।

**१६.११ चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥**

चिन्ताम् अपरिमेयां च - -
प्रलयान्ताम् उपाश्रिताः
कामोपभोगपरमा,
एतावद् इति निश्चिताः

चिन्ताम् अपरिमेयाम् च प्रलयान्ताम् उपाश्रिताः
कामोपभोगपरमाः एतावत् इति निश्चिताः

अपरिमित, और मृत्यु के साथ ही अन्त होने वाली चिन्ताओं में पड़े - "भोग विलास ही सर्वोच्च है," "यही सब कुछ है", इस प्रकार से आश्वस्त हुए;

१६.१२ **आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।**
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥

आशापाशशतैर् बद्धाः,
कामक् क्रोधपरायणाः
ईहन्ते कामभोगार्थम्
अन्यायेना (अ)र्थसञ्चयान्

आशापाशशतैः बद्धाः कामक्रोधपरायणाः
ईहन्ते कामभोगार्थम् अन्यायेन अर्थसञ्चयान्

आशा की सैंकड़ों रस्सियों में बँधे, काम क्रोध में लीन, वे प्रयास करते हैं भोगविलास के लिए,- अन्याय पूर्वक, ढेर सा धन संग्रह करने का ।

१६.१३ **इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।**
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥

इदम् अद्य मया लब्धम्
इमं प्राप्स्ये मनोरथम्
इदम् अस्ती (इ)दम् अपि मे
भविष्यति पुनर् धनम्

इदम् अद्य मया लब्धम् इमम् प्राप्स्ये मनोरथम्
इदम् अस्ति इदम् अपि मे भविष्यति पुनः धनम्

"आज मैंने इसे पा लिया है । (कल) इस मनोरथ को पा लूंगा । यह धन मेरा है, और भविष्य में भी, फिर, यह मेरा होगा";

१६.१४ असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥

असौ मया हतः शत्रुर्
हनिष्ये चा (अ)परान् अपि - -
ईश्वरो (अ)हम् अहं भोगी,
सिद्धो (अ)हं, बलवान् सुखी

असौ मया हतः शत्रुः हनिष्ये च अपरान् अपि
ईश्वरः अहम् अहम् भोगी सिद्धः अहम् बलवान् सुखी

"इस शत्रु को मैंने मार दिया है, और दूसरों को भी मारूंगा । मैं ईश्वर हूं, मैं भोगी हूं, मैं सिद्ध हूं,- बलवान्, सुखी ।

१६.१५ आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥

आढ्यो (ऽ)भिजनवान् अस्मि, - -
को (अ)न्यो ।अ)स्ति सदृशो मया
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य - -
इत्य् अज्ञानविमोहिताः

आढ्यः अभिजनवान् अस्मि कः अन्यः अस्ति सदृशः मया
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्ये - इति अज्ञानविमोहिताः

"मैं धनवान् हूं, कुलीन हूं । मेरे समान दूसरा कौन है; मैं यज्ञ करूंगा, दान दूंगा, आनन्द मनाऊंगा ।" इस प्रकार अज्ञान से मोहित, -

**१६.१६ अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥**

अनेकचित्तविभ्रान्ता,
मोहजालसमावृताः
प्रसक्ताः कामभोगेषु, - -
पतन्ति नरके (अ)शुचौ

अनेकचित्तविभ्रान्ताः मोहजालसमावृताः
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरके अशुचौ

अनेक विचारों में भटके, मोहजाल में फंसे, विषयभोगों में डूबे, वे जा गिरते हैं, बीभत्स नरक में ।

**१६.१७ आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥**

आत्मसंभाविताः स्तब्धा,
धनमानमदान्विताः
यजन्ते नामयज्ञैस् ते,
दम्भेना (अ)विधिपूर्वकम्

आत्मसंभाविताः स्तब्धाः धनमानमदान्विताः
यजन्ते नामयज्ञैः ते दम्भेन अविधिपूर्वकम्

अपने को स्वयं बड़ा मानने वाले, हठधर्मी, धन के मान और मद से भरे हुए, वे नाम मात्र के लिए यज्ञ करते हैं, दिखावे के साथ, बिना किसी विधि के ।

१६.१८ अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥

अहंकारं बलं दर्पं,
कामं क्रोधं च संश्रिताः
माम् आत्मपरदेहेषु - -
प्रद् द्विषन्तो (अ)भ्यसूयकाः

अहंकारम् बलम् दर्पम् कामम् क्रोधम् च संश्रिताः
माम् आत्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तः अभ्यसूयकाः

अहंकार, बल, घमण्ड, काम और क्रोध का सहारा लिए (ये) मुझसे, जो उनके और अन्य सबके शरीरों में (रहता) हूं, अत्यन्त द्वेष करते हैं,- छिद्रान्वेषण करने वाले ।

१६.१९ तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥

तान् अहं द्विषतः क्रूरान्
संसारेषु नराधमान्
क्षिपाम्य् अजस्रम् अशुभान्
आसुरीष्व् एव योनिषु - -

तान् अहम् द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्
क्षिपामि अजस्रम् अशुभान् आसुरीषु एव योनिषु

मैं, उन द्वेष करने वाले, निर्दयी, संसार में नीच मनुष्यों को, निरन्तर फेंकता रहता हूं,- अमंगल कारी, आसुरी योनियों में ही ।

**१६.२० आसुरीयोनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥**

आसुरीं योनिम् आपन्ना,
मूढा जन्मनि जन्मनि - -
माम् अप्राप्यै (ए)व, कौन्तेय, - -
ततो यान्त्य् अधमां गतिम्

आसुरीम् योनिम् आपन्नाः मूढाः जन्मनि जन्मनि
माम् अप्राप्य एव कौन्तेय ततः यान्ति अधमाम् गतिम्

आसुरी योनि में गिरकर, ये मोहग्रस्त लोग जन्म जन्म में भी मुझे प्राप्त न करके कौन्तेय । और भी निकृष्ट अवस्था को पहुंच जाते हैं; (नरक में-)

**१६.२१ त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥**

त्रिविधं नरकस्ये (इ)दं
द्वारं नाशनम् आत्मनः
कामः क्रोधस् तथा लोभस्
तस्माद् एतत् त्रयं त्यजेत्

त्रिविधम् नरकस्य इदम् द्वारम् नाशनम् आत्मनः
कामः क्रोधः तथा लोभः तस्मात् एतत् त्रयम् त्यजेत्

नरक का यह द्वार तीन प्रकार का है - काम, क्रोध और लोभ - जो मनुष्य के "स्वयं" का नाश करने वाला है। अतएव, इन तीनों का त्याग करना चाहिए ।

१६.२२ एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥

एतैर् विमुक्तः कौन्तेय, – –
तमो द्वारैस् त्रिभिर् नरः
आचरत्य् आत्मनः श्रेयस्
ततो याति परां गतिम्

एतैः विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैः त्रिभिः नरः
आचरति आत्मनः श्रेयः ततः याति पराम् गतिम्

(नारकीय) अन्धकार के इन तीनों द्वारों से मुक्त हुआ मनुष्य, कौन्तेय । अपने कल्याण का आचरण करता है, तत्पश्चात्, सर्वोपरि अवस्था को पहुंच जाता है ।

१६.२३ यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥

यः शास्त्रविधिम् उत्सृज्य, – –
वर्तते कामकारतः
न स सिद्धिम् अवाप्नोति, – –
न सुखं न परां गतिम्

यः शास्त्रविधिम् उत्सृज्य वर्तते कामकारतः
न सः सिद्धिम् अवाप्नोति न सुखम् न पराम् गतिम्

जो शास्त्र के नियम को छोड़कर, कामना के प्रोत्साहन में आकर व्यवहार करता है, वह न सिद्धि को प्राप्त होता है, न सुख को, न परम गति को ।

**१६.२४ तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥**

तस्माच् छास्त्रं प्रमाणं ते,
कार्याकार्यव्‌व्यवस्थितौ
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं,
कर्म कर्तुम् इहा (अ)र्हसि - -

तस्मात् शास्त्रम् प्रमाणम् ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तम् कर्म कर्तुम् इह अर्हसि

अतः, शास्त्र तेरा प्रमाण है, कर्तव्य और अकर्तव्य का निर्णय करने के लिए । यह जान कर कि शास्त्र के आदेश क्या हैं, तुझे इस संसार में कर्म करना चाहिए ।

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसंपद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः
समाप्तः

गीता प्रकाश

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

परिचय-१७

अध्याय ७, ८ और ९ में ज्ञान विज्ञान, ब्रह्म अक्षर और परम गोपनीय राजविद्या के वर्णन के साथ-साथ कुछ महत्त्वपूर्ण प्रासंगिक उक्तियां की गई हैं। दैवी और आसुरी स्वभाव वालों के सम्बन्ध में की गई उक्ति का विस्तृत वर्णन अध्याय १६ में हुआ। दूसरी, ऐसी उक्ति श्लोक ७.२०-२३ में है कि मनुष्य अपनी-अपनी प्रकृति से विवश हुए, कामनाओं की पूर्ति के लिए अन्य-अन्य देवताओं की शरण लेते हैं, उन-उन देवताओं के नियमों का पालन करते हैं।

मनुष्यों की प्रकृति भिन्न-भिन्न क्यों है ? यह उनकी अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार है।

श्रद्धा तीन प्रकार की है जिसका अब विस्तार से वर्णन करते हैं।

अध्याय १७ का नाम है "श्रद्धात्रय विभाग योग"।

श्रीमद्भगवद् गीता

अथ सप्तदशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगः)

१७.१ अर्जुन उवाच-
ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥

ये शास्त्रविधिम् उत्सृज्य, - -
यजन्ते श्रद्धया (अ)न्विताः
तेषां निष्ठा तु का, कृष्ण, - -
सत्त्वम् आहो रजस् तमः

ये शास्त्रविधिम् उत्सृज्य यजन्ते श्रद्धया अन्विताः
तेषाम् निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वम् आहो रजः तमः

अर्जुन उवाच-
जो शास्त्र में दी विधियों को त्याग कर, यज्ञ करते हैं, (पर) श्रद्धा से भरपूर होकर, उनकी आस्था, हे कृष्ण ! वास्तव में, कैसी है-सात्त्विकी, राजसी अथवा तामसी ?

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१७.२ **श्रीभगवानुवाच–**
त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥

त्रिविधा भवतिश् श्रद्धा
देहिनां सा स्वभावजा
सात्त्विकी राजसी चै (ए)व – –
तामसी चे (इ)ति तां शृणु

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनाम् सा स्वभावजा
सात्त्विकी राजसी च एव तामसी च इति ताम् शृणु

श्री भगवान् उवाच–
तीन प्रकार की श्रद्धा है, जो देहधारियों के स्वभाव से उत्पन्न होती है–सात्त्विकी, राजसी और तामसी भी । और, तू उसे इस प्रकार सुन ।

१७.३ **सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।**
श्रद्धामयोऽयं पुरूषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य – –
श्रद्धा भवति, भारत – –
श्रद्धामयो (अ)यं पुरूषो,
यो यच्छ्रद्धः स एव सः

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत
श्रद्धामयः अयम् पुरुषः यः यच्छ्रद्धः सः एव सः

अपने-अपने स्वभाव के अनुसार सब की श्रद्धा होती है, भारत । यह मनुष्य श्रद्धामय है । जिसकी जैसी श्रद्धा है, वह, वास्तव में, वही है ।

१७.४ **यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।**
प्रेतान्भूतगणान्श्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥

यजन्ते सात्त्विका देवान्,
यक्षरक्षांसि राजसाः
प्रेतान् भूतगणांश् चा (अ)न्ये
यजन्ते तामसा जनाः

यजन्ते सात्त्विकाः देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः
प्रेतान् भूतगणान् च अन्ये यजन्ते तामसाः जनाः

सात्त्विक लोग देवताओं की पूजा करते हैं । राजस लोग यक्षों और राक्षसों की । और दूसरे, तामस जन, प्रेतों और भूत गणों की पूजा करते हैं ।

१७.५ **अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।**
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥

अशास्त्रविहितं घोरं
तप्यन्ते ये तपो जनाः
दम्भाहंकारसंयुक्ताः,
कामरागबलान्विताः

अशास्त्रविहितम् घोरम् तप्यन्ते ये तपः जनाः
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः

शास्त्र में जिनका आदेश नहीं,ऐसे घोर तप जो मनुष्य करते हैं,- ढोंग और अहंकार के साथ, काम और राग के बल से युक्त,

१७.६ **कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्धयासुरनिश्चयान् ॥**

कर्शयन्तः शरीरस्थं
भूतग्ग्रामम् अचेतसः
मां चै (ए)वा (अ)न्तःशरीरस्थं,
तान् विद्ध्य् आसुरनिश्चयान्

कर्शयन्तः शरीरस्थम् भूतग्रामम् अचेतसः
माम् च एव अन्तः शरीरस्थम् तान् विद्धि आसुरनिश्चयान्

(वे) बुद्धिहीन, शरीर में स्थित (पंच महा) भूतों के समुदाय को यन्त्रणा पहुंचाते हैं और मुझको भी, जो अन्तःकरण में रहता हूं । तू उनको आसुरी निश्चयवाले समझ ।

१७.७ **आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥**

आहारस् त्व् अपि सर्वस्य - -
त्रिविधो भवतिप् प्रियः
यज्ञस् तपस् तथा दानं,
तेषां भेदम् इमं शृणु - -

आहारः तु अपि सर्वस्य त्रिविधः भवति प्रियः
यज्ञः तपः तथा दानम् तेषाम् भेदम् इमम् शृणु

वास्तव में, भोजन भी जो सबको प्रिय है, तीन प्रकार का है । वैसे ही यज्ञ, तप और दान हैं । उनके ये भेद सुन, -

**१७.८ आयुः सत्त्वबलारोग्य सुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराःसात्त्विकप्रियाः ॥**

आयुः सत्त्वबलारोग्य – –
सुखप् प्रीतिविवर्धनाः
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या
आहाराः सात्त्विकप् प्रियाः

आयुः सत्त्व बल आरोग्य सुख प्रीतिविवर्धनाः
रस्याः स्निग्धाः स्थिराः हृद्याः आहाराः सात्त्विकप्रियाः

आयु, (बौद्धिक) शुद्धता, बल, स्वास्थ्य, सुख और प्रीति को बढाने वाले, रसदार, स्निग्ध, पौष्टिक, रुचिकर भोजन, सात्त्विक लोगों को प्रिय हैं ।

**१७.९ कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षाविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥**

कट्वम्ल लवणात्युष्ण – –
तीक्ष्ण रूक्ष विदाहिनः
आहारा राजसस्ये (इ)ष्टा,
दुःखशोकामयप् प्रदाः

कटु अम्ल, लवण, अत्युष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष विदाहिनः
आहाराः राजसस्य इष्टाः दुःखशोकामयप्रदाः

कड़वे, खट्टे, खारे, बहुत गर्म, तीखे, रूखे और जलन पैदा करने वाले भोजन, राजस मनुष्य को वांछित हैं – दुःख-शोक और रोग के देने वाले ।

१७.१० यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥

यातयामं गतरसं
पूति पर्युषितं च यत्
उच्छिष्टम् अपि चा (अ)मेध्यं
भोजनं तामसप् प्रियम्

यातयामम् गतरसम् पूति पर्युषितम् च यत्
उच्छिष्टम् अपि च अमेध्यम् भोजनम् तामसप्रियम्

अनपका, रसहीन, दुर्गन्धयुक्त, बासी, जो जूठा और अपवित्र भी है, (ऐसा) भोजन तामस लोगों को प्रिय है ।

१७.११ अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥

अफलाकांक्षिभिर् यज्ञो
विधिदृष्टो य इज्यते
यष्टव्यम् एवे (इ)ति मनः
समाधाय, स सात्त्विकः

अफलाकांक्षिभिः यज्ञः विधिदृष्टः यः इज्यते
यष्टव्यम् एव इति मनः समाधाय सः सात्त्विकः

फल की इच्छा न करने वालों से, जो यज्ञ विधिपूर्वक किया जाता है,–मन में ऐसी धारणा करके कि यही कर्तव्य है, वह सात्त्विक है ।

१७.१२ अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥

अभिसन्धाय तु फलं,
दम्भार्थम् अपि चै (ए)व यत्
इज्यते, भरतश्रेष्ठ, - -
तं यज्ञं विद्धि राजसम्

अभिसन्धाय तु फलम् दम्भार्थम् अपि च एव यत्
इज्यते भरतश्रेष्ठ तम् यज्ञम् विद्धि राजसम्

जो वस्तुतः फल के उद्देश्य से, और अपना महत्त्व दिखाने के लिए भी, किया जाता है, हे भरतश्रेष्ठ ! उस यज्ञ को, तू राजस समझ ।

१७.१३ विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥

विधिहीनम् असृष्टान्नं,
मन्त्रहीनम् अदक्षिणम्
श्रद्धाविरहितं यज्ञं,
तामसं परिचक्षते

विधिहीनम् असृष्टान्नम् मन्त्रहीनम् अदक्षिणम्
श्रद्धाविरहितम् यज्ञम् तामसम् परिचक्षते

जिसमें विधि नहीं, अन्नदान नहीं, मंत्र नहीं, दक्षिणा नहीं, श्रद्धा नहीं, (ऐसे) यज्ञ को, तामस कहते हैं ।

१७.१४ देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥

देवद्‌द्विजगुरुप्‌प्राज्ञ - -
पूजनं, शौचम् आर्जवम्
ब्रह्मयर्चम् अहिंसा च, - -
शारीरं तप उच्यते

देवद्विज गुरुप्राज्ञपूजनम् शौचम् आर्जवम्
ब्रह्मचर्यम् अहिंसा च शारीरम् तपः उच्यते

देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानी की पूजा, शुद्धता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा - यह शारीरिक तप कहलाता है ।

१७.१५ अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं,
सत्यं प्रियहितं च यत्
स्वाध्यायाभ्यसनं चै (ए)व, - -
वाङ्मयं तप उच्यते

अनुद्वेगकरं वाक्यम् सत्यम् प्रियहितम् च यत्
स्वाध्यायाभ्यसनम् च एव वाङ्मयं तपः उच्यते

व्याकुल न करने वाले वचन, जो सत्य, प्रिय और हितकारी हैं, और (धर्म ग्रन्थों के) स्वाध्याय का अभ्यास भी, वाणी सम्बन्धी तप कहलाता है ।

१७.१६ मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥

मनः प्रसादः सौम्यत्वं,
मौनम् आत्मविनिग्रहः
भावसंशुद्धिर् इत्य् एतत्
तपो मानसम् उच्यते

मनः प्रसादः सौम्यत्वम् मौनम् आत्मविनिग्रहः
भावसंशुद्धिः इति एतत् तपः मानसम् उच्यते

मन की प्रसन्नता, भद्रता, मौन रहना, आत्मसंयम, और इस प्रकार विचारों की पवित्रता - यह मानसिक तप कहलाता है ।

१७.१७ श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥

श्रद्धया परया तप्तं
तपस् तत् त्रिविधं नरैः
अफलाकांक्षिभिर् युक्तैः,
सात्त्विकं परिचक्षते

श्रद्धया परया तप्तम् तपः तत् त्रिविधम् नरैः
अफलाकांक्षिभिः युक्तैः सात्त्विकम् परिचक्षाते

अत्यन्त श्रद्धा से किया गया यह (उपर्युक्त) तीन प्रकार का तप, - यदि बिना फल की इच्छा से, संतुलित मनवाले पुरुषों द्वारा किया जाय, (तो) सात्त्विक कहलाता है ।

१७.१८ सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥

सत्कार मान पूजार्थं
तपो, दम्भेन चै (ए)व, यत्
क्रियते, तद् इहप् प्रोक्तं
राजसं चलम् अध्रुवम्

सत्कारमानपूजार्थम् तपः दम्भेन च एव यत्
क्रियते तत् इह प्रोक्तम् राजसम् चलम् अध्रुवम्

आदर, सम्मान और पूजा के लिए अथवा अपना महत्त्व दिखाने के लिए भी, जो तप किया जाता है, उसे यहां राजस कहते हैं - यह चंचल और अस्थिर है ।

१७.१९ मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥

मूढग्ग्राहेणा (आ)त्मनो यत्
पीडया क्रियते तपः
परस्यो (उ)त्सादनार्थं वा,
तत् तामसम् उदाहृतम्

मूढग्राहेण आत्मनः यत् पीडया क्रियते तपः
परस्य उत्सादनार्थम् वा तत् तामसम् उदाहृतम्

जो तप दुराग्रह पूर्वक अपने को कष्ट देकर किया जाता है, अथवा दूसरों का विनाश करने के लिए, उसे तामस कहा गया है ।

१७.२० दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥

दातव्यम् इति यद् दानं
दीयते (अ)नुपकारिणे
देशे काले च पात्रे च, - -
तद् दानं सात्त्विकं स्मृतम्

दातव्यम् इति यत् दानम् दीयते अनुपकारिणे
देशे काले च पात्रे च तत् दानम् सात्त्विकम् स्मृतम्

"देना चाहिए," ऐसे (भाव से), जो दान दिया जाता है उसको, जिससे बदले में कुछ पाना नहीं, देश, काल और सुपात्र को देखते हुए, वह दान सात्त्विक कह कर स्मरण किया जाता है।

१७.२१ यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥

यत् तुप् प्रत्युपकारार्थं
फलम् उद्दिश्य वा पुनः
दीयते च परिक् क्लिष्टं,
तद् दानं राजसं स्मृतम्

यत् तु प्रत्युपकारार्थम् फलम् उद्दिश्य वा पुनः
दीयते च परिक्लिष्टम् तत् दानम् राजसम् स्मृतम्

वास्तव में, जो (दान) बदले में लाभ के लिए, फल के उद्देश्य से, अथवा फिर कष्ट पूर्वक दिया जाता है, वह दान राजस कहकर स्मरण किया जाता है।

**१७.२२ अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥**

अदेशकाले यद् दानम्,
अपात्रेभ्यश् च, दीयते
असत्कृतम् अवज्ञातं,
तत् तामसम् उदाहृतम्

अदेशकाले यत् दानम् अपात्रेभ्यः च दीयते
असत्कृतम् अवज्ञातम् तत् तामसम् उदाहृतम्

जो दान न ठीक स्थान में, न ठीक समय में, और न ठीक पात्र को, दिया जाता है,-बिना सत्कार के, तिरस्कार पूर्वक,-वह तामस कहा जाता है ।

**१७.२३ ओम् तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥**

ओम् तत् सद् इति निर्देशो
ब्रह्मणस् त्रिविधः स्मृतः
ब्राह्मणास् तेन वेदाश् च - -
यज्ञाश् च विहिताः पुरा

ओम् तत्सत् इति निर्देशः ब्रह्मणः त्रिविधः स्मृतः
ब्राह्मणाः तेन वेदाः च यज्ञाः च विहिताः पुरा

"ओम् तत् सत्" इस प्रकार के संकेत से ब्रह्म का तीन भांति से स्मरण किया जाता है । इसी (संकेत) से, पूर्व काल में ब्राह्मणों, वेदों और यज्ञों का विधान हुआ है ।

१७.२४ तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥

तस्माद् ओम् इत्य् उदाहृत्य, - -
यज्ञदानतपः क्रियाः
प्रवर्तन्ते, विधानोक्ताः,
सततं ब्रह्मवादिनाम्

तस्मात् ओम् इति उदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततम् ब्रह्मवादिनाम्

अतएव "ओ३म्" ऐसा उच्चारण करके, यज्ञ, दान और तप की क्रियाएं, जो धर्मशास्त्र में कही गई हैं, सदा आरम्भ की जाती हैं, ब्रह्म वेत्ताओं द्वारा ।

१७.२५ तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपः क्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः ॥

तद् इत्य् अनभिसंधाय - -
फलं, यज्ञतपः क्रियाः
दानक्क्रियाश् च विविधाः
क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः

तत् इति अनभिसंधाय फलम् यज्ञतपः क्रियाः
दानक्रियाः च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः

"तत्" ऐसा (उच्चारण) करते हुए, फल का उद्देश्य त्यागकर, यज्ञ और तप की क्रियाएं, और दान के भिन्न-भिन्न कर्म किए जाते हैं, मोक्ष की इच्छा रखने वालों द्वारा ।

१७.२६ सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥

सद्भावे साधुभावे च - -
सद् इत्य् एतद् प्रयुज्यते
प्रशस्ते कर्मणि तथा
सच्छब्दः, पार्थ युज्यते

सद्भावे साधुभावे च सत् इति एतत् प्रयुज्यते
प्रशस्ते कर्मणि तथा सत् शब्दः पार्थ युज्यते

सत्य-तत्त्व और साधुता के संदर्भ में जैसे यह "सत्" (शब्द) का प्रयोग होता है, उसी प्रकार प्रशंसनीय कार्य के लिए भी, पार्थ । "सत्" शब्द का प्रयोग होता है ।

१७.२७ यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥

यज्ञे तपसि दाने च - -
स्थितिः सद् इति चो (उ)च्यते
कर्म चै (ए)व तदर्थीयं
सद् इत्य् एवा (अ)भिधीयते

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सत् इति च उच्यते
कर्म च एव तदर्थीयम् सत् इति एव अभिधीयते

और इसी प्रकार यज्ञ, तप और दान में दृढता को भी "सत्" कहते हैं । और, इसी प्रकार, एकमात्र इनके निमित्त किए कर्म को भी, "सत्" का नाम दिया जाता है ।

१७.२८ **अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।**
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥

अश्रद्धया हुतं दत्तं
तपस् तप्तं कृतं च यत्
असद् इत्य् उच्यते, पार्थ - -
न च तत् प्रेत्य नो इह - -

अश्रद्धया हुतम् दत्तम् तपः तप्तम् कृतम् च यत्
असत् इति उच्यते पार्थ न च तत् प्रेत्य नो इह

अश्रद्धा से किया गया जो हवन, दान, तप, और कर्म है, उसे "असत्", ऐसा कहते हैं, पार्थ । वह न वहां (परलोक में) कुछ हैं, और न यहां ।

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः समाप्तः

परिचय-१८

अध्याय १४ में प्रकृति से उत्पन्न तीन गुण - सत्त्व, रज और तम की भगवान् ने व्याख्या की। अब अध्याय १८ में इस बात को महत्त्व दे रहे हैं कि ऐसा कहीं कोई अस्तित्व नहीं है जो इन गुणों से मुक्त हो।

और फिर, प्रत्येक मनुष्य के कर्मो का विभाजन भी इन्हीं गुणों के अनुसार है जो उसके स्वभाव से उत्पन्न होते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र कर्म का उल्लेख करके बलपूर्वक भगवान् कहते हैं कि अपना धर्म ही श्रेष्ठ है। "अर्जुन, तेरा क्षत्रिय स्वभाव तुझे युद्ध करने के लिए विवश कर देगा"। सम्पूर्ण गीता संवाद सुनकर अर्जुन का मोह नष्ट हुआ, वह बोल उठा, "जो आप कहेंगे, मैं करूंगा"।

यह गीता का अन्तिम अध्याय है। सम्पूर्ण गीता उपदेश को मानों दोहरा दिया है यह कहकर कि कामना से प्रेरित कर्मों के त्याग को 'संन्यास' समझो और समस्त कर्मो के फल के त्याग को 'त्याग'। इसी त्याग भाव से निरन्तर आप अपने कर्तव्य कर्म कुशलता से करते रहिए - "मुझे अर्पण करके, मोक्ष प्राप्ति के लिए"।

अध्याय १८ का नाम है "मोक्ष संन्यास योग"।

श्रीमद्भगवद् गीता

अथाष्टादशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगः)

१८.१ अर्जुन उवाच–
संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥

संन्यासस्य, महाबाहो,
तत्त्वम् इच्छामि वेदितुम्
त्यागस्य च, हृषीकेश, – –
पृथक् केशिनिषूदन – –

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वम् इच्छामि वेदितुम्
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक् केशिनिषूदन

अर्जुन उवाच –
हे महाबाहो । मैं जानना चाहता हूँ– "संन्यास का सार क्या है, और त्याग का" ? हे हृषीकेश । अलग-अलग करके, केशिनिषूदन ।

१८.२ श्री भगवानुवाच-
काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥

काम्यानां कर्मणां न्यासं
संन्यासं कवयो विदुः
सर्व कर्म फलत् त्यागं
प्राहुस् त्यागं विचक्षणाः

काम्यानाम् कर्मणाम् न्यासम् संन्यासम् कवयः विदुः
सर्वकर्मफलत्यागम् प्राहुः त्यागम् विचक्षणाः

श्री भगवान् उवाच-
कामना से प्रेरित कर्मों के त्याग को, ज्ञानी पुरुष "संन्यास" समझते हैं । समस्त कर्मों के फल के त्याग को, बुद्धिमान् लोग "त्याग" कहते हैं ।

१८.३ त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥

त्याज्यं दोषवद् इत्य् एके
कर्म प्राहुर् मनीषिणः
यज्ञदानतपः कर्म - -
न त्याज्यम् इति चा (अ)परे

त्याज्यम् दोषवत् इति एके कर्म प्राहुः मनीषिणः
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यम् इति च अपरे

कुछ एक विवेकी पुरुष इस प्रकार कहते हैं, कि कर्म का त्याग करना चाहिए जैसे कोई दोष हो, और दूसरे ऐसा कहते हैं, यज्ञ दान और तप कर्म का त्याग नहीं करना चाहिए ।

१८.४ निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥

निश्चयं शृणु मे तत्र - -
त्यागे, भरतसत्तम - -
त्यागो हि, पुरुषव् व्याघ्र, - -
त्रिविधः संप्रकीर्तितः

निश्चयम् शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम
त्यागः हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः

हे भरतसत्तम । त्याग के सम्बन्ध में मेरा निष्कर्ष सुन । हे पुरुषव्याघ्र । वास्तव में, त्याग तीन प्रकार का कहा गया है ।

१८.५ यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥

यज्ञदानतपः कर्म - -
न त्याज्यं, कार्यम् एव तत्
यज्ञो दानं तपश्चै (ए)व - -
पावनानि मनीषिणाम्

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यम् कार्यम् एव तत्
यज्ञः दानम् तपः च एव पावनानि मनीषिणाम्

यज्ञ दान और तप, ये कर्म त्यागने नहीं चाहिएं । इन्हें करना ही चाहिए । (कारण) यज्ञ दान और तप भी, बुद्धिमान् पुरुषों को पवित्र करने वाले हैं ।

१८.६ एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥

एतान्य् अपि तु कर्माणि, - -
संगं त्यक्त्वा फलानि च - -
कर्तव्यानी (इ)ति मे, पार्थ, - -
निश्चितं मतम् उत्तमम्

एतानि अपि तु कर्माणि संगम् त्यक्त्वा फलानि च
कर्तव्यानि इति मे पार्थ निश्चितम् मतम् उत्तमम्

वास्तव में, इन (कर्तव्य) कर्मों को भी, फल और आसक्ति त्यागकर करना चाहिए । ऐसा, मेरा मत है, पार्थ ! निश्चित, उत्तम ।

१८.७ नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥

नियतस्य तु संन्यासः
कर्मणो नो (उ)पपद्यते
मोहात् तस्य परित् त्यागस्
तामसः परिकीर्तितः

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणः न उपपद्यते
मोहात् तस्य परित्यागः तामसः परिकीर्तितः

वास्तव में, निर्धारित कर्म से संन्यास, उचित नहीं । मोह वश उसका त्याग, तामस कहा गया है ।

**१८.८ दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥**

दुःखम् इत्य् एव यत् कर्म - -
कायक् क्लेशभयात् त्यजेत्
स कृत्वा राजसं त्यागं
नै (ए)वत् त्यागफलं लभेत्

दुःखम् इति एव यत् कर्म कायक्लेशभयात् त्यजेत्
सः कृत्वा राजसम् त्यागम् न एव त्यागफलम् लभेत्

"कर्म दुःखदायी है", इस प्रकार (समझकर), शारीरिक कष्ट के भय से, जो उसे छोड़ देता है, वह राजस त्याग करते हुए भी, त्याग के फल को नहीं पाता ।

**१८.९ कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥**

कार्यम् इत्य् एव यत् कर्म - -
नियतं क्रियते (अ)र्जुन - -
संगं त्यक्त्वा फलं चै (ए)व, - -
सतत्यागः सात्त्विको मतः

कार्यम् इति एव यत् कर्म नियतम् क्रियते अर्जुन
संगम् त्यक्त्वा फलम् च एव सः त्यागः सात्त्विकः मतः

निर्धारित कर्म को भी, जो इस प्रकार किया जाता है, अर्जुन ! कि कर्तव्य है - आसक्ति और फल को भी त्यागकर, वह त्याग, सात्त्विक माना गया है ।

१८.१० न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥

न द्वेष्ट्य् अकुशलं कर्म, - -
कुशले ना (अ)नुषज्जते
त्यागी, सत्त्वसमाविष्टो,
मेधावी छिन्नसंशयः

न द्वेष्टि अकुशलम् कर्म कुशले न अनुषज्जते
त्यागी सत्त्वसमाविष्टः मेधावी छिन्नसंशयः

जो अमंगलकारी-कर्म से द्वेष नहीं करता, और मंगलकारी में अनुरक्त नहीं होता, वह त्यागी, सद्भावपूर्ण और बुद्धिमान् है, उसका संशय मिट गया है ।

१८.११ न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥

न हि देहभृता शक्यं
त्यक्तुं कर्माण्य् अशेषतः
यस्तु कर्मफलत् त्यागी
सत् त्यागी (इ)त्य् अभिधीयते

न हि देहभृता शक्यम् त्यक्तुम् कर्माणि अशेषतः
यः तु कर्मफलत्यागी सः त्यागी इति अभिधीयते

वास्तव में, देहधारी द्वारा कर्मों का सम्पूर्णतः त्याग हो नहीं सकता । (इसलिए) जो सचमुच कर्म के फल का त्यागी है, वही त्यागी है, ऐसा कहा जाता है ।

१८.१२ **अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥**

अनिष्टम् इष्टं मिश्रं च, - -
त्रिविधं कर्मणः फलम्
भवत्य् अत्यागिनां प्रेत्य, - -
न तु संन्यासिनां क्वचित्

अनिष्टम् इष्टम् मिश्रम् च त्रिविधं कर्मणः फलम्
भवति अत्यागिनाम् प्रेत्य न तु संन्यासिनाम् क्वचित्

अवांछित, वांछित, और मिश्रित - यह कर्म का तीन प्रकार का फल है जो त्याग न करने वालों को, मृत्यु के उपरान्त (भी भोगना) होता है । किन्तु, त्याग करने वालों को, वास्तव में, कभी नहीं ।

१८.१३ **पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥**

पञ्चै (ए)तानि, महाबाहो,
कारणानि निबोध मे
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि, - -
सिद्धये सर्वकर्मणाम्

पञ्च एतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्

हे महाबाहो । ये पांच कारण हैं, तू मुझसे समझ ले- जो सत् युग के अन्त में (कपिल मुनि द्वारा) सांख्य शास्त्र में कहे गए हैं, सर्व कर्मों की सिद्धि के लिए;[१]

१. गीता में ऐसे और भी ऐतिहासिक निर्देश मिलते हैं।

**१८.१४ अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥**

अधिष्ठानं तथा कर्ता,
करणं च पृथग्विधम्
विविधाश् च पृथक्चेष्टा,
दैवं चै (ए)वा (अ)त्र पञ्चमम्

अधिष्ठानम् तथा कर्ता करणम् च पृथग्विधम्
विविधाः च पृथक् चेष्टाः दैवम् च एव अत्र पञ्चमम्

आधार-स्थान (शरीर), तथा कर्ता, और करण[२], जो पृथक्-पृथक् (साधन) हैं, और नाना प्रकार के अलग-अलग प्रयास और इनके साथ यहां पांचवां दैव भी ।

**१८.१५ शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥**

शरीरवाङ् मनोभिर् यत्
कर्मप् प्रारभते नरः
न्याय्यं वा विपरीतं वा,
पञ्चै (ए)ते तस्य हेतवः

शरीरवाङ् मनोभिः यत् कर्म प्रारभते नरः
न्याय्यम् वा विपरीतम् वा पञ्च एते तस्य हेतवः

शरीर, वाणी अथवा मन से जो भी काम मनुष्य प्रारम्भ करता है - चाहे न्याय संगत हो अथवा विपरीत - यही पांच उसके कारण हैं ।

२. "करण" तेरह हैं। देखिए अध्याय १३ श्लोक २०। हमने यहां "साधन" को "करण" का पर्याय माना है।

१८.१६ तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥

तत्रै (ए)वं सति कर्तारम्
आत्मानं केवलं तु यः
पश्यत् अकृतबुद्धित्वान्
न स पश्यति दुर्मतिः

तत्र एवम् सति कर्तारम् आत्मानम् केवलम् तु यः
पश्यति अकृतबुद्धित्वात् न सः पश्यति दुर्मतिः

अब ऐसा होने पर भी, जो सचमुच केवल अपने को ही कर्ता मान बैठता है, (ठीक-ठीक) ज्ञान प्राप्त न होने के कारण, वह समझता नहीं, कुमति ।

१८.१७ यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमांल्लोकान् न हन्ति न निबध्यते ॥

यस्य ना (अ)हंकृतो भावो,
बुद्धिर् यस्य न लिप्यते
हत्वा (अ)पि स इमाँल् लोकान्
न हन्ति न निबध्यते

यस्य न अहंकृतः भावः बुद्धिः यस्य न लिप्यते
हत्वा अपि सः इमान् लोकान् न हन्ति न निबध्यते

"मैं कर्ता हूँ", जिसकी (ऐसी) भावना नहीं, जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती, वह इन सब लोगों को मार कर भी, न मारता है, और, न बंधन में पड़ता है, (अपने कर्मों के) ।

**१८.१८ ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥**

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता,
त्रिविधा कर्मचोदना
करणं कर्म कर्ते (इ)ति, – –
त्रिविधः कर्मसंग्रहः

ज्ञानम् ज्ञेयम् परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना
करणम् कर्म कर्ता इति त्रिविधः कर्मसंग्रहः

ज्ञान, ज्ञेय, और ज्ञाता (ये) तीन प्रकार की कर्म की प्रेरणाएं हैं । ऐसे ही, साधन, क्रिया और कर्ता (मिल कर) कर्म का संघटन करते हैं ।[३]

**१८.१९ ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥**

ज्ञानं कर्म च कर्ता च, – –
त्रिधै (ए)व, गुणभेदतः
प्रोच्यते गुणसंख्याने
यथावच् छृणु तान्य् अपि – –

ज्ञानम् कर्म च कर्ता च त्रिधा एव गुणभेदतः
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावत् श्रृणु तानि अपि

ज्ञान और कर्म और कर्ता, गुणभेद के अनुसार गुणगणना (सांख्य) में तीन प्रकार के ही कहे गए हैं । उन को भी, ठीक ठीक सुन ।

३. देखिए अध्याय १३ श्लोक २० । यहां क्रमशः "साधन" और "क्रिया" को, "करण" और "कार्य" का पर्याय जानना चाहिए ।

१८.२० सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥

सर्वभूतेषु येनै (ए)कं
भावम् अव्ययम् ईक्षते
अविभक्तं विभक्तेषु, - -
तज् ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्

सर्वभूतेषु येन एकम् भावम् अव्ययम् ईक्षते
अविभक्तम् विभक्तेषु तत् ज्ञानम् विद्धि सात्त्विकम्

जिस (ज्ञान) से (मनुष्य) सम्पूर्ण प्राणियों में एक ही अविनाशी स्वरूप को अविभाजित देखता है, भिन्न भिन्न (रूपों) में, उस ज्ञान को तू सात्त्विक जान ।

१८.२१ पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥

पृथक्त्वेन तु यज् ज्ञानं
नानाभावान् पृथग्विधान्
वेत्ति, सर्वेषु, भूतेषु, - -
तज् ज्ञानम् विद्धि राजसम्

पृथक्त्वेन तु यत् ज्ञानम् नानाभावान् पृथग्विधान्
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तत् ज्ञानम् विद्धि राजसम्

वास्तव में अलगाव के कारण, जो ज्ञान सम्पूर्ण जड़-चेतनादि में, नाना स्वरूपों को, अलग-अलग जानता है, उस ज्ञान को तू राजस जान ।

१८.२२ यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥

यत् तु कृत्स्नवद् एकस्मिन्
कार्ये सक्तम् अहैतुकम्
अतत् त्त्वार्थवद् अल्पं च, - -
तत् तामसम् उदाहृतम्

यत् तु कृत्स्नवत् एकस्मिन् कार्ये सक्तम् अहैतुकम्
अतत्त्वार्थवत् अल्पम् च तत् तामसम् उदाहृतम्

जो (ज्ञान) एक ही वस्तु में आसक्त रहता है जैसे वही सब कुछ है, वह युक्तिहीन, अवास्तविक और संकीर्ण है, उसे तामस कहा जाता है ।

१८.२३ नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥

नियतं संगरहितम्
अरागद् द्वेषतः कृतम्
अफलप् प्रेप्सुना, कर्म - -
यत् तत् सात्त्विकम् उच्यते

नियतम् संगरहितम् अरागद्वेषतः कृतम्
अफलप्रेप्सुना कर्म यत् तत् सात्त्विकम् उच्यते

निर्धारित कर्म, जो बिना आसक्ति के, बिना राग द्वेष के किया जाता है; उसके द्वारा, जो फल की इच्छा नहीं करता, वह सात्त्विक कहलाता है ।

१८.२४ यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥

यत् तु कामेप्सुना कर्म, - -
साहंकारेण वा पुनः
क्रियते, बहुलायासं,
तद् राजसम् उदाहृतम्

यत् तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः
क्रियते बहुलायासं तत् राजसम् उदाहृतम्

वास्तव में, जो कर्म भोग-विलास की इच्छा रखने वाले द्वारा, अथवा अहंकार के साथ किया जाता है,- (और) फिर जिस में बहुत परिश्रम हो, वह राजस कहा जाता है ।

१८.२५ अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥

अनुबन्धं क्षयं हिंसाम्
अनपेक्ष्य च पौरुषम्
मोहाद् आरभ्यते कर्म - -
यत् तत् तामसम् उच्यते

अनुबन्धम् क्षयम् हिंसाम् अनपेक्ष्य च पौरुषम्
मोहात् आरभ्यते कर्म यत् तत् तामसम् उच्यते

परिणाम, क्षति, हिंसा और अपनी शक्ति का ध्यान न करके, मोह वश होकर जो कर्म आरम्भ किया जाता है, वह तामस कहलाता है ।

१८.२६ मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥

मुक्तसंगो (अ)नहंवादी
धृत्य् उत्साह सम् अन्वितः
सिद्ध्य् असिद्ध्योर् निर्विकारः,
कर्ता सात्त्विक उच्यते

मुक्तसंगः अनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः
सिद्ध्यसिद्ध्योः निर्विकारः कर्ता सात्त्विकः उच्यते

जो आसक्ति से मुक्त है, "अहं" पन में जिसकी आस्था नहीं, जो धैर्य और उत्साह से युक्त है, सफलता और असफलता से जिसमें कोई विकार नहीं आता, (वह) कर्ता सात्त्विक कहलाता है ।

१८.२७ रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥

रागी कर्मफलप् प्रेप्सुर्
लुब्धो हिंसात्मको (अ)शुचिः
हर्ष शोकान्वितः कर्ता,
राजसः परिकीर्तितः

रागी कर्मफलप्रेप्सुः लुब्धः हिंसात्मकः अशुचिः
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः

विषयानुरक्त, कर्मफल का इच्छुक, लोभग्रस्त, हिंसक, अपवित्र, हर्ष और शोक से प्रभावित, कर्ता, राजस कहा गया है ।

१८.२८ **अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥**

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः
शठो नैष्कृतिको (अ)लसः
विषादी दीर्घसूत्री च, – –
कर्ता तामस उच्यते

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठः नैष्कृतिकः अलसः
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामसः उच्यते

अव्यवस्थित, संस्कारहीन, उद्दंड, कपटी, दुर्भावपूर्ण, आलसी, निराश-मन और कार्य में विलम्बी कर्ता, तामस कहलाता है ।

१८.२९ **बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय ॥**

बुद्धेर् भेदं धृतेश् चै (ए)व – –
गुणतस् त्रिविधं शृणु – –
प्रोच्यमानम् अशेषेण – –
पृथक्त्वेन, धनंजय – –

बुद्धेः भेदम् धृतेः च एव गुणतः त्रिविधम् शृणु
प्रोच्यमानम् अशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय

बुद्धि और धैर्य के भेद भी, गुणानुसार, तीन प्रकार के हैं । तू सुन, जैसा कहा जा रहा है, निःशेष और अलग-अलग करके, धनंजय !

**१८.३० प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥**

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च, - -
कार्याकार्ये, भयाभये
बन्धं मोक्षं च, या वेत्ति - -
बुद्धिः सा, पार्थ, सात्त्विकी

प्रवृत्तिम् च निवृत्तिम् च कार्याकार्ये भयाभये
बन्धम् मोक्षम् च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी

संसार में अनुरक्ति और (उससे) विरक्ति को, और कर्तव्य-अकर्तव्य, भय-अभय, बन्धन और मोक्ष को, जो बुद्धि जानती है, वह हे पार्थ ! सात्त्विकी है ।

**१८.३१ यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥**

यया धर्मम् अधर्मं च, - -
कार्यं चा (अ)कार्यम् एव च - -
अयथावत् प्रजानाति, - -
बुद्धिः सा, पार्थ, राजसी

यया धर्मम् अधर्मम् च कार्यम् च अकार्यम् एव च
अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी

जिस से (मुनष्य) धर्म और अधर्म को, और कर्तव्य और अकर्तव्य को भी, अयथार्थ जानताहै, वह बुद्धि, हे पार्थ ! राजसी है ।

१८.३२ अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥

अधर्मं धर्मम् इति या
मन्यते, तमसा (आ)वृता
सर्वार्थान् विपरीतांश् च, - -
बुद्धिः सा, पार्थ, तामसी

अधर्मम् धर्मम् इति या मन्यते तमसा आवृता
सर्वार्थान् विपरीतान् च बुद्धिः सा पार्थ तामसी

इसी प्रकार जो अधर्म को धर्म मानती है, अन्धकार से घिरी हुई है, और सब वस्तुओं को उलटा (देखती है), वह बुद्धि, हे पार्थ । तामसी है ।

१८.३३ धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥

धृत्या यया धारयते
मनःप्राणेन्द्रियक् क्रियाः
योगेना (अ)व्यभिचारिण्या,
धृतिः सा, पार्थ, सात्त्विकी

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः
योगेन अव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी

जिस धृति से (पुरुष) मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को योग द्वारा नियंत्रित रखता है-बिना डगमगाए, वह धृति, हे पार्थ । सात्त्विकी है ।

**१८.३४ यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥**

यया तु धर्मकामार्थान्
धृत्या धारयते (अ)र्जुन – –
प्रसंगेन फलाकांक्षी,
धृतिः सा, पार्थ, राजसी

यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयते अर्जुन
प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी

वास्तव में, अर्जुन ! जिस धृति से (मनुष्य) धर्म, काम और अर्थ को दृढ़ता से पकड़े रहता है, फल की इच्छा के प्रसंग से, वह धृति, हे पार्थ ! राजसी है ।

**१८.३५ यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥**

यया स्वप्नं भयं शोकं
विषादं मदम् एवं च – –
न विमुञ्चति दुर्मेधा,
धृतिः सा, पार्थ, तामसी

यया स्वप्नम् भयम् शोकम् विषादम् मदम् एव च
न विमुञ्चति दुर्मेधाः धृतिः सा पार्थ तामसी

जिसके कारण निद्रा, भय, शोक, निराशा और घमण्ड को भी, मूढ व्यक्ति छोड़ता नहीं, वह धृति, हे पार्थ ! तामसी है ।

१८.३६ **सुखं त्विदानींत्रिविधं श्रृणु मे भरतर्षभ ।**
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥

सुखं त्व् इदानीं त्रिविधं
श्रृणु मे, भरतर्षभ - -
अभ्यासाद् रमते यत्र, - -
दुःखान्तं च निगच्छति - -

सुखम् तु इदानीम् त्रिविधम् श्रृणु मे भरतर्षभ
अभ्यासात् रमते यत्र दुःखान्तम् च निगच्छति

वास्तव में, सुख (भी) तीन प्रकार का है, जो तू अब मुझ से सुन, भरतर्षभ । अभ्यास से (मनुष्य) जिसमें रमता है और (उसके) दुःख का अन्त हो जाता है;

१८.३७ **यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।**
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥

यत् तद् अग्रे विषम् इव, - -
परिणामे (अ)मृतोपमम्
तत् सुखं सात्त्विकं प्रोक्तम्
आतमबुद्धिप्प्रसादजम्

यत् तत् अग्रे विषम् इव परिणामे अमृतोपमम्
तत् सुखं सात्त्विकम् प्रोक्तम् आतमबुद्धिप्रसादजम्

जो आरम्भ में विष जैसा, परिणाम में अमृत के समान है, वह सुख सात्त्विक कहा गया है - आध्यात्मिक बुद्धि की कृपा से उत्पन्न ।

१८.३८ विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥

विषयेन्द्रियसंयोगाद्,
यत् तद् अग्रे (अ)मृतोपमम्
परिणामे विषम् इव, - -
तत् सुखं राजसं स्मृतम्

विषयेन्द्रियसंयोगात् यत् तत् अग्रे अमृतोपमम्
परिणामे विषम् इव तत् सुखम् राजसम् स्मृतम्

वह, जो विषय और इन्द्रियों के संयोग से (मिलता है), आरम्भ में अमृत के समान, परिणाम में विष जैसा, उस सुख को राजस कह कर स्मरण किया जाता है।

१८.३९ यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥

यद् अग्रे चा (अ)नुबन्धे च - -
सुखं मोहनम् आत्मनः
निद्रालस्यप् प्रमादोत्थं,
तत् तामसम् उदाहृतम्

यत् अग्रे च अनुबन्धे च सुखम् मोहनम् आत्मनः
निद्रालस्यप्रमादोत्थम् तत् तामसम् उदाहृतम्

जो सुख, आरम्भ में, और परिणाम में भी, स्वयं (अपने) को मोह में डालने वाला है, निद्रा, आलस्य और भ्रम-भ्रांति से उत्पन्न हुआ–वह तामस कहा गया है।

१८.४० न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥

न तद् अस्ति पृथिव्यां वा,
दिवि देवेषु वा पुनः
सत्त्वं प्रकृतिजैर् मुक्तं
यद् एभिः स्यात् त्रिभिर् गुणैः

न तत् अस्ति पृथिव्याम् वा दिवि देवेषु वा पुनः
सत्त्वम् प्रकृतिजैः मुक्तम् यत् एभिः स्यात् त्रिभिः गुणैः

ऐसा कोई नहीं है— पृथ्वी पर अथवा आकाश में, और फिर देवताओं के बीच भी,— अस्तित्व, जो प्रकृति से उत्पन्न इन तीन गुणों से मुक्त हो ।

१८.४१ ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥

ब्राह्मणक् क्षत्रियविशां
शूद्राणाम् च, परंतप - -
कर्माणिप् प्रविभक्तानि - -
स्वभावप् प्रभवैर् गुणैः

ब्राह्मणक्षत्रियविशाम् शूद्राणाम् च परंतप
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैः गुणैः

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्मों का, परंतप ! विभाजन किया गया है, गुणों के अनुसार जो उनके स्वभाव से उत्पन्न होते हैं ।

१८.४२ शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥

शमो दमस्तपः शौचं,
क्षान्तिर् आर्जवम् एव च - -
ज्ञानं विज्ञानम् आस्तिक्यं,
ब्रह्मकर्मस् स्वभावजम्

शमः दमः तपः शौचम् क्षान्तिः आर्जवम् एव च
ज्ञानम् विज्ञानम् आस्तिक्यम् ब्रह्मकर्म स्वभावजम्

शान्ति, इन्द्रियसंयम, तप, शुचिता, क्षमा और सरलता भी, ज्ञान और अनुभूति, श्रद्धा-विश्वास, - ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं ।

१८.४३ शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥

शौर्यंतेजो धृतिर् दाक्ष्यं,
युद्धे चा (अ)प्य् अपलायनम्
दानम् ईश्वरभावश् च, - -
क्षात्रं कर्मस् स्वभावजम्

शौर्यम् तेजः धृतिः दाक्ष्यम् युद्धे च अपि अपलायनम्
दानम् ईश्वरभावः च क्षात्रम् कर्म स्वभावजम्

पराक्रम, तेज धीरज, दक्षता और फिर, युद्ध में पीठ न दिखाना, उदारता और प्रभुता - क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं ।

१८.४४ **कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।**
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं,
वैश्यकर्मस् स्वभावजम्
परिचर्यात्मकं कर्म, - -
शूद्रस्या (अ)पिस् स्वभावजम्

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यम् वैश्यकर्म स्वभावजम्
परिचर्यातमकम् कर्म शूद्रस्य अपि स्वभावजम्

कृषि, गोरक्षा और व्यापार, वैश्यों के स्वाभाविक कर्म हैं । सेवा-सम्बन्धी कर्म, शूद्र के लिए ही स्वाभाविक हैं ।

१८.४५ **स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।**
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥

स्वे स्वे कर्मण्य् अभिरतः
संसिद्धिं लभते नरः
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं
यथा विन्दति तच्छृणु - -

स्वे स्वे कर्मणि अभिरतः संसिद्धिम् लभते नरः
स्वकर्मनिरतः सिद्धिम् यथा विन्दति तत् शृणु

अपने अपने काम में लीन (हर) मनुष्य पूर्ण सिद्धि को प्राप्त करता है । अपने काम में लगा हुआ, (वह) जिस प्रकार सिद्धि को प्राप्त करता है, वह सुन ।

१८.४६ यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

यतः प्रवृत्तिर् भूतानां
येन सर्वम् इदं ततम्
स्वकर्मणा तम् अभ्यर्च्य - -
सिद्धिं विन्दति मानवः

यतः प्रवृत्तिः भूतानाम् येन सर्वम् इदम् ततम्
स्वकर्मणा तम् अभ्यर्च्य सिद्धिम् विन्दति मानवः

जिससे जड़-चेतनादि की उत्पत्ति है, जिससे यह सब व्याप्त है, अपने कर्मों द्वारा उसका पूजन करके, मनुष्य सिद्धि को प्राप्त करता है ।

१८.४७ श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः,
परधर्मात् स्वनुष्ठितात्
स्वभावनियतं कर्म - -
कुर्वन् ना (आ)प्नोति किल्बिषम्

श्रेयान् स्वधर्मः विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्
स्वभावनियतम् कर्म कुर्वन् न आप्नोति किल्बिषम्

अपना धर्म गुणरहित होने पर भी श्रेष्ठ है, पराए धर्म की अपेक्षा जो कुशलता से निभाया गया है । अपने स्वभाव के अनुसार निर्धारित कर्म करते हुए, (मनुष्य) को पाप नहीं लगता ।

**१८.४८ सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥**

सहजं कर्म, कौन्तेय, - -
सदोषम् अपि नत् त्यजेत्
सर्वारम्भा हि दोषेण - -
धूमेना (अ)ग्निर् इवा (आ)वृताः

सहजम् कर्म कौन्तेय सदोषम् अपि न त्यजेत्
सर्वारम्भाः हि दोषेण धूमेन अग्निः इव आवृताः

स्वाभाविक कर्म को, कौन्तेय । दोषपूर्ण होने पर भी, त्यागना नहीं चाहिए । वास्तव में, सम्पूर्ण कार्यक्रम दोष से आच्छादित हैं, जैसे धूएं से अग्नि ।

**१८.४९ असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥**

असक्तबुद्धिः सर्वत्र, - -
जितात्मा विगतस् स्पृहः
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां
संन्यासेना (अ)धिगच्छति - -

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः
नैष्कर्म्यसिद्धिम् परमाम् संन्यासेन अधिगच्छति

जिसकी बुद्धि सर्वत्र अनासक्त है, जिसने अपने को जीत लिया है, जिसकी इच्छाएं मिट गई हैं वह संन्यास द्वारा सर्वोपरि "नैष्कर्म्य सिद्धि" को प्राप्त होता है ।[४]

४. "नैष्कर्म्य" केवल कर्मों का अभाव नहीं, उसके लिए शब्द "अकर्म" है। फलेच्छा को त्याग कर अथवा कर्म बन्धन को तोड़ने के लिए जो कर्म किए जाते हैं वे "नैष्कर्म्य" के अंतर्गत आते हैं। ऐसे कर्म करने से मनुष्य, सिद्धि को प्राप्त होता है, जिसे "नैष्कर्म्य सिद्धि" कहा है।

**१८.५० सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥**

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म - -
तथा (आ)प्नोति निबोध मे
समासेनै (ए)व, कौन्तेय, - -
निष्ठा ज्ञानस्य या परा

सिद्धिम् प्राप्तः यथा ब्रह्म तथा आप्नोति निबोध मे
समासेन एव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा

सिद्धि प्राप्त करके जिस प्रकार (मनुष्य) ब्रह्म को पाता है, उसे तू मुझसे केवल संक्षेप में समझ ले, कौन्तेय । जो, ज्ञान की सर्वश्रेष्ठ, अन्तिम अवस्था है ।

**१८.५१ बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥**

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो,
धृत्या (आ)त्मानं नियम्य च - -
शब्दादीन् विषयान्स् त्यक्त्वा,
रागद् द्वेषौ व्युदस्य च - -

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तः धृत्या आत्मानम् नियम्य च
शब्दादीन् विषयान् त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च

शुद्ध बुद्धि से युक्त, और अपने को दृढ़ता से संयम में रख के, शब्द आदि विषयों को त्याग कर, और राग द्वेष को दूर हटा कर -

**१८.५२ विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥**

विविक्तसेवी लघ्वाशी,
यतवाक्कायमानसः
ध्यानयोगपरो नित्यं,
वैराग्यं समुपाश्रितः

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः
ध्यानयोगपरः नित्यम् वैराग्यम् समुपाश्रितः

एकान्तसेवी, अल्पाहारी, वाणी, शरीर और मन को संयम में करके, नित्य ध्यान योग में लीन, जिसने वैराग्य की शरण ली है-

**१८.५३ अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥**

अहंकारं बलं दर्पं,
कामं क्रोधं परिग्रहम्
विमुच्य निर्ममः शान्तो,
ब्रह्मभूयाय कल्पते

अहंकारम् बलम् दर्पम् कामम् क्रोधम् परिग्रहम्
विमुच्य निर्ममः शान्तः ब्रह्मभूयाय कल्पते

अहंकार, बल, घमण्ड, काम, क्रोध और (अत्यधिक धन-सामग्री के) संग्रह को त्याग कर, ममत्व रहित, शान्तिमय वह, ब्रह्मरूप होने के योग्य हो जाता है ।

**१८.५४ ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥**

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा,
न शोचति न कांक्षति - -
समः सर्वेषु भूतेषु, - -
मद्भक्तिं लभते पराम्

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिम् लभते पराम्

ब्रह्मरूप हुआ, प्रसन्नचित्त, वह न शोक करता है, न आकांक्षा । सब जड़-चेतनादि में एक समान (दृष्टि रखते हुए), वह मेरी भक्ति को प्राप्त करता है - जो सर्वोपरि है ।

**१८.५५ भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥**

भक्त्या माम् अभिजानाति - -
यावान् यश् चा (अ)स्मि तत्त्वतः
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा,
विशते तदनन्तरम्

भक्त्या माम् अभिजानाति यावान् यः च अस्मि तत्त्वतः
ततः माम् तत्त्वतः ज्ञात्वा विशते तत् अनन्तरम्

भक्ति द्वारा, वह मुझे भली प्रकार जान लेता है, - मैं जो और जितना हूँ, यथार्थ रूप में । तब मुझे (इस प्रकार) यथार्थ रूप में जान कर, वह तुरन्त ही उस (ब्रह्म) में प्रवेश करता है ।

१८.५६ **सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।**
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥

सर्वकर्माण्य् अपि सदा
कुर्वाणो, मद्व्यपाश्रयः
मत्प्रसादाद् अवाप्नोति - -
शाश्वतं पदम् अव्ययम्

सर्वकर्माणि अपि सदा कुर्वाणः मद्व्यपाश्रयः
मत्प्रसादात् अवाप्नोति शाश्वतम् पदम् अव्ययम्

सब कर्मों को निरन्तर करते हुए भी, मेरी शरण लेकर, (मनुष्य) मेरी कृपा से, सनातन अक्षय धाम को प्राप्त करता है ।

१८.५७ **चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।**
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥

चेतसा सर्वकर्माणि - -
मयि संन्यस्य मत्परः
बुद्धियोगम् उपाश्रित्य, - -
मच्चित्तः सततं भव - -

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः
बुद्धियोगम् उपाश्रित्य मच्चित्तः सततम् भव

मन से सब कर्मों को मुझ में अर्पण करके, मुझ में लीन हुआ, साम्य-बुद्धि का आश्रय लेकर, तू सदैव मुझ में चित्त लगाने वाला हो ।

१८.५८ मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ॥

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि - -
मत्प्रसादात् तरिष् ष्यसि - -
अथ चेत् त्वम् अहंकारान्
न श्रोष्यसि, विनंक्ष्यसि - -

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात् तरिष्यसि
अथ चेत् त्वम् अहंकारात् न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि

मुझ में चित्त लगाए हुए, तू मेरी कृपा से सब विघ्न बाधाओं को पार कर जाएगा । अब, यदि तू अहंकार के कारण नहीं सुनेगा, तो पूर्णतः नष्ट हो जाएगा ।

१८.५९ यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥

यद् अहंकारम् आश्रित्य, - -
न योत्स्य इति मन्यसे
मिथ्यै (ए)ष व्यवसायस् ते,
प्रकृतिस् त्वां नियोक्ष्यति - -

यत् अहंकारम् आश्रित्य न योत्स्ये इति मन्यसे
मिथ्या एषः व्यवसायः ते प्रकृतिः त्वाम् नियोक्ष्यति

जो अहंकार का आश्रय लेकर "मैं युद्ध नहीं करूंगा", तू इस प्रकार सोचता है, तेरा यह निश्चय व्यर्थ है । तेरी प्रकृति तुझे विवश कर देगी, (युद्ध करने के लिए) ।

१८.६० स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात् करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥

स्वभावजेन, कौन्तेय - -
निबद्धः स्वेन कर्मणा
कर्तुं ने (इ)च्छसि यन् मोहात् ,
करिष्यस्य् अवशो (अ)पि तत्

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा
कर्तुम् न इच्छसि यत् मोहात् करिष्यसि अवशः अपि तत्

कौन्तेय । अपने स्वाभाविक कर्म से बंधा हुआ, मोह के कारण जो तू करना नहीं चाहता, विवश होकर तुझे वही करना पड़ेगा ।

१८.६१ ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

ईश्वरः सर्वभूतानां
हृद्देशे (अ)र्जुन, तिष्ठति - -
भ्रामयन् सर्वभूतानि - -
यन्त्रारूढानि मायया

ईश्वरः सर्वभूतानाम् हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया

ईश्वर सब प्राणियों के हृदय स्थल में निवास करता है, अर्जुन । (और) सब प्राणियों को (ऐसे) घुमाता है, माया के द्वारा, जैसे यन्त्र चालित हों ।

**१८.६२ तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥**

तम् एव शरणं गच्छ - -
सर्वभावेन, भारत - -
तत्प्रसाद्यत् परां शान्तिं
स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्

तम् एव शरणम् गच्छ सर्वभावेन भारत
तत्प्रसादात् पराम् शान्तिम् स्थानम् प्राप्स्यसि शाश्वतम्

हे भारत । तू पूर्णरूप से एक मात्र उसीकी शरण में जा । उसकी कृपा से तू सर्वोच्च शान्ति के स्थान को पा जाएगा, जो सदा रहने वाला है ।

**१८.६३ इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥**

इति ते ज्ञानम् आख्यातं
गुह्याद् गुह्यतरं मया
विमृश्यै (ए)तद् अशेषेण, - -
यथे (इ)च्छसि तथा कुरु- -

इति ते ज्ञानम् आख्यातम् गुह्यात् गुह्यतरम् मया
विमृश्य एतत् अशेषेण यथा इच्छसि तथा कुरु

इस प्रकार (यह) ज्ञान, जो गोपनीय से भी अधिक गोपनीय है, मैंने तुझे कहा है । इसका तू पूर्ण रूप से चिन्तन मनन करके, जैसी तेरी इच्छा हो, वैसा कर ।

१८.६४ **सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।**
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥

सर्वगुह्यतमं भूयः
शृणु मे परमं वचः
इष्टो (अ)सि मे दृढम् इति, - -
ततो वक्ष्यामि ते हितम्

सर्वगुह्यतमम् भूयः शृणु मे परमम् वचः
इष्टः असि मे दृढम् इति ततः वक्ष्यामि ते हितम्

फिर सुन, मेरा सर्वोपरि वचन-जो गोपनीय रहस्यों में भी सबसे अधिक गोपनीय है । ऐसे भी तू मेरा गहरा प्रिय (मित्र) है, इसलिए मैं तेरे भले की कहूंगा ।

१८.६५ **मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।**
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

मन्मना भव, मद्भक्तो,
मद्याजी, मां नमस्कुरू - -
माम् एवै (ए)ष्यसि, सत्यं ते
प्रतिजाने, प्रियो (अ)सि मे

मन्मनाः भव मद्भक्तः मद्याजी माम् नमस्कुरु
माम् एव एष्यसि सत्यम् ते प्रतिजाने प्रियः असि मे

मुझ में मन लगा, मेरा भक्त हो, मेरे निमित्त यज्ञ कर, मुझे नमस्कार कर । तू मुझे ही आ मिलेगा । मैं तुझे सत्य वचन देता हूं (कारण), तू मुझे प्रिय है ।

१८.६६ सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

सर्वधर्मान् परित्यज्य, - -
माम् एकं शरणं व्रज - -
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो
मोक्षयिष्यामि, मा शुचः

सर्वधर्मान् परित्यज्य माम् एकम् शरणम् व्रज
अहम् त्वा सर्वपापेभ्यः मोक्षयिष्यामि मा शुचः

सब धर्म-कर्म[५] को त्यागकर, तू एक मेरी शरण में आ जा । मैं तुझे सब पापों से मुक्त करूंगा । दुःखी मत हो ।

१८.६७ इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥

इदं ते ना (अ)तपस्काय - -
ना (अ)भक्ताय कदाचन - -
न चा (अ)शुश्रूषवे वाच्यं,
न च मां यो (अ)भ्यसूयति - -

इदम् ते न अतपस्काय न अभक्ताय कदाचन
न च अशुश्रूषवे वाच्यम् न च माम् यः अभ्यसूयति

जो तपस्वी नहीं है, भक्त नहीं है और जो सुनना नहीं चाहता, उसे यह (ज्ञान) तुझे कभी नहीं कहना चाहिए, और न उसे, जो मेरी निन्दा करता है ।

५. लोकधर्म अथवा लोकव्यवहार जो नाना सम्बन्धों के माध्यम से निर्मित है

**१८.६८ य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥**

य इमं परमं गुह्यं
मद्भक्तेष्व् अभिधास्यति – –
भक्तिं मयि परां कृत्वा
माम् एवै (ए)ष्यत्य् असंशयः

यः इमम् परमम् गुह्यम् मद्भक्तेषु अभिधास्यति
भक्तिम् मयि पराम् कृत्वा माम् एव एष्यति असंशयः

जो इस सर्वोच्च रहस्य को मेरे भक्तो में प्रकट करेगा, मुझमें परम भक्ति रखता हुआ, वह मुझे ही आ मिलेगा, इसमें संदेह नहीं ।

**१८.६९ न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥**

न च तस्मान् मनुष्येषु – –
कश्चिन् मे प्रियकृत्तमः
भविता, न च मे तस्माद्
अन्यः प्रियतरो भुवि – –

न च तस्मात् मनुष्येषु कश्चित् मे प्रियकृत्तमः
भविता न च मे तस्मात् अन्यः प्रियतरः भुवि

और न उसके अतिरिक्त, मनुष्यों में कोई ऐसा है, जो मेरा सबसे अधिक प्रिय कार्य करने वाला हो, और न उसके अतिरिक्त मुझे कोई दूसरा अधिक प्रिय होगा, पृथ्वी पर ।

**१८.७० अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ।।**

अध्येष्यते च य इमं
धर्म्यं संवादम् आवयो:
ज्ञानयज्ञेन तेना (अ)हम्
इष्टः स्याम् इति मे मतिः

अध्येष्यते च यः इमम् धर्म्यम् संवादम् आवयोः
ज्ञानयज्ञेन तेन अहम् इष्टः स्याम् इति मे मतिः

और, जो हम दोनों के इस धार्मिक संवाद का अध्ययन करेगा , उसके द्वारा ज्ञान यज्ञ से, मेरी पूजा होगी ऐसा मेरा विचार है ।

**१८.७१ श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ।।**

श्रद्धावान् अनसूयश् च - -
शृणुयाद् अपि यो नरः
सो (अ)पि मुक्तः शुभाँल् लोकान्
प्राप्नुयात् पुण्यकर्मणाम्

श्रद्धावान् अनसूयः च शृणुयात् अपि यः नरः
सः अपि मुक्तः शुभान् लोकान् प्राप्नुयात् पुण्यकर्मणाम्

जो श्रद्धालु और निन्दा न करने वाला मनुष्य (इसे) केवल सुनता ही है, वह भी मुक्त होकर शुभ लोकों को प्राप्त होता है - जो पुण्य कर्म करने वालों के हैं ।

१८.७२ कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥

कच्चिद् एतच् छ्रुतं, पार्थ, - -
त्वयै (ए)काग्रेण चेतसा
कच्चिद् अज्ञानसंमोहः
प्रनष्टस् ते, धनंजय - -

कच्चित् एतत् श्रुतम् पार्थ त्वया एकाग्रेण चेतसा
कच्चित् अज्ञानसंमोहः प्रनष्टः ते धनंजय

हे पार्थ । क्या तू ने इसे सुना, एकाग्र चित्त से ? क्या तेरा अज्ञान (जनित) मोह, पूर्णतया नष्ट हुआ, धनंजय ?

१८.७३ अर्जुन उवाच-
नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥

नष्टो मोहः स्मृतिर् लब्धा,
त्वत्प्रसादान् मया (अ)च्युत - -
स्थितो (अ)स्मि गतसन्देहः,
करिष्ये वचनं तव - -

नष्टः मोहः स्मृतिः लब्धा त्वत्प्रसादात् मया अच्युत
स्थितः अस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनम् तव

अर्जुन उवाच-
(मेरा) मोह नष्ट हो गया है । (भूले हुए ज्ञान की) स्मृति मैंने प्राप्त कर ली है, आप की दया से, हे अच्युत[६] । (अब) मैं स्थिर हूं । सन्देह दूर हो गया है । आप का कहा, करूंगा ।

६. गीता के आरम्भ में भी अर्जुन ने भगवान् को 'अच्युत' कह कर सम्बोधित किया है । (देखिए अध्याय १ श्लोक २१) दोनों अवसरों पर अर्जुन की मनःस्थिति की तुलना करें । (देखें गीता पाठमाला)

१८.७४ संजय उवाच-
इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्‌भुतं रोमहर्षणम् ॥

इत्य् अहं वासुदेवस्य - -
पार्थस्य च महात्मनः
संवादम् इमम् अश्रौषम्
अद्‌भुतं रोमहर्षणम्

इति अहम् वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः
संवादम् इमम् अश्रौषम् अद्‌भुतम् रोमहर्षणम्

संजय उवाच-
इस प्रकार वासुदेव और महात्मा पार्थ का यह संवाद मैं ने सुना - अद्‌भुत, रोमांचकारी ;

१८.७५ व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्‌गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥

व्यासप्प्रसादाच् छ्रुतवान्
एतद् गुह्यम् अहं परम्
योगं योगेश्वरात् कृष्णात्
साक्षात् कथयतः स्वयम्

व्यासप्रसादात् श्रुतवान् एतत् गुह्यम् अहम् परम्
योगम् योगेश्वरात् कृष्णात् साक्षात् कथयतः स्वयम्

व्यासजी की कृपा से, मैंने इस सर्वोपरि गोपनीय योग को सुना, साक्षात् योगेश्वर कृष्ण से, स्वयं कहते हुए ।

**१८.७६ राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥**

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य, - -
संवादम् इमम् अद्भुतम्
केशवार्जुनयोः पुण्यं,
हृष्यामि च मुहुर्मुहुः

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादम् इमम् अद्भुतम्
केशवार्जुनयोः पुण्यम् हृष्यामि च मुहुर्मुहुः

हे राजन् ।[७] केशव और अर्जुन के इस अद्भुत पुण्यमय संवाद को, मैं स्मरण कर-कर के हर्षित होता हूं, और बार-बार ।

**१८.७७ तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ॥**

तच् च संस्मृत्य संस्मृत्य, - -
रूपम् अत्यद्भुतं हरेः
विस्मयो मे महान्, राजन्,
हृष्यामि च पुनः पुनः

तत् च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपम् अति अद्भुतम् हरेः
विस्मयः मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः

और, हरि के उस अत्यंत चामत्कारिक रूप को स्मरण कर कर के मुझे बड़ा आश्चर्य होता है, राजन् । और मैं हर्ष से पुलकित हो जाता हूं, बार-बार ।

७. धृतराष्ट्र

१८.७८ यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो,
यत्र पार्थो धनुर्धरः
तत्रश् श्रीर् विजयो भूतिर्
ध्रुवा नीतिर् मतिर् मम - -

यत्र योगेश्वरः कृष्णः यत्र पार्थः धनुर्धरः
तत्र श्रीः विजयः भूतिः ध्रुवा नीतिः मतिः मम

जहां योगेश्वर कृष्ण हैं, जहां धनुर्धारी पार्थ है, वहीं लक्ष्मी है, विजय है, वैभव है, अविचल नीति है- यह मेरी धारणा है ।

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगो नामाष्टादशोऽध्यायः समाप्तः

श्री कृष्णार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।
ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

गीता व्याकरण

१. प्रस्तावना

गीता कोश में शब्द का अर्थ, पद व्याख्या और उन श्लोकों का निर्देश भी है, जहां-जहां शब्द का प्रयोग हुआ है। यहां हम पाठकों का साधारण सा परिचय संस्कृत भाषा के व्याकरण के कुछ नियमो से करा देना चाहते हैं जिससे उन्हें गीता के श्लोक समझने में सहायता मिले। संस्कृत भाषा के व्याकरण की विशेषताओं को तालिकाबद्ध रूप से समझाने का प्रयास किया गया है जो सरल और सहज प्रतीत होता है। जिस प्रकार मानचित्रों के देखने से भूगोल ज्ञान के अध्ययन में सहायता मिलती है वैसे ही ये तालिकाएं संस्कृत व्याकरण की विशेषताओंको बोधगम्य कराने में सहायक होनी चाहिए। हमारा ध्येय पाठकों को संस्कृत शब्दों की साधारण व्याकरणिक जानकारी कराना भर है, न कि उनकी व्युत्पत्ति का वर्णन करना।

हम यह मान कर चल रहे हैं कि हमारे पाठकों को हिन्दी भाषा के व्याकरण का साधारण ज्ञान है। उन्हें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि संस्कृत देवनागरी लिपि में लिखी जाती है; स्वर क्या हैं ? व्यंजन क्या हैं ? इसके अतिरिक्त, संज्ञा, विषेशण सर्वनाम, क्रिया, क्रिया विशेषण, अव्ययों और प्रत्ययों के भेद भी क्या-क्या हैं ? हम केवल उन बातों का ही उल्लेख करेंगे जो संस्कृत भाषा के व्याकरण की विशेषताएं दर्शाती हैं, जिससे पाठक गीता के मूलरूप श्लोकों को और भली प्रकार समझ कर, आनन्द ले सकें।

२. *विभक्ति*

संस्कृत भाषा में सम्बन्ध-बोधक चिन्ह अलग से नहीं हैं, जैसे हिन्दी में जो नीचे चार्ट में दिखाए गए हैं। सम्बन्ध दर्शाने के लिए संस्कृत भाषा में शब्द के साथ विभक्ति लगा दी जाती है। यह शब्द के अन्त में लगा हुआ वह प्रत्यय या चिन्ह है जो यह बतलाता है कि उस शब्द का दूसरे शब्द से या क्रिया पद से क्या सम्बध है। विभक्तियाँ आठ प्रकार की हैं।

विभक्तियाँ		कारक	हिन्दी-भाषा के सम्बन्ध बोधक चिन्ह	उदाहरण एकवचन
१.	प्रथमा	कर्ता	ने	रामः
२.	द्वितीया	कर्म	को	रामम्
३.	तृतीया	करण	से, के द्वारा,	रामेण
४.	चतुर्थी	सम्प्रदान	के लिए, को	रामाय
५.	पंचमी	अपादान	से (पृथक होना), की अपेक्षा	रामात्
६.	षष्ठी*	सम्बन्ध	का, की, के; रा, री, रे	रामस्य
७.	सप्तमी	अधिकरण	में, पर	रामे
८.	सम्बोधन*	सम्बोधन	हे, ओ, अरे	(हे) राम

*क्रिया पद के साथ प्रत्यक्ष सम्बध न दिखाने के कारण सम्बन्ध और सम्बोधन कारकों को कारक नहीं माना जाता।

(क) अव्यय और नियत लिंग के शब्दों को छोड़कर, विभक्ति द्वारा शब्द का

वचन और लिंग भी दर्शाया जाता है, जैसे

शब्द	वचन			लिंग
	एक	द्वि	बहु	
राम	रामः	रामौ	रामाः	पुंल्लिंग
मति	मतिः	मती	मतयः	स्त्रीलिंग
फल	फलम्	फले	फलानि	नपुंसकलिंग

(ख) विभक्तियों के अन्य उपयोगों के लिए आगे देखिए प्रकरण (७) के अन्तर्गत।

३. *लिंग*

हिन्दी में केवल दो लिंग हैं – स्त्रीलिंग और पुंल्लिंग। संस्कृत में इन दो लिंगो के अतिरिक्त एक और लिंग है जिसे नपुंसकलिंग कहते हैं। एक ही वस्तु का बोध कराने वाला कोई शब्द पुंल्लिंग, कोई स्त्रीलिंग, कोई नपुंसकलिंग में भी होता है। जैसे तनु (स्त्रीलिंग) देह (पुंल्लिंग) और शरीरम् (नपुंसकलिंग)। सब का एक ही अर्थ है– शरीर। "दाराः" शब्द पुंल्लिंग में है, "कलत्र" नपुंसकलिंगी शब्द है जबकि दोनों का अर्थ है "स्त्री"। "देवता" शब्द स्त्रीलिंग में होते हुए भी देव (पुरुष) का अर्थ बताता है। और "मित्र" (दोस्त) नपुंसकलिंग में है। और फिर कई शब्द उभयलिंगी होते हैं जैसे 'देह'। इसका पुंल्लिंग और नपुंसकलिंग में प्रयोग होता है और भिन्न-भिन्न अर्थों में। इसी कारण संस्कृत में संज्ञाओं का लिंग जानना बड़ा कठिन हो जाता है। इसके जानने के लिए कोश और व्याकरण के अध्ययन की आवश्यक्ता पड़ती है।

लिंगों की जानकारी के लिए गीता-कोश में "शब्द" के सामने हम एक संकेत-सूचक शब्द दे रहे हैं। जैसे "गुरु" "धेनु" "बहु" यद्यपि तीनों शब्द उकारान्त हैं पर "गुरु" पुंल्लिंग, "धेनु" "स्त्रीलिंग", और "बहु" नपुंसकलिंग में है। ऐसे प्रत्येक सूचक-शब्द के लिए जो गीता में प्रयुक्त है, एक तालिका है जिसे देखने से यह पता चल जायेगा कि शब्द का लिंग क्या है। देखिए तालिका पृष्ठ ४१२ पर ।

४. वचन

हिन्दी मे केवल दो वचन हैं; एक वचन और बहुवचन। इनके अतिरिक्त संस्कृत में "द्विवचन" भी है। इससे दो का बोध होता है। प्रत्येक वचन के अनुसार विभक्ति का रूप बदल जाता है। यद्यपि हम तालिकाओं में "द्विवचन" के विभक्ति रूप दे रहें हैं, पर हमारे पाठक इन पर अभी कोई विशेष ध्यान न दें। गीता में द्विवचन का प्रयोग नहीं के बराबर है।

५. संज्ञा शब्द

शब्द स्वरान्त और व्यंजनान्त होते हैं। और इस प्रकार के हर शब्द का विभक्ति रूप अलग-अलग है जो तालिकाओं को देखने से सहज समझ में आ जायेगा, रटने की आवश्यकता नहीं। श्रीमद्भगवद्गीता में जो संज्ञा शब्द प्रयुक्त हैं, उनके संकेत- सूचक शब्द के लिए देखिए तालिका, पृष्ठ ४१२ पर। ये शब्द किस प्रकार चलाए जाते हैं, इसके लिए निम्न नम्बर की तालिकाएं देखें:-

	तालिका नम्बर		
शब्द	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
स्वरान्त	१	२	३
व्यंजनान्त	४ (१-४)	५	६ (१-२)

इनके अतिरिक्त कतिपय प्रयोग वाले निम्नलिखित शब्द भी हैं,
स्वरांत- ऊष्मपा (पु) चमू (स्त्री) पितृ (पु) सुधी (पु) भ्रू (स्त्री.)
व्यंजनांत- उशनस् (पु.) कामधुक् (पु) ऋत्विज् (पु) शर्मन् (पु)
भास् (स्त्री) सम्पद् (स्त्री) नामन् (नपुं) महत् (नपुं)। ऐसे शब्दों को चलाए जाने की तालिकाएं हम अलग से नहीं दे रहे हैं।

तालिका-संकेत सूचक शब्द

	लिंग		
	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
१. स्वरान्त			
अकारान्त	राम		फल
आकारान्त		विद्या	
इकारान्त	हरि, सखि	मति	वारि, पु॰
ईकारान्त		नदी, स्त्री	
उकारान्त	गुरु	धेनु	बहु
ऋकारान्त	धातृ	मातृ	कर्तृ
ओकारान्त	गो		
२. व्यंजनान्त			
चकारान्त		वाॅच् (वाणी)	
तकारान्त	मरुत्		जगत्
	धीमत्		नश्यत्
	ध्यायत्		
	महत्		
दकारान्त	तत्त्वविद्		
धकारान्त	युध्		
नकारान्त	अर्यमन्		अहन्
	आत्मन्		जन्मन्
	राजन्		कर्मन्
	पथिन्		
	श्वन्		
	शशिन्		
पकारान्त		अप् (नित्य बहुवचन)	
रकारान्त		गिर् (वाणी)	
वकारान्त		दिव्	
शकारान्त	ईदृश् , विश्	दिश् ,	
सकारान्त	चन्द्रमस्		मनस्
	गरीयस्		धनुस्
	पुमस्		हविस्
	विद्वस्		

विशेषण

हिन्दी में कभी तो विशेष्य के लिंग के अनुसार विशेषण बदलता है जैसे – भूरी गाय, भूरा घोड़ा, कभी नहीं जैसे लाल गाय, लाल घोड़ा। इसी प्रकार वचन के अनुसार भी परिवर्तन होता है – जैसे काला कुत्ता, काले कुत्ते। हिन्दी में विभक्ति चिन्ह का, (अलग से होने के कारण) कोई प्रभाव विशेषण-विशेष्य पर नहीं पड़ता, परन्तु, संस्कृत में विशेष्य के लिंग, वचन और विभक्ति के अनुसार ही, विशेषण भी उसी लिंग, वचन और विभक्ति में होता है – जैसे समान लिंग (पुं) श्वेतः अश्वः (स्त्री.) श्वेता वाटिका।
(नपुं) श्वेतं पुष्पम्।

समान वचन (१ वचन) चतुरा बालिका (२ वचन) चतुरे बालिके
(बहु वचन) चतुराः बालिकाः

समान विभक्ति (१) चतुरः बालः,
(२) चतुरं बालम्,
(३) चतुरेण बालेन,
(४) चतुराय बालाय,
(५)चतुरात् बालात् ,
(६) चतुरस्य बालस्य
(७) चतुरे बाले,
(८) चतुर बाल।

यह व्याख्या हम आप की साधारण जानकारी के लिए कर रहे हैं। गीता में विशेषण-विशेष्य का प्रयोग अधिक नहीं है।

तालिका नं. १

अजन्त पुंल्लिंगाः शब्दाः

अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त, ऋकारान्त, ओकारान्त

	राम	हरि	सखि	गुरू	धातृ	गो
एकवचन						
प्र.	रामः	हरिः	सखा	गुरूः	धाता	गौः
द्वि.	रामम्	हरिम्	सखायम्	गुरूम्	धातारम्	गाम्
तृ.	रामेण	हरिणा	सख्या	गुरूणा	धात्रा	गवा
च.	रामाय	हरये	सख्ये	गुरवे	धात्रे	गवे
पं.	रामात्	हरेः	सख्युः	गुरोः	धातुः	गोः
ष.	रामस्य	हरेः	सख्युः	गुरोः	धातुः	गोः
स.	रामे	हरौ	सख्यौ	गुरौ	धातरि	गवि
संबो.	हे राम	हे हरे	हे सखे	हे गुरो	हे धातः	हे गौः
द्विवचन						
प्र.	रामौ	हरी	सखायौ	गुरू	धातारौ	गावौ
द्वि.	रामौ	हरी	सखायौ	गुरू	धातारौ	गावौ
तृ.	रामाभ्याम्	हरिभ्याम्	सखिभ्याम्	गुरूभ्याम्	धातृभ्याम्	गोभ्याम्
च.	रामाभ्याम्	हरिभ्याम्	सखिभ्याम्	गुरूभ्याम्	धातृभ्याम्	गोभ्याम्
पं.	रामाभ्याम्	हरिभ्याम्	सखिभ्याम्	गुरूभ्याम्	धातृभ्याम्	गोभ्याम्
ष.	रामयोः	हर्योः	सख्योः	गुर्वोः	धात्रोः	गवोः
स.	रामयोः	हर्योः	सख्योः	गुर्वोः	धात्रोः	गवोः
संबो.	हे रामौ	हे हरी	हे सखायौ	हे गुरू	हे धातारौ	हे गावौ
बहुवचन						
प्र.	रामाः	हरयः	सखायः	गुरवः	धातारः	गावः
द्वि.	रामान्	हरीन्	सखीन्	गुरून्	धातृन्	गाः
तृ.	रामैः	हरिभिः	सखिभिः	गुरुभिः	धातृभिः	गोभिः
च.	रामेभ्यः	हरिभ्यः	सखिभ्यः	गुरूभ्यः	धातृभ्यः	गोभ्यः
पं.	रामेभ्यः	हरिभ्यः	सखिभ्यः	गुरूभ्यः	धातृभ्यः	गोभ्यः
ष.	रामाणाम्	हरीणाम्	सखीनाम्	गुरूणाम्	धातृणाम्	गवाम्
स.	रामेषु	हरिषु	सखिषु	गुरूषु	धातृषु	गोषु
संबो.	हे रामाः	हे हरयः	हे सखायः	हे गुरवः	हे धातारः	हे गावः

अजन्त स्त्रीलिंगाः शब्दाः

तालिका नं. २

आकारान्त, इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त, ऋकारान्त

	विद्या	मति	नदी	स्त्री	धेनु	मातृ
एकवचन						
प्र.	विद्या	मतिः	नदी	स्त्री	धेनुः	माता
द्वि	विद्याम्	मतिम्	नदीम्	स्त्रियम्,स्त्रीम्	धेनुम्	मातरम्
तृ.	विद्यया	मत्या	नद्या	स्त्रिया	धेन्वा	मात्रा
च.	विद्यायै	मत्यै	नद्यै	स्त्रियै	धेन्वै,धेनवे	मात्रे
पं.	विद्यायाः	मत्याः,मतेः	नद्याः	स्त्रियाः	धेन्वाः,धेनोः	मातुः
ष.	विद्यायाः	मत्याः,मतेः	नद्याः	स्त्रियाः	धेन्वाः,धेनोः	मातुः
स.	विद्यायाम्	मत्याम्,मतो	नद्याम्	स्त्रियाम्	धेन्वाम् ,धेनौ	मातरि
संबो	हे विद्ये	हे मते	हे नदि	हे स्त्रि	हे धेनो	हे मातः
द्विवचन						
प्र.	विद्ये	मती	नद्यौ	स्त्रियौ	धेनू	मातरौ
द्वि.	विद्ये	मती	नद्यौ	स्त्रियौ	धेनू	मातरौ
तृ.	विद्याभ्याम्	मतिभ्याम्	नदीभ्याम्	स्त्रीभ्याम्	धेनुभ्याम्	मातृभ्याम्
च.	विद्याभ्याम्	मतिभ्याम्	नदीभ्याम्	स्त्रीभ्याम्	धेनुभ्याम्	मातृभ्याम्
पं.	विद्याभ्याम्	मतिभ्याम्	नदीभ्याम्	स्त्रीभ्याम्	धेनुभ्याम्	मातृभ्याम्
ष.	विद्ययोः	मत्योः	नद्योः	स्त्रियोः	धेन्वोः	मात्रोः
स.	विद्ययोः	मत्योः	नद्योः	स्त्रियौः	धेन्वोः	मात्रोः
संबो.	हे विद्ये	हे मती	हे नद्यौ	हे स्त्रियौ	हे धेनू	हे मातरौ
बहुवचन						
प्र.	विद्याः	मतयः	नद्यः	स्त्रियः	धेनवः	मातरः
द्वि.	विद्याः	मतीः	नदीः	स्त्रियः,स्त्रीः	धेनूः	मातॄः
तृ	विद्याभिः	मतिभिः	नदीभिः	स्त्रीभिः	धेनुभिः	मातृभिः
च.	विद्याभ्यः	मतिभ्यः	नदीभ्यः	स्त्रीभ्यः	धेनुभ्यः	मातृभ्यः
प.	विद्याभ्यः	मतिभ्यः	नदीभ्यः	स्त्रीभ्यः	धेनुभ्यः	मातृभ्यः
ष.	विद्यानाम्	मतीनाम्	नदीनाम्	स्त्रीणाम्	धेनूनाम्	मातॄणाम्
स.	विद्यासु	मतिषु	नदीषु	स्त्रीषु	धेनुषु	मातृषु
संबो.	हे विद्याः	हे मतयः	हे नद्यः	हे स्त्रियः	हे धेनवः	हे मातरः

अजन्त नपुंसकलिंगाः शब्दाः   तालिका नं. ३

अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त, ऋकारान्त,

	फल	वारि	पूति	बहु	कर्तृ
एकवचन					
प्र.	फलम्	वारि	पूति	बहु	कर्तृ
द्वि.	फलम्	वारि	पूति	बहु	कर्तृ
तृ.	फलेन	वारिणा	पूतिना	बहुना	कर्तृणा,कर्त्रा
च.	फलाय	वारिणे	पूतिने	बहुने, बहुवे	कर्तृणे,कर्त्रे
पं.	फलात्	वारिणः	पूतिनः	बहुनः, बहोः	कर्तृणः,कर्तुः
ष.	फलस्य	वारिणः	पूतिनः	बहुनः, बहोः	कर्तृणः,कर्तुः
स.	फले	वारिणि	पूतिनि	बहुनि, बहौ	कर्तृणि,कर्तरि
सबो.	हे फल	हेवारि,हे वारे	हे पूति	हे बहु, हेबहो	हे कर्तृ, हेकर्तः
द्विवचन					
प्र.	फले	वारिणी	पूतिनी	बहुनी	कर्तृणी
द्वि.	फले	वारिणी	पूतिनी	बहुनी	कर्तृणी
तृ.	फलाभ्याम्	वारिभ्याम्	पूतिभ्याम्	बहुभ्याम्	कर्तृभ्याम्
च.	फलाभ्याम्	वारिभ्याम्	पूतिभ्याम्	बहुभ्याम्	कर्तृभ्याम्
पं.	फलाभ्याम्	वारिभ्याम्	पूतिभ्याम्	बहुभ्याम्	कर्तृभ्याम्
ष.	फलयोः	वारिणोः	पूतिनोः	बहुनोः,बह्वोः	कर्तृणोः,कर्त्रोः
स.	फलयोः	वारिणोः	पूतिनोः	बहुनोः,बह्वोः	कर्तृणोः,कर्त्रोः
सबो.	हे फले	हे वारिणी	हे पूतिनी	हे बहुनी	हे कर्तृणी
बहुवचन					
प्र.	फलानि	वारीणि	पूतीनि	बहूनि	कर्तृणि
द्वि.	फलानि	वारीणि	पूतीनि	बहूनि	कर्तृणि
तृ.	फलैः	वारिभिः	पूतिभिः	बहुभिः	कर्तृभिः
च.	फलेभ्यः	वारिभ्यः	पूतिभ्यः	बहुभ्यः	कर्तृभ्यः
पं.	फलेभ्यः	वारिभ्यः	पूतिभ्यः	बहुभ्यः	कर्तृभ्यः
ष.	फलानाम्	वारीणाम्	पूतीनाम्	बहूनाम्	कर्तृणाम्
स.	फलेषु	वारिषु	पूतिषु	बहुषु	कर्तृषु
सबो.	हे फलानि	हे वारीणि	हे पूतीनि	हे बहूनि	हे कर्तृणि

हलन्त पुंल्लिंगाः शब्दाः (१) तालिका नं. ४ (१)

तकारान्त

	मरुत्	धीमत्	भवत्	ध्यायत्	महत्
एकवचन					
प्र.	मरुत्	धीमान्	भवान्	ध्यायन्	महान्
द्वि.	मरुतम्	धीमन्तम्	भवन्तम्	ध्यायन्तम्	महान्तम्
तृ.	मरुता	धीमता	भवता	ध्यायता	महता
च.	मरुते	धीमते	भवते	ध्यायते	महते
पं.	मरुतः	धीमतः	भवतः	ध्यायतः	महतः
ष.	मरुतः	धीमतः	भवतः	ध्यायतः	महतः
स.	मरुति	धीमति	भवति	ध्यायति	महति
सबो.	हे मरुत्	हे धीमत्	हे भवन्	हे ध्यायन्	हे महन्
द्विवचन					
प्र.	मरुतौ	धीमन्तौ	भवन्तौ	ध्यायन्तौ	महान्तौ
द्वि.	मरुतौ	धीमन्तौ	भवन्तौ	ध्यायन्तौ	महान्तौ
तृ.	मरुद्भ्याम्	धीमद्भ्याम्	भवद्भ्याम्	ध्यायद्भ्याम्	महद्भ्याम्
च.	मरुद्भ्याम्	धीमद्भ्याम्	भवद्भ्याम्	ध्यायद्भ्याम्	महद्भ्याम्
पं.	मरुद्भ्याम्	धीमद्भ्याम्	भवद्भ्याम्	ध्यायद्भ्याम्	महद्भ्याम्
ष.	मरुतोः	धीमतोः	भवतोः	ध्यायतोः	महतोः
स.	मरुतोः	धीमतोः	भवतोः	ध्यायतोः	महतोः
सबो.	हे मरुतौ	हे धीमन्तौ	हे भवन्तौ	हे ध्यायन्तौ	हे महान्तौ
बहुवचन					
प्र.	मरुतः	धीमन्तः	भवन्तः	ध्यायन्तः	महान्तः
द्वि.	मरुतः	धीमतः	भवतः	ध्यायतः	महतः
तृ.	मरुद्भिः	धीमद्भिः	भवद्भिः	ध्यायद्भिः	महद्भिः
च.	मरुद्भ्यः	धीमद्भ्यः	भवद्भ्यः	ध्यायद्भ्यः	महद्भ्यः
पं.	मरुद्भ्यः	धीमद्भ्यः	भवद्भ्यः	ध्यायद्भ्यः	महद्भ्यः
ष.	मरुताम्	धीमताम्	भवताम्	ध्यायताम्	महताम्
स.	मरुत्सु	धीमत्सु	भवत्सु	ध्यायत्सु	महत्सु
सबो.	हे मरुतः	हे धीमन्तः	हे भवन्तः	हे ध्यायन्तः	हे महान्तः

हलन्त पुंल्लिंगाः शब्दाः (२) तालिका नं. ४ (२)

नकारान्त

	अर्यमन्	आत्मन्	पथिन्	राजन्	शशिन्	श्वन्
एकवचन						
प्र.	अर्यमा	आत्मा	पन्थाः	राजा	शशी	श्वा
द्वि.	अर्यमणम्	आत्मानम्	पन्थानम्	राजानम्	शशिनम्	श्वानम्
तृ.	अर्यम्णा	आत्मना	पथा	राज्ञा	शशिना	शुना
च.	अर्यम्णे	आत्मने	पथे	राज्ञे	शशिने	शुने
प.	अर्यम्णः	आत्मनः	पथः	राज्ञः	शशिनः	शुनः
ष.	अर्यम्णः	आत्मनः	पथः	राज्ञः	शशिनः	शुनः
स.	अर्यम्णि	आत्मनि	पथि	राज्ञि, राजनि	शशिन्	शुनि
सबो.	हे अर्यमन्	हे आत्मन्	हे पथिन्	हे राजन्	हे शशिन्	हे श्वन्
द्विवचन						
प्र.	अर्यमणौ	आत्मानौ	पन्थानौ	राजानौ	शशिनौ	श्वानौ
द्वि.	अर्यमणौ	आत्मानौ	पन्थानौ	राजानौ	शशिनौ	श्वानौ
तृ.	अर्यमभ्याम्	आत्मभ्याम्	पथिभ्याम्	राजभ्याम्	शशिभ्याम्	श्वभ्या
च.	अर्यमभ्याम्	आत्मभ्याम्	पथिभ्याम्	राजभ्याम्	शशिभ्या	श्वभ्याम्
पं.	अर्यमभ्याम्	आत्मभ्याम्	पथिभ्याम्	राजभ्याम्	शशिभ्याम्	श्वभ्याम्
ष.	अर्यम्णोः	आत्मनोः	पथोः	राज्ञोः	शशिनोः	शुनोः
स.	अर्यम्णोः	आत्मनोः	पथोः	राज्ञोः	शशिनोः	शुनोः
सबो.	हे अर्यमणौं	हे आत्मानौ	हे पन्थौ	हे राजानौ	हे शशिनौ	हे श्वानौ
बहुवचन						
प्र.	अर्यमणः	आत्मानः	पन्थानः	राजानः	शशिनः	श्वानः
द्वि.	अर्यमणः	आत्मनः	पथः	राज्ञः	शशिनः	शुनः
तृ.	अर्यमभिः	आत्मभिः	पथिभिः	राजभिः:	शशिभिः	श्वभिः
च.	अर्यमभ्यः	आत्मभ्यः	पथिभ्यः	राजभ्यः	शशिभ्यः	श्वभ्यः
पं.	अर्यमभ्यः	आत्मभ्यः	पथिभ्यः	राजभ्यः	शशिभ्यः	श्वभ्यः
ष.	अर्यम्णाम्	आत्मानाम्	पथाम्	राज्ञाम्	शशिनाम्	शुनाम्
स.	अर्यमसु	आत्मसु	पथिषु	राजसु	शशिषु	श्वसु
सबो.	हे अर्यमणः	हे आत्मानः	हे पन्थानः	हे राजानः	हे शशिनः	हे श्वानः

हलन्त पुंल्लिंगाः शब्दाः (३) तालिका नं. ४ (३)

दकारान्त, धकारान्त, शकारान्त,

	तत्त्वविद्	युध्	ईदृश्	विश्
एकवचन				
प्र.	तत्त्ववित्-द्	युत्-द्	ईदृक्-ग्	विट् विड्
द्वि.	तत्त्वविदम्	युधम्	ईदृशम्	विशम्
तृ.	तत्त्वविदा	युधा	ईदृशा	विशा
च.	तत्त्वविदे	युधे	ईदृशे	विशे
पं.	तत्त्वविदः	युधः	ईदृशः	विशः
ष.	तत्त्वविदः	युधः	ईदृशः	विशः
स.	तत्त्वविदि	युधि	ईदृशि	विशि
सबो.	हे तत्त्वविद्	हे युत्-द्	हे ईदृक्-ग्	हे विट् हे विड्
द्विवचन				
प्र.	तत्त्वविदौ	युधौ	ईदृशौ	विशौ
द्वि.	तत्त्वविदौ	युधौ	ईदृशौ	विशौ
तृ.	तत्त्वविद्भ्याम्	युद्भ्याम्	ईदृग्भ्याम्	विड्भ्याम्
च.	तत्त्वविद्भ्याम्	युद्भ्याम्	ईदृग्भ्याम्	विड्भ्याम्
पं.	तत्त्वविद्भ्याम्	युद्भ्याम्	ईदृग्भ्यायम्	विड्भ्याम्
ष.	तत्त्वविदोः	युधोः	ईदृशोः	विशोः
स.	तत्त्वविदोः	युधोः	ईदृशोः	विशोः
सबो.	हे तत्त्वविदौ	हे युधौ	हे ईदृशौ	हे विशौ
बहुवचन				
प्र.	तत्त्वविदः	युधः	ईदृशः	विशः
द्वि.	तत्त्वविदः	युधः	ईदृशः	विशः
तृ.	तत्त्वविद्भिः	युद्भिः	ईदृग्भः	विड्भिः
च.	तत्त्तवविद्भ्यः	युद्भ्यः	ईदृग्भ्यः	विड्भ्यः
पं.	तत्त्वविद्भ्यः	युद्भ्यः	ईदृग्भ्यः	विड्भ्यः
ष.	तत्त्वविदाम्	युधाम्	ईदृशाम्	विशाम्
स.	तत्त्ववित्सु	युत्सु	ईदृक्षु	विटत्ससु, विट्सु
सबो.	हे तत्त्वविदः	हे युधः	हे ईदृशः	हे विशः

हलन्त पुल्लिंगा : शब्दा : (४) तालिका नं. ४ (४)

सकारान्त

	गरीयस्	चन्द्रमस्	पुमस्	विद्वस्
एकवचन				
प्र.	गरीयान्	चन्द्रमाः	पुमान्	विद्वान्
द्वि.	गरीयांसम्	चन्द्रमसम्	पुमांसम्	विद्वांससम्
तृ.	गरीयसा	चन्द्रमसा	पुंसा	विदुषा
च.	गरीयसे	चन्द्रमसे	पुंसे	विदुषे
पं.	गरीयसः	चन्द्रमसः	पुंसः	विदुषः
ष.	गरीयसः	चन्द्रमसः	पुंसः	विदुषः
स.	गरीयसि	चन्द्रमसि	पुंसि	विदुषि
संबो.	हे गरीयन्	हे चन्द्रमः	हे पुमन्	हे विद्वन्
द्विवचन				
प्र.	गरीयांसौ	चन्द्रमसौ	पुमांसौ	विद्वांसौ
द्वि.	गरीयांसौ	चन्द्रमसौ	पुमांसौ	विद्वांसौ
तृ.	गरीयोभ्याम्	चन्द्रमोभ्याम्	पुंभ्याम्	विद्वद्भ्याम्
च.	गरीयोभ्याम्	चन्द्रमोभ्याम्	पुंभ्याम्	विद्वद्भ्याम्
पं.	गरीयोभ्याम्	चन्द्रमोभ्याम्	पुंभ्याम्	विद्वद्भ्याम्
ष.	गरीयसोः	चन्द्रमसोः	पुंसोः	विदुषोः
स.	गरीयसोः	चन्द्रमसोः	पुसोः	विदुषोः
संबो.	हे गरीयांसौ	हे चन्द्रमसौ	हे पुमांसौ	हे विद्वांसौ
बहुवचन				
प्र.	गरीयांसः	चन्द्रमसः	पुमांसः	विद्वांसः
द्वि.	गरीयसः	चन्द्रमसः	पुंसः	विदुषः
तृ.	गरीयोभिः	चन्द्रमोभिः	पुंभिः	विद्वद्भिः
च.	गरीयोभ्यः	चन्द्रमोभ्यः	पुंभ्यः	विद्वद्भ्यः
पं.	गरीयोभ्यः	चन्द्रमोभ्यः	पुंभ्यः	विद्वद्भ्यः
ष.	गरीयसाम्	चन्द्रमसाम्	पुंसाम्	विदुषाम्
स.	गरीयस्सु	चन्द्रमस्सु	पुंसु	विद्वत्सु
संबो.	हे गरीयांसः	हे चन्द्रमसः	हे पुमांसः	हे विद्वांसः

हलन्त स्त्रीलिंगाः शब्दाः तालिका नं. ५

चकारान्त, पकारान्त, रकारान्त, वकारान्त शकारान्त

	वाक्वाणी	आप्	गिर्	दिव्	दिश्
एकवचन					
प्र.	वाक्-वाग्		गीः	द्यौः	दिक्-ग्
द्वि.	वाचम्		गिरम्	दिवम्	दिशम्
तृ.	वाचा		गिरा	दिवा	दिशा
च.	वाचे		गिरे	दिवे	दिशे
पं.	वाचः		गिरः	दिवः	दिशः
ष.	वाचः		गिरः	दिवः	दिशः
स.	वाचि		गिरि	दिवि	दिशि
संबो.	हे वाक्-ग्		हे गीः	हे द्यौः	दिक्-ग्
द्विवचन					
प्र.	वाचौ		गिरौ	दिवौ	दिशौ
द्वि.	वाचौ		गिरौ	दिवौ	दिशौ
तृ.	वाग्भ्याम्		गीर्भ्याम्	द्युभ्याम्	दिग्भ्याम्
च.	वाग्भ्याम्		गीर्भ्याम्	द्युभ्याम्	दिग्भ्याम्
पं.	वाग्भ्याम्		गीर्भ्याम्	द्युभ्याम्	दिग्भ्याम्
ष.	वाचौः		गिरोः	दिवोः	दिशोः
स.	वाचोः		गिरोः	दिवोः	दिशोः
संबो.	हे वाचौ		हे गिरौ	हे दिवौ	हे दिशौः
बहुवचन					
प्र.	वाचः	आपः	गिरः	दिवः	दिशः
द्वि.	वाचः	आपः	गिरः	दिवः	दिशः
तृ.	वाग्भिः	अभ्दिः	गीर्भिः	द्युभिः	दिग्भिः
च.	वाग्भ्यः	अद्भ्यः	गीर्भ्यः	द्युभ्यः	दिग्भ्यः
पं.	वागभ्यः	अद्भ्यः	गीर्भ्यः	द्युभ्यः	दिग्भ्यः
ष.	वाचाम्	अपाम्	गिराम्	दिवाम्	दिशाम्
स.	वाक्षु	अप्सु	गीर्षु	द्युषु	दिक्षु
संबो.	हे वाचः	हे आपः	हे गिरः	हे दिवः	हे दिशः

हलन्त नपुंसक लिंगाः शब्दाः तालिका नं. ६ (१)

तकारान्त, नकारान्त

	जगत्	नश्यत्	अहन्	जन्मन्	कर्मन्
एकवचन					
प्र.	जगत्-द्	नश्ययय्यत्	अहः	जन्म	कर्म
द्वि.	जगत्-द्	नश्यत्	अहः	जन्म	कर्म
तृ.	जगता	नश्यता	अह्ना	जन्मना	कर्मणा
च.	जगते	नश्यते	अह्ने	जन्मने	कर्मणे
पं.	जगतः	नश्यतः	अह्नः	जन्मनः	कर्मणः
ष.	जगतः	नश्यतः	अह्नः	जन्मनः	कर्मणः
स.	गजगति	नश्यति	अह्नि	जन्मनि	कर्मणि
संबो.	हे जगत्	हे नश्यत्	हे अहः	हे जन्म	हे कर्म
द्विवचन					
प्र.	जगती	नश्यन्ती	अह्नी	जन्मनी	कर्मणी
द्वि.	जगती	नश्यन्ती	अह्नी	जन्मनी	कर्मणी
तृ.	जगद्भ्याम्	नश्यद्भ्याम्	अहोभ्याम्	जन्मभ्याम्	कर्मभ्याम्
च.	जगद्भ्याम्	नश्यद्भ्याम्	अहोभ्याम्	जन्मभ्याम्	कर्मभ्याम्
पं.	जगद्भ्याम्	नश्यद्भ्याम्	अहोभ्याम्	जन्मभ्याम्	कर्मभ्याम्
ष.	जगतोः	नश्यतोः	अह्नोः	जन्मनोः	कर्मणोः
स.	जगतोः	नश्यतोः	अह्नोः	जन्मनोः	कर्मणाः
संबो.	हे जगती	हे नश्यन्ती	हे अह्नी	हे जन्मनी	हे कर्मणी
बहुवचन					
प्र.	जगन्ति	नश्यन्ति	अहानि	जन्मानि	कर्माणि
द्वि.	जगन्ति	नश्यन्ति	अहानि	जन्मानि	कर्माणि
तृ.	जगद्भिः	नश्यद्भिः	अहोभिः	जन्मभिः	कर्मभिः
च.	जगद्भ्यः	नश्यद्भ्यः	अहोभ्यः	जन्मभ्यः	कर्मभ्यः
पं.	जगद्भ्यः	नश्यभ्द्यः	अहोभ्यः	जन्मभ्यः	कर्मभ्यः
ष.	जगताम्	नश्यताम्	अह्नाम्	जन्मनाम्	कर्मणाम्
स.	जगत्सु	नश्यत्सु	अहःसु	जन्मसु	कर्मसु
संबो.	हे जगन्ति	हे नश्यन्ति	हे अहानि	हे जन्मानि	हे कर्माणि

हलन्त नपुंसक लिंगाः शब्दाः | तालिका नं. ६ (२)

सकारान्त

	धनुस्	मनस्	हविस्
एकवचन			
प्र.	धनुः	मनः	हविस्
द्वि.	धनुः	मनः	हविः
तृ.	धनुषा	मनसा	हविषा
च.	धनुषे	मनसे	हविषे
पं.	धनुषः	मनसः	हविषः
ष.	धनुषः	मनसः	हविषः
स.	धनुषि	मनसि	हविषि
संबो.	हे धनु	हे मनः	हे हविः
द्विवचन			
प्र.	धनुषी	मनसी	हविषी
द्वि.	धनुषी	मनसी	हविषी
तृ.	धनुर्भ्याम्	मनोभ्याम्	हविर्भ्याम्
च.	धनुर्भ्याम्	मनोभ्याम्	हविर्भ्याम्
पं.	धनुर्भ्याम्	मनोभ्याम्	हविर्भ्याम्
ष.	धनुषोः	मनसोः	हविषोः
स.	धनुषोः	मनसोः	हविषोः
संबो.	हे धनुषी	हे मनसी	हे हविषी
बहुवचन			
प्र.	धनूंषि	मनोसिः	हवींषि
द्वि.	धनुंययषि	मनोसि	हवींषि
तृ.	धनुर्भिः	मनोभिः	हविर्भिः
च.	धनुर्भ्यः	मनोभ्यः	हविर्भ्यः
पं.	मनोभ्यः	मनोभ्यः	हविर्भ्यः
ष.	धनुषाम्	मनसाम्	हविषाम्
स.	धनुष्षु	मनस्सु	हविष्षु
संबो.	हे धनूंषि	हे मनांसि	हे हवींषि

६. सर्वनाम

संस्कृत भाषा में लगभग ३५ शब्दों को सर्वनाम कहा गया है। हम इनको तीन भागों में विभाजित कर सक्ते हैं :

(क) ऐसे शब्द जो हिन्दी सर्वनाम शब्दों के पर्याय हैं – जैसे, मैं (अस्मद्), तुम (युष्मद्) और वह (तद्)। हम इन्हें "साधारण सर्वनाम" कहेंगे।

(ख) ऐसे शब्द जो हिन्दी में संज्ञा अथवा विशेषण रूप के हैं – जैसे, सब (सर्व), दोनों (उभय), दूसरा (अन्य)। हम इन्हें "संज्ञा-विशेषण सर्वनाम" कहेंगे।

(ग) ऐसे शब्द जो हिन्दी में संख्यावाची रूप के हैं – जैसे, एक (एक), दो (द्वि), इत्यादि। हम इन्हें संख्यावाची सर्वनाम कहेंगे।

६.१ साधारण सर्वनाम

सर्वनाम का लिंग वचन और विभक्ति उसी नाम के अनुरूप होते हैं जिसके स्थान में सर्वनाम आता है। परन्तु पुरुषवाचक सर्वनाम मैं (अस्मद्) और तुम (युष्मद्) के रूप तीनों लिंगों में एक समान रहते हैं। (दखिए तालिका नं. ७) साधारण सर्वनाम के छः भेद हैं :-

(क) पुरुषवाचक

मैं (अस्मद्), तुम (युष्मद्), और वह (तद्) के लिए देखें तालिकाएं (७) और (८)। आप(भवत्) के रूप हम नहीं दे रहे, इनका प्रयोग गीता में नहीं के बराबर है।

(ख) निश्चयवाचक यह (इदम्, एतद्); वह (तद्, अदस्)

संस्कृत में "यह" और "वह" के लिए दो-दो शब्द हैं। समीपस्थ वस्तु या व्यक्ति के लिए "इदम्" शब्द के रूपों का प्रयोग होता है तथा और अधिक समीपवर्ती के लिए "एतद्" के रूपों का प्रयोग किया जाता है। यदि दूरस्थ वस्तु का बोध कराना हो तो "अदस्" शब्द के रूपों का प्रयोग किया जाता है। "तद्" शब्द के रूपों का प्रयोग केवल परोक्ष पदार्थ या व्यक्ति को बतलाने के लिए किया जाता है। इदम् और एतद् के लिए देखिए तालिका न. (९) और अदस् और तद् के लिए क्रमशः (१०) और (८)

(ग) प्रश्न वाचक

"कौन", "क्या" आदि सर्वनामों का बोध कराने के लिए संस्कृत में "किम्", शब्द है जिसके पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग प्रथमा एकवचन के रूप हैं कः, का और किम् (देखिए तालिका) (११)

(घ) अनिश्चयवाचक

"किसी", "कोई", "कुछ" आदि सर्वनामों का बोधकराने के लिए संस्कृत "किम्" के रूपों के साथ "अपि", "चित्" अथवा "चन" जोड़ दिया जाता है । (देखिए तालिका) (१२) । गीता में इनके प्रयोग नहीं हैं ।

(ङ) सम्बन्धवाचक

जो (यद्) इसके रूप तीनों लिगों में भिन्न-भिन्न होते हैं । (देखिए तालिका) (१३)

(च) निजवाचक

"अपने आप" "अपने को" आदि का बोध कराने के लिए संस्कृत में (१) आत्मन् (२) स्व और (३) स्वयम् का प्रयोग होता है। "स्वयम्" शब्द अव्यय हैं। सब लिगों और वचनों में यह एक जैसा ही प्रयोग में आता है। "आत्मन्" शब्द के रूप केवल पुंल्लिंग एक वचन में चलते हैं और सभी लिंगों और वचनों में निजवाचक्ता का अर्थ होता है। "स्व" शब्द के रूप "सर्व के समान तीनों लिंगों में अलग-अलग चलते है। (देखिए तालिका) (१४)

६.२ संज्ञा-विशेषण सर्वनाम

"सर्व" शब्द तीनों लिगों में अलग-अलग चलता है। (देखिए तालिका) (१४)

"अन्य" शब्द भी तीनों लिंगों में अलग-अलग चलता है । (देखिए तालिका) (१२ क)

व्यक्ति वाचक सर्वनाम - तालिका न. (७)

(१) उत्तम पुरुष :- अस्मद् (अहम्), मैं

(२) मध्यम पुरुष :- युष्मद् (त्वम्), तू, तुम

	अस्मद्		युष्मद्	
एकवचन		वैकल्पिक		वैकल्पिक
प्र.	अहम्		त्वम्	
द्वि.	माम्	मा	त्वाम्	त्वा
तृ.	मया		त्वया	
च.	मह्यम्	मे	तुभ्यम्	ते
पं.	मत्		त्वत्	
ष.	मम	मे	तव	ते
स.	मयि		त्वयि	
द्विवचन				
प्र.	आवाम्		युवाम्	
द्वि.	आवाम्	नौ	युवाम्	वाम्
तृ.	आवाभ्याम्		युवाभ्याम्	
च.	आवाभ्याम्	नौ	युवाभ्याम्	वाम्
पं.	आवाभ्याम्		युवाभ्याम्	
ष.	आावयोः	नौ	युवयोः	वाम्
स.	आवयोः		युवयोः	
बहुवचन				
प्र.	वयम्		यूयम्	
द्वि.	अस्मान्	नः	युष्मान्	वः
तृ.	अस्माभिः		युष्माभिः	
च.	अस्मभ्यम्	नः	युष्मभ्यम्	वः
पं.	अस्मत्		युष्मत्	
ष.	अस्माकम्	नः	युष्माकम्	वः
स.	अस्मासु		युस्मासु	

नोट- (१) उपर्युक्त सर्वनाम तीनों लिगों में एक समान हैं।
(२) वैकल्पिक रूप सब जगह प्रयोग में नहीं लाये जाते-जैसे वाक्य के आरम्भ में, पद्य के चरण के आदि में तथा च, वा, ह, हा, अह एव और अव्ययों के साथ।
(३) सर्वनाम शब्द में सम्बोधन नहीं होते।

तालिका नं. ८

व्यक्ति वाचक सर्वनाम -

तद् (वह)

एकवचन	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
प्र.	सः	सा	तत् ,द्
द्वि.	तम्	ताम्	तत् , द्
तृ.	तेन	तया	तेन
च.	तस्मै	तस्यै	तस्मै
पं.	तस्मात्	तस्याः	तस्मात् , द्
ष.	तस्य	तस्याः	तस्य
स.	तस्मिन्	तस्याम्	तस्मिन्
द्विवचन			
प्र.	तौ	ते	ते
द्वि.	तौ	ते	ते
तृ.	ताभ्याम्	ताभ्याम्	ताभ्याम्
च.	ताभ्याम्	ताभ्याम्	ताभ्याम्
पं.	ताभ्याम्	ताभ्याम्	ताभ्याम्
ष.	तयोः	तयोः	तयोः
स.	तयोः	तयोः	तयोः
बहुवचन			
प्र.	ते	ताः	तानि
द्वि.	तान्	ताः	तानि
तृ.	तैः	ताभिः	तैः
च.	तेभ्यः	ताभ्यः	तेभ्यः
पं.	तेभ्यः	ताभ्यः	तेभ्यः
ष.	तेषाम्	तासाम्	तेषाम्
स.	तेषु	तासु	तेषु

निश्चयवाचक :- सर्वनाम -(१) तालिका नं. ९

समीप बोधक - इदम, एतद (यह)

	इदम्			एतद्		
एकवचन	पुं	स्त्री.	नपु.	पु.	स्त्री.	नपु.
प्र.	अयम्	इयम्	इदम्	एषः	एषा	एतत्
द्वि.	इमम्	इमाम्	इदम्	एतम्	एताम्,एनाम्	एतत्
तृ.	अनेन	अनया	अनेन	एतेन	एतया	एतेन
च.	अस्मै	अस्यै	अस्मै	एतस्मै	एतस्यै	एतस्मै
पं.	अस्मात्	अस्याः	अस्मात्	एतस्मात्	एतस्याः	एतस्मात्
ष.	अस्य	अस्याः	अस्य	एतस्य	एतस्याः	एतस्य
स.	अस्मिन्	अस्याम्	अस्मिन्	एतस्मिन्	एतस्याम्	एतस्मिन्
द्विवचन						
प्र.	इमौ	इमे	इमे	एतौ	एते	एते
द्वि.	इमौ	इमे	इमे	एतौ	एते	एते
तृ.	आभ्याम्	आभ्याम्	आभ्याम्	एताभ्याम्	एताभ्याम्	एताभ्याम्
च.	आभ्याम्	आभ्याम्	आभ्याम्	एताभ्याम्	एताभ्याम्	एताभ्याम्
पं.	आभ्याम्	आभ्याम्	आभ्याम्	एताभ्याम्	एताभ्याम्	एताभ्याम्
ष.	अन्योः	अनयोः	अनयोः	एतयोः	एतयोः	एतयोः
स.	अनयोः	अनयोः	अनयोः	एतयोः	एतयोः	एतयोः
बहुवचन						
प्र.	इमे	इमाः	इमानि	एते	एताः	एतानि
द्वि.	इमान्	इमाः	इमानि	एतान्	एताः	एतानि
तृ.	एभिः	आभिः	एभिः	एतैः	एताभिः	एतैः
च.	एभ्यः	आभ्यः	एभ्यः	एतेभ्यः	एताभ्यः	एतेभ्यः
पं.	एभ्यः	आभ्यः	एभ्यः	एतेभ्यः	एताभ्यः	एतेभ्यः
ष.	एषाम्	आसाम्	एषाम्	एतेषाम्	एतासाम्	एतेषाम्
स.	एषु	आसु	एषु	एतेषु	एतासु	एतेषु

निश्चयवाचक सर्वनाम -(२) तालिका नं (१०)

(२) दूरवर्ती - अदस् , तद्,* (वह) - अदस् -

एकवचन	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
प्र.	असौ	असौ	अदः
द्वि.	अमुम्	अमूम्	अदः
तृ.	अमुना	अमुया	अमुना
च.	अमुष्मै	अमुष्यै	अमुष्मै
पं.	अमुष्मात्	अमुष्याः	अमुष्मात्
ष.	अमुष्य	अमुष्याः	अमुष्य
स.	अमुष्मिन्	अमुष्याम्	अमुष्मिन्
द्विवचन			
प्र..	अमू	अगू	अमू
द्वि.	अमू	अमू	अमू
तृ.	अमूभ्याम्	अमूभ्याम्	अमूभ्याम्
च.	अमूभ्याम्	अमूभ्याम्	अमूभ्याम्
पं.	अमूभ्याम्	अमूभ्याम्	अमूभ्याम्
ष.	अमुयोः	अमुयोः	अमुयोः
स.	अमुयोः	अमुयोः	अमुयोः
बहुवचन			
प्र.	अमी	अमूः	अमूनि
द्वि.	अमून्	अमूः	अमूनि
तृ.	अमीभिः	अमूभिः	अमीभिः
च.	अमीभ्यः	अमूभ्यः	अमीभ्यः
पं.	अमीभ्यः	अमूभ्यः	अमीभ्यः
ष.	अमीषाम्	अमूषाम्	अमीषाम्
स.	अमीषु	अमूषु	अमीषु

* देखिए तालिका (८)

प्रश्नवाचक सर्वनाम –
किम्, (क्या), (कौन)

तालिका नं. (११)

एकवचन	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
प्र.	कः	का	किम्
द्वि.	कम्	काम्	किम्
तृ.	केन	कया	केन
च.	कस्मै	कस्यै	कस्मै
पं.	कस्मात्	कस्याः	कस्मात्
ष.	कस्य	कस्याः	कस्य
स.	कस्मिन्	कस्याम्	कस्मिन्
द्विवचन			
प्र.	कौ	के	के
द्वि.	कौ	के	के
तृ.	काभ्याम्	काभ्याम्	काभ्याम्
च.	काभ्याम्	काभ्याम्	काभ्याम्
पं.	काभ्याम्	काभ्याम्	काभ्याम्
ष.	कयोः	कयोः	कयोः
स.	कयोः	कयो	कयोः
बहुवचन			
प्र.	के	काः	कानि
द्वि.	कान्	काः	कानि
तृ.	कैः	काभिः	कैः
च.	केभ्यः	काभ्यः	केभ्यः
पं.	केभ्यः	काभ्यः	केभ्यः
ष.	केषाम्	कासाम्	केषाम्
स.	केषु	कासु	केषु

अनिश्चयवाचक सर्वनाम

तालिका नं. (१२)

किम्, (किसी), (कोई), (कुछ)

	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
	कः	का	किम्
अपि	कोऽपि	कापि	किमपि
चित्	कश्चित्	काचित्	किंचित्
चन	कश्चन्	काचन	किंचन

तालिका नं. (१२ क)

सर्वनाम अन्य (दूसरा)

एकवचन	पुंलिग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
प्र.	अन्यः	अन्या	अन्यत्
द्वि.	अन्यम्	अन्याम्	अन्यत्
तृ.	अनयेन	अन्यया	अन्येन्
च.	अन्यस्मै	अन्यस्यै	अन्यस्मै
पं.	अन्यस्मात्	अन्यस्याः	अन्यस्मात्
ष.	अन्यस्य	अन्यस्याः	अन्यस्य
स.	अन्यस्मिन्	अन्यस्याम्	अन्यस्मिन्
द्विवचन			
प्र.	अन्यौ	अन्ये	अन्ये
द्वि.	अन्यौ	अन्ये	अन्ये
तृ.	अन्याभ्याम्	अन्याभ्याम्	अन्याभ्याम्
च.	अन्याभ्याम्	अन्याभ्याम्	अन्याभ्याम्
पं.	अन्याभ्याम्	अन्याभ्याम्	अन्याभ्याम्
ष.	अन्ययोः	अन्ययोः	अन्ययोः
स.	अन्ययोः	अन्ययोः	अन्ययोः
बहुवचन			
प्र.	अन्ये	अन्याः	अन्यानि
द्वि.	अन्यान्	अन्याः	अन्यानि
तृ.	अन्यैः	अन्याभिः	अन्यैः
च.	अन्येभ्यः	अन्याभ्यः	अन्येभ्यः
पं.	अन्येभ्यः	अन्याभ्यः	अन्येभ्यः
ष.	अन्येषाम्	अन्यासाम्	अन्येषाम्
स.	अन्येषु	अन्यासु	अन्येषु

सम्बन्धवाचक सर्वनाम –
यद् (जो)

तालिका नं. (१३)

	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
एकवचन			
प्र.	यः	या	यद्
द्वि.	यम्	याम्	यद्
तृ.	येन	यया	येन
च.	यस्मै	यस्यै	यस्मै
पं.	यस्मात्	यस्याः	यस्मात्
ष.	यस्य	यस्याः	यस्य
स.	यस्मिन्	यस्याम्	यस्मिन्
द्विवचन			
प्र.	यौ	ये	ये
द्वि.	यौ	ये	ये
तृ.	याभ्याम्	याभ्याम्	याभ्याम्
च.	याभ्याम्	याभ्याम्	याभ्याम्
पं.	याभ्याम्	याभ्याम्	याभ्याम्
ष.	ययोः	ययोः	ययोः
सं.	ययोः	ययोः	ययोः
बहुवचन			
प्र.	ये	याः	यानि
द्वि.	यान्	याः	यानि
तृ.	यैः	याभिः	यैः
च.	येभ्यः	याभ्यः	येभ्यः
पं.	येभ्यः	याभ्यः	येभ्यः
ष.	येषाम्	यासाम्	येषाम्
स.	येषु	यासु	येषु

तालिका नं. (१४)

संज्ञा विशेषण सर्वनाम -

सर्व (सब)

	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
एकवचन			
प्र.	सर्वः	सर्वा	सर्वम्
द्वि.	सर्वम्	सर्वाम्	सर्वम्
तृ.	सर्वेण	सर्वया	सर्वेण
च.	सर्वस्मै	सर्वस्यै	सर्वस्मै
पं.	सर्वस्मात्	सर्वस्याः	सर्वस्मात्
ष.	सर्वस्य	सर्वस्याः	सर्वस्य
स.	सर्वस्मिन्	सर्वस्याम्	सर्वस्मिन्
संबो.	सर्व	सर्वे	सर्वे
द्विवचन			
प्र.	सर्वौ	सर्वे	सर्वे
द्वि.	सर्वौ	सर्वे	सर्वे
तृ.	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्याम्
च.	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्याम्
पं.	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्याम्
ष.	सर्वयोः	सर्वयोः	सर्वयोः
स.	सर्वयोः	सर्वयोः	सर्वयोः
संबो.	सर्वौ	सर्वे	सर्वे
बहुवचन			
प्र.	सर्वे	सर्वाः	सर्वाणि
द्वि.	सर्वान्	सर्वाः	सर्वाणि
तृ.	सर्वैः	सर्वाभिः	सर्वैः
च.	सर्वेभ्यः	सर्वाभ्यः	सर्वेभ्यः
पं.	सर्वेभ्यः	सर्वाभ्यः	सर्वेभ्यः
ष.	सर्वेषाम्	सर्वासाम्	सर्वेषाम्
स.	सर्वेषु	सर्वासु	सर्वेषु
संबो.	सर्वे	सर्वाः	सर्वाणि

६.३ संख्या वाची सर्वनाम

६.३.१ संख्या वाचक "एक" तीनों लिंगों में एक वचनान्त होता है: विभक्ति रूप इस प्रकार है:-

	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
प्र.	एकः	एका	एकम्
द्वि.	एकम्	एकाम्	एकम्
तृ.	एकेन	एकया	एकेन
च.	एकस्मै	एकस्यै	एकस्मै
पं.	एकस्मात्, द्	एकस्याः	एकस्मात्, द्
ष.	एकस्य	एकस्याः	एकस्य
स.	एकस्मिन्	एकस्याम्	एकस्मिन्

नोटः "एक" शब्द का प्रयोग "अल्प", "प्रधान", "प्रथम", "केवल", "साधारण" और "समान" अर्थों में भी होता है। तब इसके रूप सब वचनों में "सर्व" की तरह चलते हैं।

६.३.२ संख्यावाचक "द्वि" तीनों लिंगों में द्विवचनान्त ही होता है, विभक्ति रूप इस प्रकार हैं :-

	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
प्र.	द्वौ	द्वे	द्वे
द्वि.	द्वौ	द्वे	द्वे
तृ.	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
च.	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
पं.	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
ष.	द्वयोः	द्वयोः	द्वयोः
स.	द्वयोः	द्वयोः	द्वयोः

६.३.३ "त्रि" और बाद के सब संख्यावाची शब्द तीनों लिंगो में बहुवचनान्त ही होते हैं :-

प्र.	त्रयः	तिस्रः	त्रीणि
द्वि.	त्रीन्	तिस्रः	त्रीणि
तृ.	त्रिभिः	तिसृभिः	त्रिभिः
च.	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः	त्रिभ्यः
पं.	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः	त्रिभ्यः
ष.	त्रयाणाम्	तिसृणाम्	त्रयाणाम्
स.	त्रिषु	तिसृषु	त्रिषु

६.३.४ चतुर् (चार) के रूप भी तीनों लिंगों में अलग-अलग और बहुवचन में ही होते हैं :-

प्र.	चत्वारः	चतस्रः	चत्वारि
द्वि.	चतुरः	चतस्रः	चत्वारि
तृ.	चतुर्भिः	चतसृभिः	चतुर्भिः
च.	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः	चतुर्भ्यः
पं.	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः	चतुर्भ्यः
ष.	चतुर्णाम्	चतसृणाम्	चतुर्णाम्
स.	चतुर्षु	चतसृषु	चतुर्षु

६.३.५ "पञ्चन्" (पांच) से आगे संख्यावाचक शब्दों के रूप तीनों लिंगों में समान होते हैं और केवल बहुवचन में :-

प्र.	पञ्च	षट्	सप्त	अष्ट, अष्टौ	नव	दश
द्वि.	पञ्च	षट्	सप्त	अष्ट, अष्टौ	नव	दश
तृ.	पञ्चभिः	षड्भिः	सप्तभिः	अष्टभिः,अष्टाभिः	नवभिः	दशभिः
च.	पञ्चभ्यः	षड्भ्यः	सप्तभ्यः	अष्टभ्यः,अष्टाभ्यः	नवभ्यः	दशभ्यः
पं.	पञ्चभ्यः	षड्भ्यः	सप्तभ्यः	अष्टभ्यः,अष्टाभ्यः	नवभ्यः	दशभ्यः
ष.	पञ्चानाम्	षण्णाम्	सप्तानाम्	अष्टानाम्,अष्टानाम्	नवानाम्	दशानाम्
स.	पञ्चसु	षट्सु	सप्तसु	अष्टसु, अष्टासु	नवसु	दशसु

६.४ क्रमवाचक सर्वनामों के रूप तीनों लिंगों में इस प्रकार से हैं :

संख्या	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
एक	प्रथमः	प्रथमा	प्रथमम्
द्वि	द्वितीयः	द्वितीया	द्वितीयम्
त्रि	तृतीयः	तृतीया	तृतीयम्
चतुर्	चतुर्थः	चतुर्थी	चतुर्थम्
पञ्चन्	पञ्चमः	पञ्चमी	पञ्चमम्
षष्	षष्ठः	षष्ठी	षष्ठम्
सप्तन्	सप्तमः	सप्तमी	सप्तमम्
अष्टन्	अष्टमः	अष्टमी	अष्टमम्
नवन्	नवमः	नवमी	नवमम्
दशन्	दशमः	दशमी	दशमम्
एकादशन्	एकादशः	एकादशी	एकादशम्
द्वादशन्	द्वादशः	द्वादशी	द्वादशम्

नोटः क्रमवाचक शब्दों के रूप पुंल्लिंग और नपुंसकलिंग में क्रमशः "राम" और "फल" की तरह चलते है । स्त्रीलिंग में प्रथमा, द्वितीया और तृतीया के रूप "विद्या" की तरह और बाकी विभक्तियों में "नदी" की तरह हैं ।

६.५ परिमाणवाचक सर्वनाम

"यद" से यावत् और ' तद' से तावत् इन शब्दों के रूप पुंल्लिंग में 'भवत्' और नपुंसकलिंग में 'जगत्' की तरह हैं। स्त्रीलिंग में 'नदी' की तरह।

"एतावत्" 'कियत्' और 'इयत्' भी इसी प्रकार हैं। 'कियत् और 'इयत्' के प्रयोग गीता में नहीं हैं।

६.६ सार्वनामिक शब्द

जब सर्वनाम संज्ञा के साथ विशेषण बनकर आता है, तब वह सार्वनामिक विशेषण कहलाता है। गीता में निम्न उदाहरण आते हैं।

(i) विशेषण रूप में

अयम् (देही २/३०); एषा (ब्राह्मी स्थितिः २/७२)
अमी (सुरसङ्घा ११.२१) अस्मिन् (देहे १३/२२)
सर्वेषु (अयनेषु १/११)

(ii) संज्ञा रूप में

मामकाः (१/११) मामिकाम् (९/७)
ईदृक् (११/४९) ईदृशम् (२/३२)
अस्मदीयः (११/२६)

७. कारक, विभक्ति

आपने ऊपर प्रकरण (२) में विभक्तियों के अन्तर्गत पढ़ा कि संस्कृत भाषा में कारक और सम्बन्ध वाची चिन्ह अलग से

प्रयुक्त न होने के कारण शब्द के साथ'विभक्ति' लगा दी जाती है जिससे उसका सम्बन्ध वाक्य में मुख्यतः क्रिया अथवा दूसरे शब्दों के साथ दर्शित होता है। विभक्ति लगने से शब्द के रूप में कुछ परिवर्तन हो जाता है। संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से उसका (संज्ञा या सर्वनाम का) सम्बन्ध क्रिया के साथ जाना जाता है उसे कारक कहते हैं। कारक छः है और उनकी विभक्तियां इस प्रकार हैं जिन्हें हम साधारणतः 'विभक्ति का प्रयोग' कह सकते है :
प्रथमा - कर्ता; द्वितीया - कर्म; तृतीया - करण; चतुर्थी - सम्प्रदान; पंचमी - अपादान; सप्तमी - अधिकरण। षष्ठी - सम्बन्धवाचक, और अष्टमी - सम्बोधन का क्रिया पद से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न होने के कारण, इन दोनो की गणना कारकों में नहीं की जाती। कारक दर्शाने के अतिरिक्त इन विभक्तियों का प्रयोग अन्य प्रयोजनों के लिए भी होता है जैसा आप अभी आगे चलकर पढ़ेंगे। इनमें से प्रत्येक के उदाहरण जो गीता में आए हैं, हम नीचे दे रहे हैं :

७.१ प्रथमा विभक्ति

(क) इसका कारक प्रयोग "कर्ता" को दर्शाना है जैसे 'वाक्यमुवाच मधु सूदनः' (२/१) इसे कर्त्ता प्रयोग कहते हैं। आप जानते है संस्कृत भाषा में क्रिया के तीन वाच्य होते हैं - कर्त्तृ, कर्म और भाव। आप आगे चल कर देखेंगे (देखिए प्रकरण १०.३.४) कि कर्तृवाच्य में कर्ता और कर्मवाच्य में 'कर्म' प्रथमा विभक्ति में होता है जैसे 'स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः' (४/३) यहां योगः प्रथमा विभक्ति में होते हुए भी कर्म है। तीसरे, सम्बोधन में

भी प्रथमा विभक्ति होती है – 'सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत' (१/२१)

(ख) इसके अन्य प्रयोग –

(i) शब्द का अर्थ और लिंग बतलानाः संस्कृत भाषा में जबतक किसी शब्द में विभक्ति न लगाई जाए तब तक उसका कोई अर्थ नहीं होता। जैसे केवल 'कृष्ण' निरर्थक शब्द है पर कृष्णः 'सार्थक' शब्द है। कहीं - कहीं अव्यय शब्दों में भी प्रथमा विभक्ति लगाई जाती है जैसे 'उच्चैः' 'नीचैः' आदि। परन्तु कुछ वैयाकरण इन्हें विसर्ग युक्त शब्द मानते हैं। ऐसे शब्दों और नियतलिंगी शब्दों (जैसे रामः फलम् और कन्या) को छोड़कर शब्द का लिंग बतलाने के लिए भी प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है जैसे तट, तटी तटम् तीनों का अर्थ है किनारा।

(ii) नाम गिनाने के लिएः भीष्मः, कर्णः, कृपः (१/८)

(iii) संख्या बतलाने के लिएः एकः, द्वौ, बहबः

७.२ द्वितीया विभक्ति

हिन्दी तथा अंग्रेजी में साधारणतः जिस वस्तु या व्यक्ति के ऊपर क्रिया का प्रभाव पड़ता है उसे 'कर्म' कहते हैं। परन्तु पाणिनिने 'कर्म' की बड़ी ही रोचक परिभाषा दी है : "जिसे कर्ता अपनी क्रिया द्वारा सबसे अधिक पाना चाहता हैं उसे 'कर्म' कहते हैं। "कर्म" को बतलाने के लिए द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त द्वितीया विभक्ति के प्रयोग के लिए अनेक विशेष सूत्र हैं। उनमे से

हम नीचे उन नियमों का उल्लेख कर रहे है जिनका गीता में प्रयोग हुआ हैं :-

(क) 'अकथित' कर्म , अपादान इत्यादि के द्वारा अविवक्षित कारक 'अकथित' कर्म कहलाता है । ये 'द्वि कर्मक' धातुओं वालें वाक्य में ही आते हैं और गौण कर्म के रूप में स्वीकार कर लिए जाते हैं । अतः इनके लिए द्वितीया विभक्ति का ही प्रयोग किया जाता हैं । गीता में ऐसे उदाहरण अधिक न्हीं हैं।

(ख) गत्यर्थ कर्मणि, गत्यर्थक धातुएं वे हैं जिनका अर्थ हो 'जाना' - जैसे 'या' 'गम्' 'चल' 'इण्' इत्यादि । ऐसी धातुओं के साथ गमन के स्थान वाचक शब्द में द्वितीया का प्रयोग होता है - विकल्प से चतुर्थी का भी ।

७.३ तृतीया विभक्ति

क्रिया की सिद्धि में जो अत्यन्त सहायक हो उसे 'करण' कहते हैं । कर्म वाच्य तथा भाव वाच्य में कर्त्ता अनुक्त होता है । कर्त्तृव्यच्य के 'करण' में तथा अनुक्त कर्त्ता में अर्थात कर्मवाच्य के कर्त्ता में तृत्तीया विभक्ति आती है।

इसके अतरिक्त 'तृतीया' का प्रयोग केवल निम्न प्रयोजनों के लिए गीता में किया गया है :-

(i) 'सह' के योग में अप्रधान (अर्थात् जो क्रिया के प्रधान कर्त्ता के साथ आता है) में तृतीया विभक्ति आती है जैसे, पुत्रेण सह पिता गच्छति, कैर्मया सह.... (१/२२)

(ii) 'पृथक' 'विना' 'नाना' शब्दों के साथ तृतीया, द्वितीया अथवा पंचमी विभक्ति हो सकती है : जैसे
रामेण/रामं/रामाद् विना दशरथो नाजीवत् ; "तद् विना" (१०/३९)

(iii) 'तुला' और 'उपमा' का अर्थ प्रकट करने वाले शब्दों के साथ 'तृतीया' अथवा 'षष्ठी' विभक्ति होती हैं जैसे, रामेण/रामस्य सदृशः । "सदृशो मया" (१६/१५)

(iv) जिस 'हेतु' से कोई कार्य हो या किया जाय उसमें तृतीया विभक्ति आती है जैसे "हित काम्यया"; (१०/१) और

(v) 'प्रकृति' आदि अर्थों में तृतीया विभक्ति आती है । जैसे रामः प्रकृत्या दयालुः ; "...प्रकृत्या नियताः स्वया" (७/२०)

७.४ चतुर्थी विभक्ति

कर्ता जिसको कुछ देता है, अथवा जिसके लिए कोई कार्य करता है उस व्यक्ति अथवा पदार्थ को सम्प्रदान कहते हैं। सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति आती है; जैसे विप्राय गां ददाति । गीता में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग केवल निम्न प्रयोजनों के लिए किया गया है :

(i) किसी धातु में तुमुन् प्रत्यय जोड़ने से जो अर्थ प्रकट होता है वही अर्थ उसी धातु से बनी भाववाचक संज्ञा को चतुर्थी में प्रयोग करने से भी निकलता है: जैसे परित्राणाय (परित्रातुम्) विनाशाय (विनाशयितुम्) (४/८)

(ii) जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाय उस (प्रयोजन) में चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे-

मुक्तये हरिं भजति, '...अमृतव्याय कल्पते' (२/१५)

(iii) नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा अलं तथा वषट् शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति आती है; जैसे- रामाय नमः, नमस्ते (११/३९)

परन्तु, उपपद विभक्ति से कारक विभक्ति (क्रिया के योग से होने वाली) बलवती होने के कारण, द्वितीया विभक्ति का ही प्रयोग होता है; जैसे - मां नमस्कुरु (९/३४)

७.५ पञ्चमी विभक्ति

अपाय कहते हैं अलग होने को। उसकी सिद्धि में ध्रुव या अवधि भूत (जहां से विश्लेष (या अलग) हो) कारक को अपादान कहते हैं। अपादान में 'पञ्चमी' विभक्ति का प्रयोग होता है; यथा - वृक्षात् पत्राणि पतन्ति।

पंचमी विभक्ति का प्रयोग गीता में केवल निम्न प्रयोजनों के लिए हुआ है।

(i) जिससे भय हो अथवा जिसके भय के कारण रक्षा करनी हो, उस कारक को अपादान कहते हैं; जैसे - सर्पाद् भयम्; त्रायते महतो भयात् ; 'भयाद्रणात्' (२/३५)

(ii) "जन्" धातु के कर्त्ता का जो आदि कारण हो, वह 'अपादान' होता है; जैसे - कामात् क्रोधोऽभिजायते (२/६२)

यहां क्रिया "अभिजायते" का कर्त्ता क्रोध है और उसका आदि कारण 'काम' है। अतः काम अपादान कारक है।

(iii) उत्पन्न होने वाले का "प्रभव" (उत्पत्ति स्थान) भी अपादान होता है; जैसे - अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्ति (८/१८)

(iv) जिसके द्वारा किसी वस्तु का तुलनात्मक तारतम्य दिखाया जाय वहां पंचमी विभक्ति होती है; परन्तु ये दोनो वस्तुएं भिन्न जाति, गुण क्रिया तथा संज्ञा वाली होनी चाहिएं; जैसे- श्रेयान् स्वधर्मी विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् (३/३५)

(v) अन्य, आरात्, इतर ऋते दिग्वाची शब्दों के योगः में पञ्चमी विभक्ति होती है; जैसे - भविता, न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि (१८/६९)

(vi) हेतु या कारण को प्रकट करने वाले गुणवाची शब्द (जो स्त्रीलिंगी नहीं है) विकल्प से तृतीया या पंचमी विभक्ति में होते हैं; जैसे - जाड्येन/जाड्यात् वा बद्ध : (सि. कौ.) वह मूर्खता के कारण पकड़ा गया।

भयात् - भयाद्रणादुपरतं मंस्ययन्ते त्वां महारथाः (२/३५)

७.६ सप्तमी विभक्ति

क्रिया का आधार 'अधिकरण' कहलाता है। आधार तीन प्रकार का होता है। अधिकरण में सप्तमी विभक्ति आती है।
गीता में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग निम्न प्रकार से हुआ है :-

(क) आधारानुसारः :-

(i) औपश्लेषिक आधारः- यह वहां होता है जहां आधार के किसी अंश से ही दूसरी वस्तु का लगाव हो अर्थात् जहां आधेय का भौतिक लगाव हो; जैसे धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः (१/१)

(ii) वैषयिक आधार :- यह विषय सम्बन्धी लगाव होता है; जैसे मोक्षे इच्छास्ति; 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' (३/३५)

(iii) अभिव्यापक आधारः - इस दशा में आधेय का व्याप्य - व्यापक सम्बन्ध होता है; जैसे - तिलेषु तैलम्, 'वेपथुश्च शरीरे- (१/२९)

(ख) यदि किसी वस्तु का अपने समूह की वस्तुओं से कोई विशेष निर्धारण किया जाय तो उस समूहवाचक शब्द में "सप्तमी" अथवा "षष्ठी" विभक्ति का प्रयोग किया जाता है; जैसे - कविषु कालिदासः श्रेष्ठः, या कवीनां कालिदासः श्रेष्ठः,

और गीता में 'वेदानां सामवेदोऽस्मि, देवानामस्मि वासवः' । यहां 'वेदानां' के स्थान पर 'वेदेषु' और 'देवानां' के स्थान पर 'देवेषु' हो सकता है ।

७.७ षष्ठी विभक्ति

आप ऊपर पढ़ आए हैं षष्ठी विभक्ति की गणना कारकों में नहीं होती । परन्तु जो बात अन्य विभक्तियों से नहीं बतलाई जा सक्ती वह षष्ठी द्वारा बतलाई जाती है ।

गीता में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग केवल निम्न प्रयोजनों के लिए हुआ है :-

(i) स्वामी तथा भृत्य, जन्य तथा जनक, कार्य तथा कारण इत्यादि सम्बन्ध बतलाने के लिए जैसे - रूपमत्यद्भुतं हरेः (१८.७७)

(ii) "हेतु" शब्द के प्रयोग में; यथा - राज्यस्य हेतोः (१/३५)

(iii) जब "क्त" प्रत्ययान्त शब्द (जो कि भूतकाल बोधक होते हैं) वर्तमान् के अर्थ में आएं जैसे - अद्वेष्टा सर्वभूतानाम् (१२/१३)

(iv) जिन शब्दों के अन्त में कृत्य प्रत्यय [१]लगे रहते हैं उनका प्रयोग होने पर कर्त्ता में तृतीया या षष्ठी विभक्ति आती है; जैसे-
'गुरुः मया पूज्यः' या 'गुरुः मम पूज्यः;'
अस्य पूज्यः- त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्
लोकस्य - पितासि लोकस्य चराचरस्य (११/४३)

१. देखें प्रकरण ११

८. अव्यय

जो शब्द तीनों लिंगों, तीनों वचनों तथा सब विभक्तियों में एक समान रहे, उसे 'अव्यय' कहते हैं। अव्यय पांच प्रकार के हैं :- (१) उपसर्ग, (२) क्रिया विशेषण, (३) समुच्च्य बोधक, (४) मनोविकार बोधक तथा (५) प्रकीर्ण।

उपसर्ग

उपसर्ग वे शब्दांश हैं जो धातु या धातु से निष्पन्न संज्ञा आदि शब्दों से जुड़कर कभी उनके अर्थ को उलटा कर देते हैं, कभी वहीं अर्थ रखते हुए उसे विशिष्ट कर देते हैं और कभी ठीक वही अर्थ रहने देते हैं। जैसे 'जय' का अर्थ है 'जीत' किन्तु 'पराजय' का अर्थ है 'हार'।

गीता में निम्न प्रकार के अव्ययों का प्रयोग हुआ है, जो हम नीचे, उनके भिन्न-भिन्न अर्थों सहित दे रहे हैं :-

८.१	उपसर्ग	अर्थ	शब्द
	प्र	प्रकर्ष, अधिकता	प्रनष्टः
		विस्तार, विशेषता	प्रवर्तते
	प्र	उत्पत्ति	प्रभवन्ति
	अप	दूर, बुरा	अपहृत ज्ञाना
	अति	बाहुल्य	अतिरिच्यते
	सम्	अच्छी तरह उत्पन्न	संस्थापनार्थाय
		होना	संभवामि
	निस्	नहीं, पूर्ण	संन्यास
			निःश्रेयसकरावुभौ
	निर्	नहीं	निर्मम, निरंहकार
	वि	विना	विगुणः
	दुस्	कठिन	दुष्प्रापः
	दुर्	बुरा	दुर्गतिम्
	आङ्	सम्यक्	आचरति
	नि	विरुद्ध	निग्रहः
	सु	अच्छी तरह	सुलभः
	उद्	ऊपर उठना	उद्धरेत्
	अभि	ओर	अभिजातः
	प्रति	ओर	प्रतिजाने
	परि	चारों ओर	परि कीर्तितः
	उप	निकट	उपजायते
	अनु	पीछे	अनुवर्तते

८.२ क्रिया विशेषण अव्ययः

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
उच्चैः	ऊंचे स्वर से	ऊर्ध्वम्	ऊपर, उपरान्त
ऋते	बिना, से रहित	एव	भी, एकमात्र, केवल
अधः	नीचे, नीचे की	एवम्	इस प्रकार, ऐसा
	ओर	कच्चित	क्या, क्या यह है
अथः	अब, तदनन्तर		कुछ भी
	भी, यदि, फिर, और		

८.२.१ तद्धित प्रत्ययों से बने क्रिया विशेषण अव्यय

शब्द	प्रत्यय	क्रि.वि. अव्यय	अर्थ
किम् (कु)	तसिल्	कुतः	कहां से
किम्	थम्	कथम्	कैसे, किस प्रकार
इदम् (इ)	तसिल्	इतः	इससे, इसकी अपेक्षा, इस (संसार) के बाद
सर्व	तसिल्	सर्वतः	सर्वत्र, सब ओर से
यद्	तसिल्	यतः	जहां, जिससे
यद्	त्रल्	यत्र	जहां
इदम् (अत्त्व)	त्रल्	अत्र	जहां
इदम्	ह	इह	इस, यहां, इस लोक में
यद् तद्	दा	यदा,तदा	जब, तब
यद् तद्	थाल्	यथा, तथा	जैसा वैसा
अनेक	धा	अनेकधा	अनेक प्रकार से
अष्ट	धा	अष्टधा	आठ प्रकार की

शब्द	प्रत्यय	क्रि.वि. अव्यय	अर्थ
शतसहस्र	शः	शतशः सहस्रशः	सैकड़ों, हजारों सौ गुणा, हजार गुणा
सहस्र	कृत्वः	सहस्र कृत्वः	सहस्रो बार
आश्चर्य	वत्	आश्चर्यवत्	आश्चर्य जैसा
आदित्य्	वत्	आदित्यवत्	सूर्य जैसा
विस्तर	शः	विस्तरशः	विस्तार से

८.२.२ कृत्प्रत्ययों से बने क्रिया विशेषण अव्यय

इर्ष्	त्वा, 'क्तवा'	इष्ट्वा	पूजा कर के
वच्	क्त्वा	उक्तवा	कह कर
प्र + नम्	ल्यप् (य)	प्रणम्य	प्रणाम करके
उप + विश्	ल्यप् (य)	उपविश्य	बैठकर
हन्	तुमुन् (तुम)	हन्तुम्	मारने के लिए
कृ	तुमुन (तुम)	कर्तुम्	करने के लिए करने को

८.३ समुच्चय बोधक अव्यय

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
च	और	अथवा	अथवा, या
आहो	अथवा	-	-

८.४ मनोविकार बोधक अव्यय

अहो	हाय	हन्त	अच्छा, ठीक है, तेरा कल्याण हो

८.५ प्रकीर्ण प्रत्यय

(१) अव्ययी भाव समास

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
अधिभूतम्	मूल तत्त्व	समक्षम्	किसी के सामने
अधिदैवतम्	देवताओं सम्बन्धी		

(२) अन्य समास

अतीव	मानो अद्वितीय	जातु	कभी भी, किसी भी समय
क्षिप्रम	तुरंत शीघ्र		
		तूष्णीम्	चुपचाप

९. *स्त्री प्रत्यय*

आप जानते हैं संस्कृत भाषा में शब्दों का लिंग ज्ञान अत्यावश्यक है। कुछ शब्द नित्य लिंगी हैं जैसे रामः, निशा और फलम् सदैव क्रमशः पुंल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग में ही रहते हैं। लिंग बोध स्मरण और अभ्यास का विषय है। हमने गीता कोश में पाठकों की सुविधा के लिए प्रत्येक संज्ञा शब्द के लिए लिंग सूचक शब्द दर्शाए हैं, देखिए तालिका पृष्ठ ४१२ पर।

नित्य लिंगी शब्दों को छोड़ कर प्रत्यय प्रयोग द्वारा भी शब्द का लिंग बदल दिया जाता हैं। संस्कृत में मुख्य स्त्री प्रत्यय सात हैं:-

(१) टाप्, (२) डाप्, (३) टाप् का रूप 'आ' है ?

(४) ङीप्, (५) ङीन् , (६) ङीष् का रूप 'ई' है और
(७) ऊङ .... का रूप 'ऊ' है

गीता में उपर्युक्त (६) और (७) के उदाहरण नहीं मिलते । प्रथम तीन 'अजादिगण' के उदाहरण भी गीता में नहीं के बराबर हैं।

साधारण जानकारी के लिए कुछ शब्द इस प्रकार हैं

बाल – बाला । वत्स – वत्सा ।

अज – अजा । अश्व – अश्वा ।

'टाप्' प्रत्यय के दो उदाहरण गीता में मिलते हैं :– सर्वाः; मामिकाम्

ङीप् और ङीन् प्रत्यय के निम्न उदाहरण हैं :

प्रत्यय	शब्द	अर्थ
ङीप्	दैवी	ईश्वरीय
	मानुषीम्	मानवीय
	गुणमयी	गुणयुक्त
	जाह्नवी	जह्नु की पुत्री, गंगा
	राक्षसीम्	राक्षसी
	पुराणी	प्राचीन
ङीन्	नारीणाम्	स्त्रियों में

उपर्युक्त ङीप् और ङीन् प्रत्ययान्त शब्दों के रूप 'नदी' की तरह चलते हैं और सर्वाः के रूप विद्या की तरह ।

१०. क्रिया

हम ऊपर विभक्तियों के अन्तर्गत बतला आए हैं कि संस्कृत भाषा में सम्बन्ध वाचक चिन्ह अलग से नहीं हैं। संस्कृत भाषा में सहायक क्रियाएं भी नहीं हैं। इसके लिए क्रिया में अलग-अलग प्रत्यय (चिन्ह) लगाए जाते हैं। जैसे – गच्छामि (मैं जाता हूं), गच्छसि (तुम जाते हो) और गच्छति (वह जाता है)। यहां "हूं" "हो" और "है" सहायक क्रियाओं के लिए क्रमशः 'आमि' 'सि' और 'ति' का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार भूतकाल और भविष्यत् काल की सहायक क्रियाएं दर्शाने के लिए भी अलग-अलग चिन्ह हैं (नीचे देखिए लकार के अन्तर्गत) और फिर यह चिन्ह क्रिया के गण, विभाग, पद, वाच्य, वचन और पुरुष के अनुसार बदल जाते हैं। इनका अध्ययन हम आगे चलकर विभिन्न तालिकाओं द्वारा करेंगे। पर पहले 'शब्द व्युत्पत्ति' के विषय में कुछ जान लेना जरूरी है।

१०.१ धातु

"धातु" का अर्थ है 'शब्दयोनि' अर्थात् जिससे शब्दों की उत्पत्ति हो। संस्कृत भाषा में सभी शब्द धातुओं से बने हैं। कुल धातुएं २२०० से कुछ अधिक हैं। धातुओं से क्रिया पद बनाने के लिए जो (तिप् से महिङ् तक) प्रत्यय लगाए जाते हैं उन्हें तिङ् प्रत्यय कहते हैं और ऐसे बने क्रिया शब्दों को तिङन्त।

१०.२ गण

धातुओं को दस भागों में बांटा गया है। इनको गण कहते हैं। गण का अर्थ है 'समूह' या 'समुदाय'। प्रत्येक गण का नाम धातु के नाम के अनुरूप रखा गया है जो उस गण के आदि में आती है। जैसे आदि में "भू" धातु होने से भ्वादि गण। 'अद्' से अदादि गण। दसों गणों के नाम हैं :- भ्वादि (अ), अदादि (शून्य), जुहोत्यादि (शून्य), दिवादि (य्), स्वादि (नु), तुदादि (अ), रुधादि (न), तनादि (उ), क्र्यादि (ना), और चुरादि (अय्)। प्रत्येक गण के सामने ब्रैकेट में उसका प्रत्यय व विकरण दिया है जिसके जुड़ने से क्रिया शब्द बनता है। जैसे "भू" धातु में 'अ' जुड़ने से भव् - भवति, भवसि, भवामि। इसी प्रकार प्रत्येक धातु का रूप उसके विकरण को जोड़ने के बाद चलाया जाता है जो हम आगे तालिकाओं में देखेंगे।

१०.३ धातु और क्रियाओं के भेद :

१०.३.१ सकर्मक : अकर्मक : जो क्रिया कर्म की आकांक्षा करती है सकर्मक कहलाती है, जो नहीं - अकर्मक। हिन्दी के पाठक इस क्रिया भेद से भली प्रकार परिचित हैं।

१०.३.२ सेट्, अनिट् और वेट् : रूप चलाने की सुगमता के लिए धातुओं का यह भेद किया जाता है। सेट् का अर्थ है - इट् सहित अर्थात् जिनके रूपों में धातु और आर्ध धातुक प्रत्यय

(नीचे देखिए लकार के अन्तगर्त) के बीच में 'इ' आजाती है। जैसे वदिष्यन्ति (२/३६)।
जहां "इ" नहीं आती वे धातुएं अनिद् हैं। वेद् विभाग में वे धातुएं है जहां 'इ' विकल्प से आती है। अनिद् का उदाहरण है स्थास्यति (२/५३) और वेद् का निवसिष्यसि (१२/८) अथवा निवत्स्यसि, 'इद्' न होने पर।

१०.३.३ परस्मैपद, आत्मनेपद और उभयपद : परस्मैपद का अर्थ है "जो दूसरे के लिए हो" और आत्मनेपद का "जो अपने लिए हो"। साधारणतः ऐसी क्रियाएं जिनका फल दूसरों के लिए हो परस्मैपदी होती हैं और जिनका फल अपने लिए हो आत्मनेपदी होती हैं। सः वपति और सः वपते दोनों का अर्थ "वह बोता है" है परन्तु "वपति" परस्मैपदी क्रिया होने से बोने का जो फल है वह दूसरों के लिए होगा जबकि "वपते" आत्मनेपदी क्रिया है - फल अपने लिए होगा। परन्तु इस प्रकार के प्रयोग केवल समझाने मात्र के लिए हैं। अनुपालन में इस नियम का उल्लंघन ही होता है। जो धातुएं दोनों रूपों में प्रयुक्त होती हैं उन्हें उभयपदी कहा जाता है। प्रत्येक के अलग-अलग प्रत्यय हैं जो तालिकाओं में दिखलाए गए हैं।

१०.३.४ वाच्य : संस्कृत भाषा में क्रिया के रूप तीन वाच्यों में होते हैं - कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य। इन्हें क्रमशः 'कर्तरि प्रयोग', 'कर्मणि प्रयोग' और 'भावे प्रयोग' भी कहते हैं। अंग्रेजी में केवल दो वाच्य (Voice) ही हैं : Active

voice (कर्तृवाच्य) और Passive voice (कर्मवाच्य)। हिन्दी में अधिकतर कर्तृवाच्य का ही प्रयोग किया जाता है। क्रिया का भाववाच्य रूप संस्कृत की विशेषता है। जिस वाक्य में क्रिया अकर्मक हो और क्रिया का अर्थ या भाव ही प्रधान हो वह भाववाच्य कहलाता है। तीनों वाच्यों की रचना के नियम इस प्रकार हैं :

(i) कर्तृवाच्य की रचना में कर्ता प्रथमा में, कर्म द्वितीया में होता है और क्रिया, कर्ता के पुरुष और वचन के अनुरूप रहती है - रामः ग्रामं गच्छति।

(ii) कर्मवाच्य की रचना में कर्म प्रथमा में, कर्ता तृतीया में होता है और क्रिया, कर्म के पुरुष एवं वचन के अनुसार होती है। रामेण ग्रन्थाः लिख्यन्ते।

(iii) भाववाच्य में कर्ता तृतीया में और क्रिया में प्रत्येक लकार (नीचे देखिए "लकार" के अन्तर्गत) का रूप केवल प्रथम पुरुष, एकवचन में होता है, ऐसी रचना में कर्म होता ही नहीं। जैसे मया न अद्यते (मुझसे चला नहीं जाता)।

(iv) कर्मवाच्य् और भाववाच्य में केवल 'आत्मनेपद' के प्रत्यय लगते हैं।

१०.४ लकार

आप देख रहे हैं संस्कृत भाषा में सहायक क्रियाओं के न होने से क्रियाओं के रूप किन-किन कारणों से बदल

जाते हैं। इन सबमें अधिक महत्त्व का कारण है- "काल"। मुख्ययतः काल के तीन भेद हैं - भूत, वर्तमान और भविष्यत्।

हिन्दी में प्रत्येक काल को साधारणतया निम्न प्रकार से प्रविभाजित किया जाता है :

वर्तमान काल - सामान्य, अपूर्ण (अथवा तात्कालिक) और संदिग्ध

भूत काल - सामान्य, आसन्न, पूर्ण, अपूर्ण, सन्दिग्ध और हेतु हेतुमद्भूत (या क्रियातिपत्ति)

भविष्यत्काल - सामान्य और सम्भाव्य

इनके अतिरिक्त भावानुसार क्रियाओं के कुछ और भी भेद हैं :- जैसे पूर्वकालिक, विधि, प्रेरणार्थक, समापिका, संयुक्त-क्रिया, नामधातु और सम्भावना। संस्कृत में काल, अवस्था और भाव के अनुसार क्रियाओं के भेद लकारों द्वारा किए जाते हैं और हर अवस्था में क्रिया का रूप बदल जाता है।

लकार दस हैं, जो दो भाग में विभाजित हैं :

ट् इत् - लट् लिट् लुट् लृट् लेट् लोट्

ङ्इत् - लङ् लिङ् लुङ् लृङ्

वर्तमान काल में केवल एक ही लकार है - लट्

भूतकाल में तीन लकार है :

लिट् (परोक्ष भूत) लङ् (अनद्यतन भूत) और लुङ् (सामान्य भूत)
परोक्ष का एक अर्थ है : 'दृष्टि से बाहर' । अगोचर ।
परोक्ष भूतकाल ऐसा अतीत काल है जो आंखों के सामने न हुआ हो। अतः परोक्ष भूत का प्रयोग उत्तम पुरुष में नहीं हो सकता क्योंकि स्वयं की गई क्रिया परोक्ष नहीं हो सकती।
अद्यतन का अर्थ है : 'आज सम्बन्धी', 'आज का' ।
अनद्यतन भूतकाल ऐसा भूतकाल है जो आज न हुआ हो, जिसकी क्रिया आज समाप्त न हुई है, कल या इससे पूर्व समाप्त हो गई हो।
बाकी 'सामान्य भूतकाल' सर्वत्र प्रयोग में आता है चाहे क्रिया आज समाप्त हुई हो चाहे पहले कभी।

भविष्यत् काल में दो 'लकार' हैं :

लुट् (अनद्यतन भविष्यत्) और लृट् (सामान्य भविष्यत्)
अनद्यतन का प्रयोग उस दशा में नहीं हो सकता जब क्रिया आज ही आरम्भ होने को हो।
सामान्य भविष्यत् का प्रयोग बाकी सब दशाओं में किया जाता है चाहे क्रिया आज ही आरम्भ होने को है चाहे कभी भविष्य में।
उपयुर्कत छः लकारों के प्रयोग ध्यान में रखें बाकी चार लकार बचे :
ट् इत् में दो :- लेट् और लोट्; और
ङ् इत् में दो :- लिङ् और लृङ् ।

इनमें से लेट् लकार केवल वैदिक साहित्य में ही आता है। वहां इसका प्रयोग लिङ् लकार के अर्थ में होता है। संस्कृत भाषा में अन्यत्र इसका प्रयोग नहीं है। लिंग लकार के फिर दो भेद हैं: विधिलिङ् और आशीर्लिङ्।

इस प्रकार बाकी चार लकारों का प्रयोग निम्न प्रयोजनों के लिए किया जाता है।

लोट्, विधिलिङ् : विधि और आज्ञा आदि अर्थों में। यदि आज्ञा के रूप का प्रयोग हो, तो नरम आदेश होता है जैसे स्वामी का सेवक को आदेश देना। और, यदि विधिका प्रयोग हो तो कड़ा।

आशीर्लिङ् : अप्राप्त इष्ट वस्तु की प्राप्ति की इच्छा को "आशीः" कहते हैं। आशीर्लिङ का प्रयोग आशीर्वादात्मक होता है।

लृङ् : इस लकार द्वारा भूतकाल के क्रियातिपत्ति रूप का प्रयोग किया जाता है।
क्रियातिपत्ति का प्रयोग ऐसे अवसर पर किया जाता है जब एक क्रिया का होना दूसरी क्रिया के होने पर निर्भर हो।

लकारों का एक और भेद है :-
सार्वधातुक : लट् लोट् लङ् और विधिलिङ्
आर्धधातुक : बाकी छः लकार।

हम ऊपर बतला आए हैं कि संस्कृत भाषा में सम्पूर्ण धातुओं को दस गणों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक गण का एक विकरण चिन्ह है जो धातु और क्रिया प्रत्ययों के बीच में जुड़ता है। ध्यान रहे यह विकरण चिन्ह केवल सार्वधातुक लकारों में ही जुड़ते हैं।

आगे पढ़ने से पहले एक बार लकारों को फिर दोहरा लें। इसके लिए यह तालिका सहायक होगी :-

लकारों की तालिका - १५

	काल	लकार का नाम	लकार का प्रयोग
१	वर्तमान्	लट्	वर्तमान् (काल जैसा भी हो)
२	भूतकाल	लिट्	परोक्ष भूत
		लङ्	अनद्यतन भूत
		लुङ्	सामान्य भूत
३	भविष्यत्काल	लुट्	अनद्यतन भविष्यत्
		लृट्	सामान्य भविष्यत्
४	अन्य लकार	लोट्	आज्ञार्थ
		विधिलिङ्	विधिरूप आज्ञा
		आशीर्लिङ्	आशीर्वादात्मक
		लृङ्	भूतकाल के क्रियातिपत्ति-रूप में इसका प्रयोग होता है। इसी अर्थ के लिए वेद में लेट् लकार का भी प्रयोग है।

१०.५ धातुओं का उनके गण और पद विभाजन के अनुसार भिन्न-भिन्न लकारों में प्रयोग।

अब हम कुछ तालिकाओं द्वारा गीता में प्रयुक्त धातुओं को उनके गण और पद के अनुसार अलग-अलग लकारों के अन्तर्गत निर्दशित करते हैं। देखिए काल, वचन और पुरुष के अनुसार क्रिया का रूप कैसे बदल जाता है। धीरे-धीरे प्रासंगिक प्रत्ययों को स्मरण करने का प्रयास करें। यद्यपि हम द्विवचन के रूप भी दे रहे हैं, ध्यान रहे इनका प्रयोग गीता में कम ही है।

लकार और उनके प्रयोग स्मरण करने में निम्न तालिकाएं सहायक होंगीं :-

तालिका १६ : परस्मैपदीय धातुओं के प्रत्ययः धातु 'भू'-भव

तालिका १७ : आत्मेनपदीय धातुओं के प्रत्ययः धातु 'सेव'

तालिका १८ : परस्मैपदीय और आत्मनेपदीय धातुओं की तुलनात्मक सारणी

तालिका १९ : भ्वादि गण की अन्य धातुएं जिनका गीता में प्रयोग हुआ है

तालिका २० : अन्य गणों की धातुएं जिनका गीता में प्रयोग हुआ है

तालिका १६

परस्मैपद धातु भू-भव (होना) भ्वादि गण विकरण (अ)

१ वर्तमान् काल लट् लकार प्रत्यय और उदाहरण

पुरुष	वचन					
	एक		द्वि		बहु	
	प्रत्यय	उदाहरण	प्रत्यय	उदाहरण	प्रत्यय	उदाहरण
अन्य	ति.	भवति	तः	भवतः	अन्ति	भवन्ति
मध्यम	सि.	भवसि	थः	भवथः	थ	भवथ
उत्तम	आमि.	भवामि	वः	भवावः	मः	भवामः

२ (i) भूतकाल लिट् लकार (परोक्ष भूत)

अन्य	अ	बभूव	अतुः	बभूवतुः	उः	बभूवुः
मध्यम	थ	बभूविथ	अथुः	बभूवथुः	अ	बभूव
उत्तम	अ	बभूव	व	बभूविव	म	बभूविम

२ (ii) भूतकाल लङ् लकार (अनद्यतन भूत)

अन्य	त्	अभवत्	ताम्	अभवताम्	अन्	अभवन्
मध्यम	स्	अभवः	तम्	अभवतम्	त	अभवत
उत्तम	अम्	अभवम्	आव	अभवाव	आम	अभवाम

२ (iii) भूतकाल लुङ लकार (सामान्य भूत)

अन्य	त्	अभूत्	ताम्	अभूताम्	अन्	अभूवन्
मध्यम	स्	अभूः	तम्	अभूतम्	त	अभूत
उत्तम	अम्	अभूवम्	आव	अभूव	आम	अभूम

नोट : आप देख रहे हैं लङ्-लुङ् के प्रत्यय एक समान ही हैं। पर रूप भिन्न हैं

तालिका १६

३ (i) भविष्यत्काल लुटकार (अनद्यतन भविष्य) प्रत्यय और उदाहरण

पुरुष	वचन					
	एक		द्वि		बहु	
	प्रत्यय	उदाहरण	प्रत्यय	उदाहरण	प्रत्यय	उदाहरण
अन्य	तास्	भविता	तारौ	भवितारौ	तारः	भवितारः
मध्यम	तासि	भवितासि	तास्थः	भवितास्थः	तास्थ	भवितास्थ
उत्तम	तास्मि	भवितास्मि	तास्वः	भवितास्वः	तास्मः	भविवास्मः

३ (ii) भविष्यत्काल लृट लकार (सामान्य भविष्य)

अन्य	ति	भविष्यति	तः	भविष्यतः	अन्ति	भविष्यन्ति
मध्यम	सि	भविष्यसि	थः	भविष्यथः	थ	भविष्यथ
उत्तम	आमि	भविष्यामि	वः	भविष्यावः	मः	भविष्यामः

नोटः (आप देख रहे हैं यहां लृट् लकार के प्रत्यय लट् लकार के ही प्रत्ययों के समान है।)

४ (i) लोट् लकार (आज्ञा के अर्थ में)

अन्य	तु तात्	भवतु भवतात्	ताम्	भवताम्	अन्तु	भवन्तु
मध्यम	(हि) तात्	भव भवतात्	तम्	भवतम्	त	भवत
उत्तम	आनि	भवानि	आव	भवाव	आम	भवाम

तालिका १६

४ (ii) विधि लिङ् लकार — प्रत्यय और उदाहरण

(विधि-आज्ञा आदि के अर्थ में)

पुरुष	वचन					
	एक		द्वि		बहु	
	प्रत्यय	उदाहरण	प्रत्यय	उदाहरण	प्रत्यय	उदाहरण
अन्य	ईत्	भवेत्	ईताम्	भवेताम्	ईयुः	भवेयुः
मध्यम	ईः	भवेः	ईतम्	भवेतम्	ईत	भवेत
उत्तम	ईयम्	भवेयम्	ईव	भवेव	ईम	भवेम

४ (iii) आशीर्लिङ् लकार (आशीर्वादात्मक)

अन्य	यात्	भूयात्	याताम्	भूयास्ताम्	युः	भूयासुः
मध्यम	याः	भूयाः	यातम्	भूयास्तम्	यात	भूयास्त
उत्तम	याम्	भूयासम्	याव	भूयास्व	याम	भूयास्म

४ (iv) लृङ् लकार (क्रियातिपत्ति के अर्थ में)

अन्य	त्	अभविष्यत्	ताम्	अभविष्याताम्	अन्	अभविष्यन्
मध्यम	स्	अभविष्यः	तम्	अभविष्यतम्	त	अभविष्यत
उत्तम	अम्	अभविष्यम्	आव	अभविष्याव	आम	अभविष्याम

नोट : "लृङ्" के प्रत्यय "लङ्" के ही समान है

तालिका १७

आत्मनेपद धातु सेव् (सेवा करना) भ्वादिगण विकरण (अ)

१. वर्तमान् काल लट् लकार प्रत्यय और उदाहरण

पुरुष	वचन					
	एक		द्वि		बहु	
	प्रत्यय	उदाहरण	प्रत्यय	उदाहरण	प्रत्यय	उदाहरण
अन्य	ते	सेवते	इते	सेवेते	अन्ते	सेवन्ते
मध्यम	से	सेवसे	इथे	सेवेथे	ध्वे	सेवध्वे
उत्तम	इ	सेवे	वहे	सेवावहे	महे	सेवामहे

२. (१) भूतकाल लिट् लकार (परोक्ष भूत)

अन्य	ए	सेवाञ्चक्रे	आते	सेवाञ्चक्राते	इरे	सेवाञ्चक्रिरे
मध्यम	से	सेवाञ्चकृषे	आथे	सेवाञ्चक्राथे	ध्वे	सेवाञ्चकृढ्वे
उत्तम	ए	सेवाञ्चक्रे	वहे	सेवाञ्चकृवहे	महे	सेवाञ्चकृमहे

२. (२) भूतकाल लङ लकार (अनद्यतन भूत)

अन्य	त	असेवत	इताम्	असेवेताम्	अन्त	असेवन्त
मध्यम	थाः	असेवथाः	इथाम्	असेवेथाम्	ध्वम्	असेवध्वम्
उत्तम	इ	असेवे	वहि	असेवावहि	महि	असेवामहि

२. (३) भूतकाल लुङ्लकार (सामान्य भूत)

अन्य	इष्ट	असेविष्ट	इषाताम्	असेविषाताम्	इषत	असेविषत
मध्यम	इष्ठाः	असेविष्ठाः	इषाथाम्	असेविषाथाम्	इषध्वम्	असेविषध्वम्
उत्तम	इषि	असेविषि	इष्वहि	असेविष्वहि	इष्महि	असेविष्महि

नोट : सामान्य भूत के रूप संस्कृत में सात प्रकार के है। ऊपर केवल पंचम प्रकार के प्रत्यय और उदाहरण जानकारी के लिए दिए हैं। गीता में इसका भी उपयोग नहीं मिलता ।

तालिका १७

३. (i) भविष्यत्काल लुट् लकार (अनद्यतन भविष्य) प्रत्यय और उदाहरण

पुरुष	वचन					
	एक		द्वि		बहु	
	प्रत्यय	उदाहरण	प्रत्यय	उदाहरण	प्रत्यय	उदाहरण
अन्य	ता	सेविता	तारौ	सेवितारौ	तारः	सेवितारः
मध्यम	तासे	सेवितासे	तासाथे	सेवितासाथे	ताध्वे	सेविताध्वे
उत्तम	ताहे	सेविताहे	तास्वहे	सेवितास्वहे	तास्महे	सेवितास्महे

३. (ii) भविष्यत् काल लृट लकार (सामान्य भविष्य)

अन्य	स्यते	सेविष्यते	स्येते	सेविष्येते	स्यन्ते	सेविष्यन्ते
मध्यम	स्यसे	सेविष्यसे	स्येथे	सेविष्येथे	स्यध्वे	सेविष्यध्वे
उत्तम	स्ये	सेविष्ये	स्यावहे	सेविष्यावहे	स्यामहे	सेविष्यामहे

४. (i) लोट् लकार (आज्ञा के अर्थ में)

अन्य	ताम्	सवेताम्	इताम्	सेवेताम्	अन्ताम्	सेवन्ताम्
मध्यम	स्व	सेवस्व	इथाम्	सेवेथाम्	ध्वम्	सेवध्वम्
उत्तम	ऐ	सेवै	आवहै	सेवावहै	आमहै	सेवामहै

तालिका १७

४. (ii) विधिलिङ् लकार (विधि-आज्ञा आदि के अर्थ में) प्रत्यय और उदाहरण

पुरुष	वचन					
	एक		द्वि		बहु	
	प्रत्यय	उदाहरण	प्रत्यय	उदाहरण	प्रत्यय	उदाहरण
अन्य	इत	सेवेत	ईयाताम्	सेवेयाताम्	ईरन	सेवेरन्
मध्यम	ईथाः	सेवेथाः	ईयाथाम्	सेवेयाथाम्	ईध्वम्	सेवेध्वम्
उत्तम	ईय	सेवेय	ईवहि	सेवेवहि	ईमहि	सेवेमहि

४.(iii) आशीर्लिङ् लकार (आशीर्वादात्मक)

अन्य	सीष्ठ	सेविषीष्ठ	सीयास्ताम्	सेविषीयास्ताम्	सरिन	सेविषिरन
मध्यम	सीष्ठाः	सेविषीष्ठाः	सीयास्थाम्	सेविषीयास्थाम्	सध्विम्	सेविषध्विम्
उत्तम	सीय	सेविषीय	सविहि	सेविषीवहि	समिहि	सेविषमिहि

४. (iv) लृङ लकार (क्रियातिपत्ति के अर्थ में)

अन्य	स्यत	असेविष्यत	स्येताम	असेविष्येताम	स्यन्त	असेविष्यन्त
मध्यम	स्यथाः	असेविष्यथाः	स्येथाम्	असेविष्येथाम्	स्यध्वम्	असेविष्यध्वम्
उत्तम	स्य	असेविष्ये	स्यावहि	असेविष्यावहि	स्यामहि	असेविष्यामहि

१०.६ ऊपर परस्मैपदी (भू) और आत्मनेपदी (सेव्) धातुओं के लिए, लकारों के प्रत्यय उदाहरण सहित दिए गए हैं। ध्यान रहे इन प्रत्ययों के रूप गणानुसार नहीं बदलते। अतः हम पाठकों की सुविधा के लिए एक बार फिर दोनों धातुओं के प्रत्यय रूपों को एक सारणी में दे रहे हैं कि प्रत्येक लकार के अंतर्गत उनकी तुलना भी हो सके :

तालिका १८

पुरुष	परस्मैपदी प्रत्यय वचन			आत्मनेपदी प्रत्यय वचन		
(क) वर्तमान काल :	लट् लकार					
	१	२	३	१	२	३
अन्य	ति	तः	अन्ति	ते	इते	अन्ते
मध्यम	सि	थः	थ	से	इथे	ध्वे
उत्तम	मि	वः	मः	इ	वहे	महे
(ख) भूतकाल :	(i) लिट् लकार			(परोक्ष भूत)		
अन्य	अ	अतुः	उः	ए	आते	इरे
मध्यम	थ	अथुः	अ	से	आथे	ध्वे
उत्तम	अ	व	म	ए	वहे	महे
	(ii) लङ् लकार			(अनद्यतन भूत)		
अन्य	त्	ताम	अन्	त	इताम्	अन्त
मध्यम	स्	तम्	त	थाः	इथाम्	ध्वम्
उत्तम	अस्	आव	आम	इ	वहि	महि
	(iii) लुङ् लकार			(सामान्य भूत)		
अन्य	सीत्	स्ताम्	सुः	स्त	साताम्	सत्
मध्यम	सीः	स्तम्	स्त	सथाः	साथाम्	ध्वम्
उत्तम	सम्	स्व	स्म	सि	स्वहि	स्महि
(ग) भविष्यत् काल :	(i) लुट् लकार			(अनद्यतन)		
अन्य	तास्	तारौ	तारः	ता	तारौ	तारः
मध्यम	तासि	तास्थः	तास्थ	तासे	तासाथे	ताध्वे
उत्तम	तास्मि	तास्वः	तास्मः	ताहे	तास्वहे	तास्महे
	(ii) लृट लकार			(सामान्य भविष्य)		
अन्य	ति	तः	अन्ति	स्यते	स्येते	स्यन्ते
मध्यम	सि	थः	थ	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
उत्तम	मि	वः	मः	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

तालिका १८

	परस्मैपदी प्रत्यय			आत्मनेपदी प्रत्यय		
	वचन			वचन		
(घ) अन्य लकार	(i) लोट (आज्ञा)					
पुरुष	१	२	३	१	२	३
अन्य	तु	ताम्	अन्तु	ताम्	इताम्	अन्ताम्
मध्यम	तु या, तात्	तम्	त	स्व	इथम्	ध्वम्
उत्तम	आनि	आव	आम	ऐ	आवहै	आमहै
	(ii) विधि लिङ्					
अन्य	ईत्	ईताम्	ईयुः	ङ्त	ईयाताम्	ईरन्
मध्यम	ईः	ईतम्	ईत्	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
उत्तम	ईयम्	ईव	ईम	ईय	ईवहि	ईमहि
	(iii) आशीर्लिङ्					
अन्य	यात्	यास्ताम	यासुः	सीष्ठ	सीयास्ताम्	सीरन्
मध्यम	याः	यास्तम्	यास्त	सीष्ठा	सीयास्थाम्	सीध्वम्
उत्तम	यासम्	यास्व	यास्म	सीय	सीवहि	सीमहि
	(iv) लुङ् (क्रियातिपत्ति)					
अन्य	स्यत्	स्यताम्	स्यन्	स्यत	स्येताम्	स्यन्त
मध्यम	स्यः	स्यतम्	स्यत	स्यथाः	सयेथाम्	सयध्वम्
उत्तम	स्यम्	स्याव	स्याम	स्य	स्यावहि	स्यामहि

१०.७ भ्वादिगण की परस्मैपदी और आत्मनेपदी अन्य धातुएं जिनका गीता में प्रयोग है, निम्नलिखित हैं :

तालिका १९

(i) परस्मैपद की धातुएं :

गम् (जाना) जि (जीतना) दृश् (देखना)
नी (ले जाना) स्मृ (स्मरण करना)
शुच् (शोक करना) स्था (ठहरना)
श्रि (आश्रय लेना) तृ (तैरना) नम् (झुकना)
त्यज् (छोड़ना) हृ (हरना) दह् (जलाना)

(ii) आत्मनेपद की धातुएं :

लभ् (पाना) मुद् (प्रसन्न होना)

१०.८ भ्वादिगण के अतिरिक्त अन्य गणों की धातुएं, जिनके गीता में प्रयोग हैं, और उनके विकरण

तालिका २०

गण	धातु			विकरण
	१. परस्मैपदी	२. आत्मनेपदी	३. उभयपदी	
२.अदादि	अद् (खाना) अस् (बैठना) इण् (जाना) हन् (मारना) या (जाना) विद् (जानना)	आस् (बैठना)	ब्रू (बोलना)	शून्य
३.जुहोत्यादि	हु (हवन करना)		दा (देना) धा (धारण करना) हा (त्यागना) भृ (भरण करना)	शून्य

गण	धातु			विकरण
	१. परस्मैपदी	२. आत्मनेपदी	३. उभयपदी	
४. दिवादि	दिव् (चमकना; जुआ खेलना) नश् (नष्ट होना) तुष (सन्तुष्ट होना) विनश् (नाश होना) परिशुष् (सूखना) प्रदुष् (दूषित होना) प्रसिध् (सिद्ध होना) प्रहृष् (हर्ष पाना) मुह् (मूच्छित होना) युध् (लड़ाई करना) शुच् (शोक करना)	विद् (होना)		य
५. स्वादि	१. आप् (पाना) शक् (समर्थ) होना) अश् (अनुभव करना, प्राप्त होना)			नु
६. तुदादि	इष् (इच्छा करना) अन्विच्छ् (खोजना) सृज (बनाना)	विन्द् (पाना) मुच् (छोड़ना)	नुद् (दूर करना) तुद् (पीड़ा पहुंचाना)	अ

तालिका २०

गण	धातु			विकरण
	१. परस्मैपदी	२. आत्मनेपदी	३. उभयपदी	
	प्रच्छ् (पूछना)		लिप् (लीपना)	
	विश् (बैठना)			
	क्षिप् (फेंकना)			
७. रुधादि	छिद् (काटना)		भुज् (खाना)	न अथवा न्
	युज् (जोड़ना)			
	हिंस् (मारना)			
८. तनादि			कृ (करना)	उ
९. क्र्यादि	पुष् (पोषण करना)		ज्ञा (जानना)	ना
			ग्रह (लेना)	
			बन्ध् (बांधना)	
			गृह् (पकड़ना)	
१०. चुरादि			कथ् (कहना)	अय्

११. कृत् प्रत्यय

प्रत्यय शब्दांश हैं। इन का स्वतन्त्र प्रयोग नहीं होता। ये शब्द के अन्त में जोड़े जाते हैं जिससे उसके अर्थ में परिवर्तन हो जाता है।

जो प्रत्यय धातु या क्रिया के अन्त में जोड़े जाते हैं वे कृत् प्रत्यय कहलाते हैं, और इस प्रकार जो शब्द बनते हैं उन्हें कृदन्त शब्द कहते हैं। यदि हम एक बार हिन्दी भाषा के कृत् प्रत्यय सम्बन्धी कुछ नियमों को संक्षेप में दोहरा लें तो संस्कृत भाषा में इनको समझने में थोड़ी सहायता मिलेगी।

(I)

कृत् प्रत्यय जोड़ने से दो प्रकार के कृदन्त शब्द बनते हैं। (क) विकारी और (ख) अविकारी।

(क) **विकारी कृदन्त शब्द** तीन प्रकार के होते है :- (१) क्रिया से बने संज्ञा शब्द; (२) क्रिया से बने विशेषण शब्द; और (३) क्रिया से बने क्रियार्थक अथवा क्रिया द्योतक शब्द।

(१) क्रिया से बने संज्ञा शब्द : ये तीन प्रकार के हैं :
(अ) जातिवाचक, (इ) वस्तुवाचक; और (उ) भाववाचक।

(अ) जाति वाचक संज्ञा शब्द

क्रिया	प्रत्यय	प्रत्ययान्त शब्द
लिखना	क	लेखक
गाना	इया	गवैया
रखना	एल	रखैल
खाना	वाला	खानेवाला
मिलना	सार	मिलनसार
पालना	हार	पालनहार

(इ) वस्तु वाचक संज्ञा शब्द

क्रिया	प्रत्यय	प्रत्ययान्त शब्द
झूलना	आ	झूला
बिछाना	आनी	बिछानी
खेलना	औना	खिलौना
झाड़ना	ऊ	झाड़ू
पिचकना	कारी	पिचकारी

(उ) भाववाचक संज्ञा शब्द

लड़ना	आई	लड़ाई
लिखना	आवट	लिखावट
चलना	अन	चलन
धड़कना	अन	धड़कन
खपना	त	खपत

(२) क्रिया से बने विशेषण शब्द

पीना	अक्कड़	पियक्कड़
भूलना	अक्कड़	भुलक्कड़
उपजना	आऊ	उपजाऊ
चलना	आऊ	चलाउ, चालू

(३.क) क्रिया से बने क्रियार्थक शब्द

खा	ना	खाना
पी	ना	पीना
गा	ना	गाना
रो	ना	रोना

(३.ख) **क्रिया से बने क्रिया द्योतक शब्द; ये दो प्रकार के है :-**

(i) **वर्तमान कालीन**

जीना	ता	जीता (जानवर)
चरना	ता	चरता (गधा)

(ii) **भूत कालीन**

मरना	आ	मरा (मनुष्य)
बोना	या	बोया (खेत)

उपर्युक्त संज्ञा और विशेषण शब्द विकारी हैं। अतः ये लिंग और वचन के साथ बदल जाते हैं। पर, हिन्दी में सम्बन्ध वाचक चिन्ह अलग से होने के कारण ये वाक्य में कारक के अनुसार नहीं बदलते जैसे संस्कृत भाषा में। दूसरे हिन्दी भाषा में प्रत्ययों के नाम और रूप में कोई विशेष अन्तर नहीं है जैसा संस्कृत भाषा में ! (देखिए नीचे "भाग" (II) के अन्तर्गत)।

(ख) **अविकारी कृदन्त शब्द** चार प्रकार के हैं :-

(१) पूर्ण क्रिया द्योतक – मुझे <u>आए</u> दो घन्टे हो गए; वह मुहं <u>खोले</u> रह गया।

(२) अपूर्ण क्रिया द्योतक – उसे <u>गाते</u> किसने देखा।

(३) पूर्व कालिक क्रिया द्योतक – वह <u>पढ़कर</u> सो गया।

(४) तात्कालिक क्रिया द्योतक : अपूर्ण कालिक क्रिया शब्द के साथ "ही" जोड़ने से बनते हैं – वह खीरा खाते ही बीमार पड़ गया ।

(II)

संस्कृत में कृत् प्रत्यय तीन प्रकार के हैं :- कृत्य, कृत् और उणादि ।

(१) कृत्य प्रत्यय : हिन्दी में "चाहिए", "योग्य" है शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जैसे यह पुस्तक पढ़ने योग्य है; यह काम करना चाहिए आदि । संस्कृत में ऐसे शब्दों के लिए भी प्रत्यय हैं जो कृत्य प्रत्यय कहलाते हैं । कृत्य प्रत्यय सात प्रकार के हैं जिनके नाम और रूप, उदाहरण सहित हम नीचे दे रहे हैं :-

	कृत्य प्रत्यय का नाम	रूप	उदाहरण
१.	तव्य	तव्य	
२.	तव्यत्	तव्य	पक्तव्य
३.	अनीयर्	अनीय	पचनीय
४.	केलिमर्	एलिम्	पचेलिम
५.	यत्	य	देय, गेय
६.	क्यप्	य	इत्य, शिष्य
७.	ण्यत्	य	कार्य

गीता में अनीयर् और केलिमर् प्रत्ययों के उदाहरण नहीं मिलते । ध्यान रहे कृत्यांत शब्दों के रूप तीनों लिंगो में चलते हैं– पुंल्लिग में "राम", नपुंसक लिंग में "फल" और स्त्रीलिंग में "विद्या" की तरह । कृत्य प्रत्ययान्त शब्दों के उदाहरण जो गीता में प्रयुक्त हैं, "तालिकाएं" २१–२४ में दिये गए हैं । ऐसे प्रत्ययान्त शब्दों के अर्थ और संकेत शब्द आदि के लिए देखिए गीता कोश ।

तालिका २१

कृत्य प्रत्यय-तव्य और तव्यत् - रूप "तव्य"

धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
कृ	कर्तव्यम्	यज्	यष्टव्यम्
गम्	गन्तव्यम्	युज	योक्तव्यः
ज्ञा	ज्ञातव्ययम्	युध्	योद्धव्यम्
दा	दातव्यम्	विद्	वेदितव्यम्
बुध्	बोद्धव्यम्	श्रु	श्रोतव्यस्य
मन्	मन्तव्यः	परि-मार्गी	परिमार्गितव्यम्

तालिका २२

कृत्य प्रत्यय "यत् - रूप "य"

ज्ञा	ज्ञेयः	लभ्	लभ्यः
रस्	रस्याः	शक्	शक्यम्

तालिका २३

कृत्य प्रत्यय- "क्यप्"- रूप "य"

शास्	शिष्यः		

तालिका २४

कृत्य प्रत्यय "ण्यत्" रूप 'य'

आ - चर्	आचार्य	चिन्त्	चिन्त्यः
अ ञ्ज्	आज्यम्	त्यज्	त्याज्यम्
ईड्	ईडयम्	द्विष्	द्वेष्यः
कम्-कामि	काम्यानाम्	वच्	वाक्यम् , वाक्येन
कृ	कार्यम्	विद	वेद्यः वेद्यम्

(२) **कृत् प्रत्ययः** ये (क) भूत कालिक, (ख) वर्तमान कालिक और (ग) भविष्यत्कालिक होते हैं।

२. (क) भूतकालिक कृत् प्रत्यय पूर्णकालिक क्रिया-द्योतक शब्दों को दर्शाने के लिए संस्कृत में दो प्रत्यय हैं :- "क्त" (त) और क्तवतु (तवत्)। ऐसे प्रत्ययान्त शब्द अंग्रेजी के पास्ट पार्टिसिपल् (Past Participle) के समान व्यवहार में लाए जाते हैं। इन के रूप तीनों लिंगों में और सातों विभक्तियों में विशेष्य के अनुसार होते हैः- 'क्त' प्रत्ययान्त शब्द अकारान्त होने से पुंल्लिंग में 'राम' और नपुंसकलिंग में 'फल' की तरह चलते हैं और आकारान्त होने से स्त्रीलिंग में "विद्या" की तरह। "क्तवतु" प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिंग में अकारान्त् (राम), नपुंसकलिंग में तकारान्त (मरुत्) और स्त्रीलिंग् में ईकारान्त (नदी) की तरह चलते हैं।

भूतकाल के कृत् प्रत्ययान्त शब्दों के उदाहरण जो गीता में प्रयुक्त हैं, तालिकाएं २५ से २८ में दिये गए हैं। कृत् प्रत्ययों का भावार्थ प्रयोग भी है जो हम २९ से ४० तक की तालिकाओं में दे रहे हैं। कृत प्रत्यय के अन्य प्रयोग भी हैं। जो उदाहरण गीता में मिलते हैं वे ४४ से ७१ तक की तालिकाओं में दिए हैं। कृतान्त प्रत्ययों की वर्णानुक्रमिक सूची में तालिकाओं के नम्बर भी दिए हैं। प्रत्ययों के नाम रूप आदि का वर्णन सम्बन्धित तालिका में किया गया है। कृत् प्रत्ययान्त शब्दों के अर्थ व संकेत-शब्द गीता कोश में देखिए।

कृत् प्रत्ययों की वर्णानुक्रमिक सूची

प्रत्यय का नाम	तालिका न.	प्रत्यय का नाम	तालिका न.
अङ्	३३,६८	घञ्	२९,५७
अच्	३८,४७,६१	घिणुन	५०
अथुच्	३२	डु	५१
अप्	३५,६२	णिनि	४६
इत्र	६५	ण्वुल्	४४
इष्णुच्	५४	तृच्	४४
उ	५२	नङ्	६३
क	४९	नन्	४०
किः	३९	युच्	५३,६६
क्त	२५-२८, ५५,५६	ल्युट्	३६,४५,५८
क्तवत्	२७	शः	६९
क्तिन्	३१,६०	शतृ	४८
क्यप्	७१	शानच्	५९
क्विप्	३७,७०	ष्ट्रन्	३४,६४
खल्	३०,६७		

तालिका २५

कृत् प्रत्यय 'क्त' - रूप 'त' (कर्तरि प्रयोग)

धातुशब्द	प्रत्ययान्त शब्द	धातुशब्द	प्रत्ययान्त शब्द
अभि-रम्	अभिरतः	उद्-स्था	उत्थिता
अनु-प्र-पद्	अनुप्रपन्नाः	उप पद्	उपपन्नम्
अभि-जन् जा	अभिजातः, अभिजातस्य	उप रम्	उपरतम्
अभि-प्र-वृत्	अभिप्रवृत्तः	उप-आ-श्रि	उपाश्रिताः
अव-स्था	अवस्थितः, अवस्थितम्	उप-इ	उपेतः, उपेताः
आ-गम्	आगताः	गम्	गतः, गताः
आ-पद्	आपन्नाः, आपन्नम्	तुष्	तुष्टः
ब्रू-वच्	उक्तः		

तालिका २६

कृत् प्रत्यय क्त - रूप "त" कृतप्रत्यय (कर्तरि प्रयोग)

नश्	नष्टः	रम्	रताः
प्र-नश्	प्रनष्टः	लुभ्	लुब्धः
प्र-पद्	प्रपन्नम्	वि-क्रम्	विक्रान्तः
प्र-या	प्रयाताः	वि-गम्	विगतः
प्र-ली	प्रलीनः	वि. तान्	वितताः
प्र-सञ्ज्	प्रसक्ताः	श्रि	श्रिताः
प्र-सद्	प्रसन्नेन	सम्-इन्ध्	समिद्धः
प्र-आप्	प्राप्तः	सम्-उप-स्था	समुपस्थितम्
प्र-इ	प्रेतान्	सम्-उप-आ-श्रि	समुपाश्रितः
भज्	भक्तः भक्ताः	स्था	स्थितः
मन्	मतः	हृष्-हृष्ट (+णिच्)	हृषितः

तालिका २७

कृत् प्रत्यय 'क्त-रूप 'त'

धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
(कर्त्ता)		(कर्मणि)	
शब्दवि-अति-इ	व्यतीतानि	वि-आप्	व्याप्तम्
वि-अव-सो	व्यवसिताः	वि-वह्	व्यूढम्
वि-अव-स्था	व्यवस्थितौ,व्यवस्थितान्	शम्	शान्तः
सम्-नि-विश	संनिविष्टः	श्रु	श्रुतौ
सम-वृत	संवृत्तः	सम्-प्र-कीर्त्	संप्रकीर्तितः
सञ्ज्	सक्तः	सम्-भू-भावि	संभावितस्य
सम-अति-इ	समतीतानि	सम्-ऋध्	समृद्धम्
सम-अव-स्था	समवस्थितम्	सृज्	सृष्टम्
सम + अव-इ	समवेताः; समवेतान्	स्मृ	स्मृतः
सम-आ-गम्	समागताः	हन्	हतः
सम-आ-धा	समाहितः	हु	हुतम्
स्तम्भ्	स्तब्धः; स्तब्धाः		
स्निह्	स्निग्धाः		

तालिका २८

कृत् प्रत्यय-क्तवत्-रूप 'तवत्'

दृश	दृष्टवान	श्रु	श्रुतवान्

तालिका २९

कृत् प्रत्यय का वर्णन	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
"घञ्" प्रत्यय का रूप "अ"	शब्द	शब्दः
है। यह प्रत्यय धातु का अर्थ	शम्	शमः
दर्शानि के लिए जोड़ा	सम्-हन्	संघातः
जाता है। प्रयोग	सम्-नि-अस्	संन्यासः
"भावे" है कहीं कहीं	सम्-मुह्	संमोहः
"कर्मणि" भी। इसके जुड़ने-	सम्-वद्	संवादम्
से पुंल्लिंग संज्ञा शब्द	सञ्ज्	संगः
बनते है।	सम्-आ-रभ्	समारम्भाः
	संम-अस्	समासेन
	सृज्	सर्गः
	स्पृश् (कर्मणि)	स्पर्शान्
	हृष्	हर्षम्

तालिका ३०

कृत् प्रत्यय का वर्णन	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
"खल" प्रत्यय का	सु-दुर्-दृश्	सुदुर्दशाम्
रूप "अ" है। यह		
कठिन और सरल,	सु.दुर्-लभ्	सुदुर्लभः
दुःखात्मक और सुखात्मक		
"भाव" दिखाने के	सु-दुस्	सुदुष्करम्
लिए जोड़ा जाता है।		
इसका प्रयोग है	सु-लभ्	सुलभः
"कर्मणि"		

कृत् प्रत्यय का वर्णन	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
		तालिका ३१
"क्तिन्" प्रत्यय का रूप	वि-अञ्ज्	व्यक्तयः
'ति' है और यह स्त्री-	शम्	शान्तिः
लिंग में लगाया जाता	सम्-सिध्	संसिद्धिये
है। प्रयोग "भावे" है	सिध्	सिद्धये
	स्था	स्थितिः
	स्मृ	स्मृतिः
	हा	हानिः
		तालिका ३२
"अथुच्" प्रत्यय का		
रूप "अथु" है और	टुवेपृ	वेपथुः
प्रत्ययान्त पुल्लिंग		
में होते हैं। प्रयोग "भावे" है		
		तालिका ३३
"अङ्" प्रत्यय का रूप	व्यथ्	व्यथा
"आ" है और यह	श्रध् धा	श्रद्धा
स्त्रीलिंग में आता है।	सम्-प्रति-स्था	संप्रतिष्ठा
प्रयोग 'भावे' है।	सेव्	सेवया
	स्पृह्	स्पृहा
	हिंस्	हिंसाम्
		तालिका ३४
"ष्ट्रन" प्रत्यय करण	शास्	शास्त्रम्
अर्थ में आता है। गीता		
में इसके कर्तरि और	शस्	शस्त्राणि
'करणे' प्रयोग हैं।		

कृत् प्रत्यय का वर्णन	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
		तालिका ३५
"अप्" प्रत्यय	सम्-ग्रह्	संग्रहेण
यह ऋकारान्त		
और उकारान्त धातुओं	सम्-भू	संभवः
में लगता है। प्रयोग		
"भावे" है		
		तालिका ३६
"ल्युट्" प्रत्यय का रूप	सम्-नि-अस्	संन्यसनात्
है "अन" । प्रयोग	स्था	स्थानम्
भावे, अधिकरणे व	स्पृश्	स्पर्शनम्
करणे है। ल्यट्		
प्रत्ययान्त शब्द		
गीता में नपुंसक लिंग		
में ही हैं।		
		तालिका ३७
"क्विप्" प्रत्यय		
प्रयोग "भावे" है	सम-पद्	संपत्
		तालिका ३८
'अच्' प्रत्यय का		
रूप है 'अ' । यह	सम्-शी	संशयः
इकारन्त धातुओं		
में जोड़ा जाता है।		
प्रयोग "भावे" है		

कृत् प्रत्यय का वर्णन	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
		तालिका ३९
'किः' प्रत्यय प्रयोग "कर्मणि" है	सम्-आधा	समाधौ
		तालिका ४०
"नन्" प्रत्यय प्रयोग "भावे" है	स्वप्	स्वप्नम्

२. (ख) वर्तमान कालिक कृत् प्रत्यय

अपूर्ण क्रिया द्योतक शब्दों को दर्शाने के लिए भी संस्कृत में दो प्रत्यय हैं "शतृ" और "शानच्" । अंग्रेजी में इन्हें "प्रेजेन्ट पार्टिसिपल" कहते हैं जैसे वह जा रहा है; वह गाते हुए आया। उदाहरणों के लिए देखिए तालिकाएं ४१ और ४२ ।

तालिका ४१

"शतृ" प्रत्यय का रूप "अत्" है। यह परस्मैपदी धातुओं के अनन्तर जोड़ा जाता है। 'शतृ' प्रत्ययान्त शब्द "ध्यायत्" की तरह चलते हैं :-

धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
अनु-चित्त्	अनुचिन्तयन्	उत्	उत्क्रामन्तम्
अनु-स्मृ	अनुस्मरन्	कथ्+णिच् = कथि	कथयन्तः
अभि-असूय्	अभ्यसूयन्तः	कृष्+णिच् = कर्शि	कर्षयन्तः
अश्	अश्नन्	कल्+णिच् = कलि	कलयताम्
आ-चर्	आचरन्: आचरतः	काङ्क्ष्	काङ्क्षन्तः

तालिका ४१

धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
कृ+णिच् = कारि	कारयन	नमस्+क्यच्	
कृत्+णिच् =	कीर्ति कीर्तयन्तः	= नमस्य्	नमस्यन्तः
कृ	कुर्वन्	नश्	नश्यत्सु
गम्	गच्छन्	निन्द्	निन्दन्तः
ग्रह्	गृह्णन्	नि-मिष्	निमिषन्
हन्	घ्नतः	परि-चिन्त्+णिच्	
चर्	चरन्, चरताम्	= परिचिन्ति	परिचिन्तयन्
चिन्त्+णिच् =	चिन्ति चिन्तयन्तः	पू	पवताम्
छल्+णिच् =	छलि छलयताम्	प्र-दृश् = पश्य्	प्रपश्यद्भिः
जागृ	जाग्रतः	प्र-लप्	प्रलपन्
ज्ञा = जा	जानन्	प्र-वद्	प्रवदताम्
जि+सन् =	जिगीष् जिगीषताम्	प्र-हस्	प्रहसन्
घ्रा = जिघ्र्	जिघ्रन्	बुध+णिच्	
ज्वल्	ज्वलद्भिः	= बोधि	बोधयन्तः
तप्	तपन्तम्	भ्रम्+णिच्	
स्था = तिष्ठ्	तिष्ठन्तम्	= भ्रामि	भ्रामयन्
त्यज्	त्यजन्	यज्	यजन्तः
दम् +णिच् =	दमि दमयताम्	यत्	यततः
द्विष्	द्विषतः	युज्	युञ्जन्तः
धृ+णिच् = धारि	धारयन्	वि-ज्ञा = जा	विजानतः
ध्यै	ध्यायतः ध्याय	वि-नश्	विनश्यत्सु

तालिका ४१

धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
वि-सीद्		श्वस्	श्वसन्
= विषीद्	विषीदन्	सम्-जन्+णिच्	
वि-सृज्	विसृजन्	= संजनि	संजनयन्
वि-अनु-नद+णिच्		सम्-दृश्	
= व्यनुनादि	व्यनुनादयन्	= पश्य्	संपश्यम्
वि-आ-हृ	व्याहरन्	सम्-यम्	संयमताम्
श्रु	शृण्वन् , शृण्वतः	अस्	सन्
		सम्-आ-चर्	समाचरन्

तालिका ४२

'शानच्' प्रत्यय का रूप "आन" है जो भ्वादि दिवादि, तुदादि और चुरादि गण् की धातुओं में "मान" हो जाता है। यह प्रत्यय आत्मनेपदी धातुओं में जोड़ा जाता है। शानच् प्रत्ययान्त शब्द "राम", "फल" और "विद्या" की तरह चलते हैं - क्रमशः पुंल्लिग, नपुंसकलिंग और स्त्रीलिंग में।

धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
आस्	आसीन, आसीनम्	प्र-ब्रू वच्	प्रोच्यमानम्
उद्-आस्	उदासीन	भुंज्	भुञ्जानम्
कृ	कुर्वाणः	युध्	युयुधानः
ग्रस	ग्रसमानः	वृत्	वर्तमानः
प्री+कर्मणि	प्रीयमाणाय	श्रध्+धा	श्रद्दधानाः
त्वर्	त्वरमाणाः	हन्	हन्यमाने

२.(ग) भविष्यत्कालिक कृत्-प्रत्यय

अंग्रेजी में इन्हें फ्यूचर पार्टिसिपल (future participle) कहते हैं और संस्कृत में इनके लिए वर्तमान् कालिक "शतृ" और शानच् प्रत्ययों का ही प्रयोग किया जाता है। इन प्रत्ययों को कभी-कभी 'ष्यत्' और 'ष्यमाण' भी कहते है। गीता में केवल निम्न उदाहरण आते हैं :

तालिका ४३

शतृ	भू+स्य	भविष्यताम्
	भू+स्य	भविष्याणि
		भविष्यन्ति
शानच्	युध्+स्य	योत्स्यमानान्

३.अन्य कृत् प्रत्यय

प्रत्यय का वर्णन	धातु शब्द	प्रत्यान्त शब्द
		तालिका ४४
"ण्वुल्" और 'तृच्' ये कर्त्तृ वाचक प्रत्यय हैं	अभि-असूय्	अभ्यसूयकाः
"ण्वुल" प्रत्यय का रूप है- 'अक'	नी	नायकाः
	पू	पावकः
	प्र-काश्	प्रकाशकम्
तृच् प्रत्यय		
	उप-दृश्	उपद्रष्टा
	कृ	कर्ता
	छिद्	छेत्ता
	दृश्	द्रष्टा
	धा	धाता

प्रत्यय का वर्णन	धातु शब्द	प्रत्यान्त शब्द
		तालिका ४४
तृच् प्रत्यय	परि- ज्ञा	परिज्ञाता
	भृ	भर्ता
	भुज	भेक्ता; भोक्तारम
	सम्-उद्-हृ	समुद्धर्ता
		तालिका ४५
कर्तृवाचक प्रत्यय		
"ल्युट्" रूप है 'अन्'	नश्+णिच् = नाशि	नाशनम्
	मुह्+णिच् = मोहि	मोहनम्
		तालिका ४६
कर्तृवाचक प्रत्यय		
"णिनि", रूप है "इन्"	आ-वृत्	आवर्तिनः
		तालिका ४७
कर्तृवाचक प्रत्यय	अर्ह्	अर्हाः
"अच्", रूप है 'अ'	क्षर्	क्षरः
	प्र-अन्	प्राणम्
	मन्द्	मन्दान्
	युध्	योधाः
		तालिका ४८
प्रत्यय "शतृ"	विद्+शतृ = वसु	विद्वान्
		तालिका ४९
प्रत्यय 'क'	बुध्	बुधः
		तालिका ५०
प्रत्यय "घिणुन्"	त्यज्	त्यागी

प्रत्यय का वर्णन	धातु शब्द	प्रत्यान्त शब्द
		तालिका ५१
प्रत्यय "डु"	प्र-भू	प्रभुः
	वि-भू	विभुः

(४) शील-धर्म साधुकारिता वाचक कृत् प्रत्यय

प्रत्यय का वर्णन	धातु शब्द	प्रत्यान्त शब्द
		तालिका ५२
प्रत्यय 'उ'	आ-रुह्+सन्	आरुरुक्षो
	कृ+सन्	
	= चिकीर्ष्	चिकीर्षुः
	ज्ञा+सन	
	= जिज्ञास्	जिज्ञासुः
	युध्-सन्	
	= युयुत्स्	युयुत्सवः
		तालिका ५३
प्रत्यय 'युच्'	ज्वल्	ज्वलनम्
	पू	पवनः
		तालिका ५४
प्रत्यय 'इष्णुच्'	प्र-भू	प्रभविष्णु

(५) कृदन्त प्रत्यय 'क्त' (कर्मणि प्रयोग)

तालिका ५५

धातुशब्द	प्रत्ययान्त शब्द	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
अनु-सम्-तन्	अनुसंततानि	दृश्+णिच्=दर्शि	दर्शितम्
अनु- इ	अन्विताः	दीप्	दीप्तम्
अप-आ-वृ	अपावृतम्	दृह्	दृढम्
अभि-धा-हि	अभिहिता	दिव्	द्यूतम्
अव-ज्ञा	अवज्ञातम्	नश्+णिच्=नाशि	नाशितम्
अहं-कृ	अहंकृत	नि-ग्रह्	निगृहीतानि
आ-ख्या	आख्यातम्	नि-बन्ध्	निबद्धः
आ-विश्	आविष्ट, आविष्टम्	नि-रुध्	निरुद्धम्
आ-श्रि	आश्रितः, आश्रितम्	नि-वृत्	निवृत्तानि
ब्रू =वच्	उक्तः, उक्तम्	निस्-चि	निश्चितम्
			निश्चिताः
उद्-शिष्	उच्छिष्टम्	नि-हन्	निहताः
उद्-आ-हृ	उदाहृतः, उदाहृतम्	परि-कीर्ति	परिकीर्तितः
उद्-यम्	उद्यताः	परि-आप्	पर्याप्तम्
ऊर्ज्+णिच् =ऊर्जि	ऊर्जितम्	परि-वस् =परिवस्	पर्युषितम्
ऋध्	ऋद्धम्	पू	पूताः
काङ्क्ष्	काङ्क्षितम्	प्रथ्	प्रथितः
कृ	कृतम्; कृतेन	प्र-दिश्	प्रदिष्टम्
गै=गा	गीतम्	प्र-दीप्	प्रदीप्तम्
चूर्ण	चूर्णितैः	प्र-युज्	प्रयुक्तः
जन् =जा	जातस्य	प्र-वृत्	प्रवृत्तः
जि	जितः		प्रवृत्ते
जृ	जीर्णानि	प्र-शंस्	प्रशस्ते
ज्ञा	ज्ञातेन	प्र-वच्	प्रोक्तः
तन्	ततम्	प्र-वे	प्रोतम्
तप्	तप्तम्	बन्ध्	बद्धाः

तालिका ५५

धातुशब्द	प्रत्ययान्त शब्द	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
मुह्-णिच्	मोहितम्	वि-भज्	विभक्तम्
	मोहिताः	वि-मुच्	विमुक्तः
युध्	युद्धम्	वि-शिष्	विशिष्टाः
लभ्	लब्धम्	वि-शुध्	विशुद्धया
वि-नि = यम्	विनियतम्	वि-धा	विहिताः
वि-निस्-चि	विनिश्चितैः		

तालिका ५६

(६) कृदन्त	प्रत्यय 'क्त'	(भावे प्रयोग)	
जीव्	जीवितेन	परि-क्लिश्	परिक्लिष्टम्

तालिका ५७

(७) कृदन्त प्रत्यय	'घञ' रूप	'अ' (भावे प्रयोग)	
अधि-कृ	अधिकारः	दम्	दमः
अभि-अस्	अभ्यासात् ,अभ्यासेन	दम्म्	दम्मः
अहं-कृ	अहंकारः, अहंकारम्	दम्भ्	दम्भः
	अहंकारात्	भुज्	भोगाः
आ-चर्	आचारः	दृप्	दर्प
आ-रभ्	आरम्भः	दुष्	दोषम्
क्रुध्	क्रोधः, क्रोधात्	द्विष्	द्वेषः
क्लिश्	क्लेशः	नाश्	नाशाय
घुष्	घोषः	नि-बन्ध्	निबन्धाय
त्यज्	त्यागः	नि-यम्	नियमम्

तालिका ५७

धातुशब्द	प्रत्ययान्त शब्द	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
निर्-दिश्	निर्देशः	वद्	वादः
नि-अस्	न्यासम्	वस्	वासः
परि-नम्	परिणामे	वि-कृ	विकारान्
परि-त्यज्	परित्यागः	वि-नश्	विनाशः,विनाशाय
प्र-काश्	प्रकाशः	वि-मोक्ष्	विमोक्षाय
प्र-नि-पत्	प्रणिपातेन	वि-सद्	विषादम्
प्रति-अव्-इ	प्रत्यवायः	वि-सृज्	विसर्गः
प्र-मद्	प्रमादः	वि-स्तृ	विस्तारम्
प्र-सञ्ज्	प्रसंगेन	विज्	वेगम्
प्र-सद्	प्रसादम्	कर्मणि प्रयोग	
बन्ध	बन्धम्	अभिमान्	अभिमानः
	बन्धात्	आ-हृ	आहारः
भू	भावः	कम्+णिच् =कामि	कामः
भद्	भेदम्	भुज्	भोगाः
लुभ्	लाभः	मन्त्र्	मन्त्रः
		युज्	योगः
		लभ्	लाभम्

तालिका ५८

कृदन्त प्रत्यय ल्युट् रूप "अन"

धातुओं में 'ल्युट्' प्रत्यय लगाने से नपुंसकलिंगी भाव वाचक शब्द बनते हैं :

अधि-स्था	अधिष्ठानम्	कृ	करणम्
अप-उह्	अपोहनम्	घ्रा	घ्राणम्
अभि-उद-स्था	अभ्युत्थानम्	जीव्	जीवनम्
इ	अयनेषु	ज्ञा	ज्ञानम्
		दा	दानम्

तालिका ५८

धातुशब्द	प्रत्ययान्त शब्द	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
ध्यै =ध्या	ध्यानम्	भुज्	भोजनम्
नि-धा	निधानम्	मृ	मरणात्
परि-धा	निधानम्	राध्	राधनम्
परि-त्रै = त्रा	परित्राणय	वच्	वचनम्
प्र-मा	प्रमाणम्	वि-ज्ञा	विज्ञानम्

तालिका ५९

कृदन्त प्रत्यय शानच्

आ-पृ =पूरि	आपूर्यमाणम्	कृ	क्रियमाणानि

तालिका ६०

प्रत्यय "क्तिन्" रूप "ति" (भावे प्रयोग) धातुओं में 'क्तिन्' प्रत्यय जोड़कर स्त्रीलिंगी भाववाचक शब्द बनाए जाते हैं।

आ-वृत्	आवृत्तिम्	नी	नीतिः
कृत्-विच् =कीर्ति	कीर्तिः	प्र-कृ	प्रकीर्त्या
क्षम्	क्षान्तिः	प्र-कृ (कर्मणि)	प्रकृतिः
गम्	गतिः	प्र-वृत्	प्रवृत्ति, प्रवृत्तिम्
ग्लै	ग्लानिः	प्री	प्रीतिः
तुष्	तुष्टिः	भज्	भक्तिः
तृप्	तृप्तिः	भू	भूतिः
दृश्	दृष्टिम्	मन्	मतिः
धृ	धृतिः	वि-भू	विभूतिम्
नि-वृत्	निवृत्तिम्		

तालिका ६१

धातुशब्द	प्रत्ययान्त शब्द	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
कृतन्त प्रत्यय 'अच्' रूप "अ"			
निस्-चि	निश्चयम् , निश्चयेन	भी	भयम्
प्र-जन्+णिच्	प्रजनः	भू	भव
प्र-नी	प्रणयेन	वि-जि	विजय
प्र-ली	प्रलयः	वि-स्मि	विस्मयः

तालिका ६२

कृदन्त प्रत्यय "अप्" प्रयोग भावे			
यह प्रत्यय "ऋकारान्त" और उकारान्त धातुओं में लगता है			
नि-ग्रह्	निग्रहः, निग्रहम्	वृष्	वर्षम्
परि-ग्रह्	परिग्रहम्	वश्	वशम्
प्र-नु	प्रणवः	विस्तृ	विस्तरः
प्र-भू	प्रभवः, प्रभवम्		
मद्	मदम्	आ-हृवे (अधिकारणे)	आहवे

तालिका ६३

कृदन्त प्रत्यय नङ् रूप न			
यज्-याच्-यत्-विच्छ-प्रच्छ धातुओं में "नङ्" प्रत्यय लगता है			
परि-प्रच्छ्	परिप्रश्नेन	यज्	यज्ञः
प्र-यत्	प्रयत्नात्		

तालिका ६४

धातुशब्द	प्रत्ययान्त शब्द	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
कृदन्त प्रत्यय 'ष्ट्रन्'			
यह प्रत्यय 'दाप्' आदि धातुओं में लगता है		पत्	पत्रम्

तालिका ६५

धातुशब्द	प्रत्ययान्त शब्द	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
कृदन्त प्रत्यय - इत्र			
यह प्रत्यय 'पुत्र' धातु में लगता है		पू	पवित्रम्

तालिका ६६

कृदन्त प्रत्यय "युच" रूप		("अन्")	
चित् =चेति (भावे)	चेतना	परि-देव् (भावे)	परिदेव
दुर-युध् (कर्मणि)	दुर्योधनः	भ-भावि (णिच्) (भावे)	भावना

तालिका ६७

कृदन्त प्रत्यय "खल्" रूप		("अ")	
दुर-आ-सद्	दुरासदम्	दुस्-पृ-पूरि (णिच्)	दुष्पूरम्
दुर्-नि-ग्रह्	दुर्निग्रहम्		
दुर-निर्-ईक्ष्	दुर्निरीक्ष्यम्	दुस्-प्र-आप्	दुष्प्रापः

तालिका ६८

धातुशब्द	प्रत्ययान्त शब्द	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द

प्रत्यय 'अङ्'

यह प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिंगी भाव वाचक शब्द बनते है

धातुशब्द	प्रत्ययान्त शब्द	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
उप-मा	उपमा	दय्	दया
कृप्	कृपया	नि-स्था	निष्ठा
क्षम्	क्षमा	पीड्+ (णिच्)पीडि =	पीडया
चिन्त+णिच्	चिन्ताम्	प्रति-स्था	प्रतिष्ठा
चेष्ट्	चेष्टा	प्र-भा	प्रभा
जॄ	जरा	भाष्	भाषा

तालिका ६९

कृदन्त प्रत्यय 'शः'

धातुशब्द	प्रत्ययान्त शब्द	धातु शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
इष्	इच्छा	कृ	क्रियाभिः

तालिका ७०

कृदन्त प्रत्यय "क्विप्"

'भ्राज्' आदि में यह प्रत्यय लगता है और यह समस्त लोप हो जाता है

धातुशब्द	प्रत्ययान्त शब्द
भाः	भाः

तालिका ७१

कृदन्त प्रत्यय 'क्यप्'

धातुशब्द	प्रत्ययान्त शब्द
यज्	इज्यया

१२. तद्धित प्रत्यय

ये प्रत्यय संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण के अन्त में जोड़े जाते हैं। इस प्रकार जो शब्द बनते हैं उनको तद्धितान्त शब्द कहते हैं। जैसे 'लड़का' से 'लड़कपन'। 'आप' से आपस। ये तद्धितान्त शब्द भी संज्ञा, विशेषण और सर्वनाम अथवा अव्यय होते हैं। हिन्दी भाषा के कुछ तद्धित प्रत्ययों पर एक नजर डाल लें तो संस्कृत भाषा में इनको समझने में थोड़ी सुविधा होगी।

(क) <u>तद्धित संज्ञा शब्दः</u>

१.	कर्तृ वाचक	पाठ	पाठक
		इतिहास	इतिहासकार
२.	भाव वाचक	पुरुष	पौरुष
		बन्धु + त्व	बन्धुत्व
		उत्तम + ता	उत्तमता
३.	अपत्य (वंश) वाचक	कुन्ती	कौन्तेय
		पाण्डु	पाण्डव
४.	ऊन (लघुरूप) वाचक	पुस्तक	पुस्तिका
५.	कारण वाचक	लेख	लेखनी
६.	अधिकार अथवा पदवी वाचक	द्वार	द्वारपाल
७.	वस्त्र वाचक	जांघ	जांघिया
८.	स्थान वाचक	ससुर	सुसराल
९.	समुदाय वाचक	कागज	कागजात
१०.	सम्बध वाचक	बहन	बहनोई
		ननद	ननदोई

(ख) तद्धित सर्दनाम शब्द

आप	आपस

(ग) तद्धित विशेषण शब्द

रंग	रंगीला
नीति	नैतिक
चाचा	चचेरा
वह	वैसा

(घ) तद्धित अव्यय शब्द

यह	यहां
जो	जिधर
वह	वहां
करीब	करीबन

आप देख रहे हैं, हिन्दी में तद्धित प्रत्यय लगने से शब्द में कुछ अधिक परिवर्तन नहीं होता। संस्कृत में प्रत्यय लगाने के विशेष नियम हैं। परन्तु, हम उन नियमों का उल्लेख न करके गीता में प्रयुक्त प्रत्यय इस प्रकार दे रहे हैं कि पाठक उनके नामों से जानकारी भर करलें और उनके जोड़ने से शब्द में जो परिवर्तन होता है उसे केवल देखलें। प्रत्ययान्त शब्द किन-किन नियमों के अनुसार बने हैं इसके लिए जिज्ञासु पाठक व्याकरण की सम्बन्धित पाठ्य पुस्तकों का अध्ययन करें।

गीता कोश में तद्धित प्रत्ययान्त शब्द उनके संकेत शब्दों के साथ दिए हैं। हम यहां निम्न तालिकाओं द्वारा ऐसे तद्धित प्रत्ययों से आप का परिचय भर करा रहे हैं। गीता में प्रयुक्त ऐसे प्रत्ययों की वर्णानुक्रमिक सूची के लिए अगला पृष्ठ देखिए।

तद्धित प्रत्ययों की वर्णानुक्रमिक सूची

	प्रत्यय का नाम	तालिका नम्बर		प्रत्यय का नाम	तालिका नम्बर
१.	अच्	१००	१९	ड्वट्	९७
२.	अञ्	९९	२०	ढक्	७८
३.	अण्	७२ (क) से (ङ)	२१	ण्य	८१
४.	आकिनिच्	८५	२२	तयप्	८९
५.	इतच्	७५	२३	तरप्	७६
६.	इनिठनौ	७९	२४	तल्	७३
७.	इमनिच्	९१	२५	त्व	७३
८.	इय	देखें 'घ'	२६	मतुप्	१०
९.	इयसुन	७६	२७	मयट्	८८
१०	इष्ठन्	९३	२८	मात्रच्	९४
११.	ईय	देखें 'छ'	२९	यक्	८४
१२.	एय	देखें 'ढक्'	३०	यत्	८२
१३	'घ'	८७	३१	वति	७४
१४	'छ'	७७	३२	वतुप्	१०२
१५	ञ्यः	९८	३३	विनि	८६
१६	ट्युल	९२	३४	शालच्	९५
१७	ठ्क	९६	३५	ष्यञ्	८३
१८	ठ्ञ	८०	३६	साति	९०

तालिका ७२ (क)

प्रत्यय 'अण्' (तस्येदम्–उससे सम्बन्धित अर्थ में)*

शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	शब्द	प्रत्यान्त शब्द
असुर	आसुरः ; आसुरम्	चन्द्रमस्	चान्द्रमसम्
तमस्	तामसः ; तामसाः	ईश्वर	ऐश्वरम्
पुरुष	पौरुषम्	मनस्	मानसम् ; मानसाः
अस्मद्+ममक्	मामका ; मामकम्	रजस्	राजसः; राजसाः, राजसम्
शरीर	शरीरम् ;		राजससस्य

तालिका ७२ (ख)

प्रत्यय 'अण्' (भावे– भावाचक अर्थ में)

ऋजु	आर्जवम्	मुनि	मौनम्
कुशल	कौशलम्	युवन्	यौवनम्
क्षत्र	क्षात्रम्	लघु	लाघवम्
मृदु	मार्दवम्	शुचि	शौचम्

तालिका ७२ (ग)

प्रत्यय 'अण्' (स्वार्थे – अपने अर्थ में)

ओषधि	औषधम्	शुचि	शौचम्

तालिक ७२ (घ)

प्रत्यय 'अण्' (अपत्ये (१) सन्तान अर्थ में)

पाण्डु	पाण्डव	भरत	भारत
पृथा	पार्थ	जह्नु	जाह्नवी
ब्रह्मन्	ब्राह्मणस्य, ब्राह्मणाः ब्राह्मणे	वसुदेव	वासुदेवः
दनु	दानवाः	वसु	वासवः

* प्रत्यय सहित शब्द पढ़ने के दो उदाहरण –

असुर तस्येदम् अण्– आसुरः
मुनि भावे अण्– मौनम्

तालिका ७२ (घ)

प्रत्यय 'अण्' (अपत्ये (२)- सम्बन्ध अर्थ में)

शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
देव	दैवः, दैवम्	मित्र	मैत्रः

तालिका ७२ (ङ)

प्रत्यय 'अण्' ('वाला' अर्थ में)

त्रिविधा	त्रैविधाः	मृगशीर्ष	मार्गशीर्षः
ब्रह्मन्	ब्राह्मी	मित्र	मैत्रः
भिक्षा	भैक्षम्		

तालिका ७३

प्रत्यय (१) 'त्व' और (२) 'तल्' (भाव अर्थ में)

अनादि (१)	अनादित्वात्	चञ्चल	चञ्चलत्वात्
अमृत	अमृतत्वाय	निर्गुण	निर्गुणत्वात्
अलोलुप	अलोलुप्त्वम्	निर्मल	निर्मलत्वात्
एक	एकत्वेन (एकत्वम्)	सम	समत्वम्
कर्तृ	कर्तृत्वम्	सम् (२)	समता

नोट 'त्व' प्रत्यायान्त शब्द नपुंसकलिंगवाची और 'तल्' प्रत्यायान्त शब्द स्त्रीलिंगवाची होते हैं ।

तालिका ७४

प्रत्यय 'वति' स्यात्, यतुल्यं (अर्थ में)

आदित्य	आदित्यवत्	उदासीन	उदासीनवत्
आश्चर्य	आश्चर्यवत्	कृत्स्न	कृत्सनवत्
		तद्	तद्वत

तालिका ७५

प्रत्यय	'इतच्' अस्य संजातम्-उससे उत्पन्न (अर्थ में)		
शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
अध्यात्म संज्ञा	अध्यात्म संज्ञितम्	योगसंज्ञा	योगसंज्ञितम्
कर्म संज्ञा	कर्म संज्ञितः	पुष्प	पुष्पिताम्

तालिका ७६

प्रत्यय (१) 'तरप्' (२) 'इयसुन' दो में से एक को अतिशय कराने वाले (अर्थ में)

दुःख (१)	दुःखतरम्	अणु (२)	अणीयांसम्
दुर्लभ (१)	दुर्लभतरम्	गुरु (२)	गरीयः (गरीयसे)
		प्रशस्य = श्र (२)	श्रेयः (श्रेयान्)

तालिका ७७

प्रत्यय 'छ' = ई

अस्मद्	अस्मदीयैः	तदर्थ	तदर्थीयम्

तालिका ७८

प्रत्यय ढक् = एय (स्त्री प्रत्ययान्तों में-अपत्य अर्थ में)

द्रौपदी	द्रौपदेयाः	कुन्ती	कौन्तेय (कौन्तेयः)
विनता	वैनतेयः	वृष्णि	वार्ष्णेय

तालिका ७९

प्रत्यय "इनिठनौ"

(इन् और 'ठन' ये मत्वर्थीय प्रत्यय हैं। हिन्दी में 'वान्' 'वाला' 'पाल'

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आदि अर्थ को सूचित करने वाले । गीता में'इन्' के ही उदाहरण उपलब्ध हैं।

शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
आगमापाय	आगमापायिनः	क्षेत्र	क्षेत्री
कर्मसंग	कर्मसंगिनाम् ,	चक्र	चक्रिणम्
	कर्मसंगिषु	ज्ञान	ज्ञानिनः
कर्मन्	कर्मिभ्यः	दीर्घसूत्र	दीर्घसूत्री
किरीट	किरीटी,	दुष्कृत	दुष्कृतिनः
	किरीटिनम्	मौन	मौनी
क्षमा	क्षमी		

तालिका ८०

प्रत्यय 'ठञ्' (इक) कालवाची (अर्थ में)

अत्यन्त	आत्यन्तिकम्	पूर्वदेह	पौर्वदैहिकम्
एकान्त	ऐकान्तिकस्य		

तालिक ८१

प्रत्यय 'ण्य' (य) - सन्तान अर्थ में

अदिति	आदित्यान् , आदित्यानाम्		

तालिका ८२

प्रत्यय 'यत्' (वाला अर्थ में)

आदि	आद्यम्	न्याय	न्याय्यम्
तुला	तुल्य	मुख	मुख्यम्
धर्म	धर्म्यम् , धर्म्यात्	रहस	रहस्यम्

तालिका ८३

प्रत्यय 'ष्यञ्' (य)- भाव अर्थ में

शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
अधिपति	आधिपत्यम्	पुरुष	पारुष्यम्
क्लीब	क्लैब्यम्	महात्मन्	महात्म्यम्
चतुर्वर्ण	चातुर्वर्ण्यम्	विराग	वैराग्यम्
त्रिगुण	त्रैगुण्य		वैराग्येण
त्रिलोक	त्रैलोक्य	शूर	शौर्यम्
दक्ष	दाक्ष्यम्	विश्	वैश्यः
निष्कर्मन्	नैष्कर्म्यम्	शिवि	शैव्यः

तालिका ८४

प्रत्यय 'यक्' (भाव अर्थ में)

आस्तिक	आस्तिक्यम्	राजन्	राज्यम्
			राज्येन

तालिका ८५

प्रत्यय 'आकिनिच्' (असहाय अर्थ में)

एक	एकाकी

तालिका ८६

प्रत्यय 'विनि (वाला अर्थ में)

तेजस्	तेजस्विनाम्	तपस्	तपस्विभ्यः
मेधा	मेधावी		

तालिका ८७

प्रत्यय 'घ' = इय (सम्बन्धित अर्थ में)

शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
क्षत्र	क्षत्रियस्य		

तालिक ८८

प्रत्यय 'मयट्' (परिपूर्ण अर्थ में)

शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
तेजस्	तेजोमयम्	अस्मद्	मन्मयाः
सर्वाशचर्य	सर्वाश्चर्यमयम्		

तालिका ८९

प्रत्यय 'तयप्' (वाला अर्थ में)

शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
त्रि	त्रयम्		

तालिका ९०

प्रत्यय 'साति'

शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
भस्मन्	भस्मसात्		

तालिका ९१

प्रत्यय 'इमनिच्'

शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
महत्	महिमानम्		

तालिका १२

प्रत्यय 'ट्युल' = तुट्

शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
सना	सनातनः		

तालिका १३

प्रत्यय 'इष्ठन्' विशोषण की उत्तमावस्था)

प्रशस्य = श्र	श्रेष्ठ

तालिका १४

प्रत्यय	मात्रच्
निमित्त	निमित्तमात्रम्

तालिका १५

प्रत्यय	'शालच्"
वि	विशालम्

तालिका १६

प्रत्यय	'ठक्'
निष्कृति	नैष्कृतिकः

तालिका १७

प्रत्यय	'डट्'
पञ्चन्	पञ्चमम्

तालिका ९८

प्रत्यय 'ञ्यः'

शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
पञ्चजन	पाञ्चजन्यम्		

तालिका ९९

प्रत्यय 'अञ्' (सन्तान अर्थ में)

शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
पुत्र	पौत्राः	मनु	मानुषम् , मानुषे
मनु	मानवः		

तालिका १००

प्रत्यय अच्

शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
पुण्य	पुण्यः	पाप	पापाः

तालिका १०१

प्रत्ययः 'मतुप्'

शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
अंश	अंशुमान्	अभिजन	अभिजनवान्

तालिका १०२

प्रत्यय 'वतुप्'

शब्द	प्रत्ययान्त शब्द	शब्द	प्रत्ययान्त शब्द
एतद्	एतावत्	ज्ञान	ज्ञानवत्ताम्

१३. सन्धि विचार

'सन्धि' शब्द का अर्थ है 'मेल' । व्याकरण में दो शब्दों के मेल को सन्धि कहते हैं।

जब दो शब्द पास-पास आते हैं और उच्चारण की सुविधा के लिए उन्हें मिला दिया जाता है, तो उनमें सन्धि हो जाती है। वास्तव में, साधारण नियम यह है कि यदि दोनों शब्दों का एक साथ बार-बार उच्चारण किया जाए तो उनमें जो अनायास परिवर्तन हो जाता है वही सन्धि नियमों का आधार है। ऐसा हर भाषा में होता है- अंग्रेजी में भी इन्-प्युर, इन्-पर्फेक्ट क्रमशः इम्प्युर, इम्पर्फेक्ट हो जाते हैं।

ऐसे पास-पास आने वाले दो शब्दों में से पहले शब्द का अन्तिम वर्ण "पूर्व वर्ण" कहलाता है और दूसरे शब्द का प्रथम वर्ण "उत्तर वर्ण" या "पर वर्ण" और इन्हीं दोनों वर्णों में सन्धि होती है। हिन्दी और संस्कृत में ऐसे मिलने वाले वर्णों के लिए कई नियम हैं जो तीन भाग में विभाजित हैं : स्वर-सन्धि, व्यंजन सन्धि और विसर्ग सन्धि । इस विषय में आगे पढ़ने से पहले हमें कुछ पारिभाषिक शब्दों को जान लेना चाहिए ।

१. आगम

जब कोई अक्षर किसी अक्षर के पास आकर बैठ जाता है तो उसे 'आगम' कहते हैं। जैसे वृक्ष + छाया = वृक्षच्छाया । यहां 'च्' का आगम हुआ है।

२. आदेश

जब कोई अक्षर किसी अक्षर को हटाकर बैठता है तो वह 'आदेश' कहलाता है । जैसे 'यदि' + अपि = यद्यपि । यहां

'इ' के स्थान पर 'य्' का आदेश हुआ है। इसे आदिष्ट 'य्' भी कहते हैं।

३. प्रातिपदिक

अव्यय, धातु तथा प्रत्यय को छोड़कर सभी अर्थयुक्त शब्द विभक्तियां लगने से पहले प्रातिपदिक कहलाते हैं। जैसे राम, विद्या।

४. हल्

व्यंजन 'हल्' कहलाते हैं।

६. उपधा

किसी शब्द के अन्तिम वर्ण से पूर्व के वर्ण को उपधा कहते हैं। जैसे चिन्त् में न्।

७. अवग्रह

लुप्त 'अ' जिसका उच्चारण नहीं होता, उसे चिन्ह (ऽ) से अंकित किया जाता है जिसे 'अवग्रह' कहते है

१३.१ स्वर अथवा अच् सन्धि - नियम

स्वर तीन भाग में विभाजित हैं -

ह्रस्व -	अ इ उ ऋ ऌ
दीर्घ -	आ ई ऊ ॠ ॡ
मिश्रित अथवा संयुक्त -	ए ऐ ओ औ

ह्रस्व स्वर के उच्चारण में एक मात्रा का समय लगता है, दीर्घ में दो और जिसमें इससे अधिक समय लगे, उसे प्लुत स्वर कहते हैं। यह सम्बोधन के प्रयोग में आता है।

दो स्वरों के मिलने से अर्थात् पूर्व और पर दोनों वर्णों में स्वर होने पर जो सन्धि होती है उसे स्वर सन्धि कहते हैं। गीता में इसके छः प्रकार के उदाहरण मिलते हैं :

(i) दीर्घ संधि-

यदि ह्रस्व अथवा दीर्घ स्वर के अनन्तर सवर्ण ह्रस्व अथवा दीर्घ स्वर आवे तो दोनों के स्थान में 'सवर्ण-दीर्घ स्वर होता है। जैसे -

(क)	कार्य + अकार्ये	=	कार्याकार्ये
	भय + अभये	=	भयाभये
	फल + आकांक्षी	=	फलाकांक्षी
(ख)	सर्वाणि + इन्द्रिय कर्माणि	=	सर्वाणीन्द्रियकर्माणि
	अति + इन्द्रियम्	=	अतीन्द्रियम्
	उत्क्रामति + ईश्वरः	=	उत्क्रामतीश्वरः
(ग)	बहु + उदरम्	=	बहूदरम्
	तु + उद्देशतः	=	तूद्देशतः

(ii) गुण सन्धि–

यह असवर्ण स्वरों की सन्धि है जो चार प्रकार की हो सकती है :-

(क)	अ आ + इ ई	=	ए
	योग + ईश्वरः	=	योगेश्वरः
	एव + इतरः	=	एवेतरः
	एक्त्र + इह	=	एकेह
(ख)	अ आ + उ ऊ	=	ओ
	रथ + उपस्थे	=	रथोपस्थे
	श्रद्धया + उपेतः	=	श्रद्धयोपेतः
(ग)	अ आ + ऋ	=	अर्
	पुरुष + ऋषभ	=	पुरुर्षभ
	देव + ऋषिः	=	देवर्षिः
(घ)	अ आ + ऌ	=	अल्

इसके उदाहरण गीता में नहीं हैं

(iii) वृद्धि सन्धि

यह संयुक्त स्वरों की सन्धि है और तीन प्रकार की हो सकती हैं :

(क)	अ आ + ए ऐ	=	ऐ
	न + एषम्	=	नैषम्
	ब्रह्म + एव	=	ब्रह्मैव
(ख)	अ आ + ओ औ	=	औ
	उत्तम + ओजाः	=	उत्तमौजाः
(ग)	अ आ + ऋ	=	आर्

इसके उदाहरण गीता में नहीं हैं

(iv) <u>यण् सन्धि</u>

इस सन्धि में ह्रस्व और दीर्घ स्वरों का जिस प्रकार परिवर्तन होता है, वह नीचे देखिए :

(क)	इ ई + असमान स्वर	=	य्
	गच्छन्ति + अनामयम्	=	गच्छन्त्यनामयम्
	पराणि + आहुः	=	पराण्याहुः
	अपरि + आप्तम्	=	अपर्याप्तम्
(ख)	उ ऊ + असमान स्वर	=	व्
	कर्मसु + अनुषज्जते	=	कर्मस्वनुषज्जते
(ग)	ऋ ॠ + असमानस्वर	=	र्
	कर्तृ + ए	=	कर्त्रे
	जागृ + अति	=	जाग्रति
	जागृ + अतः	=	जाग्रतः

(v) अयादि संधि

इस सन्धि में निम्न संयुक्त स्वरों का परिवर्तन जिस प्रकार होता है, कोई भी स्वर परे होने से, वह नीचे देखिए :

(क) ए + कोई भी स्वर = अय्

राजर्षे + अस् = राजर्षयः

(ख) ऐ + कोई भी स्वर = आय्

नै + अकाः = न् + आय् काः = नायकाः

(ग) ओ + कोई भी स्वर = अव्

मनो + ए = मन् + अव् + ए = मनवे

(घ) औ + कोई भी स्वर = आव्

द्वौ + इमौ = द्व + आव्+ इमौ = द्वाविमौ

(vi) पूर्व रूप सन्धि

वास्तव में, यह अयादि सन्धि का अपवाद है। पदान्त 'ए' 'ओ' से आगे यदि ह्रस्व 'अ' आए तो 'अ' का लोप हो जाता है जिसे अवग्रह चिन्ह (S) द्वारा दर्शाया जाता है :

प्रयाणकाले + अपि = प्रयाणकालेऽपि

ते + अभिहिता = तेऽभिहिता

तुमुलो + अभवत् = तुमुलोऽभवत्

उपर्युक्त छः नियमों के अतिरिक्त दो और सन्धि नियम हैं पर उनके उदाहरण गीता में नहीं मिलते :

(i) पररूप सन्धि – यह वृद्धि सन्धि का अपवाद हैं

(ii) प्रकृति भाव सन्धि – यह सन्धि का ही अपवाद है

आइए व्यंजन सन्धि पढ़ने से पहले एक बार फिर स्वर सन्धि के विभाजनों को दोहरा लें :-

(१) दीर्घ सन्धि यह सवर्ण स्वरों – ह्रस्व अथवा दीर्घ – की सन्धि है।

(२) गुण सन्धि यह असवर्ण स्वरों- ह्रस्व अथवा दीर्घ-की सन्धि है।

(३) वृद्धि सन्धि यह 'अ' 'आ' की संयुक्त अथवा मिश्रित स्वरों के साथ सन्धि है।

(४) यण् सन्धि यह 'अ' 'आ' को छोड़कर अन्य स्वरों – ह्रस्व अथवा दीर्घ – की असमान स्वरों के साथ सन्धि है।

(५) अयादि सन्धि यह संयुक्त स्वर-ह्रस्व अथवा दीर्घ-की किसी भी स्वर के साथ सन्धि है।

(६) पूर्वरूप सन्धि यह अयादि सन्धिका अपवाद है, अथवा लुप्त अकार की सन्धि है।

१३.२ व्यंजन अथवा हल् सन्धि – प्रारम्भिक बातें

जब किसी व्यंजन वर्ण के परे कोई स्वर या व्यंजन हो तो उनके मेल को व्यंजन या हल् सन्धि कहते हैं। इसके नियम अनेक प्रकार के और बहुत ही पेचीदे हैं। हम इन्हें गीता से उदाहरण दे देकर समझा रहे है, आप इनका प्रति दिन धीरे-धीरे अध्ययन करें, कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए परन्तु, पहले कुछ प्रारम्भिक बातें।

व्यंजनो को निम्नवर्गों में विभाजित किया गया है :-

क वर्ग	क ख ग घ ङ	(कु)[१]
च वर्ग	च छ ज झ ञ	(चु)
ट वर्ग	ट ठ ड ढ ण	(टु)
त वर्ग	त थ द ध न	(तु)
प वर्ग	प फ ब भ म	(पु)
अन्तःस्थ	य र ल व	
ऊष्म	श ष स ह	
अनुस्वार	ं	
अनुनासिक	ँ	
विसर्ग	:	

१ "कुचुटुतुपु" उदित् कहलाते हैं और क्रमशः अपने-अपने वर्ग के वाचक है। प्रत्येक उदित् के पंचम वर्ण अर्थात् ङञणनम को अनुनासिक भी कहते है।

आगे व्यंजनों का जो प्रविभाजन हुआ है उसे निम्न तालिका में देखिए। वास्तव में, ये प्रत्याहारों के नाम हैं जो पाणिनि के १४ सूत्रों पर आधारित हैं। आप इन सूत्रों को अपनी मेज पर शीशे के नीचे रखिए, समय-समय पर देखते रहिए। इनकी सहायता से आप स्वयं कोई भी प्रत्याहार बना सकेंगे जैसा हम आगे बतला रहे हैं, ध्यान रहे, 'प्रत्याहार' ऐसे स्वर-व्यंजनों के समूह हैं जिनका सन्धि नियमों के अनुसार एक सा व्यवहार होता है :

प्रत्याहार तालिका – १

व्यंजन

झल् — अन्तःस्थ और अनुनासिक व्यंजनों को छोड़कर कोई भी व्यंजन झल् के अन्तर्गत आता है। ऐसे व्यंजनों को "वर्गीय १,२,३,४ तथा ऊष्म" भी कह सकते हैं।

झश् — किसी वर्ग का तृतीय अथवा चतुर्थ वर्ण। ऐऐ व्यंजन "वर्गीय ३,४" होते हैं।

झय् — झल् के सब व्यंजन ऊष्म वर्ण को छोड़कर, अर्थात् वर्गीय १,२,३,४।

जश् — किसी वर्ग का तृतीय वर्ण अर्थात् वर्गीय ३

खर् — कुचुटुतुपु के प्रथम दो वर्ण, अर्थात् वर्गीय १,२।

चर् — कुचुटुतुपु का प्रथम वर्ण अर्थात् वर्गीय १

यर् — ह को छोड़कर कोई भी व्यंजन

यय् — ऊष्म को छोड़कर कोई भी व्यंजन

पाणिनि के १४ सूत्र जो माहेश्वर कहे जाते हैं इस प्रकार हैं –

१.	अ इ उ ण्	८.	झ भ ञ्
२.	ऋ लृ क्	९.	घ ढ ध ष
३.	ए ओ ङ्	१०.	ज ब ग ड द श्
४.	ऐ औ च्	११.	ख फ छ ठ थ च ट त व्
५.	ह य व र ट्	१२.	क प य्
६.	ल ण्	१३.	श ष स र्
७.	ञ म ङ ण न म्	१४.	ह ल्

पहले चार सूत्रों में जो 'अ' से 'च' तक हैं, स्वर हैं और बाकी के सूत्रों में जो 'ह्' से 'ल' तक हैं, व्यंजन हैं। अतः स्वरों और व्यंजनों को क्रम से 'अच्' और हल् भी कहते हैं।

अब देखिए, सूत्रों को ध्यान में रखते हुए कि निम्नलिखित प्रत्याहारों में कौन-कौन अक्षर आते हैं :–

अक् : अ इ उ ऋ ऌ

यण् : य व र ल

'अक्' प्रत्याहार सूत्र १ और २ से बना है और यण् ५ और ६ से। प्रत्येक सूत्र के अक्षर गिनते समय अन्तिम अक्षर छोड़ दिया जाता है। ये इत् संज्ञक हैं और इनका प्रयोग नहीं किया जाता। झल् जैसे बड़े-बड़े प्रत्याहार बनाने के लिए हमारा सुझाव है कि आप सम्पूर्ण व्यंजन लिख लें :–

(क)	(ख)	(ग)	(घ)	ङ	(त)	(थ)	(द)	(ध)	न
(च)	(छ)	(ज)	(झ)	ञ	(प)	(फ)	(ब)	(भ)	म
(ट)	(ठ)	(ड)	(ढ)	ण	य	र	ल	व	
					(श)	(ष)	(स)	(ह)	

और सूत्र ८ (यहां 'झ' आया है) से सूत्र १४ तक (यहां ल् है) में जितने अक्षर आए हैं उनपर(लगाइए। ऐसे चिन्ह लगाने के बाद आप देखेंगे कि झल् प्रत्याहार के अन्तर्गत् वही अक्षर आते है जो हमने ऊपर प्रत्याहार तालिका में बतलाए हैं। ऐसे ही चिन्ह लगा कर आप 'झश्' (सूत्र ८ से १० तक) और 'जश्' (सूत्र १०) प्रत्याहारों में आने वाले अक्षरों को भी तालिका से मिला सकते हैं। ऐसे सब अक्षरों पर जो किसी प्रत्याहर में आतें हैं एक सन्धि नियम लागू होता है, जैसा अब आप आगे पढ़ेंगे। पर मुख्य-मुख्य प्रत्याहारों में कौन-कौन व्यंजन है, यह सदा ध्यान में रखना चाहिए। इसके लिए निम्न तालिका उपयोगी सिद्ध होगी।

प्रत्याहार तालिका - २

प्रत्याहार						
	चर्	में	केवल	वर्गीय	१	हैं
	खर्	"	"	"	१,२	हैं
	जश्	"	"	"	३	हैं
	झश्	"	"	"	३ ४	हैं
	झय्	"	"	"	१२३४	हैं
	झल्	"	"	"	१२३४	और ऊष्म हैं
	यर्	"			ह को छोड़कर कोई भी व्यंजन	
	यय्	"		वर्गीय १२३४५ हैं ऊष्म को छोड़कर कर;		
	हश	"		वर्गीय ३ ४ ५, अन्तःस्थ और ह;		
	अश्			वे सभी अक्षर जो हश् प्रत्याहार में आते हैं और स्वर		
	अट्			स्वर और ह य व र		

१३ .३ व्यंजन सन्धि-नियम

व्यंजन सन्धि के नियम जिनका गीता में प्रयोग हुआ है, उदाहरणों सहित हम नीचे दे रहे है :-

१ स्तोः श्चुना श्चुः ८/४/४० *

जब 'सकार-तवर्ग,' 'शकार-चवर्ग' के योग में आते हैं तो वे 'शकार-च वर्ग हो जाते हैं, जैसा नीचे चार्ट में दिखाया है :

१ जब सकार- तवर्ग	२ शकार-चवर्ग के योग में आते हैं	३ तो वे शकार-चवर्ग हो जाते हैं
स्	श्	श्
त्	च्	च्
थ्	छ्	छ्
द्	ज्	ज्
ध्	झ्	झ्
न्	ञ्	ञ्

* यह निर्देश पाणिनि के ग्रन्थ अष्टाध्यायी का है- आठवां अध्याय । चौथा पद । चालीसवां सूत्र । इस ग्रन्थ में ४००० सूत्र और आठ अध्याय हैं । मैक्समूलर ने पाणिनी का समय ३५० वर्ष ई. पू. निश्चित किया है ।

अर्थात्, जब कालम (१) के वर्ण के बाद कालम (२) के वर्ण क्रम से आते हैं तो वे कालम (२) का ही रूप ले लेते है जैसा कालम (३) में दिखलाया है। इस नियम के अपवाद भी हैं जो इच्छुक पाठक व्याकरण की किसी प्रामाणिक पुस्तक में देख सक्ते हैं। अब गीता में दिए उदाहरणों को दखिए :-

(i)	निस् + चरति	=	निश्चरति
	मनस् + चञ्चलम्	=	मनश्चञ्चलम्
	कस् + चन	=	कश्चन
(ii)	कत् + चित्	=	कच्चित्
(iii)	यद् + ज्ञात्वा	=	यज् ज्ञात्त्वा
(iv)	युन् + जीत	=	युञ्जीत

२. ष्टुना ष्टु : ८/४/४१

जब 'सकार-तवर्ग,' 'ष्कार-टवर्ग' के योग में आते हैं तो वे 'ष्कार्-ट्वर्ग हो जाते हैं जैसा नीचे चार्ट में दिखाया है, :-

१	२	३
जब सकार-तवर्ग	ष्कार-खर्ग के योग में आते है	तो ष्कार-टवर्ग हो जाते हैं
स्	ष्	ष्
त्	ट्	ट्
थ्	ठ्	ठ्

द्	ड्	ड्
ध्	ढ्	ढ्
न्	ण्	ण्

कई बार सन्धि सम्पूर्ण होने से पहले एक से अधिक सूत्र सक्रिय हो जाते हैं जैसा आप नीचे दिए उदाहरणों में देख सकते हैं; हम प्रत्येक सूत्र का वर्णन करके अपने पाठकों को संस्कृत व्याकरण की गहराइयों में अभी नहीं डालना चाहते :

(१)	सृज् + (क्त्वा) त्वा	=	सृष् + त्वा
		=	सृष्ट्वा
(२)	प्रवेश् + तुम्	=	प्रवेष् + तुम्
		=	प्रवेष्टुम्
(३)	प्रनश् + तः	=	प्रनष् + तः
		=	प्रनष् + टः
		=	प्रनष्टः
(४)	दृश् + तः	=	दृष् + तः
		=	दृष् + टः
		=	दृष्टः

३ झलां जश् झशि ८/४/५३

जब 'झल्' व्यंजन के उपरान्त 'झश्' (वर्गीय ३,४) आता है तो 'झल्, 'जश्' (वर्गीय ३) में बदल जाता है :-

(१)	लभ् + ध्वा	=	लब्ध्वा
(२)	बोध् + धव्यं	=	बोद् + धव्यं = बोद्धव्यं
(३)	आदित्यवत् + ज्ञानम्	=	आदित्यवद् + ज्ञानम्
	ऊपर १ के अनुसार	=	आदित्यवज्ज्ञानम्

४ झलां जशोऽन्ते ८/२/३९

पदान्त में 'झल्' के स्थान में 'जश्' (वर्गीय ३) हो जाता है :-

प्रसिध्येत् + अकर्मणः = प्रसिध्येद् + अकर्मणः

= प्रसिद्ध्येदकर्मणः

५ यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८/४/४५

यदि 'यर्' के बाद कोई अनुनासिक वर्ण का योग हो, तो 'यर्' व्यंजन् के स्थान में उसी वर्ग वाला अनुनासिक वर्ण हो जाता है - विकल्प से।

जगत् + निवास = जगन्निवास

षद् + मासा = षण्मासा

६ खरि च ८/४/५५

यदि झल् व्यंजन के बाद 'खर्' (वर्गीय १.२) हो तो वह 'चर्' (वर्गीय १) हो जाता है :-

छिद् + त्वा = छित्तवा

तद् + कुरुष्वः = तत्कुरुष्व

हृद् + स्थम् = हृत्स्थम्

७ झषस्तथोर्धोऽधः ८/२/४०

यदि 'झष्' (वर्गीय ३,४) से परे 'त्' 'थ्' हो तो ये 'ध्' हो जाते है :-

बोध् + तव्यम् = बोध् + ध्व्यम्
= बोद्धव्यम्

रुध् + (क) त्वा = रुध् + ध्वा
= रुद्ध्वा

बुध् + (क्तिन्) तिः = बुध् + धिः
= बुद्धिः

८ झयो होऽन्यतरस्याम् ८/४/६२

'झय्' से परे 'ह्' के स्थान पर पूर्व सवर्ण हो जाता है, विकल्प से :

(१) धर्म्यात् + हि = धर्म्यात् + धि
देखिए ऊपर ३ = धर्म्याद् + धि
= धर्म्याद्धि

(२) एतत् + हि = एतत् + धि
देखिए ऊपर ३ = एतद् + धि
= एतद्धि

९ तोर्लि ८/४/६०

'त' वर्ग के बाद लकार होने पर ल् हो जाता है :-

(१) श्रुतिमत् + लोके = श्रुतिमल्लोके

(२) श्रद्धावान् + लभते = श्रद्धावांल्लभते

(न् के स्थान अनुनासिक 'ल्' हुआ है)

(३) शुभान् + लोकान् = शुभांल्लोकान्

यहां भी न् के स्थान पर अनुनासिक 'ल' हुआ है

१० चोः कु ८/२/३०

झल् परे रहने पर अथवा पदान्त में विद्यमान् 'चवर्ग' के स्थान पर कवर्ग होता है :

मुच् + (क्तः) तः = मुक्तः

११ वावसाने ८/४/५६

पदान्त में 'झलों' के स्थान पर विकल्प से चर् हो जाता है :

सु हृद् = सुहृत्

१२ षढोः कः सि ८/२/४१

'स' परे रहने पर 'ष' और 'ढ' के स्थान पर 'क' हो जाता है :

विनंश् + ष्यसि

सूत्र ८/२/३६ के अनुसार 'श्' को 'ष्'

विनंष् + ष्यसि = विनंक् + ष्यसि

= विनंक्ष्यसि

१३ मोऽनुस्वारः ८/३/२३

पदान्त 'म्' के बाद यदि कोई व्यंजन हो तो 'म्' के स्थान में अनुस्वार हो जाता है :

(१) सम् + जनयन् = संजनयन् (सञ्जनयन्)

(२) धनम् + जयः = धनंजयः (धनञ्जयः)

(३) सम् + करः = संकरः

१४ नश्चापदान्तस्य झलि ८/३/२४

अपदान्त नकार और मकार को अनुस्वार होता है, झल् परे होने पर :

(१) वासान् + सि = वासांसि

(२) रक्षान् + सि = रक्षांसि

१५ अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ८/४/५८

यदि अनुस्वार के परे यय् हो तो परसवर्ण हो जाता है अर्थात् अनुस्वार के स्थान में उस वर्ग का पंचम-वर्ण हो जाता है, जिस वर्ग का व्यंजन वर्ण अनुस्वार के बाद आता है :

शाम् + तिः = शांति

भुञ्ज् + ष्व = भुंक् + ष्व = भुङ्क्ष्व

= भुंक्ष्व

१६ वा पदान्तस्य ८/४/५९

यदि अनुस्वार किसी पद के अन्त में रहे तो ऊपर वाला नियम (१५) विकल्प से लगता है। ये दोनों नियम एक प्रकार के हैं- ऊपर वाला नियम अपदान्त म् के लिए है और यह पदान्त म् के लिए।

शाम् + तः = शान्तः

धनम् + जय = धनंजय/धनञ्जय

परम् + तप = परंतप/परन्तप

१७ शश्छोऽटि ८/४/६३

'झय्' से परे श् के स्थान में 'छ' होता है, विकल्प से अट् परे होने पर।

(१) एतत् श्रुत्वा = एतच् छ्रुत्वा (नियम १)

= एतच्छ्रुत्वा

(२) अत्युत् + श्रितम् = अत्युच् + श्रितम् (नियम १)

= अत्युच्छ्रितम्

(३) उत् + शिष्टम् = उच् + शिष्टम्

= उच्छिष्टम्

१८ ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् ८/३/३२

ह्रस्व स्वर से परे यदि पदान्त 'ङ' 'ण' 'न्' हो और परे कोई भी स्वर हो तो ङ् ण् न् का आगम होकर, द्वित्व हो जाता है

(१) कुर्वन् + अपि = कुर्वन् + न् + अपि

= कुर्वन्नपि

(२) सन् + अव्ययात्मा = सन् + न् + अव्ययात्मा

= सन्नव्ययात्मना ।

१९ नश्छव्य प्रशान् ८/३/७

पदान्त न् से परे यदि (i) च, छ, (ii) ट, ठ, अथवा (iii) त, थ हो, तो न् के स्थान पर अनुस्वार अथवा आनुनासिक हो जाता है और क्रमशः (i) श, (ii) ष् , अथवा (iii) स् जुड़ जाता है :

(i) विद्वान् + तथा = विद्वांस् + तथा

= विद्वांस्तथा

(ii) कामान् + त्यक्त्वा = कामांस् + त्यक्तवा

= कामांस्त्यक्त्वा

(iii) प्रज्ञावादान् + च = प्रज्ञावादांश् + च

= प्रज्ञावादांश्च

२० छे च ६/१/७३

ह्रस्व स्वर से परे यदि छ् हो तो छ् के पूर्व नित्य ही च् जोड़ा जाता है

(i) कृष्ण + छेत्तुम = कृष्ण + च् + छेत्तुम्

= कृष्णच्छेत्तुम्

(ii) अस्य + छेत्ता = अस्यच्छेत्ता

२१ पदान्ताद्वा ६/१/७६

पदान्त दीर्घ से 'छ' परे हो, तो च् विकल्प से जोड़ा जाता है :

गायत्री + छन्दसाम् = गयत्रीच्छन्दसाम्

अथवा गायत्री छन्दसाम्

३.४ विसर्ग संधि नियम

संस्कृत व्याकरण में 'विसर्ग' को 'विसर्जनीय' भी कहते हैं। विसर्ग (एवं अनुस्वार) को 'अयोगवाह' भी कहते हैं, किसी भी वर्ण के योग के बिना इनकी स्थिति नहीं होती।

विसर्ग से परे स्वर अथवा व्यंजन होने पर विसर्ग का जो परिवर्तन होता है, उसे विसर्ग सन्धि कहते हैं। यह परिवर्तन भी अनेक रूपों के हैं, हम मुख्य-मुख्य जो गीता में प्रयोग में आए हैं, नीचे दे रहे हैं :-

(१) विसर्जनीयस्य सः ८/३/३४ खरि

विसर्ग के स्थान पर स् हो जाता है यदि कोई 'खर्' व्यंजन परे हो :-

(i) प्राहुः + त्यागम् = प्राहुस् + त्यागम्

= प्राहुस्त्यागम्

(ii) संतुष्टः + तस्य = संतुष्टस् + तस्य

= संतुष्टस्तस्य

(iii) नमः + ते = नमस्ते

(२) वा शरि: ८/३/३६

यदि विसर्ग के बाद श् ष् स् हो तो विसर्ग के स्थान में स् विकल्प से होता है:-

(i) यतयः + संशितव्रताः = यतयस्संशितव्रताः

= यतयस्संशितव्रताः

अथवा यतयः संशितव्रताः

(ii) दिशः + च = दिशस् + च

= दिशश् + च

= दिशश्च

अथवा = दिशः च

(३) अतः + च्यवन्ति = अतस् + च्यवन्ति

= अतश् + च्यवन्ति

= अतश्च्यवन्ति

अथवा अतः च्यवन्ति

३ ससजुषो रुः ८/२/६६

४ खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८/३/१५

पदान्त स् तथा सजुष्* के ष् के स्थान में 'र' (रु) हो जाता है।

(i) सजुष् = सजुर् = सजुः

(ii) रामस् = रामर् = रामः

इस पदान्त 'र' के बाद खर् व्यंजन तथा श् ष् स् का कोई वर्ण हो अथवा कोई भी वर्ण न हो तो र् के स्थान मे विसर्ग हो जाता है

(i) समः + सिद्धौ = समःसिद्धौ

(ii) ब्रह्मणः पथि = ब्रह्मणः पथि

(iii शब्दः खे = शब्दः खे

(iv) अधियज्ञः कथम् = अधियज्ञः कथम्

(v) विमत्सराः = विमत्सराः

(vi) करोति सः = करोति सः

उपर्युक्त नियम (३) का, नियम (४) और (५), (जो नीचे दिए जा रहे हैं), के साथ अध्ययन करना चाहिए।

*सजुष् का अर्थ है – प्यारा, मित्र, साथ रहने वाला

५ अतो रोरप्लुतादप्लुते ६/१/११३

अप्लुत 'अकार' (अर्थात् ह्रस्व 'अकार') परे होने पर स् के स्थान पर ह्रस्व 'उकार' हो जाता है: (यद्यपि नियम (३) के अनुसार 'र्' होना चाहिए ।

जयस् + अस्मि = जय + रु + आस्मि

= जय + उ + अस्मि

= जयो + अस्मि

= जयोऽस्मि

६ हसि च ६/१/११४

यह नियम (५) का ही परिवर्धित रूप है। हश् प्रत्याहार परे होने पर भी स् के स्थान पर ह्रस्व 'उकार' हो जाता है : (यद्यपि नियम (३) के अनुसार 'र्' होना चाहिए)

(i) यशस् + लभस्व = यश + उ + लभस्व

= यशो लभस्व

(ii) योगस् + नष्टः = योग + उ + नष्टः

= योगोनष्टः

(iii) राजर्षयस् + विदुः = राजर्षय + उ + विदुः

= राजर्षयो विदुः

७ रो रि ८/३/१४

'र्' के बाद यदि र आवे तो 'र्' का लोप हो जाता है और उसके पूर्व यदि 'अ' 'इ' 'उ' हो ते वे दीर्घ हो जाते हैं

(i) धार्तराष्ट्रार् + रणे = धार्तराष्ट्रा रणे

(ii) पुनर् + रमते = पुनारमते

नीचे हम विसर्ग सन्धि के कुछ और सूत्र, और उनके उदाहरण मात्र दे रहे हैं जिनका गीता में प्रयोग हुआ है। ये सूत्र किस प्रकार सक्रिय होते हैं जानने के लिए आप संस्कृत व्याकरण पर प्रामाणिक पुस्तकें देखें :

८ भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि ८/३/१७

गुणाः + वर्तन्ते = गुणा वर्तन्ते
अहंकारः + इति = अहंकार इति
यच्छ्रेयः + एतयोः = यच्छ्रेय एतयोः

९ हलि सर्वेषाम् ८/३/२२

संस्पर्शजाः + भोगाः = संस्पर्शजा भोगाः

१० एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ् समासेहलि ६/१/१३२

एषस् + क्रोधः = एषः क्रोधः
= एष कोधः
सस् + घोषः = सः घोषः
= स घोषः

११ र्वोरुपधाया दीर्घ इकः ८/२/७६

निराशिस् + निर्ममः = निराशीः + निर्ममः

= निराशीर्निर्ममः

१२ इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य ८/३/४१

निः + कर्म = निष्कर्म, (तस्य भावो नैष्कर्म्यम्)

निः कृति = निष्कृति, (तस्य भावो नैष्कृतिकः)

१३ सोऽपदादौ ८/३/३८

अतपः + काय = अतपस्काय

१४ रोऽसुपि ८/२/६९

अहन् + आगमे = अहर् + आगमे

= अहरागमे

अहन् + रात्रविदः = अह + रु + रात्रविदः

= अह + उ + रात्रविदः

= अहो रात्रविदः

१४. समास

परस्पर सम्बध रखने वाले दो या अधिक शब्दों में समास होता है। हिन्दी में जो अर्थ 'संक्षेप' का है, वही अर्थ 'समास' का समझना चाहिए – दो या अधिक शब्दों को इस प्रकार पास-पास रख देना कि उनके आकार में कमी भी हो जाए और अर्थ पूरा ही रहे; जैसे धर्मस्य क्षेत्रे = धर्मक्षेत्रे। समास में विभक्ति का लोप हो जाता है और सन्धि नियमों का प्रयोग होता है।

जिन शब्दों में समास होता है समास के पूर्व उन्हें 'समस्यमान्' और पीछे 'समस्त' कहते हैं। प्रत्यय लगने से ये शब्द बनते हैं। और, पदों की प्रधानता या अप्रधानता के कारण 'समास' के मुख्य चार भेद हैं :-

१.	अव्ययीभाव	जिसमें	पहला पद प्रधान हो
२.	तत्पुरुष	"	जिसमें दूसरा पद प्रधान हो
३.	द्वन्द्व	"	जिसमें दोनों पद प्रधान हों
४.	बहुव्रीहि	"	जिसमें कोई अन्यपद प्रधान हो

तत्पुरुष के अन्तर्गत और भी दो समास आते हैं : (१) कर्मधारय; और (२) द्विगु। कर्म धारय ऐसे सामासिक शब्द हैं जिनमे विशेष्य-विशेषण या उपमान-उपमेय का भाव रहता हैं। और, जिन सामासिक शब्दों में पहला पद संख्या वाचक होता है उनमें द्विगु समास होता है।

समस्त शब्दों को अलग-अलग करना उनका 'विग्रह' है और ऐसे विग्रह किए शब्दों को खण्ड कहते हैं।

गीता में आए सामासिक शब्दों का विग्रह हम गीता कोश में दिखला रहे हैं और आशा करते हैं कि हमारे पाठक इस बात का स्वयं निर्णय करलेंगें कि कौन समास, किस प्रकार का है, निम्नलिखित संकेतों की सहायता द्वारा –

१. अव्ययी भाव समास इस समास में पहला पद प्रधान होता है और प्रायः अव्यय् या उपसर्ग होता हे और समस्त पद 'अव्यय' बन जाता है। दूसरे पद् का रूप नपुंसक लिंग के एक वचन में होता है, जैसे –

यथाभागम् – (१) यथा और (२) भागः

यहां 'यथा' शब्द प्रधान है, और दोनों मिलकर अव्यय का रूप लेते है। 'भागः' शब्द ने पुल्लिंग होते हुए भी एक वचन नपुंसक का रूप धारण किया है। ध्यान रहे इस समास की यही बड़ी पहचान है कि इसका पूर्व पद अव्यय रूप में, मुख्यतः उपसर्ग होता है और दूसरा पद नपुंसकान्त रूप में होता है। इसके रूप चलते नहीं।

२. तत्पुरुष समास इस समास में द्वितीय पद प्रधान होता है। यह सामासिक शब्द संज्ञा, विशेषण अथवा क्रिया-विशेषण का काम करता है। समासान्त पद का लिंग और वचन अन्तिम पद के अनुसार ही होता है। तत्पुरुष समास के दो मुख्य भेद है :-

(i) व्यधिकरण अर्थात् जिसमें समास का प्रथम पद द्वितीया से लेकर सप्तमी विभक्ति तक किसी एक में होता है और दूसरा पद प्रथम पद की विभक्ति से भिन्न में, और

(ii) समानाधिकरण अर्थात् समास के दोनो पदों की एक ही विभक्ति होती है, जैसे पुरुषः व्याध्रः = पुरुषव्याध्रः

व्याधिकरण तत्पुरुष समास

विभक्त्यानुसार इस समास के छः और भेद हैं - जिस विभक्ति में पूर्व पद होता है वही समास का नाम होता है :-

समास का नाम	उदाहरण	
	समस्यमान् पद्	समस्तपद
द्वितीया तत्पुरुष	द्वन्द्वम् अतीतः	द्वन्द्वातीतः
तृतीया तत्पुरुष	ज्ञानेन दीपिते	ज्ञानदीपिते
	बुद्ध्या युक्तः	बुद्धियुक्तः
चतुर्थी तत्पुरुष	संस्थापनाय अयम्	संस्थापनार्थाय
पंचमी तत्पुरुष	कायक्लेशाद् भयं	कायक्लेशभयं
	योगाद् भ्रष्टः	योगभ्रष्टः
षष्टी तत्पुरुष	प्रजायाः पतिः	प्रजापतिः
सप्तमी तत्पुरुष	स्वे कर्मणि निरतः	स्वकर्मनिरतः
	आकाशे स्थितः	आकाशस्थितः

समानाधिकरण तत्पुरुष समास

यदि प्रथम शब्द प्रथमा विभक्ति में रहे तो व्यधिकरण तत्पुरुष समास न होकर, वह समानाधिकरण हो जाता है। समानधिकरण का अर्थ है ऐसे पद जिनका अधिकरण (अर्थात् आसन) समान हो; व्यधिकरण में दोनों पदों का अधिकरण (अर्थात् आसन) अलग अलग होता है जैसा आपने ऊपर देखा है।

(iii) कर्मधारय तत्पुरुष समास

ऐसा समानाधिकरण तत्पुरुष समास जिसमें दोनो पदों का समान अधिकार हो 'कर्मधारय तत्पुरुष समास' कहलाता है। इस समास के मुख्य भेद इस प्रकार हैं –

(क) कर्मधारय विशेषण-विशेष्य समास

जैसे नीलम उत्पलम् = नीलोत्पलम।

इसके उदाहरण गीता में नहीं है।

(ख) कर्मधारय उपमान-उपमेय

(i) उपमान पूर्वपद — महान् चासौ ईश्वरः

= महेश्वरः

(ii) उपमानोत्तपद– पुरुषः व्याघ्रः

= पुरुषव्याघ्रः

(ग) द्विग तत्पुरुष समास

जब कर्म धारय समास में प्रथम पद संख्यावाची हो और दूसरा पद कोई संज्ञा तो उसे 'द्विगु समास' कहते हैं। यह समाहार अर्थात् संग्रह अथवा समूह का द्योतक है। जैसे, त्रैलोक्य।

(iv) अन्य तत्पुरुष समास

गीता में ये दो ही प्रकार के हैं –

(क) प्रादि तत्पुरुष- जब किसी तत्पुरुष में पूर्व पद में 'प्र' आदि उपसर्गों में से कोई आए तो उसे 'प्रादि' तत्पुरुष कहते हैं। जैसे प्रपितामहः, अतीन्द्रियम्।

(ख) नञ् तत्पुरुषः

जब प्रथम पद 'न' रहे और दूसरा कोई संज्ञा या विशेषण हो तो ऐसे सामासिक शब्द को यह नाम दिया जाता है। यह 'न' व्यंजन के पूर्व 'अ' में और स्वर के पूर्व 'अन्' में बदल जाता हैः- जैसे अनिष्टम्, 'अकर्मणः'

३. <u>द्वन्द्व समास</u> इसके दो भेद गीता में मिलते हैः-

(i) इतरेतर द्वन्द्व– इसमें सभी पद प्रधान रहते हैं और 'च' से जुड़े रहते हैं। इसका लिंग दूसरे पद के समान होता है :-

सुखं च दुःखं च = सुख दुःखे

लाभः च अलाभः च = लाभालाभौ

जयः च अजयः च = जयाजयौ

(ii) समाहार द्वान्द्व

जिस समास में समाहार (समूह) का बोध हो : जैसे –

कायः च शिरः च ग्रीवा च = कायशिरो ग्रीवम्

(४) बहुव्रीहि समास

जिसमें अन्य पद प्रधान हो और वह किसी अन्य शब्द का विशेषण हो तो उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं:

नास्ति अहंकारः यस्य स – निरहंकारः

नास्ति ममत्वं यस्य स – निर्ममः

क्षीणानि कल्मषाणि येषां ते – क्षीणकल्मषाः

गीता कोश

गीता में प्रयुक्त शब्दों की संख्या ३८३८ है। वर्णानुसार व्यवस्था का विवरण इस प्रकार है :-

(१) मोटे टाइप में शब्द; उसके आगे बड़े ब्रैकेट के भीतर छोटे टाइप में -

(२) अंकों में, बिन्दु के पहले गीता अध्याय और बाद में श्लोक संख्या-जहां जहां शब्द, (कुछ अव्यय सर्वनाम आदि को छोड़कर), प्रयुक्त हुए हैं, जैसे-

अंशः [१५.७ (अध्याय १५ श्लोक ७)]
अकर्तारम् [४.१३; १३.२९ (अध्याय ४ श्लोक १३); (अध्याय १३ श्लोक २९)]
अद्भुतम् [११.२०, १८.७४, ७६ (अध्याय ११. श्लोक २०, अध्याय १८ श्लोक ७४ और ७६)]

(३) पहले छोटे ब्रैकेट में शब्द का व्याकरणिक परिचय * संकेत शब्दों द्वारा, (देखिए गीता व्याकरण)

(४) आवश्यकतानुसार, दूसरे छोटे ब्रैकेट में शब्द की व्याख्या; और बड़े ब्रैकेट के बाहर

(५) साधारण टाइप में शब्दार्थ,
दिये गए हैं

*शब्द का व्याकरणिक परिचय

(१) कोई कोई शब्द कई स्थानों में प्रयोग में आये हैं- कहीं संज्ञा, कहीं विशेषण इत्यादि। स्थानाभाव के कारण हम ऐसे शब्दों का अलग-अलग परिचय न देकर, उसका केवल एक ही रूप दिखा रहे हैं। शब्द कहां संज्ञा है, कहां विशेषण इसका निर्णय श्लोक पढ़ते समय पाठक स्वयं बड़ी सरलता से कर सकते हैं। सब रूप अधिकतः एक समान चलते हैं। (देखिए गीता व्याकरण)

(२) संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि शब्दों के लिए जो संकेत शब्द और अंक दिए हैं जैसे-

(i) अंशः सं(राम १.१)

(ii) अनुपकारिणे वि(शशिन् ४.१)

(iii) अमी-सर्व (अदस् पु. १.३)

उनके अर्थ हैं:-

(i) अंश-राम जैसा संज्ञा शब्द है, प्रथमा विभक्ति, एक वचन में;

(ii) अनुपकारिणे-शशिन् जैसा विशेषण शब्द है चतुर्थी विभक्ति एक वचन में।

(iii) अमी-सर्वनाम अदस् पु. रूप में प्रथमा विभक्ति बहुवचन में। जिस प्रकार संकेत शब्द चलते हैं, उसी प्रकार इन शब्दों को भी चलाया जाना चाहिए। (देखिए गीता व्याकरण) विभक्तियां (१) से (८) तक हैं; और वचन तीन हैं:

(१) एकवचन, (२) द्विवचन और (३) बहुबचन

(३) क्रिया शब्दों के आगे जो अंक हैं, वे दर्शाते हैं पुरुष और वचन, जैसे अनुतिष्ठन्ति में (३.३) का अर्थ है अन्य पुरुष बहुवचन। पुरुष तीन हैं (१) उत्तम, (२) मध्यम और (३) अन्य।

(४) यदि कोई शब्द साधारण व्याकरण की परिधि के बाहर है, तो उसका कोई परिचय नहीं दिया गया है।

संकेताक्षर और चिन्ह

√	मूल, धातु	तना.	तनादिगणीय
A	आत्मनेपदी	तुदा.	तुदादिगणीय
P	परस्मैपदी	दिवा.	दिवादिगणीय
A/P	उभयपदी	न.	नपुंसकलिंग
अ.	अव्यय	पु.	पुंल्लिंग
अनि.	अनिश्चयवाच्क	भ्वा.	भ्वादिगणीय
अदा.	अदादिगणीय	रुधा.	रुधादिगणीय
कर्म.	कर्मवाच्य	वि.	विशेषण
क्रि. वि.	क्रियाविशेषण	सर्व.	सर्वनाम
क्र्या.	क्र्यादिगणीय	सार्व.	सार्वनामिक/विशेषण
चुरा.	चुरादिगणीय	स्त्री.	स्त्रीलिंग
जुहो.	जुहोत्यादिगणीय	स्वा.	स्वादिगणीय

अ

अंशः [१५.७ सं(राम १.१)] भाग, खंड

अंशुमान् [१०.२१ सं(धीमत्१.१)] कान्तिमय, जगमगाता, किरणोंवाला,

अकर्तारम् [४.१३, १३.२९ वि(कर्तृ २.१) (न + कर्तारम्)] अक्रियाशील, अकर्त्ता

अकर्म [४.१६, १८ सं(कर्मन् १.१) (न + कर्म)] अकर्म, निष्क्रियता आलस्य

अकर्मकृत् [३.५ (मरूत्) १.१)] बिना काम किए, कर्म किए बिना

अकर्मणः [३.८, ४.१७ सं(कर्मन् ५.१)] अकर्म से, अकर्मण्यता की अपेक्षा, निष्क्रियता से, कर्म न करने से

अकर्मणि [२.४७, ४.१८ सं(कर्मन् ७.१)] अकर्म में, कर्म न करने में

अकल्मषम् [६.२७ वि(राम २.१)] पाप रहित हुए को, निष्पाप को

अकारः [१०.३३ सं(राम १.१)] 'अ' अक्षर

अकार्यम् [१८.३१ सं(फल २.१)] अकार्य, अकर्तव्य, जो नहीं करना चाहिए

अकीर्तिः [२.३४ सं(मति १.१)] अपयश

अकीर्तिकरम् [२.२ वि(फल १.१)] अपयश देने वाला, ख्याति नाशक

अकीर्तिम् [२.३४ सं(मति २.१)] अपयश

अकुर्वत [१.१ (√कृ तना. A लङ् ३.३)] किया

अकुशलम् [१८.१० सं(फल २.१)] अप्रिय, अरुचिकर

अकृतबुद्धित्वात् [१८.१६ सं(फल ५.१)] (न कृता बुद्धिः येन तस्य भावात्)] उसकी अवस्था से जिसे बुद्धि प्राप्त नहीं हुई, असंस्कृत बुद्धि वाला

अकृतात्मानः [१५.११ सं(आत्मन् १.३) (न कृतः आत्मा यैः ते)] वे जिनके द्वारा आत्मा को (अपने को) बनाया नहीं (गया है) (सुधारा नहीं गया है), वे जिन्होंने आत्म शुद्धि नहीं की है, संस्कार रहित लोग

अकृतेन [३.१८ वि(राम ३.१)] कर्म न करने से, न करने से

अकृत्स्नविदः [३.२९ वि(तत्त्वविद् १.३)] सब न जानने वाले, असर्वज्ञ, अल्प ज्ञान वाले

अक्रियः [६.१ वि(राम १.१)] क्रिया के विना; क्रिया से रहित

अक्रोधः [१६.२ सं(राम १.१)] क्रोध का न होना; क्रोध रहित होना

अक्लेद्यः [२.२४ वि(राम १.१)] जो गीला न हो सके; गीला न होने वाला

अक्षयः [१०.३३ वि(राम १.१)] सदैव रहने वाला, अविनाशी

अक्षय्यम् [५.२१ वि(फल २.१)] अविनाशी; अविनश्वर; जो नष्ट न हो

अक्षरः [८.२१, १५.१६ सं(राम १.१)] अनश्वर; अविनाशी

अक्षरम् [८.३, ११, १०.२५; ११.१८, ३७, १२.१, ३ सं(राम २.१) सं(फल १.१)] क्षय न होने वाला, अविनाशी, अक्षर

अक्षरसमुद्भवम् [३.१५ सं(फल २.१) (अक्षरात् समुद्भवः यस्य तत्)] वह जो उत्पन्न होता है अविनाशी (अक्षय) से, परमात्मा से उत्पन्न हुआ

अक्षराणाम् [१०.३३ सं(राम ६.३)] अक्षरों में

अक्षरात् [१५.१८ सं(राम ५.१)] अक्षर से; अध्वंस्य की अपेक्षा

अखिलम् [४.३३; ७.२९; १५.१२ सं(फल १/२.१)] निःशेष, अखण्ड, सम्पूर्ण

अगतासून् [२.११ वि.(गुरु २.३) (न गताः असवः येषां तान्)] वे जिनके प्राण नहीं गए हैं उन को; (जीवितों को)

अग्निः [४.३७; ८.२४; ९.१६; ११.३९; १८.४८ सं(हरि १.१)] अग्नि

अग्नौ [१५.१२ सं(हरि ७.१)] अग्नि में

अग्रे [१८.३७; ३८, ३९ अ.(क्रिवि ७.१)] आरम्भ में

अघम् [३.१३ सं(राम २.१)] पाप को

अघायुः [३.१६ सं(गुरु १.१)] (अघम् आयुः यस्य सः) वह जिसका सम्पूर्ण जीवन पापमय है, पापी जीवन वाला

अङ्गानि [२.५८ सं(फल २.३)] अंगों को

अचरम् [१३.१५ सं(फल १.१)] अचल, अटल, स्थिर

अचलः [२.२४ वि(राम १.१)] अचल, अटल

अचलप्रतिष्ठम् [२.७० वि(राम २.१)] जिसकी मर्यादा निश्चल है उसे; अचल स्थिति वाले को

अचलम् [६.१३, १२.३ अ.(क्रि.वि) २.१ वि((राम २.१)] अचल, अटल, अपरिवर्तनीय

अचला [२.५३ वि(विद्या १.१)] अचल, स्थिर

अचलाम् [७.२१ वि(विद्या २.१)] स्थिर, दृढ़

अचलेन [८.१० वि(फल ३.१)] निश्चल से, अचल-से

अचापलम् [१६.२ सं(फल १.१)] चपलता का न होना; अचंचलता

अचिन्त्यः [२.२५ वि(राम १.१)] अकल्पनीय, जो मनोगम्य नहीं; जिसका चिन्तन न किया जा सके

अचिन्त्यम् [१२.३ वि(राम २.१)]

जिसका चिन्तन न हो सके; अकल्पनीय

अचिन्त्यरूपम् [८.९ वि(राम २.१ (अचिन्त्य रूपं यस्य तम्)] उसको जिसका रूप (आकार) अकल्पनीय हैं

अचिरेण [४.३९ अ.(क्रिवि)] विना विलम्ब के, तुरन्त, शीघ्र;

अचेतसः [३.३२, १५.११, १७.६ वि(चन्द्रमस् १.३,२.३)] बुद्धिहीन; अविवेकी

अच्छेद्यः [२.२४ वि(राम १.१)] जो काटा न जा सके; न काटा जाने वाला

अच्युत [१.२१; ११.४२; १८.७३ सं(राम ८.१)] अच्युत ! (जो गिरे न, जो विचलित न हो), श्री कृष्ण ! अपरिवर्तनीय; अविकार्य

अजः [२.२०, ४.६ वि.(राम १.१) सं(राम १.१)] अजन्मा

अजम् [२.२१; ६.२५; १०.३, वि. (राम २.१) १०.१२) वि(कर्मन् १.१)] अजन्मा, जन्मरहित

अजस्रम् [१६.१९ अ.(क्रिवि)] निरन्तर, बारम्बार

अजानता [११.४१ (अ.) वि(ध्यायत् ३.१)] अनजाने से, न जानते हुए के द्वारा

अजानन्तः [७.२४, ९.११, १३.२५ स.(ध्यायत् १.३)] (अ + √ ज्ञा क्र्या P + शतृ) न जानते हुए

अज्ञः [४.४० वि(राम १.१)] अज्ञानी, न जानता हुआ

अज्ञानजम् [१०.११, १४.८ सं(फल २.१)] (अज्ञानात् जातम्) अज्ञान से उत्पन्न

अज्ञानम् [५.१६; १३.११; १४.१६; १७, १६.४ सं(फल १.१) (२.१)] अज्ञान

अज्ञानविमोहिताः [१६.१५ सं(राम १.३) (अज्ञानेन विमोहिताः)] अज्ञान से मोहित हुए

अज्ञानसंभूतम् [४.४२ वि(राम २.१) (अज्ञानात् संभूतम्)] अज्ञान से उत्पन्न

अज्ञानसंमोहः [१८.७२ सं(राम १.१) (अज्ञानस्य संमोहः)] अज्ञान जन्य मोह

अज्ञानाम् [३.२६ सं(राम ६.३)] अज्ञानियों की

अज्ञानेन [५.१५ सं(फल ३.१)] अज्ञान से; अविद्या से

अणीयांसम् [८.९ सं(गरीयस् २.१)] अधिक छोटा, लघुतर, सूक्ष्मतर

अणोः [८.९ सं(गुरु ५.१)] अणु से, लघु से

अतः (अ.) इसके बाद, भविष्य में, इसलिए

अतत्त्वार्थवत् [१८.२२ वि(जगत् १.१)] बिना तात्त्विक (मौलिक) अर्थ के; बिना किसी सार्थकता के

अतन्द्रितः [३.२३ वि.(राम १.१)] अक्लांत; अथकित; अथक; आलस्य रहित (होकर)

जिसका चिन्तन न हो सके; अकल्पनीय

अचिन्त्यरूपम् [८.९ वि(राम २.१ (अचिन्त्य रूपं यस्य तम्)] उसको जिसका रूप (आकार) अकल्पनीय हैं

अचिरेण [४.३९ अ.(क्रिवि)] विना विलम्ब के, तुरन्त, शीघ्र;

अचेतसः [३.३२, १५.११, १७.६ वि(चन्द्रमस् १.३,२.३)] बुद्धिहीन; अविवेकी

अच्छेद्यः [२.२४ वि(राम १.१)] जो काटा न जा सके; न काटा जाने वाला

अच्युत [१.२१; ११.४२; १८.७३ सं(राम ८.१)] अच्युत ! (जो गिरे न, जो विचलित न हो), श्री कृष्ण ! अपरिवर्तनीय; अविकार्य

अजः [२.२०, ४.६ वि.(राम १.१) सं(राम १.१)] अजन्मा

अजम् [२.२१; ६.२५; १०.३, वि. (राम २.१) १०.१२) वि(कर्मन् १.१)] अजन्मा, जन्मरहित

अजस्रम् [१६.१९ अ.(क्रिवि)] निरन्तर, बारम्बार

अजानता [११.४१ (अ.) वि(ध्यायत् ३.१)] अनजाने से, न जानते हुए के द्वारा

अजानन्तः [७.२४, ९.११, १३.२५ सं.(ध्यायत् १.३)] (अ + √ ज्ञा क्र्या P + शतृ) न जानते हुए

अज्ञः [४.४० वि(राम १.१)] अज्ञानी, न जानता हुआ

अज्ञानजम् [१०.११, १४.८ सं(फल २.१)] (अज्ञानात् जातम्) अज्ञान से उत्पन्न

अज्ञानम् [५.१६; १३.११; १४.१६; १७, १६.४ सं(फल १.१) (२.१)] अज्ञान

अज्ञानविमोहिताः [१६.१५ सं(राम १.३) (अज्ञानेन विमोहिताः)] अज्ञान से मोहित हुए

अज्ञानसंभूतम् [४.४२ वि(राम २.१) (अज्ञानात् संभूतम्)] अज्ञान से उत्पन्न

अज्ञानसंमोहः [१८.७२ सं(राम १.१) (अज्ञानस्य संमोहः)] अज्ञान जन्य मोह

अज्ञानाम् [३.२६ सं(राम ६.३)] अज्ञानियों की

अज्ञानेन [५.१५ सं(फल ३.१)] अज्ञान से; अविद्या से

अणीयांसम् [८.९ सं(गरीयस् २.१)] अधिक छोटा, लघुतर, सूक्ष्मतर

अणोः [८.९ सं(गुरु ५.१)] अणु से, लघु से

अतः (अ.) इसके बाद, भविष्य में, इसलिए

अतत्त्वार्थवत् [१८.२२ वि(जगत् १.१)] बिना तात्त्विक (मौलिक) अर्थ के; बिना किसी सार्थकता के

अतन्द्रितः [३.२३ वि.(राम १.१)] अक्लांत; अथकित; अथक; आलस्य रहित (होकर)

अदेशकाले [१७.२२ सं(राम ७.१) (न देशे कालेच)] न ठीक स्थान में और न ठीक समय में

अद्भुतम् [११.२०, १८.७४, ७६ वि(फल १.१)] आश्चर्यजनक, चामत्कारिक

अद्य (अ.) आज

अद्रोहः [१६.३ सं(राम १.१)] वैर का अभाव, द्वेष का न होना, (द्रोह = दूसरे का अहित चिंतन)

अद्वेष्टा [१२.१३ वि(कर्तृ. १.१)] द्वेष न करते हुए, घृणा न करते हुए

अधः [१४.१८, १५.२ अ.(क्रिवि)) नीचे की ओर; नीचे

अधःशाखम् [१५.१ वि(राम २.१) (अधः शाखाः यस्य तम्)] वह जिस की शाखाएं नीचे हैं

अधमाम् [१६.२० वि(विद्या २.१)] अधम, नीचतम, निकृष्ट

अधर्मः [१.४० सं(राम १.१)] अव्यवस्था, अन्धेर, अराजकता

अधर्मम् [१८.३१,३२; सं(राम २.१)] अधर्म (को) अनुचित (को)

अधर्मस्य [४.७ सं(राम ६.१)] अधर्म का, पाप का

अधर्माभिभवात् [१.४१ सं(राम ५.१)] (अधर्मस्य अभिभवात्) अराजकता के, प्रचलन से (प्रचार से)

अधिकः [६.४६ वि(राम १.१)] अधिक, ऊंचा, उच्च, महान्

अधिकतरः [१२.५ वि(राम १.१)] बहुत अधिक; अधिक से अधिक

अधिकम् [६.२२ वि(राम २.१)] और अधिक

अधिकारः [२.४७ सं(राम १.१)] अधिकार, हक, स्वत्व

अधिगच्छति [२.६४; ७१; ४.३९; ५.६, २४; ६.१५; १४.१९, १८.४९ (अधि + गच्छति- √ गम्-गच्छ भ्वा. P लट् ३.१)] प्राप्त होता है; पाता है

अधिदैवतम् [८.४ सं(फल १.१)] अधिदेवता, (देखिए अध्याय ७ श्लोक ३०)

अधिदैवम् [८.१ सं(फल १.१)] अधिदैव (देवताओं संबन्धी ज्ञान)

अधिभूतम् [८.१, ४ सं(फल १.१)] अधिभूत मूल तत्त्व (आकाश पृथ्वी जल अग्नि वायु) का ज्ञान (देखिए अध्याय ७ श्लोक ३०)

अधियज्ञः [८.२, ४ सं(राम १.१)] अधियज्ञ, (देखिए अध्याय ७ श्लोक ३०)

अधिष्ठानम् [३.४०; १८.१४ सं(फल १.१) (अधि + √स्था + ल्युट्)] आसन; स्थान; शरीर क्षेत्र

अधिष्ठाय [४.६; १५.९ (अधि + √स्था भ्वा P + ल्यप्)] पर निर्भर या आधारित होकर, टिकते हुए, स्थित होकर

अध्यक्षेण [९.१० वि(राम ३.१)] निरीक्षक द्वारा (देखिए प्रवेशिका-II)

अध्यात्मचेतसा [३.३० सं(मनस् ३.१) (अध्यात्मनि चेतसा)] अध्यात्म चित्त से; आत्मा में स्थिर बुद्धिसे, विवेकात्मक बुद्धि से, (अध्यात्म, आत्मा या परमात्मा से संबंधित ज्ञान द्वारा) (देखिए प्रवेशिका-II)

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम् [१३.११ सं(फल १.१) (अध्यात्मनः ज्ञाने नित्यत्वम्)] अध्यात्म ज्ञान (विद्या जो आत्मा-अपने-से संबंधित है) की स्थिरता-अटल होना, (देखिए प्रवेशिका - II)

अध्यात्मनित्याः [१५.५ सं(राम १.३) (अध्यात्मनि नित्याः)] अपने में सदैव स्थापित; अपने में सदा निमग्न; अपने में सदैव स्थिर, (देखिए प्रवेशिका - II)

अध्यात्मम् [७.२९; ८.१; ३ सं(फल १.१) (आत्मानम् अधिकृत्य कृतम्)] आत्मा से सम्बन्धित; अध्यात्म (को) (देखिए प्रवेशिका - II)

अध्यात्मविद्या [१०.३२ सं(विद्या १.१) (आत्मानम् अधिकृत्य विद्या)] विद्या जो आत्मा (अपने) से सम्बंधित है, आत्म ज्ञान, आत्मा या परमात्मा से संबंधित ज्ञान या विवेचन, (देखिए प्रवेशिका - II)

अध्यात्मसंज्ञितम् [११.१ वि(फल १.१)] अध्यात्म नाम का

अध्येष्यते [१८.७० (अधि + √इ अदा Pलृट ३.१)] अध्ययन करेगा, अभ्यास करेगा

अध्रुवम् [१७.१८ वि(फल १.१)] अस्थिर

अनघ [३.३; १४.६; १५.२० सं(राम ८.१)] हे अनघ; (पापरहित)

अनन्त [११.३७ सं(राम ८.१)] हे अनन्त (जिसका अन्त नही)

अनन्तः [१०.२९ सं(राम १.१)] शेषनाग

अनन्तबाहुम् [११.१९ वि(गुरु २.१) (अनन्ताः बाहवः यस्य तम्)] उसको जिसकी अनन्त भुजाएं हैं

अनन्तम् [११.११, ४७ वि(फल २.१)] अनन्त अन्तरहित, निरन्त

अनन्तरम् [१२.१२, १८.५५ (अ.) क्रिवि)] शीघ्र ही, तुरन्त ही, तत्काल

अनन्तरूप [११.३८ सं(राम ८.१)] हे अनन्त रूप (हे अगणित स्वरूप वाले)

अनन्तरूपम् [११.१६ वि(राम २.१) (अनन्तानि रूपाणि यस्य तम्)] उसको जिसके अनन्त स्वरूप हैं

अनन्तविजयम् [१.१६ सं(राम २.१)] अनन्त विजय (युधिष्ठिर का शंख)

अनन्तवीर्य [११.४० सं(राम ८.१) (अनन्तं वीर्यं यस्य सः)] (वह जिसकी शक्ति अनन्त है) हे अनन्त वीर्य

अनन्तवीर्यम् [११.१९ सं(राम २.१) (अनन्तं वीर्यं यस्य तम्)] उसको जिसकी शक्ति अनन्त है, अपार बल वाले को

अनन्ताः [२.४१ वि(विद्या १.३)] अन्तहीन, अनन्त

अनन्यचेताः [८.१४ वि.(चन्द्रमस् १.१) (न अन्यस्मिन् चेताः यस्य सः)] वह जिसका विचार दूसरे में नहीं (है) एकाग्र मन वाला

अनन्यभाक् [९.३० वि.(ऋत्विज १.१) (न अन्यं भजति इति)] ऐसे दूसरे को नहीं भजता जो; एकनिष्ठ होकर

अनन्यमनसः [९.१३ वि(चन्द्रमस् १.३) (न अन्यस्मिन् मनः)] वे जिनका मन दूसरे में नहीं (है); एक मन से-

अनन्यया [८.२२, ११.५४ सार्व वि.(विद्या ३.१)] अन्य से संबन्ध न रखने वाला, अनन्य, एकनिष्ठ, एक ही में लीन

अनन्ययोगेन [१३.१० सं(राम ३.१)] अनन्य योग से; एकनिष्ठ योग से, बिना दूसरे का ध्यान किए-योग द्वारा

अनन्याः [९.२२ सार्व. वि(राम १.३)] बिना दूसरे के; दूसरे का ध्यान न करते हुए; अनन्य भाव से, एकनिष्ठ

अनन्येन [१२.६ सार्व. वि(राम ३.१)] बिना दूसरे के, दूसरे (किसी) का नहीं, (ध्यान न करते हुए) एक निष्ठ

अनपेक्षः [१२.१६ वि(राम १.१) (न अपेक्षा यस्य सः)] इच्छा रहित, निःस्पृह; बिना प्रतीक्षा के,

अनपेक्ष्य [१८.२५ (अ.) (अन् + अप + √ ईक्ष् + ल्यप्)] बिना ध्यान करते हुए; ध्यान न देते हुए

अनभिष्वंगः [१३.९ सं(राम १.१)] तादात्म्य न होना; एकीकरण न करना, लिप्त न होना, ममता का अभाव

अनभिसंधाय [१७.२५ (अ.) (अन् + अभि + सम् √ धा + ल्यप्)] इच्छा न कर के, ध्यान न देकर, लक्ष्य न करके

अनभिस्नेहः [२.५७ वि(राम १.१)] स्नेह रहित; असम्बद्ध

अनयोः [२.१६ सार्व. वि(इदम् ६.२)] इन (दोनों) का

अनलः [७.४ सं(राम १.१)] अग्नि

अनलेन [३.३९ सं(राम ३.१)] अग्नि से; ज्वाला से; लौ से

अनवलोकयन् [६.१३ (ध्यायत् १.१) (अन् + अव. + √ लोक् + शतृ)] न देखते हुए

अनवाप्तम् [३.२२ सं(फल १.१) (अन् + अव् + √ आप् स्वा P + क्त)] अप्राप्त, न मिला हुआ

अनश्नतः [६.१६ वि. सं(ध्यायत् ६.१) (न अश्नतः)] न खाने वाले का

अनसूयः [१८.७१ वि(राम १.१)] निन्दा

न करने वाला, दोष न दिखाने वाला

अनसूयन्तः [३.३१ वि (ध्यायत् १.३)] छिद्रान्वेषण न करते हुए, निंदा न करते हुए

अनसूयवे [९.१ वि(गुरु ४.१)] निन्दा न करने वाले को, दोषदर्शन न करने वाले के लिए

अनहंकारः [१३.८ सं(राम १.१)] अहंकार रहित, अहंकार का अभाव

अनहंवादी [१८.२६ वि(शशिन् १.१) (न अहं वदति इति)] " मैं हूं " ऐसा नहीं कहता है, अहंपन में जिसकी आस्था नहीं

अनात्मनः [६.६ वि(आत्मन् ६.१) (न (जितः) आत्मा यस्य तस्य)] जिसकी आत्मा (विजित) नहीं है, उसका; जिसने अपने को नहीं जीता है, उसका, (देखिए प्रवेशिका - II)

अनादित्वात् [१३.३१ सं(फल ५.१)] अनादि होने से, आरम्भ रहित होने के कारण

अनादिम् [१०.३ वि(हरि २.१)] आदि रहित, जिसका प्रारम्भ नहीं

अनादिमत् [१३.१२ वि(जगत् १.१)] आदि रहित, जिसका प्रारम्भ नहीं

अनादिमध्यान्तम् [११.१९ वि(राम २.१) (न आदिः मध्यम् अन्तः यस्य तम्)] उसको जिसका आदि, मध्य अन्त नहीं है

अनादी [१३.१९ वि(हरि २.२)] आदि रहित (दोनों को)

अनामयम् [२.५१, १४.६ वि(फल २.१)] पीड़ा हीन, अकष्टकर, आरोग्यकर

अनारम्भात् [३.४ सं(राम ५.१)] आरम्भ न करने से

अनार्यजुष्टम् [२.२ वि.(फल १.१) (√ जुष् + क्त (अनार्यैः जुष्टम्)] (जिसमें) अनार्य प्रसन्न हों, (जिसे) आर्य व्यवहार में नहीं लाते

अनावृत्तिम् [८.२३, २६ सं(मति २.१)] न लौटने की स्थिति, पुनरागमन का अभाव

अनाशिनः [२.१८ वि(शशिन् ६.१)] अनश्वर का, अविनाशी का

अनाश्रितः [६.१ वि(राम १.१) (न आश्रितः)] (पर) निर्भर या आश्रित न रहने या होने वाला

अनिकेतः [१२.१९ वि(राम १.१)] विना घर (स्थान) का, जो एक स्थान से बंधा नहीं हो

अनिच्छन् [३.३६ वि(ध्यायत् १.१) (न इच्छन्)] न चाहता हुआ; इच्छा न रखता हुआ

अनित्यम् [९.३३ वि(राम २.१)] अनित्य, अस्थायी, नश्वर, क्षण भंगुर

अनित्याः [२.१४ वि(राम १.३)] अस्थायी, अल्प कालिक

अनिर्देश्यम् [१२.३ वि(फल २.१)] अपरिभाष्यः अवर्णनीय, शब्दों द्वारा जिसका वर्णन न हो सके

अनिर्विण्णचेतसा [६.२३ सं(मनस् ३.१) (अ निर्विण्णेन चेतसा)] उदास न हुए मनसे, बिना निराश हुए

अनिष्टम् [१८.१२ वि(फल १.१)] अवांछनीय, अप्रिय

अनीश्वरम् [१६.८ वि(फल २.१)] बिना ईश्वर का

अनुकम्पार्थम् [१०.११ (अ.) (अनुकम्पायाः अर्थम्)] दया के लिए, करुणा के वास्ते, तरस खाके

अनुचिन्तयन् [८.८वि(ध्यायत् १.१)] चिन्तन करता हुआ, विचार करता हुआ

अनुतिष्ठन्ति [३.३१ ३२ (अनु + √स्था भ्वा P लट् ३.३)] अनुसरण करते हैं, पालन करते हैं

अनुत्तमम् [७.२४ वि(राम २.१)] सर्वोत्तम

अनुत्तमाम् [७.१८ वि(विद्या २.१) (न अस्ति उत्तमा यस्याः ताम्)] वह जिससे उत्तम नहीं है (उसको), सर्वोत्तम को,

अनुद्विग्नमनाः [२.५६ वि(चन्द्रमस् १.१) (न उद्विग्नं मनः यस्य सः)] वह जिसका मन उद्विग्न (उत्तेजित) नहीं होता, आकुल नहीं होता, घबराता नहीं

अनुद्वेगकरम् [१७.१५ वि(फल १.१] (न उद्वेगं करोति इति)] जो उत्तेजना उत्पन्न नहीं करता

अनुपकारिणे [१७.२० वि(शशिन् ४.१)] प्रत्युपकार न करने वाले को, भलाई का बदला न चुकाने वाले को

अनुपश्यति [१३.३०, १४.१९ (अनु + √दृश् - पश्य् भ्वा P लट् ३.१)] पहचानता है , देखता है, अनुभव करता है, समझता है

अनुपश्यन्ति [१५.१० (अनु + √दृश्-पश्य् भ्वा P लट् ३.३)] पहचानते हैं, देखते हैं अनुभव करते हैं

अनुपश्यामि [१.३१ (अनु + √दृश् - पश्य् P लट् १.१)] (मैं) देखता हूं; (मुझे) दिखाई देता है

अनुप्रपन्नाः [९.२१ वि(राम १.३)] निष्ठावान् , आश्रय लिए हुए

अनुबन्धम् [१८.२५ सं(राम २.१)] परिणाम को, निष्कर्ष को

अनुबन्धे [१८.३९ सं(राम ७.१)] परिणाम में

अनुमन्ता [१३.२२ वि(कर्तृ १.१)] अनुमति देने वाला

अनुरज्यते [११.३६ (अनु + √रञ्ज् + कर्मं A लट् ३.१)] प्रीति करता है

अनुवर्तते [३.२१ अनु + √वृत् भ्वा A लट् ३.१)] अनुसरण करता है, अनुगमन करता है, पीछे पीछे चलता है

अनुवर्तन्ते [३.२३, ४.११] (अनु + √वृत् भ्वा A/P लट् ३.३)] अनुसरण करते हैं, अनुगमन करते हैं

अनुवर्तयति [३.१६ (अनु + √वृत् भ्वा A लट् ३.१)] अनुसरण करता है, पालन करता है

अनुविधीयते [२.६७ (अनु + वि + √धा (कर्मणि) A लट् ३.१)] अनुकूल कर दिया जाता है, पीछे लगा दिया जाता हे, अनुरूप कर दिया जाता है

अनुशासितारम् [८.९ वि(धातृ २.१(] संसार के शासक को, नियन्ताको, शासक को

अनुशुश्रुम [१.४४ (अनु + √श्रु स्वा P लिट् १.३)] हमने सुना है

अनुशोचन्ति [२.११ अनु + √शुच् भ्वा P लट् ३.३)] शोक मनाते हैं, सोचकर दुःखित होते हैं

अनुशोचितुम् [२.२५ अनु √शुच् भ्वा + तुमुन्)] शोक करने के लिए

अनुषज्जते [६.४, १८.१० अनु + √षस्ज् भ्वा A लट् ३.१)] आसक्त होता है, अनुरक्त होता है

अनुसंततानि [१५.२ वि(फल १.३)] बहुशाखी, शाखा विस्तार हुआ है जिसका, फैले हुए, बिछे हुए

अनुस्मर [८.७ (अनु + √स्मृ भ्वा P लोट २.१)] स्मरण करना, स्मरण कर

अनुस्मरन् [८.१३ वि.(ध्यायत् १.१) (अनु + √स्मृ भ्वा P + शतृ)] स्मरण करते हुए

अनुस्मरेत् [८.९ (अनु + √स्मृ + भ्वा P विधि ३.१)] चिन्तन (मनन) करते हुए

अनेकचित्तविभ्रान्ताः [१६.१६ वि(राम १.३) (अनेकैः चित्तैः विभ्रान्ताः)] अनेक विचारों से घबराए हुए, अनेक भ्रान्तियों में पड़े हुए

अनेकजन्मसंसिद्धः [६.४५ वि(राम१.१) (अनेकैः जन्मभिः संसिद्धः)] अनेक जन्मों से पूर्ण हुआ, सिद्धि को प्राप्त हुआ

अनेकदिव्याभरणम् [११.१० सं(फल २.१) (अनेकानि दिव्यानि आभरणनि यस्मिन् तत्)] वह जिसमें अनेक ईश्वरीय आभूषण (हैं), अनेक दिव्य आभूषण वाला

अनेकधा [११.१३ (अ)] अनेक रीति से, अनेक प्रकार से, नाना रूप, विविध।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम् [११.१६ सं(राम २.१) (अनेकानि बाहवः च उदराणि च वक्त्राणि च नेत्राणि च यस्य तम्)] उसकी जिसकी अनेक भुजाएं, पेट, मुख और नेत्र हैं

अनेकवक्त्रनयनम् [११.१० सं(फल २.१) (अनेकानि वक्त्राणि च नयनानि च यस्मिन् तत्)] वह जिसमें अनेक मुख और नेत्र) (हैं), अनेक मुख और नेत्र वाले, को

अनेकवर्णम् [११.२४ सं(राम २.१) (अनेके वर्णाः यस्य तम्)] उसको जिसके अनेक रंग हैं, अनेक रंग वाले को

अनेकाद्भुतदर्शनम् [११.१० वि(फल २.१) (अनेकानि अद्भुतानि दर्शनानि यस्मिन् तत्)] वह जिसमें अनेक चामत्कारिक दृश्य हैं, अनेक अद्भुत दर्शनों वाला

अनेन [३.१०, ११, ९.१०, ११.८ सर्व(इदम् पु / नपु. ३.१)] इससे, इसके द्वारा

अन्तः [२.१६, १०.१९, २०, ३२, ४०, १३.१५, १५.३ सं(राम १.१)] अन्तिम परिणाम, निष्कर्ष, अन्त, अवसान, अन्दर, भीतर

अन्तःशरीरस्थम् [१७.६ वि(राम २.१) (अन्तः शरीरे स्थितम्)] शरीर के भीतर स्थित, अन्तःकरण में रहने वाले (को)

अन्तःसुखः [५.२४ वि(राम १.१) (अन्तः (आत्मनि) सुखं यस्य सः)] वह जिसका सुख अपने में है, जो अन्तर (आत्मा) में सुखी है, अन्तः सुखी

अन्तःस्थानि [८.२२ वि.(फल १.३) (अन्तः तिष्ठन्ति इति तानि)] वे जो ऐसे भीतर खड़े होते हैं, अन्तर्गत, भीतर स्थित हैं

अन्तकाले [२.७२, ८.५ सं(राम ७.१) (अन्तस्य काले)] अन्त समय में

अन्तगतम् [७.२८ वि(फल १.१)] जिसका अंत हो गया है, जो चला गया है

अन्तम् [११.१६ सं(राम २.१)] अन्त, समाप्ति, अवसान

अन्तरम् [११.२०, १३.३४ सं(फल १.१)] अन्तराल, बीच का आकाश-स्थान, भेद, भिन्नता

अन्तरात्मना [६.४७ सं(आत्मन् ३.१)] अन्तर आत्मा से, एकचित्त से

अन्तरारामः [५.२४ वि(राम १.१) (अन्तः (आत्मनि) आरामः यस्य सः)] वह जिसका आनन्द अपने में है, जिसके अन्तर में आनन्द (शान्ति) है

अन्तरे [५.२७ वि(फल ७.१)] मध्य में

अन्तर्ज्योतिः [५.२४ वि(मुनि १.१) (अन्तः (आत्मनि) ज्योतिः यस्य सः)] वह जिसकी ज्योति अपने में है, जो अन्तर में प्रकाशवान् है, अन्तर्ज्ञानी

अन्तवत् [७.२३ वि(जगत् १.१)] अन्त वाले, नाशवान

अन्तवन्तः [२.१८ वि(भवत् १.३)] अन्तवाले

अन्तिके [१३.१५ (अ..,वि(राम / फल ७.१)] पास, निकट, समीप ।

अन्ते [७.१९, ८.६ सं(राम ७.१) अन्त में

अन्नम् [१५.१४ सं(फल २.१)] अन्न, भोजन

अन्नसंभवः [३.१४ सं(राम १.१) (अन्नस्य संभवः)] अन्न की उत्पत्ति

अन्नात् [३.१४ सं(फल ५.१)] अन्नसे

अन्यः [२.२९. ४.३१, ६.३९, ८.२०,

११.४३, १५.१७, १६.१५, १८.६९ सर्व(अन्य. पुं. १.१)] एक और, कोई दूसरा, परलोक, दूसरा कोई

अन्यत् [२.३१, ४२; ७.२, ७; ११.७; १६.८ सर्व.(अन्यत् नपु. १.१)] दूसरा, अन्य

अन्यत्र [३.९ (अ.)] अन्य प्रकार से, दूसरे

अन्यथा [१३.११ (अ.)] भिन्न, दूसरी दृष्टि से, विपरीत

अन्यदेवताः [७.२० (अन्याः देवताः) सं(विद्या २.३)] दूसरे देवता

अन्यदेवताभक्ताः [९.२३ सं(राम १.३) (अन्यानां देवतानां भक्ताः)] दूसरे देवताओं के भक्त

अन्यम् [१४.१९ सर्व २.१)] दूसरा, अन्य को, दूसरे को, और किसी को

अन्यया [८.२६ सर्व(विद्या ३.१)] दूसरे से, दूसरे मार्ग से

अन्यान् [११.३४ सर्व(अन्य पु २.३)] दूसरे

अन्यानि [२.२२ सर्व(अन्यत् नपु. १.३)] दूसरे

अन्याम् [७.५ सर्व(अन्या स्त्री. २.१)] दूसरी, उच्च श्रेणी की

अन्यायेन [१६.१२ सं(राम् ३.१)] अन्याय से, अत्याचार से, अनीति पूर्वक

अन्ये [१.९; ४.२६; ९.१५; १३.२४; २५; १७.४ सर्व(अन्य पुं. १.३)] दूसरे

अन्येन [११.४७. ४८ सर्व(अन्य पुं. ३.१)] दूसरे से

अन्येभ्यः [१३.२५ सर्व(अन्य पुं. ५.३)] दूसरों से

अन्वशोचः [२.११ (अनु + √ शुच् भ्वा. P लङ् २.१)] शोक विलाप किया है

अन्विच्छ [२.४९ (अनु + √ इष्- इच्छ् तुदा P लोट २.१)] खोजना, पता लगाना (तू) खोज, पता लगा

अन्विताः [९.२३, १७.१ वि(राम १.३)] सम्पन्न, युक्त

अपनुद्यात् [२.८ अप + √ नुद P विधि. ३.१)] दूरकर सके

अपरम् [४.४, ६.२२ वि(राम(२.१) (फल१.१)] बादमें, दूसरे किसी को

अपरस्परसंभूतम् [१६.८ वि(फल २.१) (अपरः च परः च ताभ्यां संभूतम्)] एक दूसरे से उत्पन्न, नर मादा के सम्बन्ध से उत्पन्न

अपरा [७.५ वि(विद्या १.१)] निम्न श्रेणी की

अपराजित [१.१७ सं(राम १.१) अजेय।

अपराणि [२.२२ वि(फल १.३)] दूसरे, अन्य

अपरान् [१६.१४ वि(राम २.३)] दूसरों को

अपरिग्रहः [६.१० वि(राम १.१)] धन सम्पत्ति के संग्रह के बिना (रहित) आवश्यक धन से अधिक का त्याग

अपरिमेयाम् [१६.११ वि(विद्या २.१)] अमाप, अपार

अपरिहार्ये [२.२७ वि(राम ७.१)] अनिवार्य (विषय में)

अपरे [४.२५, २७, २८, २९.३०, १३.२४, १८.३ वि(पूर्व. १.३) अ.] दूसरे, कुछ, कोई, और कोई

अपर्याप्तम् [१.१० वि(फल १.१)] अपरिमित, असीमित; अपर्याप्त जो जितना चाहिए, न हो

अपलायनम् [१८.४३ सं(फल १.१)] न भागना, अडिगता

अपश्यत् [१.२६, ११.१३ (√दृश्-पश्य् भ्वा P लङ् ३.१)] देखा

अपहृतचेतसाम् [२.४४ सं.(मनस् ६.३) (अपहृतं चेतः येषां तेषाम्)] जिनकी बुद्धि हर ली गई है, उनको

अपहृतज्ञानाः [७.१५ वि(राम १.३) (अपहृतं ज्ञानं येषां ते)] वे जिनका ज्ञान हर लिया गया है, जिनका ज्ञान नष्ट होगया है, वे

अपात्रेभ्यः [१७.२२ सं(फल ४.३)] कुपात्रों को, अयोग्य पुरुषों को

अपानम् [४.२९ सं(राम २.१)] भीतर आने वाली श्वास

अपाने [४.२९ सं(राम ७.१)] भीतर आने वाली श्वास में

अपावृतम् [२.३२ वि(फल १.१)] खुला हुआ

अपि [(अ] भी, से भी, ज्यों, फिर भी, तो भी, साथ ही, ही

अपुनरावृत्तिम् [५.१७ सं(मति २.१)] न फिर लौट कर आने की स्थिति, को

अपैशुनम् [१६.२ सं(फल १.१)] छल कपट का न होना, निष्कपट, पीठ पीछे निन्दा न करना

अपोहनम् [१५.१५ सं(फल १.१)] तर्क की काट, प्रतिवाद, शंका का निराकरण, उन सब विषयों का निराकरण जो विचारणीय विषय के बाहर हो, अभाव, दूर होना, विस्मरण

अप्रकाशः [१४.१३ सं(राम १.१)] अंधकार, अज्ञान

अप्रतिमप्रभावः [११.४३ वि(राम १.१) (अप्रतिमः प्रभावः यस्य सः)] वह जिसकी शक्ति अद्वितीय (है), अनुपम प्रभाव वाले

अप्रतिष्ठः [६.३८ वि(राम १)] अस्थिर, डावाँडोल

अप्रतिष्ठम् [१६.८ वि(फल १.१)] बिना आधार के, बिना नींव के

अप्रतीकारम् [१.४६ वि(राम २.१)] बिना सामना किए, बिना प्रतिकार किए, (विना बदला लिए) (विरोध न करते हुए) प्रतिकार या विरोध न करने वाले को

अप्रदाय [३.१२ (अ.) (अ + प्र + √दा + ल्यप्)] बिना लौटाए, बिना दिए

अप्रमेयम् [११.१७, ४२ वि(राम २.१)] अमित, अपार, अमापनीय

अप्रमेयस्य [२.१८ वि(राम ६.१)] अमापनीय का, अपार का।

अप्रवृत्तिः [१४.१३ सं(मति १.१)] अक्रियता, निष्क्रियता

अप्राप्य [६.३७, ९.३, १६.२० (अ.) (अ-प्र + √आप् स्वा P + ल्यप्)] प्राप्त न करके, न पाकर

अप्रियम् [५.२० वि(राम २.१/फल २.१)] अप्रिय वस्तु, असुखद

अप्सु [७.८ सं(अप् सदैव बहुवचन) ७.३)] जल में

अफलप्रेप्सुना [१८.२३ वि(साधु ३.१) (न फलस्य प्रेप्सुना)] फल की इच्छा से रहित के द्वारा, फल वितृष्ण के द्वारा

अफलाकाङ्क्षिभिः [१७.११, १७ वि(शशिन् ३.३) (न फलस्य काङ्क्षिभिः)] जिन्हें फल की इच्छा नहीं उनके द्वारा, जो फल के इच्छुक नहीं उनके द्वारा

अबुद्धयः [७.२४ वि(हरि १.३)] अविवेकी लोग, बुद्धिहीन जन

अब्रवीत् [१.२, २८, ४.१ (√ब्रू अदा. P लङ् ३.१)] कहा, बोले

अभक्ताय [१८.६७ सं(राम ४.१)] जो बिना भक्ति के है उसे, जो भक्त नहीं है उसको

अभयम् [१०.४, १६.१ सं(फल १.१)] अभय, निडरता

अभवत् [१.१३ (√भू भ्वा. P लङ् ३ १)] था, हुआ

अभावः [२.१६; १०.४ सं(राम १.१)] अनस्तित्व, जिसका अस्तित्व नहीं अविद्यमानता, नाश

अभावयतः [२.६६ सं(ध्यायत् ६.१) (वि √भू भ्वा P + णिच् + शतृ)] मनन चिन्तन न करने वाले को, ध्यान रहित को

अभाषत [११.१४ (√भाष् भ्वा A लङ् ३.१)] कहा, बोला

अभिक्रमनाशः [२.४० सं(राम १.१) (अभिक्रमस्य नाशः)] प्रारम्भ (किये हुए) का नाश, प्रयत्न का लोप

अभिजनवान् [१६.१५ वि(धीमत् १.१)] कुलीन

अभिजातः [१६.५ सं(राम १.१)] पैदा हुआ, जन्मा हुआ

अभिजातस्य [१६.३, ४ सं(राम ६.१(] जन्मे हुए का

अभिजानन्ति [९.२४ (अभि + √ज्ञा क्र्या. P लट् ३.३)] (वे) जानते हैं

अभिजानाति [४.१४, ७.१३, २५, १८.५५ (अभि √ज्ञा क्र्या P लट् ३.१)] (वह) भली प्रकार जानता है

अभिजायते [२.६२, ६.४१, १३.२३ (अभि + √ जन् दिवा A लट् ३.१)] उत्पादित, प्रस्तुत होता है, उत्पन्न होता है

अभितः [५.२६ (अ)] पास, दोनों ओर, आसपास

अभिधास्यति [१८.६८ (अभि + √धा P लृट् ३.१)] कहेगा, प्रचार करेगा, बतलाएगा

अभिधीयते [१३.१, १७.२७, १८.११ (अभि + √धी जुहो + कर्मणि A लट् ३.१)] कहलाता है, नाम दिया जाता है

अभिनन्दति [२.५७ (अभि + √नन्द् भ्वा P लट् ३.१)] (वह) आनन्द मानता है, हर्षित होता है

अभिप्रवृत्तः [४.२० (सं(राम १.१)] पूरी तरह प्रवृत्त हुआ (लगा हुआ)

अभिभवति [१.४० (अभि + √भू P लट् ३.१)] (पर) विजयी होता है, दबा देता है, हरा देता है

अभिभूय [१४.१० (अ.) (अभि + √भू - भव्- भ्वा P + ल्यप्)] पराजित करके, दबाकर

अभिमानः [१६.४ सं(राम १.१)] घमण्ड, अभिमान, गर्व

अभिमुखाः [११.२८ वि(राम १.३)] की ओर मुख किए हुए

अभिरक्षन्तु [१.११ (अभि + √रक्ष् भ्व. P लोट् ३.३)] रक्षा करें

अभिरतः [१८.४५ वि(राम १.१)] लगा हुआ, व्यस्त

अभिविज्वलन्ति [११.२८ (अभि + वि + √ज्वल् भ्वा P लट् ३.३)] धधकते हुए, लपटों वाले

अभिसंधाय [१७.१२ (अ.) क्रि.वि.(अभि-सम् ध्यै-णिच् ल्यप्)] ध्येय करके, उद्देश्य से

अभिहिता [२.३९ वि.(विद्या १.१) (अभि + √धा जुहो A/P क्त)] बताई गई, कही हुई

अभ्यधिकः [११.४३ वि(राम १.१)] से बढ़कर या श्रेष्ठ होना, अधिक से आगे बढ़ना

अभ्यर्च्य [१८.४६ (अ.) (अभि + √अर्च् भ्वा P + ल्यप्)] पूजा करके

अभ्यसूयकाः [१६.१८ सं(राम १.३)] छिद्रान्वेषण करने वाले, दोष निकालने वाले

अभ्यसूयति [१८.६७ (अभि + √अस् A/P P लृट् ३.१)] छिद्रान्वेषण करता है, दोष निकालता है

अभ्यसूयन्तः [३.३२ वि(ध्यायत् १.३)] छिद्रान्वेषण करते हुए, दोष निकालते हुए, कुड़ कुड़ाते हुए

अभ्यहन्यन्त [१.१३ (अभि + √हन् P अदा लङ् ३.३)] बजे, बज उठे

अभ्यासयोगयुक्तेन [८.८ वि.(फल३.१) (अभ्यासेन च योगेन च युक्तेन)] अभ्यास द्वारा योग से युक्त, (सन्तुलित, लीन)

अभ्यासयोगेन [१२.९ सं(राम ३.१)] अभ्यास के योग से

अभ्यासात् [१२.१२, १८.३६ सं(राम ५.१)] अभ्यास से, अभ्यास की अपेक्षा

अभ्यासे [१२.१० सं(राम ७.१)] अभ्यास में

अभ्यासेन [६.३५ सं(राम ३.१)] अभ्यास से

अभ्युत्थानम् [४.७ सं(फल १.१)] उठता है, उत्थान होता है, बढ़ता है।

अमलान् [१४.१४ वि(राम २.३)] निर्मल, निष्कलंक

अमानित्वम् [१३.७ सं(फल १.१)] अभिमान का अभाव, नम्रता, दूसरों से सम्मानित होने की अभिलाषा का अभाव

अमितविक्रमः [११.४० वि(राम १.१) (अमितः विक्रमः यस्य सः)] वह जिसकी शक्ति असीम (अपार, अमापनीय) है

अमी [११.२१, २६.२८ सर्व(अदस् पु. १.३)] ये

अमुत्र [६.४० (अ.)] परलोक में

अमूढाः [१५.५ सं(राम १.३)] जो मोहित नही होते, ज्ञानीजन

अमृतत्वाय [२.१५ सं(फल ४.१)] अमरता के लिए, अमरत्व के लिए

अमृतम् [९.१९, १०.१८, १३.१२, १४.२० सं(फल १.१/२.१)] अमरता, अमरत्व

अमृतस्य [१४.२७ सं(फल ६.१)] अमृत का, अमरत्व का

अमृतोद्भवम् [१० २७ सं(फल २.१) (अमृतात् उद्भवः यस्यभतम्)] उसको जिसकी उत्पत्ति अमृत से (है), अमृत मंथन के समय उत्पन्न

अमृतोपमम् [१८.३७, ३८ सं(फल १.१) (अमृतम् उपमा यस्य तत्)] वह जिसकी उपमा अमृत है, अमृत के समान

अमेध्यम् [१७.१० वि(फल १.१)] अस्वच्छ, अपवित्र, अयज्ञीय

अम्बुवेगाः [११.२८ सं(राम १.३) (अम्बूनां वेगाः)] जल प्रवाह, धारा बहते जल की, प्रचण्ड धारा

अम्भसा [५.१० सं(मनस् ३.१)] जल से

अम्भसि [२.६७ सं(मनस् ७.१)] जल में

अयम् [२.१९.. सर्व(इदम् पु १.१)] यह, यह मनुष्य

अयज्ञस्य [४.३१ वि(राम ६.१)] यज्ञ न करने वाले का

अ-यति [६.३७ सं(मुनि १.१)] जो दमन न कर सका हो, जो अपने को वश में न कर पाए

अयथावत् [१८.३१ (अ.)] अनुचित रीति से, जो ठीक न हो

अयनेषु [१.११ सं(फल ७.३)] सेना की पंक्तियों में, नियुक्त स्थान में

अयशः [१०.५ सं(मनस् १.१)] अयश, अकीर्ति, कुख्याति, कलंक

अयुक्तः [५.१२, १८.२८ वि(राम १.१) (अ + √युज् चुरा P + क्त)] जो युक्त नहीं, असंतुलित, विसंगत

अयुक्तस्य [२.६६ वि(राम ६.१)] अनियंत्रित का, असंतुलित का

अयोगतः [५.६ (अ.) (अ + योग +

तसिल्)] बिना योग के

अरतिः [१३.१० सं(मति १.१)] अरुचि, अप्रीति

अरागद्वेषतः [१८.२३ (न रागात् वा द्वेषात् वा)] बिना प्रेम के अथवा द्वेष के अथवा, बिना राग द्वेष के

अरिसूदन [२.४ सं(राम ८.१) (अरीणां सूदन)] हे शत्रुओं को मारने वाले

अर्चितुम् [७.२१ (√अर्च् भ्वा P + तुमुन्)] पूजना, पूजने के लिए

अर्जुन [२.२.. सं(राम ८.१)] हे अर्जुन

अर्जुनः [१.२१.. सं(राम १.१)] अर्जुन

अर्जुनम् [१.५० सं(राम २.१)] अर्जुन (को)

अर्थः [२.४६, ३.१८ सं(राम १.१)] अर्थ, प्रयोजन, स्वार्थ, उपयोग, प्रयोग, व्यवहार, से सम्बन्ध रखना, के लिए महत्त्व रखना

अर्थकामान् [२.५ सं(राम २.३) (अर्थं कामयन्ते इति तान्)] वे जो धन के लोलुप हैं, वे जो अर्थ की कामना वाले हैं

अर्थव्यपाश्रयः [३.१८ सं(राम १.१) (अर्थस्य व्यपाश्रयः)] स्वत्व (लाभ, हित स्वार्थ) की निर्भरता, (अधीनता पराव- लम्बन), व्यक्तिगत लाभ

अर्थसंचयान् [१६.१२ सं(राम २.३) (अर्थस्य संचयान्)] धन का संग्रहण, द्रव्य का समूहीकरण

अर्थार्थी [७.१६ वि(शशिन् १.१) (अर्थम् अर्थयते इति)] इस प्रकार धन चाहने वाला, धन का इच्छुक

अर्थे [१.३३, २.२७ ३.३४. (अ.) (राम ७.१)] लिए, वास्ते, के कारण, विषय में

अर्पणम् [४.२४ सं(फल १.१)] भेंट की क्रिया, अर्पण

अर्पितमनोबुद्धिः [८.७, १२.१४ वि(मुनि १.१) (अर्पिते, मनः च बुद्धिः च यस्य सः)] वह जो मन और बुद्धि को अर्पण किए है, (भेंट किए है)

अर्यमा [१०.२९ सं(अर्यमन् १.१)] (पितरों का देवता) अर्यमा

अर्हति [२.१७ (√अर्ह् भ्वा P लट् ३.१)] योग्य है

अर्हसि [२.२५ - २७, ३०, ३१ ३.२०, ६.३९, १०.१६, ११.४४, १६.२४ (√अर्ह् भ्वा P लट् २.१)] (तुझे) योग्य है, (तुझे) करना चाहिए

अर्हाः [१.३७ वि.(राम १.३) (√अर्ह + अच्)] योग्य, चाहिए

अलसः [१८.२८ वि(राम १.१)] आलसी

अलोलुप्त्वम् [१६.२ सं(फल १.१)] लोलुपता का न होना, लिप्सा का अभाव

अल्पबुद्धयः [१६.९ सं(हरि १.३) (अल्पा बुद्धिः येषां ते)] वे जिनकी बुद्धि थोड़ी है, मंदमति

अल्पम् [१८.२२ वि(फल १.१)] तुच्छ, छोटा

अल्पमेधसाम् [७.२३ वि(चन्द्रमस् ६.३) (अल्पा मेधा येषां तेषाम्)] उनको जिनकी बुद्धि थोड़ी है, अल्प बुद्धि वालों का

अवगच्छ [१०.४१ (अव + √गम् भ्वा P लोट २.१)] पहिचानना, मानलेना

अवजानन्ति [९.११ (अव + √ज्ञा क्र्या P लट् ३.३)] तिरस्कार करना, तुच्छ समझना

अवज्ञातम् [१७.२२ वि(फल १.१)] निन्दित, तिरस्कार पूर्वक

अवतिष्ठति [१४.२३ (अव + √स्था भ्वा P लट्३.१)] अलग खड़ा रहता है, स्थिर रहता है, ठहरता है

अवतिष्ठते [६.१८ (अव + √स्था भ्वा A लट् ३.१)] बैठता है, ठहरता है, स्थिर होता है

अवध्यः [२.३० वि(राम १.१)] अभेद्य, जिसका भेद, छेदन या विभाग न हो सके

अवनिपालसंघैः [११.२६ सं(राम ३.३) (अवनिं पालयन्ति इति तेषां संघैः)] समुदाय सहित उनके जो इस प्रकार पृथ्वी का पालन करते हैं; राजाओं के समूह सहित

अवरम् [२.४९ वि(फल १.१)] निम्न, निकृष्ट, तुच्छ

अवशः [३.५, ६.४४, ८.१९; ६०वि(राम १.१)] असहाय, निराश्रय, विवश हुआ

अवशम् [९.८ वि(राम २.१)] असहाय, निस्सहाय, निराश्रय, निरवलम्ब

अवशिष्यते [७.२ (अव + √शिव् चुरा + कर्मणि A लट् ३.१)] शेष रहता है, बचता है,

अवष्टभ्य [९.८, १६.९ (अ.) (अव + √स्तम्भ् + ल्यप्)] घिरा हुआ, आश्रय लेकर

अवसादयेत् [६.५ (अव + √सद् P भ्वा + णिच् चुरा विधिलिङ् ३.१)] अधः पतन करना चाहिए, नीचे गिराना चाहिए, पदावनत करना चाहिए, अवनत करना चाहिए

अवस्थातुम् [१.३० (अ.) (अव + √स्था P + तुमुन्)] खड़ा होना

अवस्थितः [९.४, १३.३२ (अव + √स्था भ्वा P + क्त) वि(राम १.१)] स्थित हुआ, प्रतिष्ठित हुआ

अवस्थितम् [१५.११ वि(राम २.१)] स्थित हुआ

अवस्थिताः [१.११, ३३; २.६, ११.३२ वि(राम १.३) (अव + √स्था भ्वा P + क्त)] खड़े हुए, खड़े हैं, खड़ा किए हुए, व्यवस्थित

अवस्थितान् [१.२२, २७ वि(राम २.३) (अव + √स्था भ्वा P + क्त)] खड़े हुए

अवहासार्थम् [११.४२ (अ.) (अवहासस्य अर्थम्)] विनोद के कारण, हंसी मजाक में

अवाच्यवादान् [२.३६ सं(राम २.३) (अवाच्यान् वादान्)] न कहने योग्य बातें, अनुचित बातें

अवाप्तव्यम् [३.२२ (अव-√आप् + क्तव्य फल १.१)] प्राप्त करने योग्य

अवाप्तुम् [६.३६ (अ.) अव + √आप् स्वा P + तुमुन्] प्राप्त होना, प्राप्त करने के लिए, प्राप्त करना

अवाप्नोति [१५.८, १६.२३, १८.४६ (अव् + √आप् स्वा P लट् ३.१)] प्राप्त करता है

अवाप्य [२.८ (अ.) (अव + √आप् स्वा P + ल्यप्)] प्राप्त करके

अवाप्यते [१२.५ (अव + √आप् स्वा A कर्म लट् ३.१)] प्राप्त की जाती है

अवाप्स्यथ [३.११ (अव + √आप् स्वा P लृट् २.३)] (तुम) प्राप्त करोगे, पाओगे

अवाप्स्यसि [२.३३, ३८,५३; १२.१० (अव + √आप् स्वा P लृट् २.१)] प्राप्त करेगा, प्राप्त करेगा

अविकम्पेन [१०.७ वि(राम ३.१) (न विकम्पते इति तेन)] नहीं डोलता है उस (से), अचल

अविकार्यः [२.२५ वि(राम १.१)] अपरिवर्तनशील, जो बदले न

अविज्ञेयम् [१३.१५ वि(फल १.१)] जो जाना न जाए, अज्ञेय

अविद्वांसः [३.२५ सं(विद्वस् १.३)] अज्ञानी, अविवेकी (लोग)

अविधिपूर्वकम् [९.२३, १६.१७ सं(हरि २.१) (अविधिपूर्वं यथा स्यात् तथा)] बिना विधि के, विधिरहित

अविनश्यन्तम् [१३.२७ वि(ध्यायत् २.१) (अ + वि + √नश् + शतृ + अम्) अविनाशी, नष्ट न होते हुए

अविनाशि [२.१७ वि.(वारि १.१)] अनश्वर, अविनाशी

अविनाशिनम् [२.२१ (वि(शशिन् २.१)] अविनाशी को

अविपश्चितः [२.४२ वि(मरुत् १.३)] अविवेकी, अज्ञानी, मूर्ख, ना समझ लोग

अविभक्तम् [१३.१६, १८.२० वि(राम २.१)] अविभाजित, अखंडित, अलग अलग नहीं

अवेक्षे [१.२३ अव् + √ ईक्ष् भ्वा A लट् १.१)] देखता, (हूं) देखूं

अवेक्ष्य [२.३१ (अव + √ईक्ष् भ्वा A + ल्यप्)] देखकर

अव्यक्तः [२.२५, ८.२०, २१ वि(राम १.१)] अप्रत्यक्ष, जो प्रकट नहीं, दिखाई न देने वाला

अव्यक्तनिधनानि [२.२८ वि(फल १.३) (अव्यक्तं निधनं येषां तानि)] वे जिनका विनाश अप्रत्यक्ष है, वे जिनके मरने

के बाद की स्थिति प्रकट नहीं

अव्यक्तम् [७.२४, १२.१, ३, १३.५ वि(राम २.१) (फल २.१)] अप्रकट, अप्रत्यक्ष

अव्यक्तमूर्तिना [९.४ सं(मुनि ३.१) (अव्यक्ता मूर्तिः यस्य तेन)] उससे जिसका स्वरूप अप्रकट है, अव्यक्त स्वरूप वाले (से)

अव्यक्तसंज्ञके [८.१८ सं(राम ७.१) (अव्यक्तं संज्ञा यस्य तस्मिन)] जिसका "अव्यक्त" नाम है, उसमें

अव्यक्ता [१२.५ वि(विद्या १.१)] अव्यक्त, अप्रत्यक्ष, अप्रकट

अव्यक्तात् [८.१८, २० (राम ५.१)] अप्रकट, अप्रत्यक्ष (से), (की अपेक्षा)

अव्यक्तादीनि [२.२८ वि.(वारि १.३) (अव्यक्तम् आदिः येषां तानि)] वे जिनका आरंभ प्रकट नहीं

अव्यक्तासक्तचेतसाम् [१२.५ सं(मनस् ६.३) (अव्यक्ते आसक्तम् चेतः येषां ते)] वे जिनका मन लगा है अप्रत्यक्ष में, अव्यक्त के चिंतकों को

अव्यभिचारिणी [१३.१० वि(नदी १.१)] न भटकती हुई, एकनिष्ठ

अव्यभिचारिण्या [१८.३३ वि(नदी ३.१)] अटल, दृढ़, जो डाँवाँ डोल न हो, डगमगाए न उससे

अव्यभिचारेण [१४.२६ वि(राम ३.१)] बिना भटकते हुए, एकनिष्ठ

अव्ययः [११.१८,१३.३१; १५.१७ वि(राम १.१)] अक्षय, अविनाशी, अनन्त

अव्ययम् [२.२१,४.१, १३; ७.१३,२४,२५; ९.२,१३,१८; ११.२,४; १४.५; १५.१५; १८.२०,५६ वि(राम २.१)] जिसका ह्रास न हो, नाश रहित, अव्यय, अक्षय, असीम, अनन्त अपार

अव्ययस्य [२.१७ १४.२७ वि(राम ६.१)] अविकारी (का) अक्षय (का)

अव्ययात्मा [४.६ वि.(आत्मन् १.१) (अव्ययः आत्मा यस्य सः)] वह जिसकी आत्मा का ह्रास नहीं होता, अविनाशी

अव्ययाम् [२.३४ वि(राम २.१)] जिसका ह्रास न हो, अविनाशी

अव्यवसायिनाम् [२.४१ वि(शशिन् ६.३)] अनिश्चय विचार वालों की, डाँवाँ डोल मति वालों की, दुलमुलों की

अशक्तः [१२.११ सं(राम १.१)] असमर्थ, योग्य नहीं , नहीं कर सकता (जो)

अशमः [१४.१२ सं(राम १.१)] अशांति

अशस्त्रम् [१.४६ वि(राम २.१)] बिना अस्त्र वाले को, निरस्त्र को

अशान्तस्य [२.६६ सं(राम ६.१)] अशान्त का, जिसे शान्ति न हो उसे

अशाश्वतम् [८.१५ वि(फल २.१)] सदा न रहने वाला, अनित्य, अशाश्वत

अशास्त्रविहितम् [१७.५ वि(फल २.१) (न शास्त्रेण विहितम्)] शास्त्रों के आदेशानुसार नहीं , शास्त्र निषिद्ध

अशुचिः [१८.२७ सं(हरि १.१)] अपवित्र

अशुचिव्रताः [१६.१० वि(राम १.३) (अशुचीनि व्रतानि येषां ते)] वे जिनके प्रण अशुभ हैं, अमंगल निश्चय वाले

अशुचौ [१६.१६ सं(हरि ७.१)] अपवित्र, अशुद्ध, गन्दा, बीभत्स (में)

अशुभात् [४.१६, ९.१ सं(राम /फल ५.१)] अशुभ से, पाप से, विपत्ति (अनिष्ट) से, बुराई से

अशुभान् [१६.१९ सं(राम २.३)] अपवित्रों, अशुद्धों, गन्दों (को)

अशुश्रूषवे [१८.६७ वि(गुरु ४.१)] जो ध्यान पूर्वक सुनना नहीं चाहता

अशेषतः [६.२४, ३९, ७.२, १८.११ (अशेष + तस्) (अ.)] निःशेष, पूर्ण रीति से

अशेषेण [४.३५, १०.१६, १८.२९, ६३ क्रिवि/ सं(राम ३.१)] निःशेष, पूर्ण रीति से

अशोच्यान् [२.११ (राम २.३)] शोक न करने योग्यों (को)

अशोष्यः [२.२४ वि(राम १.१)] जो सूख न सके, न सूखने वाला

अश्नन् [५.८ वि. (ध्यायत् १.१) (√अश् क्र्य P शतृ)] खाते हुए

अश्नन्ति [९.२० (√अश् क्र्या P लट् ३.३)] खाते हैं, सेवन करते है

अश्नामि [९.२६ (√ अश् क्र्या P लट् १.१)] मैं सेवन करता हूं, खाता हूं

अश्नासि [९.२७ (√अश् क्र्या P लट् २.१)] (तू) खाता है, सेवन करता है

अश्नुते [३.४, ५.२१, ६.२८, १३.१२, १४.२० (√अश क्र्या. A लट् ३.१)] प्राप्त करता है, पाता है

अश्रद्दधानः [४.४० वि(राम १.१)] श्रद्धा रहित, बिना विश्वास किए हुए

अश्रद्दधानाः [९.३ वि(राम १.३)] श्रद्धा हीन, अविश्वासी (लोग)

अश्रद्धया [१७.२८ सं(विद्या ३.१)] बिना श्रद्धा से

अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् [२.१ वि(फल १.२) (अश्रुभिः पूर्णेच आकुले च ईक्षणे यस्य तम्)] उसे जिसकी आखें आसुओं से भरी और बेचैन हैं

अश्रौषम् [१८.७४ (√ श्रु स्वा P लुङ् १.१)] सुना

अश्वत्थः [१०.२६ सं(राम १.१)] पीपल

अश्वत्थम् [१५.१, ३ सं(राम २.१)] अश्वत्थ वृक्ष को, (पीपल के वृक्ष को)

अश्वत्थामा [१.८ सं(आत्मन् १.१)] अश्वत्थामा

अश्वानाम् [१०.२७ सं(राम ६.३)] घोड़ो में, तुरंगो में

अश्विनौ [११.६, २२ सं(शशिन् २.२)] दोनों अश्विनी कुमारों को

अष्टधा [७.४ (अ.)] आठ प्रकार की

असंन्यस्तसंकल्पः [६.२ वि(राम १.१) (न संन्यस्तः संकल्पः येन सः)] वह

जिसके द्वारा संकल्पों का त्याग नहीं हुआ, वह जिसने संकल्पों का त्याग नहीं किया (संकल्प-काम करने की इच्छा)

असंमूढः [५.२०, १०.३, १५.१९ वि(राम १.१)] मोह रहित, असम्भ्रान्त

असंमोहः [१०.४ सं(राम १.१) (अ + संमोहः)] मोह राहित्य, घबराहट का अभाव

असंयतात्मना [६.३६ सं(आत्मन् ३.१) (असंयतः आत्मा यस्य तेन)] उससे जिसकी आत्मा वश में नहीं है, जो अपने आप को संयम में नहीं रखता उससे

असंशयः [८.७, १८.६८ सं(राम १.१)] निस्सन्देह

असंशयम् [६.३५, ७.१ क्रि.वि.)] निस्सन्देह

असक्तः [३.७, १९, २५ वि(राम १.१)] आसक्ति रहित, संगरहित

असक्तबुद्धिः [१८.४९ सं(हरि १.१) (असक्ता बुद्धिः यस्य सः)] वह जिसकी बुद्धि आसक्ति रहित है, अनासक्त बुद्धि वाला

असक्तम् [९.९, १३.१४ वि(फल २.१)] आसक्ति रहित, संगरहित

असक्तात्मा [५.२१ (आत्मन् १.१) (असक्तः आत्मा यस्य सः)] वह जिसकी आत्मा आसक्त (अनुरक्त) नहीं, जिसका मन - लगा हुआ नहीं

असक्तिः [१३.९ सं(मति १.१)] अनासक्ति, संगरहित

असंगशस्त्रेण [१५.३ सं(राम ३.१) (असंगस्य शस्त्रेण)] अनासक्ति के शस्त्र से

असत् [९.१९, ११.३७, १३.१२, १७.२८ वि(ध्यायत् १.१)] जिसका अस्तित्व नहीं, असत्

असतः [२.१६ वि(राम् ६.१)] जो नहीं है उसका, जिसका अस्तित्व नहीं है उसका, जो कल्पित है उसका,

असत्कृतः [११.४२ वि(राम १.१)] अपमान किया हुआ, असम्मानित

असत्कृतम् [१७.२२ वि(फल १.१)] बिना मान किए, बिना सत्कार के

असत्यम् [१६.८ सं(राम १.१) (फल १/२.१)] असत्य

असद्ग्राहान् [१६.१० सं(राम २.३) (असतः ग्राहान्)] बुरी लत, दुर्व्यसन

असपत्नम् [२.८ वि(फल २.१)] अद्वितीय, बेजोड़, बिना प्रतिद्वंदी के

असमर्थः [१२.१० वि.(राम १.१)] असमर्थ (है), योग्य नहीं

असि [४.३,३६... (√अस् अदा. P लट् २.१)] (तू) है

असितः [१०.१३ सं(राम १.१)] असित (ऋषि)

असिद्धौ [४.२२ सं(मति ७.१)] असफलता में

असुखम् [९.३३ वि(राम २.१)] सुखरहित

असृष्टान्नम् [१७.१३ वि(फल २.१) (न सृष्टम् अन्नम् यस्मिन् तत्)] वह जिसमें भोजन नहीं दिया जाता है, बिना अन्नदान का

असौ [११.२६, १६.१४ सर्व.(अदस् पु १.१)] यह, वह

अस्ति [२.४०.. (√अस् अदा P लट् ३.१)] है

अस्तु [२.४७, ३.१०, ११.३१, ३९.४० (√ अस् अदा P लोट् ३.१)] होवे, हो

अस्थिरम् [६.२६ वि(फल १.१)] अस्थिर, चंचल

अस्मदीयैः [११.२६ वि(सार्व. ३.३)] (उन) अपनों के साथ

अस्माकम् [१.७.१० सर्व(अस्मद् ६.३)] हमारा, हम में

अस्मात् [१.३९ सर्व(इदम् पु ५.१)] इस से

अस्मान् [१.३६ (सर्व(अस्मद् २.३)] हमें

अस्माभिः [१.३९ सर्व(अस्मद् ३.३)] हमारे द्वारा

अस्मि [७.८, ९,१०.. (√अस् अदा P लट् १.१)] (मैं) हूं

अस्मिन् [१.२२.२.१३, ३.३; ८.२, १३.२२, १४.११, १६.६ (सर्व इदम् पु ७.१) नपु. ७.१)] इसमें

अस्य [२.१७, ४० (सर्व इदम् पु ६.१) (नपु ६.१)] इसका, उसका, इस

अस्याम् [२.७२ सर्व(इदम् स्त्री ७.१)] इसमें

अस्वर्ग्यम् [२.२ वि(फल १.१)] अस्वर्गीय, जो स्वर्ग की ओर न ले जाए

अहः [८.१७, २४ सं(अहन् २.१)] दिन

अहंकारः [७.४, १३.५ सं(राम १.१)] अहंकार, वैयक्तिकता, विशिष्टता

अहंकारम् [१६.१८, १८.५३, ५९ सं(राम २.१)] अहंकार (को)

अहंकारविमूढात्मा [३.२७ सं(आत्मन् १.१) (अहंकारेण विमूढः आत्मा यस्य सः)] वह जिसकी आत्मा अहंकार से मोहित है, अहंकार से मूढ हुआ (मनुष्य)

अहंकारात् [१८.५८ सं(राम ५.१)] अहंकार से, अहंकार की अपेक्षा

अहंकृतः [१८.१७ वि(राम १.१)] अहंकारी

अहत्वा [२.५ (अ.) (न + √हन् + क्त्वाच्) क्रिया) वि.] न मारकर, बध न करके

अहम् [१.२२, २३... (सर्व. अस्मद् १.१)] मैं

अहरागमे [८.१८, १९ सं(राम ७.१) (अह्नः आगमे)] दिन के आगमन में, दिन निकलने पर

अहिंसा [१०.५, १३.७, १६.२, १७.१४ सं(विद्या १.१)] अहिंसा

अहिताः [२.३६, १६.९ सं(राम १.३)] अहित कारी, अनिष्ट कारी

अहैतुकम् [१८.२२ क्रि.वि.)] बिना कारण के, बिना किसी अर्थ के

अहो [१.४५ (अ.)] हाय

अहोरात्रविदः [८.१७ वि.(मरुत् १.३) (अहः च रात्रिं च विदन्ति इति)] इस प्रकार दिन और रात जानते हैं (जो)

आ

आ [८.१६ (अ.)] तक, पर्यन्त

आकाशम् [१३.३२ सं(राम २.१] आकाश, अन्तरिक्ष

आकाशस्थितः [९.६ वि(राम १.१) (आकाशे स्थितः)] आकाश में स्थित, आकाश में रहता हुआ

आख्यातम् [१८.६३ सं(फल १.१) (आ + √ख्या अदा + क्त)] कहा है

आख्याहि [११.३१ (आ + √ख्या A/P लोट् २.१)] (आप) बतलाइए

आगच्छेत् [३.३४ (आ + √ गम् + भ्वा P विधि लिङ् ३.१)] (उसे) आने दो, आवे

आगताः [४.१०, १४.२ वि(राम १.३) (आ + √गम् + क्त)] आए हुए (हैं) प्राप्त हुए हैं

आगमापायिनः [२.१४ सं(शशिन् १.३) (आगमः च अपायः च येषां ते)] वे जो आते हैं और जाते हैं, आने जाने वाले

आचरतः [४.२३ (ध्यायत् ६.१) (आ + √ चर् भ्वा P + शतृ)] करते हुए, (कर्म) करने वाले का

आचरति [३.२१, १६.२२ (आ + √चर् भ्वा P ३.१)] करता है

आचरन् [३.१९ (ध्यायत् १.१) (आ + √चर् + शतृ)] करते हुए, आचरण करता हुआ

आचारः [१६.७ सं(राम १.१)] शुद्ध आचार व्यवहार, भला चाल चलन

आचार्य [१.३ सं(राम ८.१)] हे आचार्य

आचार्यम् [१.२ सं(राम २.१)] आचार्य, गुरु (को)

आचार्याः [१.३४ सं(राम १.३)] गुरु जन

आचार्यान् [१.२६ सं(राम २.३)] गुरुलोग (को)

आचार्योपासनम् [१३.७ सं(फल १.१) (आचार्यस्य उपासनम्)] गुरु सेवा, आचार्य की सेवा

आज्यम् [९.१६ सं(फल १.१)] घी, आहुति

आढ्यः [१६.१५ वि(राम १.१)] धनवान्

आततायिनः [१.३६ सं(शशिन् २.३)] अत्याचारी मनुष्यों को, घोर पाप करने वाले आदमियों को; शास्त्रकारों के अनुसार किसी के घर, संपत्ति या खलिहान में आग लगाने वाला, प्राण लेने के लिए विष देने वाला, शस्त्र से हत्या करने वाला, भूमि छीनने वाला, धन हड़पने वाला और स्त्री का अपहरण करने वाला; ये ६ प्रकार के काम करने वाले आततायी माने जाते हैं (संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर)

आतिष्ठ [४.४२ (आ + √स्था भ्वा P लोट् २.१)] आचरण कर, अभ्यास कर

आत्थ [११.३ (√ब्रू अदा P लट् २.१)] (तू) कहता है

आत्मकारणात् [३.१३ सं(राम ५.१) (आत्मनः कारणात्)] अपने लिए

आत्मतृप्तः [३.१७ वि(राम १.१) (आत्मना तृप्तः)] अपने द्वारा ही संतुष्ट, आत्मा में तृप्त

आत्मनः [४.४२, ५.१६.६.५, ६.११, १९; ८.१२; १०.१८, ६.२१, २२, १७.१९, १८.३९ सं(आत्मन् ६.१)] आत्मा का, अपना

आत्मना [२.५५, ३.४३; ६.५, ६.२०; १०.१५;१३.२४, २८ सं(आत्मन् ३.१)] आत्मा से, अपने से, (द्वारा) अपने आप

आत्मनि [२.५५, ३.१७, ४.३५, ३८, ५.२१, ६.१८, २०, २६, २९; १३.२४, १५.११ सं(आत्मन् ७.१)] आत्मा में, अपने में

आत्मपरदेहेषु सं (राम.७.३) [१६.१८ (आत्मनः च परेषां च देहेषु)] अपने और दूसरे के शरीरों में

आत्मबुद्धिप्रसादजम् [१८.३७ सं(फल १.१) (आत्मनः बुद्धेः प्रसादात् जातम्)] आत्माके ज्ञान की शान्ति से उत्पन्न, आत्मज्ञान की सौम्यता से उत्पन्न

आत्मभावस्थः [१०.११ वि(राम १.१) (आत्मनः भावे स्थितः)] निज के स्वभाव में स्थित, (दृढ़)

आत्ममायया [४.६ सं(विद्या ३.१) (आत्मनः मायया)] अपनी माया से

आत्मयोगात् [११.४७ सं(राम ५.१) (आत्मनः योगात्)] आत्मयोग से, अपने योग बल से, अपनी योग शक्ति द्वारा

आत्मरतिः [३.१७ सं(हरि १.१) (आत्मनि रतिः यस्य सः)] वह जिसका आनन्द अपने में है, आत्म मग्न, आत्म सुखी

आत्मवन्तम् [४.४१ वि(धीमत् २.१)] अपने को वश में करते हुए, आत्मनिष्ठ व्यक्ति को

आत्मवश्यैः [२.६४ वि(राम ३.३) (आत्मनः वश्यैः)] निज के नियन्त्रण से, अपने वश में की हुई (इन्द्रियों) से

आत्मवान् [२.४५ वि(धीमत् १.१)] आत्म परायण, आत्म भाव से भरपूर, आत्मनिष्ठ

आत्मविनिग्रहः [१३.७, १७.१६ सं(राम १.१)] आत्म संयम, आत्म नियन्त्रण

आत्मविभूतयः [१०.१६, १९, सं(मति १.३) (आत्मनः विभूतयः)] अपनी महिमांए, अपना प्रताप, अपनी विभूतियां

आत्मविशुद्धये [६.१२ सं(मति ४.१) (आत्मनः विशुद्धये)] आत्म शुद्धि के लिए

आत्मशुद्धये [५.११ सं(मति ४.१) (आत्मनः शुद्धये)] आत्म शुद्धि के लिए

आत्मसंभाविताः [१६.१७ वि(राम १.३)

(आत्मना संभाविताः)] अपने से स्तुत्य, अपनी श्लाघा करने वाले, अपनी बड़ाई करने वाले

आत्मसंयमयोगाग्नौ [४.२७ सं(हरि ७.१) (आत्मनः संयम एव योगः तस्य अग्नौ] आत्म- संयम के योग की अग्नि में

आत्मसंस्थम् [६.२५ वि(राम २.१)] अपने में स्थिर, आत्मा में स्थापित

आत्मा [६.५, ६, ७.१८, ९.५, १०.२०, १३.३२ सं(आत्मन् १.१)] आत्मा, अपना आप (देखिए प्रवेशिका - II)

आत्मानम् [३.४३, ४.७, ६.५, १०, १५, २०,२८, २९; ९.३४, १०, १५, ११.३, ४; १३.२४, २८, २९ १८.१६, ५१ सं(आत्मन् २.१)] आत्मा को, अपने को

आत्मौपम्येन [६.३२ सं(फल ३.१) (आत्मनः औपम्येन)] अपने साथ तुलना करके, अपने जैसा मान कर, अपने जैसा

आत्यन्तिकम् [६.२१ वि(फल १.१)] एक दम अन्तिम, परम, अनन्त

आदत्ते [५.१५ (आ + √दा A लट् ३.१)] लेता है, ग्रहण करता है

आदर्शः [३.३८ सं(राम १.१)] दर्पण

आदिः [१०.२, २०, ३२, १५.३ सं(हरि १.१)] प्रारम्भ, उत्पत्तिकारण

आदिकर्त्रे [११.३७ वि(धातृ ४.१)] आदि कर्त्ता को

आदित्यगतम् [१५.१२ वि(फल १.१) (आदित्ये गतम्)] सूर्य में स्थित

आदित्यवत् [५.१६ (अ.)] सूर्य के समान

आदित्यवर्णम् [८.९ वि(राम २.१) (आदित्यस्य वर्णः इव वर्णः यस्य तम्)] उसको जिसका रंग सूर्य जैसा है

आदित्यान् [११.६ सं(राम २.३)] आदित्य, अदिति के पुत्र, ये बारह हैं

आदित्यानाम् [१०.२१ सं(राम ६.३)] आदित्यों में

आदिदेवः [११.३८ सं(राम १.१)] आदि देव, देवों में प्रथम

आदिदेवम् [१०.१२ सं(राम २.१)] आदि देव को , देवों में प्रथम को

आदिम् [११.१६ सं(हरि २.१)] आदि, आरम्भ, उत्पत्ति, मूल स्रोत

आदौ [३.४१, ४.४ सं(हरि ७.१)] आरम्भ में, प्रथम

आद्यन्तवन्तः [५.२२ वि(धीमत् १.३)] आदि और अन्त वाले

आद्यम् [८.२८, ११.३१, ४७, १५.४ वि(फल २.१)] प्रथम, मूल, प्रारंभिक, आदि

आधत्स्व [१२.८ (आ + √धा जुहो. A/P लोट् २.१)] लगाओ, लगा

आधाय [५.१०, ८.१२ (अ.) (आ + √धा जुहो P + ल्यप्)] रख कर, आधार बना कर, स्थापित करके

आधिपत्यम् [२.८ सं(फल २.१)] प्रभुत्व, स्वामित्व

आपः [२.२३, ७०, ७.४ (सं पु नित्य बहुबचन १.३)] पानी, जल

आपन्नम् [७.२४ वि(राम २.१) (आ + √पद दिवा A + क्त)] पहुंचा हुआ, घटित हुआ

आपन्नाः [१६.२० वि(राम १.३) (आ + √पद् + क्त)] गिरे हुए, गिरकर, आ पड़े हुए

आपूर्य [११.३० (अ.) (आ + √ पूर चुरा P + ल्यप्)] भर के, पूरित कर के, पूरा भर कर

आपूर्यमाणम् [२.७० सं(राम २.१) (आ √ पृ-पूर चुरा P कर्मणि A + शानच्)] (निरन्तर) भरते हुए, चारों ओर से पूर्ण होते हुए

आप्तुम् [५.६, १२.९ (अ.) (√आप् स्वा P + तुमुन्)] प्राप्त करने, पाने के लिए

आप्नुयाम् [३.२ (√ आप् स्वा P विधि १.१)] (मैं) प्राप्त कर सकूं, पासकूं

आप्नुवन्ति [८.१५ (√ आप स्वा P लट् ३.३)] (वे) प्राप्त करते हैं

आप्नोति [२.७०, ३.१९, ४.२१, ५.१२, १८.४७, ५० (√ आप् स्वा P लट् ३.१)] पाता है, प्रात करता है

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः [१७.८ वि(राम १.३) (आयुःच सत्त्वं च बलं च आरोग्यं च सुखं च प्रीतिःच तासां विवर्धनाः)] जीवन शक्ति, शुचिता, बल, स्वास्थ्य, सुख और प्रफुल्लता बढ़ाने वाला

आयुधानाम् [१०.२८ सं(फल ६.३)] शस्त्रों में

आरभते [३.७ (आ + √रभ् भ्वा A लट् ३.१)] आरम्भ करता है

आरभ्यते [१८.२५ (आ + √रभ् भ्वा A कर्मणि लट् ३.१)] आरम्भ किया जाता है

आरम्भः [१४.१२ सं(राम १.१)] आरम्भ, प्रारम्भ आदि

आरुरुक्षोः [६.३ वि(गुरु ६.१)] आरोहण के अभिलाषी का, ऊपर चढ़ने की इच्छा वाले का, आरूढ़ (स्थिर) होने के अभिलाषी का

आर्जवम् [१३.७, १६.१, १७.१४, १८.४२ सं(फल १.१)] साधुता, सीधापन, सरलता, सत्यता

आर्तः [७.१६ वि(राम १.१)] दुःखी

आवयोः [१८.७० सर्व(अस्मद् ६.२)] हम दोनों का

आवर्तते [८.२६ (आ + √वृत् भ्वा A लट् ३.१)] (वह) लौटता है, फिर आजाता है

आवर्तिनः [८.१६ सं.(शशिन् १.३)] लौटने वाले

आविश्य [१५.१३, १७ (अ.) (आ + √विश् तुदा P + ल्यप्)] प्रवेश करके, (में) समाकर (के)

आविष्टः [१.२८ वि(राम १.१ (आ + √ विश् तुदा P + क्त)] प्रविष्ट हुआ, पूरित हुआ, अभिभूत हुआ

आविष्टम् [२.१ वि(राम २.१) (आ + √ विश् तुदा + क्त)] व्याप्त हुआ, भरा हुआ

आवृतः [३.३८ वि(राम १.१)] लिपटा रहता (है), घिरा रहता (है)

आवृतम् [३.३८, ३९, ५.१५ वि(फल १.१/२.१)] घिरा रहता है, अवगुण्ठित रहता है

आवृता [१८.३२ वि(क्रिया १.१) (आ + √ वृत् भ्वा A + क्त + टाप्)] घिरे हुए ढका हुआ, आच्छादित

आवृताः [१८.४८ वि(राम १.३)] घिरे हुए, ढके हुए

आवृत्तिम् [८.२३ सं(मति २.१)] लौटना, प्रति गमन

आवृत्य [३.४०, १३.१३, १४.९ (अ.) (आ + √ वृत् भ्वा A ल्यप्)] घेरा हुआ, ढका हुआ

आवेशितचेतसाम् [१२.७ सं.(मनस् ६.३) (आवेशितं चेतः येषां तेषाम्)] उनका जिनका मन स्थिर है, अटल चित्त है जिनका उनका

आवेश्य [८.१०, १२.२ (अ.) (आ + √ विश् + णिच् + ल्यप्)] रख कर, स्थिर कर के, स्थापित करके

आव्रियते [३.३८ (आ + √ वृ स्वा A लट् ३.१)] घिरा रहता है, आवृत रहता है

आशयात् [१५.८ सं(राम ५.१)] शयन स्थान से

आशापाशशतैः [१६.१२ सं(फल ३.३) आशायाः पाशानाम् शतैः)] आशा की सैकड़ों रस्सियों से

आशु [२.६५ (अ.)] तुरन्त, शीघ्र ही

आश्चर्यवत् [२.२९, (अ.)] आश्चर्यजनक जैसा, अद्भुत, चमत्कारिक जैसा (के समान) (के रूप में)

आश्चर्याणि [११.६ सं(फल २.३)] चमत्कार, अद्भुत वस्तुएं

आश्रयेत् [१.३६ (आ + √ श्रय् भ्वा विधि ३.१)] लगेगा

आश्रितः [१२.११, १५.१४ वि(राम १.१) (आ + √ श्रि भ्वा A/P + क्त)] शरण लिए हुए, आसरा लिए हुए

आश्रितम् [९.११ वि(राम २.१)] शरण लिए हुए, (को)

आश्रिताः [७.१५, ९.१३ वि(राम १.३) (आ + √ श्रि भ्वा A/P + क्त)] आश्रय में आए हुए, (लोगों (को)

आश्रित्य [७.२९, १६.१०, १८.५९ (अ.) (आ + √ श्रि भ्वा A/P + ल्यप्)] शरण में आकर, आश्रय लेकर

आश्वासयामास [११.५० (आ + √ श्वस् + णिच् लिट् ३.१)] सान्त्वना या दिलासा दिया, शान्त किया

आसक्तमनाः [७.१ वि(चन्द्रमस् १.१) (आसक्तं मनः यस्य सः)] वह जिसका मन आसक्त है, (संलग्न है)

इन्द्रियारामः [३.१६ सं(राम १.१) (इन्द्रियेषु आरामः यस्य सः)] वह जो इन्द्रियों में आनन्द मनाता है, इन्द्रिय भोगी, इन्द्रिय सुखों में व्यस्त

इन्द्रियार्थान् [३.६ सं(राम २.३)] इन्द्रियों के विषयों को

इन्द्रियार्थेभ्यः [२.५८, ६८ सं(राम ५.३) (इन्द्रियाणाम् अर्थेभ्यः)] इन्द्रियों के विषयों से

इन्द्रियार्थेषु [५.९, ६.४, १३.८ सं(राम ७.३) (इन्द्रियाणाम् अर्थेषु)] इन्द्रियों के विषयों में

इन्द्रियेभ्यः [३.४२ सं(फल ५.३)] इन्द्रियों की अपेक्षा, इन्द्रियों से

इन्द्रियैः [२.६४, ५.११ सं(फल ३.३)] इन्द्रियों द्वारा–से

इमम् [१.२८; २.३३; ४.१, २; ९.८, ३३; १३.३३, १६.१३, १७.७, १८.७०, ७४, ७६ सर्व (इदम् पु. २.१)] यह, इसको

इमान् [१०.१६, १८.१७ सर्व(इदम् पु २.३)] इन सब को

इमानि [१८.१३ सं(इदम् नपु १.३/२.३)] ये इनको

इमाः [३.२४, १०.६ सर्व(इदम् स्त्री. १.३)] ये

इमाम् [२.३९, ४२ सर्व(इदम् स्त्री २.१)] इसको

इमे [१.३३, २.१२, १८; ३.२४ सर्व(इदम् पु १.३)] ये

इमौ [१५.१६ सर्व(इदम् पु १.२)] ये दो

इयम् [७.४, ५ सर्व(इदम् स्त्री १.१)] यह (स्त्री)

इव [१.३०.. (अ.)] सदृश, तुल्य, समान, जैसा, से, मानो

इषुभिः [२.४ सं(गुरु ३.३)] बाणों से

इष्टः [१८.६४, ७० वि(राम १.१) (√ इष् तुदा P + क्त)] प्रिय, पूजित

इष्टकामधुक् [३.१० वि. (कामधुक् १.१)] (इष्टान् कामान् दोग्धि)] इच्छित पदार्थों को देने वाला (कामधेनु)

इष्टम् [१८.१२ वि(फल १.१)] वांछनीय, प्रिय

इष्टाः [१७.९ वि(राम १.३) (√ इष् तुदा P + क्त)] प्रिय

इष्टान् [३.१२ वि(राम २.३)] इच्छित (को)

इष्टानिष्टोपपत्तिषु [१३.९ सं(मति ७.३) (इष्टानां च अनिष्टानां च उपपत्तिषु)] प्रिय और अप्रिय घटनाओं में

इष्ट्वा [९.२० (अ.) (√ यज् भ्वा A/P + क्तवाच्)] पूजा करके, पूजकर, बलिदान करके

इह [२.५...(अ.)] इस, यहां, इस लोक में

ई

ईक्षते [६.२९, १८.२० (√ ईक्ष् भ्वा A लट् ३.१)] देखता है

ईड्यम् [११.४४ वि(राम २.१)] स्तुत्य, प्रशंसनीय, वंदनीय

ईदृक् [११.४९ सार्ववि(१.१)] ऐसा

ईदृशम् [२.३२, ६.४२ वि(२.१)] ऐसा, इस प्रकार का

ईशम् [११.१५, ४४ सं(राम २.१)] ईश्वर को

ईश्वरः [४.६, १५.८, १७; १६.१४, १८.६१ सं(राम १.१)] ईश्वर

ईश्वरभावः [१८.४३ सं(राम १.१) (ईश्वरस्य भावः)] ईश्वर का स्वभाव, प्रभुता

ईश्वरम् [१३.२८ सं(राम २.१)] ईश्वर को

ईहते [७.२२ (√ ईह् भ्वा A लट् ३.१)] चाहता है

ईहन्ते [१६.१२ (√ ईह् भ्वा A लट् ३.३)] (वे) प्रयत्न करते हैं (प्राप्त करने को), कठिन प्रयास करते हैं

उ

उक्तः [१.२४, ८.२१, १३.२२ वि(राम १.१) (√ ब्रू अदा P + क्त)] सम्बोधित किया हुआ, कहा हुआ-गया

उक्तम् [११.१, ४१, १२.२०; १३.१८; १५.२० वि(राम २.१) (√ ब्रू अदा P + क्त] कहा है,

उक्ताः [२.१८ वि(राम १.३) (√ ब्रू अदा P + क्त)] कहे गए (हैं)

उक्त्वा [१.४७, २.९, ११.९, २१, ५० (अ.) (√ ब्रू + वच् अदा P + क्त्वाच्)] कह कर

उग्रकर्माणः [१६.९ वि(शर्मन् १.३) (उग्राणि कर्माणि येषां ते)] वे जिनके कार्य-कर्म भयानक हैं, घोर कर्म वाले

उग्रम् [११.२० वि(फल १.१)] भयानक, डरावना

उग्ररूपः [११.३१ सं(राम १.१) (उग्रं रूपं यस्य सः)] वह जिसका स्वरूप भयानक है, भयंकर रूपवाला

उग्राः [११.३० वि(राम १.३)] हिंस्र, भीषण

उग्रैः [११.४८ वि(राम ३.३)] भीषण (से)

उच्चैः [१.१२ (अ. क्रिवि)] उच्च स्वर से

उच्चैःश्रवसम् [१०.२७ सं(चन्द्रमस् २.१)] उच्चैश्रवा नाम के इन्द्र के घोड़े को

उच्छिष्टम् [१७.१० वि.(फल १.१)] जूठन को

उच्छोषणम् [२.८ वि(फल १.१) (उत् + शोषणम्)] शोषक, सुखाने वाला

उच्यते [२.२५...(ब्रू अदा. P वच् कर्मणि लट् ३.१)] कहा जाता है, पुकारा जाता है, बुलाया जाता है

उत [१.४०, १४.९, ११ (अ.)] वास्तव में, सचमुच, अवश्य ही

उत्क्रामति [१५.८ (उत् + √ क्रम् भ्वा P ३.१)] त्यागता है, छोड़ता है

उत्क्रामन्तम् [१५.१० वि(ध्यायत् २.१) (उत् + √ क्रम् भ्वा P + शतृ)] जाते हुए, त्याग करते हुए (को)

उत्तमः [१५.१७, १८ वि(राम १.१)] सर्वोच्च, सर्वोपरि, उत्तम

उत्तमम् [४.३, ६.२७, ९.२ वि(फल १.१/२.१)] सब से श्रेष्ठ, उत्तम

उत्तमविदाम् [१४.१४ सं(मरुत् ६.१ (उत्तमं विदन्ति इति तेषाम्)] उनको (जो) इस प्रकार जानते हैं सर्वोच्च (को), ज्ञानियों को

उत्तमांगैः [११.२७ वि(राम ३.३)] मस्तकों सहित, सब से उत्तम अंगों (सिरों) सहित

उत्तमौजाः [१.६ सं(चन्द्रमस् १.१)] उत्तमौजा

उत्तरायणम् [८.२४ सं(फल १.१)] उत्तरायण, वह छः महीने (माघ से आषाढ़) का समय जिसमें सूर्य मकर रेखा से चल कर बराबर उत्तर की ओर बढ़ता रहता है

उत्तिष्ठ [२.३, ३७, ४.४२, ११.३३ (उत् + √ स्था भ्वा P लोट् २.१)] उठ खड़ा हो, उठ

उत्थिता [११.१२ वि(विद्या १.१) (उत् + √ स्था भ्वा P + क्त)] उदय हुई

उत्सन्नकुलधर्माणाम् [१.४४ वि(राम ६.३) (उत्सन्नः कुलस्य धर्मः येषा ते)] वे जिनका कुल धर्म नष्ट हुआ है

उत्सादनार्थम् [१७.१९ सं(राम २.१) उत्सादनस्य अर्थम्)] विनाश के लिए, नाश के हेतु, ध्वंस करने के लिए

उत्साद्यन्ते [१.४३ (उत् + √ सद् + णिच् A ३.३)] नष्ट किए जाते हैं, विनाश होते हैं

उत्सीदेयुः [३.२४ (उत् + √ सद् भ्वा P विधि ३.३)] नष्ट हो जाएंगे, ध्वस्त हो जाएंगे

उत्सृजामि [९.१९) (उत् + √ सृज् भ्वा P लट् १.१)] (मैं) जाने देता हूं, छोड़ देता हूं

उत्सृज्य [१६.२३, १७.१ क्रि.वि (उत् + √ सृज् भ्वा P + ल्यप्)] त्याग कर, छोड़कर

उदपाने [२.४६ सं(फल ७.१)] छोटे कुण्ड (पोखर) में

उदाराः [७.१८ सं(राम १.३)] उच्च, बड़ा, श्रेष्ठ

उदासीनः [१२.१६ वि(राम १.१)] तटस्थ, विरक्त, उदासीन

उदासीनवत् [९.९, १४.२३ वि(जगत् २.१)] उदासीन जैसा, तटस्थ सा

उदाहृतः [१५.१७ वि(राम १.१) (उत् + आ + √ हृ भ्वा P + क्त)] कहलाता है, पुकारा जाता है

उदाहृतम् [१३.६, १७.१९, २२, १८.२२, २४, ३९ वि(फल १.१) (उत् + आ + √ हृ भ्वा P ल्यप्)] कहा जाता है, पुकारा जाता है

उदाहृत्य [१७.२४ (अ.) (उत् + आ √ हृ भ्वा P + ल्यप्)] कह कर, उच्चारण करके

उद्दिश्य [१७.२१ (उत् + √ दिश् तुदा P/A + ल्यप्)] प्रत्याशा की दृष्टि से, उद्देश से

उद्देशतः [१०.४० (अ.) (क्रि. वि.) (उत् + देश + तस्)] दृष्टान्त रूप से

उद्धरेत् [६.५ (उत् + √ हृ भ्वा विधि लिङ् ३.३)] उद्धार करना चाहिए, ऊपर उठाना चाहिए, उन्नत करना चाहिए

उद्भवः [१०.३४ सं(राम १.१)] जन्म, उत्पत्ति

उद्यताः [१.४५ वि(राम १.३) (उत् + यम् भ्वा + क्त)] उठ खड़े हैं, तत्पर हैं, तय्यार है

उद्यम्य [१.२० (अ.) (उत् √ यम् भ्वा + ल्यप्)] उठाकर, उठाया

उद्विजते [१२.१५ (उत् √ विज् तुदा A लट् ३.१)] उत्तेजित होता है, उद्वेग, संताप पाता है

उद्विजेत् [५.२०) (उत-विज् तुदा. P विधि ३.१)] उत्तेजित हो, घबराए, दुःखी हो

उन्मिषन् [५.९ वि(ध्यायत् १.१) (उत् + √ मिष् तुदा P + शतृ)] (आंख) खोलते हुए

उपजायते [२.६२, ६५, १४.११ (उप + √ जन् दिवा A लट् ३.१)] उत्पन्न होता है, का उद्भव होता है

उपजायन्ते [१४.२ (उप + √ जन् भ्वा A लट् ३.३)] उत्पन्न होते हैं

उपजुह्वति [४.२५ (उप + √ हु जुहो P लट् ३.३)] होम करते हैं, हवन करते हैं, यज्ञ करते हैं, अर्पित करते हैं

उपदेक्ष्यन्ति [४.३४ (उप + √ दिश् तुदा P लृट् ३.३)] उपदेश देंगे, शिक्षा देंगे

उपद्रष्टा [१३.२२ वि(कर्तृ १.१)] निरीक्षक, पास में रह कर देखने वाला, साक्षी

उपधारय [७.६, ९.६ (उप + √ धृ चुरा P लोट् २.१)] समझ, जान

उपपद्यते [२.३, ६.३९, १३.१८, १८.७ (उप + √ पित् दिवा A लट् ३.१)] योग्य है, शोभा देता है, उचित है, उपयुक्त, मिल सकता है

उपपन्नम् [२.३२ वि(फल १.१) उप + √ पद् दिवा A + क्त)] आया हुआ, प्राप्त हुआ

उपमा [६.१९ सं(विद्या १.१)] उपमा

उपयान्ति [१०.१० (उप √ या भ्वा P लट् ३.३)] आते हैं, प्राप्त करते हैं

उपरतम् [२.३५ वि(राम २.१)] पीछे हटा हुआ, से अलग हुआ, निकल भागा

उपरमते [६.२० (उप + √ रम् भ्वा A लट् ३.१)] शान्त होता है, स्थिर होता है

उपरमेत् [६.२५ (उप + √ रम् भ्वा A विधि ३.१)] उसे (कार्य कलाप से) छुट्टी पाने दो, शान्ति प्राप्त करने दो

उपलभ्यते [१५.३ (उप् + √ लभ् भ्वा A + य + लट् ३.१)] समझाजाता है, जाना जाता है, देखा जाता है

उपलिप्यते [१३.३२ (उप् + लिप्यते √ लिप् तुदा A लट् ३.१)] लिप्त होता है, प्रभावित होता है

उपविश्य [६.१२ (अ.) (उप + √ विश तुदा P + ल्यप्)] बैठ कर

उपसंगम्य [१.२ (अ.) (क्रि.वि) (उप् + सम् + √ गम् + ल्यप्)] पास जाकर

उपसेवते [१५.९ (उप् + √ सेव् भ्वा A लट् ३.१)] सेवन करता है, भोगता है

उपहन्याम् [३.२४ (उप + √ हन् अदा P विधि १.१)] (मैं) वध करूंगा, मार डालूंगा वध करूं, मार डालूँ

उपायतः [६.३६ (अ.)] उपाय से, साधन से

उपाविशत् [१.४७ (उप + आ + √ विश् भ्वा लङ् ३.१)] धंस गया, गिर पड़ा, धप से बैठ गया

उपाश्रिताः [४.१०, १६.११ वि(राम १.३)] आश्रय लिए हुए

उपाश्रित्य [१४.२, १८.५७ (उप + आ + √ श्रि भ्वा P + ल्यप्)] आश्रय लेकर, सहारे से

उपासते [९.१४, १५, १२.२,६, १३.२५ (उप + √ आस् अदा A लट् ३.३)] पूजा करते हैं, उपासना करते है

उपेतः [६.३७ सं(राम १.१) (उप + √ इण अदा P + क्त)] से युक्त, से सम्पन्न

उपेताः [१२.२ सं(राम १.३)] से युक्त, से सम्पन्न

उपेत्य [८.१५, १६ (अ.) (उप + √इ अदा P + ल्यप्)] आकर, पहुंचकर,

उपैति [६.२७, ८.१०, २८ (उप + √ इ अदा. P लट् ३.१)] प्राप्त होता है

उपैष्यसि [९.२८ (उप + √ इ अदा P लृट् २.१)] (तू) आएगा, प्राप्त होगा

उभयविभ्रष्टः [६.३८ वि(राम १.१) (उभयतः विभ्रष्टः)] दोनों से गिरा हुआ, दोनों ओर से भ्रष्ट हुआ

उभयोः [१.२१, २४, २७; २.१०, १६; ५.४ वि(राम ६.२) विद्या ६.२/७.२)] दो (के), दोनों (के)

उभे [२.५० संवि(फल १.२)] दोनों

उभौ [२.१९, ५.२, १३.१९ वि(राम २.२)] दोनों

उरगान् [११.१५ सं(राम २.३)] सर्प (बहुवचन), साँपों को

उल्बेन [३.३८ सं(फल ३.१)] झिल्ली से, उल्व से, उल्व = वह झिल्ली जिससे लिपटा हुआ बच्चा पैदा होता है

उवाच [१.१...(ब्रू-वच् अदा A/P लिट् ३.१)] कहा, बोला

उशना [१०.३७ सं(उशनस् १.१)] उशना, शुक्राचार्य

उषित्वा [६.४१ (√ वस् भ्वा P क्त्वाच्)] रह कर

ऊ

ऊर्जितम् [१०.४१ वि(फल १.१)] शक्तिशाली, प्रभावशाली

ऊर्ध्वम् [१२.८, १४.१८, १५.२ (अ. क्रिवि)] उपरान्त, ऊपर, ऊंचे

ऊर्ध्वमूलम् [१५.१ सं(राम २.१) (ऊर्ध्वम् मूलम् यस्य तम्)] वह जिसकी जड़ें ऊपर हैं

ऊष्मपाः [११.२२ सं(ऊष्मपा १.३)] ऊष्मपा, पितर

ऋ

ऋक् [९.१७ सं(वाच् १.१)] ऋग्वेद

ऋच्छति [२.७२, ५.२९ (√ ऋ भ्वा P लट् ३.१)] प्राप्त करता है, पाता है

ऋतम् [१०.१४ वि(फल २.१)] सच, सत्य

ऋतूनाम् [१०.३५ सं(गुरु ६.३)] ऋतुओं में

ऋते [११.३२ (अ. क्रिवि)] बिना, से रहित

ऋद्धम् [२.८ वि(फल २.१)] समृद्ध, धन धान्य संपन्न

ऋषयः [५.२५, १०.१३ सं(हरि १.३)] ऋषिगण

ऋषिभिः [१३.४ सं(हरि ३.३)] ऋषियों द्वारा

ऋषीन् [११.१५ सं(हरि २.३)] ऋषि गणको

ए

एकः [११.४२, १३.३३ (संख्यावाचक वि पु प्रथमा)] अकेला, एक

एकत्वम् [६.३१ सं(फल २.१)] एकत्व (को), एकता में

एकत्वेन [९.१५ सं(फल ३.१)] एकत्व से, एक रूप से

एकभक्तिः [७.१७ वि.(हरि १.१) (एकस्मिन् भक्तिः यस्य सः)] वह जिसकी भक्ति एक में है, एक की ही भक्ति करने वाला

एकम् [३.२; ५.१, ४, ५; १०.२५; १३.५; १८.२०, ६६ सं वि(एक नपु २.१)] एक, एक ही

एकया [८.२६ वि(विद्या ३.१)] एक से

एकस्थम् [११.७, १३; १३.३० सं(फल २.१/१.१) (एकस्मिन् स्थितम्)] एक में स्थित हुए, एक रूप में स्थित

एकस्मिन् [१८.२२ सं वि(एक पु ७.१)] एक में

एका [२.४१ वि(एक स्त्री १.१)] एक, एक को

एकांशेन [१०.४२ सं(राम ३.१)] एक अंश से

एकाकी [६.१० वि(शशिन् १.१)] एकाकी, अकेला

एकाक्षरम् [८.१३ वि(फल २.१)] एकाक्षरी, एक अक्षर वाला

एकाग्रम् [६.१२ वि(फल २.१)] एकाग्र, संकेन्द्रित

एकाग्रेण [१८.७२ वि(फल. ३.१)] एक रत, एक ओर स्थिर

एकान्तम् [६.१६ वि(फल १.१)] अकेले, केवल, मात्र, (सम्पूर्णतः)

एके [१८.३ सर्व(१.३)] कोई, कुछ एक

एकेन [११.२० वि(एक ३.१ पु) (नपुं)] एक से, एकके द्वारा

एतत् [२.३,..(सर्व (एतद् नपु १.१) २.१)] यह

एतद्योनीनि [७.६ सं(वारि २.३) (एषा योनिः येषां तानि)] वे जिनका यह गर्भ (है), उत्पत्तिका कारण (है)

एतम् [६.३९ सर्व(एतद् पु २.१)] इसको

एतयोः [५.१ सर्व(एतद् नपु ६.२)] इन दो में से, इन दोनों का

एतस्य [६.३३ सर्व(एतद् पु. ६.१)] इसकी, उसकी

एतान् [१.२२... सर्व(एतद् पु. २.३)] इनको, इन्हें

एतानि [१४.१२, १३, १५.८, १८.६, १३ सर्व(एतद् नपु १.३] ये, इन

एताम् [१.३, ७.१४, १०.७, १६.९ सर्व(एतद् स्त्री २.१)] यह, इस

एतावत् [१६.११ वि.(जगत् १.१)] इतना मात्र, यही सब कुछ है

एति [४.९, ८.६, ११.५५ (√ इण् अदा P लट् ३.१)] जाता है, आता है

एते [१.२३.. सर्व(एतद् पु. १.३/स्त्री १.२/२.२/नपु. १.२/२.२)] ये, (दो) ये (सब)

एतेन [३.३९, १०.४२ सर्व(एतद् ३.१)] इस से, इसके द्वारा

एतेषाम् [१.१० सर्व(एतद् पु. नपु ६.३)] इनकी

एतैः [१.४३, ३.४०, १६.२२ सर्व(एतद् नपु.पु. ३.३)] इन से, इनके द्वारा

एधांसि [४.३७ सं(मनस् १.३)] ईंधन, लकड़ियां, जलावन

एनम् [२.१९... सर्व(एतद् पु २.१)] यह, इसको

एनाम् [२.७२ सर्व(एतद् स्त्री. २.१)] यह, इसे, इसको

एभिः [७.१३, १८.४० सर्व(इदम् नपु /पु ३.३)] इनके द्वारा, इन से

एभ्यः [३.१२, ७.१३ सर्व(इदम् पु ५.३) (४.३)] इनको, इन से, इनके लिए

एव [१.६...(अ. क्रिवि)] भी एकमात्र केवल, से भी

एवंरूपः [११.४८ सं.वि.(राम १.१)] ऐसा रूप, इस प्रकार का रूप

एवंविधः [११.५३, ५४ वि(राम १.१)] इस प्रकार का

एवम् [१.२४...(अ. क्रिवि)] इस प्रकार ऐसा

एषः [३.१० सर्व(एतद् पु १.१)] यह

एषा [२.३९, ७२, ७.१४ सर्व(एतद् स्त्री १.१)] यह

एषाम् [१.४२ सर्व(एतद् पु ६.३)] इनके

एष्यति [१८.६८ (√ इ अदा P लृट् ३.१)] (वह) आएगा

एष्यसि [८.७, ९.३४, १८.६५ (√इ अदा P लृट् २.१)] (तू) आएगा

ऐ

ऐकान्तिकस्य [१४.२७ वि(फल ६.१)] परम, आत्यंतिक, उच्चतम

ऐरावतम् [१०.२७ सं(राम २.१)] ऐरावत को (इस नाम के इन्द्र के हाथी को)

ऐश्वरम् [९.५, ११.३, ८, ९, वि(राम २.१)] सर्वश्रेष्ठ, परम्

ओ

ओंकारः [९.१७ सं(राम १.१)] ओम्

ओजसा [१५.१३ सं(मनस् ३.१)] शक्ति से, बल से

ओम् [८.१३, १७.२३, २४ (अ.)] ॐ, ओम्

औ

औषधम् [९.१६ सं(फल १.१)] जड़ी बूटी, (यज्ञ की) वनस्पति

औषधीः [१५.१३ सं(मति २.३)] वनस्पतियों को

क

कंदर्पः [१०.२८ सं(राम १.१)] कन्दर्प, कामदेव

कः [२.२७; ८.२; ११.३१; १६.१५ सर्व.(किम् पु. १.१)] कौन

कच्चित् [६.३२, १८.७२ (अ. क्रिवि)] क्या, कुछ भी, क्या यह है

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः [१७.९ वि(शशिन् १.१) (कटुः च अम्लः च लवणः च अत्युष्ण च तीक्ष्णः च रूक्षः च विदाही च)] कड़वा खट्टा खारा, बहुत गर्म, तीखा, सूखा, और जलन पैदा करने वाला

कतरत् [२.६ सर्व(तुलनात्मक) (किम् + उतरच्)] (दोनों में) कौन सा, क्या

कथम् [१.३७,...(अ.)] कैसे, किस प्रकार

कथय [१०.१८ (√ कथ् चुरा P लोट् २.१)] कहना, बतलाना

कथयतः [१८.७५ (√ कथ् चुरा P + शतृ ध्यायत् ५.१)] कहते हुए, (से)

कथयन्तः [१०.९ (ध्यायत् १.३) (√ कथ् चुरा P + शतृ)] (वे) वर्णन करते हुए, कहते हुए

कथयिष्यन्ति [२.३४ (√ कथ् चुरा P लृट् ३.३)] (वे) वर्णन करेंगे, कहेंगे

कथयिष्यामि [१०.१९ (√ कथ् चुरा P लृट् १.१)] (मैं) वर्णन करूंगा, कहूंगा

कदाचन [२.४७, १८.६७ (अ.)] कभी भी किसी समय भी

कदाचित् [२.२० (अ.)] कभी

कपिध्वजः [१.२० वि(राम १.१) (कपिः ध्वजे यस्य सः)] वह जिसकी ध्वजा में कपि (हनुमान) है

कपिलः [१०.२६ सं(राम १.१)] कपिल

कम् [२.२१ (सर्व पु किम् २.१)] किस को, किसी को

कमलपत्राक्ष [११.२ सं(राम ८.१) (कमलस्य पत्रम् इव अक्षिणी यस्य सः)] हे कमल पत्र जैसी आँखों वाले, हे कमल नेत्र

कमलासनस्थम् [११.१५ वि(राम २.१) (कमलस्य आसने स्थितम्)] कमल के आसन पर बैठे (हुए)

करणम् [१८.१४, १८ सं(फल १.१)] साधन, इन्द्रिय, (ये तेरह हैं) (देखिए अध्याय १३ श्लोक २०)

करिष्यति [३ ३३ (√कृ तना P लृट् ३.१)] करेगा

करिष्यसि [२.३३, १८.६० (√कृ तना P लृट् २.१)] (तू) करेगा

करिष्ये [१८.७३ (√कृ तना A लृट् १.१)] (मैं) करूंगा

करुणः [१२.१३ वि(राम १.१)] कृपालु, सदय, दयालु

करोति [४.२०, ५.१०, ६.१; १३. ३१ (√कृ तना P लट् ३.१)] करता है

करोमि [५.८ (√कृ तना P लट् १.१)] (मैं) करता हूं

करोषि [९.२७ (√कृ तना P लट् २.१)] (तू) करता है

कर्णः [१.८ सं(राम १.१)] कर्ण

कर्णम् [११.३४ सं(राम २.१)] कर्ण को

कर्तव्यम् [३.२२ सं(फल १.१)] करने योग्य,

कर्तव्यानि [१८.६ सं(फल १.३)] करने योग्य, अनिवार्य, अवश्य करणीय

कर्ता [३.२४, २७; १८.१४, १८.१९, २६, २७, २८ सं(धातृ १.१)] करने वाला, कर्ता

कर्तारम् [४.१३, १४.१९, १८.१६ सं(धातृ २.१)] कर्त्ता को, रचयिता, स्रष्टा, प्रवर्तक को

कर्तुम् [१.४५; २.१७, ३.२०; ९.२; १२.११, १६; १६.२४, १८.६० (अ.) (√कृ तना P + तुमुन्)] करने, पूरा करने, सम्पन्न करने के लिए

कर्म [२.४९ .... सं(कर्मन् १.१/२.१)] कर्म, काम

कर्तृत्वम् [५.१४ सं(फल २.१)] कर्तापन (को) कर्त्ता के भाव, कर्त्ता के धर्म, माध्यम (को)

कर्मचोदना [१८.१८ सं(विद्या १.१) (कर्मणः चोदना)] कर्म की प्रेरक, कर्म को प्रेरणा (प्रोत्साहन) देने वाली

कर्मजम् [२.५१ वि(फल १.१)] कर्म से उत्पन्न

कर्मजा [४.१२ वि(विद्या १.१)] कर्मजन्य, कर्म से उत्पन्न

कर्मजान् [४.३२ वि(राम २.३)] कर्म से उत्पन्न हुए (को), कर्मजन्य (को)

कर्मणः [३.१, ९ ४.१७; १४.१६; १८.७, १२ सं(कर्मन् ५.१/६.१)] कर्म से, कर्म की अपेक्षा, कर्म का, कर्म के

कर्मणा [३.२६, १८.६० सं(कर्मन् ३.१)] कर्म से, कर्म द्वारा

कर्मणाम् [३.४, ४.१२, ५.१, १४.१२, १८.२ सं(कर्मन् ६.३)] कर्मों का, की

कर्मणि [२.४७, ३.१, २२, २३, २५; ४.१८, २०; १४.९, १७.२६; १८.४५ सं(कर्मन् ७.१)] कर्म में

कर्मफलत्यागः [१२.१२ सं(राम १.१) (कर्मणां फलस्य त्यागः)] कर्मों के फल का त्याग

कर्मफलत्यागी [१८.११ वि(शशिन् १.१) (कर्मणां फलस्य त्यागी)] कर्म के फल का त्यागी

कर्मफलप्रेप्सुः [१८.२७ सं(गुरु १.१) (कर्मणां फलस्य प्रेप्सुः)] कर्म फल का इच्छुक

कर्मफलम् [५.१२, ६.१ सं(फल २.१) (कर्मणः फलम्)] कर्म फल (को)

कर्मफलसंयोगम् [५.१४ सं(राम २.१) (कर्मणः च फलस्य च संयोगम्)] कर्म के फल के संयोग (मेल, सन्धि) को

कर्मफलहेतुः [२.४७ सं(गुरु १.१) (कर्मणः फलं हेतुः यस्य सः)] वह जिसका अभिप्राय कर्म के फल में है, कर्म फल उद्देश्य है जिसका

कर्मफलासंगम् [४.२० सं(राम २.१) (कर्मणः फले आसंगम्)] कर्म के फल में आसक्ति

कर्मफले [४.१४ सं(फल ७.१) (कर्मणः फले)] कर्म के फल में

कर्मबन्धनः [३.९ सं(राम १.१) (कर्म बन्धनं यस्य सः)] वह जो कर्म से बँधा है, कर्म के बन्धन वाला

कर्मबन्धनैः [९.२८ सं(फल ३.३) (कर्मणां बन्धनैः)] कर्म के बन्धनों से

कर्मबन्धम् [२.३९ सं(राम २.१) (कर्मणः बन्धम्)] कर्म के बन्धन को

कर्मभिः [३.३१, ४.१४ सं(कर्मन् ३.३)] कर्मों से

कर्मयोगः [५.२ सं(राम १.१)] कर्म योग

कर्मयोगम् [३.७ सं(राम २.१)] कर्म योग को

कर्मयोगेन [३.३, १३.२४ सं(राम ३.१) (कर्मणः योगेन)] योग से , कर्म योग से, कर्म योग द्वारा

कर्मसंग्रहः [१८.१८ सं(राम १.१) (कर्मणः संग्रहः)] कर्म का संग्रह, संकलन, समुच्चय

कर्मसंज्ञितः [८.३ वि(राम १.१) (कर्म संज्ञा यस्य सः)] वह जिसका नाम कर्म है, कर्म कहलाता है

कर्मसंन्यासात् [५.२ सं(राम ५.१) (कर्मणः सन्यासात्)] कर्म संन्यास की अपेक्षा

कर्मसंगिनाम् [३.२६ वि(शशिन् ६.३) (कर्मणि संगः येषां तेषाम्)] उनको जिनकी कर्म में आसक्ति है

कर्मसंगिषु [१४.१५ सं(राम ७.३) (कर्मणि संगःयेषां तेषु)] उन के बीच जो कर्म में आसक्त (हैं) कर्म काण्डियों में

कर्मसंगेन [१४.७ सं(राम ३.१) (कर्मणः संगेन)] कर्म की आसक्ति से, कर्म के साथ

कर्मसमुद्भवः [३.१४ सं(राम १.१) (कर्मणः समुद्भवः यस्य सः)] वह जो कर्म से उत्पन्न होता है

कर्मसु [२.५०, ६.४, १७: ९.९ सं(कर्मन् ७.३)] कर्मों में

कर्माणि [२.४८, ३.२७, ३०; ४.१४, ४१, ५.१०, १४; ९.९; १२.६, १०, १३.२९; १८.६, ११.४१ सं(कर्मन् १.३/२.३)] कर्म (बहुवचन) कर्मों को

कर्मानुबन्धीनि [१५.२ वि(फल १.३) (कर्म अनुबन्धः येषा तानि)] वे जिनके कर्मबन्धन परिणाम हैं, कर्मों के बन्धन उत्पन्न करने वाली

कर्मिभ्यः [६.४६ वि(शशिन् ५.१)] कर्म काण्डियों की अपेक्षा, कर्म निष्ठ अथवा कर्मठ व्यक्तियों की अपेक्षा

कर्मेन्द्रियाणि [३.६ सं(फल २.३) (कर्मणाम् इन्द्रियाणि)] कर्म करने वाली इन्द्रियों को, कर्मेन्द्रियों को (देखें इन्द्रियाणि)

कर्मेन्द्रियैः [३.७ सं(फल ३.३)] कर्मेन्द्रियों द्वारा

कर्शयन्तः [१७.६ वि.(ध्यायत् १.३) (√ कृश् भ्वा P + णिच् + शत्)] यातना देते हुए, उत्पीड़ित करते हुए, कष्ट देते हुए

कर्षति [१५.७ (√ कृष् भ्वा P लट् ३.१)] आकर्षित करता है, खींचता है

कलयताम् [१०.३० सं(ध्यायत् ६.३)] गणकों में, गणना करने वालों में, परिकलकों में

कलेवरम् [८.५, ६ सं(फल २.१)] शरीर, देह (को)

कल्पक्षये [९.७ सं(राम ७.१) (कल्पस्य क्षये)] कल्प के अन्त में

कल्पते [२.१५, १४.२६; १८.५३ (√ कल्प् भ्वा A लट् ३.१)] योग्य होता है, योग्य है

कल्पादौ [९.७ सं(हरि ७.१) (कल्पस्य आदौ)] कल्प के आदि में

कल्याणकृत् [६.४० वि(मरुत् १.१)] धर्म कर्म करने वाला, कल्याण मार्ग पर चलने वाला

कवयः [४.१६, १८.२ सं(हरि १.३)] कवि लोग, विद्वान् (ज्ञानी) पुरुष

कविः [१०.३७ सं(हरि १.१)] कवि

कविम् [८.९ सं(हरि २.१)] कवि को, सर्वज्ञ को

कवीनाम् [१०.३७ सं(हरि ६.३)] कवियों का

कश्चन [३.१८; ६.२, ७.२६, ८.२७ सर्व अनि (किम् पु. + चन १.१)] कोई, कोई भी

कश्चित् [२.१७, २९;... सर्व.अनि. (किम् पु. १.१) + चित्] कोई

कश्मलम् [२.२ सं(फल १.१)] विषाद, उदासी

कस्मात् [११.३७ सर्व(किम् पु. नपु ५.१)] किस कारण, किस, लिए, क्यों

कस्यचित् [५.१५ (सर्व पु. किम् ६.१) (चित् अनि.)] किसी के

का [१.३६, २.२८, ५४, १७.१ सर्व(किम् स्त्री १.१)] क्या, कैसा

कांक्षति [५.३, १२.१७, १४.२२, १८.५४ (√ कांक्ष् भ्वा P लट् ३.१)] इच्छा करता है, लालसा (आकांक्षा) करता है

कांक्षन्तः [४.१२ वि.(ध्यायत् १.३) (√ कांक्ष् भ्वा P + शत्)] चाहते हुए

कांक्षितम् [१.३३ वि(फल १.१) (√ कांक्ष् + क्त)] इच्छित, वांछित, इष्ट

कांक्षे [१.३२ (√ कांक्ष् भ्वा A लट् १.१)] चाहना, इच्छा, करना, अभिलाषा करना

काम् [६.३७ सर्व(किम् स्त्री २.१)] कौन सी, किस (को)

कामः [२.६२, ३.३७, ७.११, १६.२१ सं(राम १.१)] कामना, इच्छा

कामकामाः [९.२१ वि(राम १.३) (कामानां कामः येषां ते)] वे जो इच्छा करते हैं काम्य पदार्थों की, कामी लोग

कामकामी [२.७० वि(शशिन् १.१) (कामानां कामी)] विषयों की कामना करने वाला

कामकारतः [१६.२३] कामना के प्रोत्साहन से, (आवेग से)

कामकारेण [५.१२ वि(राम ३.१) (कामस्य कारेण)] कामना द्वारा प्रोत्साहित

कामक्रोधपरायणाः [१६.१२ सं(राम १.३) (कामः च क्रोधः च परम् अयनं येषां ते)] वे जिनके कामना और क्रोध उच्चतम आश्रय हैं, काम और क्रोध में लीन

कामक्रोधवियुक्तानाम् [५.२६ वि(राम ६.३) (कामात् च क्रोधात् च वियुक्तानाम्)] कामना और क्रोध से अलग हुए (हैं जो) उनका

कामक्रोधोद्भवम् [५.२३ वि(राम २.१) (कामात् च क्रोधात् च उद्भवः यस्य तम्)] वह जिसकी उत्पत्ति कामना और क्रोध से (है), काम और क्रोध से उत्पन्न

कामधुक् [१०.२८ सं(कामधुक् १.१) (कामान् दोग्धि इति)] इच्छाओं का दोहन करने वाला कामधेनु, गाय जो कामनाओं की पूर्त्ति करती है

कामभोगार्थम् [१६.१२ सं(राम २.१) (कामस्य भोगस्य अर्थम्)] विषय भोग के लिए, भोग की इच्छा के लिए

कामभोगेषु [१६.१६ सं(राम ७.३) (कामस्य भोगेषु)] काम के सुखों में, काम भोगों में, विषय भोगों में

कामम् [१६.१०, १८; १८.५३ सं(राम २.१)] लालसा, कामना को

कामरागबलान्विताः [१७.५ वि(राम १.३) (कामस्य च रागस्य च बलेन अन्विताः)] काम (इच्छा) और राग (मनोवेग) के बल से भरे हुए, विषयों की इच्छा और भावावेश से भरे हुए

कामरागविवर्जितम् [७.११ वि(फल १.१) (कामेन च रागेण च विवर्जितम्)] काम (इच्छा) और राग (मनोवेग) रहित, 'जो नहीं है, उसकी इच्छा "काम" है, जो है, उसकी आसक्ति राग है'-"शंकराचार्य"

कामरूपम् [३.४३ वि(राम २.१)] काम रूप को, कामना की मूर्ति को

कामरूपेण [३.३९ वि(राम ३.१) (कामः रूप" यस्य तेन)] उसके द्वारा जिसका शरीर काम (है); कामरूप से

कामसंकल्पवर्जिताः [४.१९ वि(राम १.३) (कामैः च संकल्पैः च वर्जिताः)] कामना से, और कल्पना से अप्रभावित, कामना और संकल्प से रहित

कामहैतुकम् [१६.८ वि(फल १.१) (कामः हेतुः यस्य तत्)] वह जिसका कारण कामुकता है, विषय भोग जिसका हेतु है

कामाः [२.७० सं(राम १.३)] कामनाएं

कामात् [२.६२ सं(राम ५.१)] कामना से

कामात्मानः [२.४३ वि (आत्मन् १.३) (कामः आत्मा येषां ते)] वे जिनकी आत्मा कामना (करती) है, कामना वाले पुरुष

कामान् [२.५५, ७१, ६.२४, ७.२२ सं(राम २.३)] कामनाएं

कामेप्सुना [१८.२४ वि(गुरु ३.१) (कामस्य ईप्सुना)] काम प्राप्ति की इच्छा वाले से, भोग की इच्छा वाले से

कामैः [७.२० सं(राम ३.३)] कामनाओं से

कामोपभोगपरमाः [१६.११ वि(राम १.३) (कामानाम् उपभोगः परमः येषां ते)] वे जिनका सर्वोच्च (ध्येय) भोग विलास की वस्तुएँ हैं, विषय भोगों को उत्तम वस्तु मानने वाले

काम्यानाम् [१८.२ वि(फल ६.३)] काम्य, कामना से प्रेरित हुए, किसी कामना से किये गए

कायक्लेशभयात् [१८.८ सं(फल ५.१) (कायस्य क्लेशास्य भयात्)] काया के कष्ट के भय से, शारीरिक क्लेश के भय से

कायम् [११.४४ सं(राम २.१)] शरीर (को)

कायशिरोग्रीवम् [६.१३ वि(राम २.१) (कायं च शिरः च ग्रीवा च)] सिर ग्रीवा और धड़ को

कायेन [५.११ सं(राम ३.१)] शरीर से

कारणम् [६.३, १३.२१ सं(फल २.१, १.१)] कारण

कारणानि [१८.१३ सं(फल २.३)] कारण (बहु)

कारयन् [५.१३ वि.)ध्यायत् १.१) (√ कृ तना A/P + णिच् + शतृ)] करवाता हुआ, कराता हुआ

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः [२.७ वि.(राम १.१) (कार्पण्यस्य दोषेण उपहतः स्वभावः यस्य सः)] वह जिसका स्वभाव सहानुभूति (अनुवेदना) के दोष से आक्रान्त है (पीड़ित है), निर्बलता ग्रस्त

कार्यकरणकर्तृत्वे [१३.२० सं(फल ७.१) (कार्याणां च करणानां च कर्तृत्वे)] कार्यों और करणों को उत्पन्न करने में, कार्य करण के कर्तापन में

कार्यते [३.५ (√ कृ + णिच् A लट् ३.१)] कराया जाता है

कार्यम् [३.१७, १९, ६.१, १८.५, ९.३१ सं(फल १.१/२.१)] कार्य करने

का, कर्तव्य, जो करना चाहिए

कार्याकार्यव्यवस्थितौ [१६.२४ सं(मति ७.१) (कार्यस्य च अकार्यस्य च व्यवस्थितौ)] कर्तव्य और अकर्तव्य के निर्णय करने में

कार्याकार्ये [१८.३० सं(फल २.२) (कार्यम् च अकार्यम् च)] कार्य और अकार्य, कर्तव्य और अकर्तव्य

कार्ये [१८.२२ सं(फल ७.१)] काम में, कार्य में

कालः [१०.३०, ३३, ११.३२ सं(राम १.१)] समय, काल

कालम् [८.२३ सं(राम २.१)] काल, समय

कालानलसंनिभानि [११.२५ सं(फल १.३) (कालस्य अनलस्य संनिभानि)] प्रलय काल की अग्नि के समान

काले [८.२३, १७.२० सं(राम ७.१)] काल में, समय में

कालेन [४.२, ३८ सं(राम ३.१)] काल से, समय पाकर

कालेषु [८.७, २७ सं(राम ७.३)] समय में

काशिराजः [१.५ सं(राम १.१) (काश्याः राजा)] काशी के राजा

काश्यः [१.१७ सं.(राम १.१)] काश्य, (काशी के राजा)

किंचन [३.२२ सर्व.अनि.(किम् नपु. + चन १.१)] कुछ भी

किंचित् [४.२०, ५.८, ६.२५, ७.७, १३.२६ सर्व.अनि.(किम् नपु + चित् १.१)] कुछ भी

किम् [१.१.. सर्व(किम् नपु २.१)] क्या, कैसे

किमाचारः [१४.२१ सं(राम १.१) (किम् + आचारः)] क्या आचरण है

किरीटिनम् [११.१७, ४६ वि(शशिन् २.१) (किरीटम् अस्य अस्ति इति तम्)] उसको इस प्रकार मुकुट है जिसका, मुकुट धारी को

किरीटी [११.३५ वि(शशिन् १.१)] मुकुट धारी, अर्जुन

किल्बिषम् [४.२१, १८.४७ सं(फल २.१)] पाप (को)

कीर्तयन्तः [९.१४ वि.(ध्यायत् १.३) (√ कृत्+ णिच् + शतृ)] प्रशंसा करते हुए, स्तुति करते हुए, कीर्तन करते हुए

कीर्तिः [१०.३४ सं(मति १.१)] कीर्ति, यश, ख्याति

कीर्तिम् [२.३३ सं(मति २.१)] नाम, यश, कीर्ति, ख्याति (को)

कुतः [२.२, ६६, ४.३१, ११.४३ (अ.)] कहां से

कुन्तिभोजः [१.५ सं(राम १.१)] कुन्ति भोज

कुन्तीपुत्रः [१.१६ सं(राम १.१) (कुन्त्याः पुत्रः)] कुन्ती का पुत्र

कुरु [२.४८, ३.८, ४.१५, ९.३४ १२.११, १८.६३, ६५ (√ कृ तना P लोट् २.१)] कर, करना, पूरा करना

कुरुक्षेत्रे [१.१ सं(फल) ७.१ (कुरोः क्षेत्रे)] कुरुक्षेत्र के (मैदान) में

कुरुते [३.२१, ४.३७ (√कृ भ्वा A लट् ३.१)] करता है

कुरुनन्दन [२.४१, ६.४३, १४.१३ सं(राम ८.१) (कुरूणां नन्दन)] हे कुरु नन्दन (अर्जुन), कौरवों को प्रसन्न करने वाला

कुरुप्रवीर [११.४८ सं(राम ८.१) (कुरूणां प्रवीरः)] हे कौरवों में श्रेष्ठ, (सर्व प्रथम, प्रधान, प्रमुख)

कुरुवृद्धः [१.१२ सं(राम १.१) (कुरुषु वृद्धः)] कौरवों में वृद्ध

कुरुश्रेष्ठ [१०.१९ सं(राम ८.१)] हे कुरु श्रेष्ठ

कुरुष्व [९.२७ (√कृ तना A लोट २.१)] (तू) कर

कुरुसत्तम [४.३१ सं(राम ८.१) (कुरूणां सत्तम)] हे कुरु सत्तम (श्रेष्ठ)

कुरून् [१.२५ सं(गुरु २.३)] कौरवों को

कुर्यात् [३.२५ (√कृ तना A/P विधि ३.१)] करना चाहिए

कुर्याम् [३.२४ (√कृ भ्वा A/P विधि १.१)] यदि (मैं) करूँ

कुर्वन् [४.२१, ५.७, १३, १२.१०, १८.४७ वि.(ध्यायत् १.१) (√कृ तना P + शतृ)] करते हुए, काम करते हुए

कुर्वन्ति [३.२५, ५.११ (√कृ तना + A/P लट् ३.३)] (वे) करते हैं

कुर्वाणः [१८.५६ सं(राम १.१) (√कृ तना + शानच)] करते हुए

कुलक्षयकृतम् [१.३८, ३९ सं(राम २.१) (कुलस्य क्षयेण कृतम्)] कुल के नाश से होने वाला

कुलक्षये [१.४० सं(राम ७.१) (कुलस्य क्षये)] कुल के नाश में

कुलघ्नानाम् [१.४२, ४३ वि(राम ६.३)] कुल के हत्यारों का

कुलधर्माः [१.४०, ४३ सं(राम १.३) (कुलस्य धर्माः)] कुल के धर्म, परम्पराएं

कुलम् [१.४० सं(फल २.१)] कुल, परिवार

कुलस्त्रियः [१.४१ सं(स्त्री १.३)] कुल की स्त्रियां

कुलस्य [१.४२ सं(फल ६.१)] कुल का

कुले [६.४२ सं(फल ७.१)] कुल में

कुशले [१८.१० सं(फल ७.१)] सुखकर, रुचिकर (में)

कुसुमाकरः [१०.३५ सं(राम १.१) (कुसुमानाम् आकरः)] फूलों की खदान, बसंत ऋतु

कूटस्थः [६.८, १५.१६ वि(राम १.१)] अचल,, दृढ़ स्थिर, निर्विकार, माया के भीतर स्थिर-स्थित, शिखर या चोटी पर अवस्थित या खड़ा हुआ, सर्वोपरि

कूटस्थम् [१२.३ वि(फल २.१)] दृढ़ स्थिर, पर्वत सा अचल

कूर्मः [२.५८ सं(राम १.१)] कछुआ

कृतकृत्यः [१५.२० सं(राम १.१) (कृतं कृत्यं येन सः)] वह जिसके द्वारा काम हुआ है, जिसका काम सिद्ध हो चुका है, कृतार्थ।

कृतनिश्चयः [२.३७ वि(राम १.१ (कृतः निश्चयः येन सः)] वह जिसने निश्चय किया है, निश्चय करके

कृतम् [४.१५, १७.२८, १८.२३ सं(फल १.१) (√कृ तना A/P + क्त)] किया (था)

कृतांजलिः [११.१४, ३५ सं(हरि १.१) (कृतः अंजलिः येन सः)] वह जिसके द्वारा हाथ जोड़ना हुआ है, हाथ जोड़कर

कृतान्ते [१८.१३ सं(राम ७.१) (कृतस्य अन्तः यत्र तस्मिन्)] उसमें जहां कर्म का अन्त है, जिसमें कर्म की समाप्ति है, कृत (सत) युग के अन्त में

कृतेन [३.१८ सं(राम ३.१) (√कृ तना. A/P + क्त)] कर्म से, कर्म करने से

कृत्वा [२.३८, ४.२२, ५.२७, ६.१२, २५, ११.३५, १८.८, ६८ (अ.) (√कृ. तना. P + क्त्वाच्)] करके

कृत्स्नकर्मकृत् [४.१८ वि(मरूत् १.१) (कृत्स्नं कर्मं करोति यः सः)] वह जो सम्पूर्ण कर्म करता है।

कृत्स्नम् [१.४०, ७.२९ वि(फल २.१)] सम्पूर्ण

कृत्स्नवत् [१८.२२ (अ.)] पूर्ण के समान, पूर्ण जैसा, जैसे यही सब है

कृत्स्नवित् [३.२९ वि(मरुत् १.१)] सब जानने वाले, सर्वज्ञ

कृत्स्नस्य [७.६ वि(फल ६.१)] संपूर्ण (का)

कृपः [१.८ सं(राम १.१)] कृपाचार्य

कृपणाः [२.४९ वि(राम १.३)] दयनीय, दया पात्र

कृपया [१.२८, २.१ सं(विद्या ३.१)] करुणा से, अनुकम्पा से

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यम् [१८.४४ सं(फल १.१) (कृषिः च गोरक्ष्यं च वाणिज्यं च)] कृषि और गोरक्षा और व्यापार

कृष्ण [१.२८, ३२; ४१; ५.१, ६.३४, ३७, ३९; ११.४१, १७.१ सं(राम ८.१)] हे कृष्ण

कृष्णः [८.२५, १८.७८ सं(राम १.१)] कृष्णपक्ष, कृष्ण

कृष्णम् [११.३५ सं.राम २.१)] कृष्ण को

कृष्णात् [१८.७५ सं(राम ५.१)] कृष्ण से

के [१२.१ सर्व(किम् पु १.३)] कौन

केचित् [११.२१, २७, १३.२४ सर्व.अनि(किम् पुं. + चित् १.३)] कुछ लोग, कोई-कोई

केन [३.३६ सर्व(किम् पु/नपु ३.१)] किस से

केवलम् [४.२१, १८.१६ (अ.)] केवल, अकेले

केवलैः [५.११ वि(फल ३.३)] केवल
केशव [१.३१, २.५४, ३.१, १०.१४ सं(राम ८.१)] हे केशव
केशवस्य [११.३५ सं(राम ६.१)] केशव के
केशवार्जुनयोः [१८.७६ सं(राम ६.२) (केशवस्य च अर्जुनस्य च)] केशव और अर्जुन का
केशिनिषूदन [१८.१ सं(राम ८.१) (केशिनः निषूदनः)] हे केशि निषूदन, केशी दैत्य का नाश करने वाले
केषु [१०.१७ सर्व(किम् पु ७.३)] किन में,
कैः [१.२२, १४.२१ सर्व(किम् पु ३.३)] किनके साथ, कैसे, किन (चिन्हों के द्वारा)
कौन्तेय [२.१४, ३७... सं(राम ८.१)] हे कौन्तेय, हे कुन्ती पुत्र
कौन्तेयः [१.२७ सं(राम १.१)] कौन्तेय
कौमारम् [२.१३ सं(फल १.१)] बचपन, बाल्यावस्था, शैशव
कौशलम् [२.५० सं(फल २.१)] चतुराई, प्रवीणता, कुशलता
क्रतुः [९.१६ सं(गुरु १.१)] चढ़ावा, नैवेद्य, समर्पण, यज्ञ का संकल्प, श्रौतयज्ञ (जो वेद विधि से किया जाता है)
क्रियते [१७.१८, १९, १८.९, २४ (√ कृ तना A/P - कर्मणि लट् ३.१)] किया जाता है
क्रियन्ते [१७.२५ (√ कृ तना P + कर्मणि A लट् ३.३)] की जाती हैं
क्रियमाणानि [३.२७, १३.२९ (√ कृ तना A/P + वि(फल १.३)] किए जाते हुए
क्रियाभिः [११.४८ सं(विद्या ३.३)] कर्मों द्वारा
क्रियाविशेषबहुलाम् [२.४३ वि(विद्या २.१) (क्रियाणां विशेषाः बहुलाः यस्यां ताम्)] वह जिनके कर्मों की अनेक विविधताएं है
क्रूरान् [१६.१९ वि(राम २.३)] क्रूर, निर्दय, निष्ठुर, निर्मम
क्रोधः [२.६२, ३.३७, १६.४, २१ सं(राम १.१)] क्रोध रोष, कोप
क्रोधम् [१६.१८, १८.५३ सं(राम २.१)] क्रोध, रोष (को)
क्रोधात् [२.६३ सं(राम ५.१)] क्रोध से
क्लेदयन्ति [२.२३ (√ क्लिद् चुरा P लट् ३.३)] गीला करना, भिगोता है
क्लेशः [१२.५ सं(राम १.१)] कष्ट, दुःख
क्लैब्यम् [२.३ सं(फल २.१)] दुर्बलता को, असमर्थता को, नपुंसकता को
क्वचित् [१८.१२ (अ.)] कहीं भी, तनिक भी
क्षणम् [३.५ सं(फल २.१)] एक पल, क्षण भर (को)
क्षत्रियस्य [२.३१ सं(राम ६.१)] क्षत्रिय का, क्षत्रिय के लिए
क्षत्रियाः [२.३२ सं(राम १.३)] क्षत्रियजन
क्षमा [१०.४, ३४, १६.३ सं(विद्या १.१)] क्षमा

क्षमी [१२.१३ वि(शशिन् १.१)] क्षमावान्

क्षयम् [१८.२५ सं(राम २.१)] हानि

क्षयाय [१६.९ सं(राम ४.१)] विनाश के लिए

क्षरः [८.४, १५.१६ वि(राम १.१)] नाशवान्, ध्वंस्य

क्षरम् [१५.१८ वि(राम २.१)] नाशवान् , नष्ट होने वाले (को)

क्षात्रम् [१८.४३ (√क्षम् + णिच् भ्वा. A लट् १.१) वि(फल १.१)] क्षत्रिय के

क्षान्तिः [१३.७, १८.४२ सं(मति १.१)] क्षमा

क्षामये [११.४२ (√क्षम् + णिच् भ्वा. A लट् १.१)] (मैं) क्षमा के लिए विनती करता हूं

क्षिपामि [१६.१९ (√क्षिप् तुदा P लट् १.१)] (मैं) फेंकता हूं, भेजता हूं

क्षिप्रम् [४.१२, ९.३१ (अ.)] तुरंत, शीघ्र, झट

क्षीणकल्मषाः [५.२५ सं(राम १.३) (क्षीणनि कल्मषाणि येषां ते)] वे जिनके पाप कम होगए हैं (नष्ट हो गए, मिट गए हैं)

क्षीणे [९.२१ सं(फल ७.१)] क्षीण होने पर, समाप्त होने पर

क्षुद्रम् [२.३ वि(फल २.१)] नीच, तुच्छ, निकृष्ट

क्षेत्रज्ञः [१३.१ सं(राम १.१)] क्षेत्र को जानने वाला, शरीर, चैतन्य और आत्मा, को जानने वाला

क्षेत्रज्ञम् [१३.१, २ सं(राम २.१)] क्षेत्र को जानने वाले (को)

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः [१३.२, ३४ सं(राम ६.२) (क्षेत्रस्य च क्षेत्रज्ञस्य च)] क्षेत्र के, और क्षेत्रज्ञ के

क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् [१३.२६ सं(राम ५.१) (क्षेत्रस्य च क्षेत्रज्ञस्य च संयोगात्)] क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से, प्रकृति और पुरुष के संयोग से

क्षेत्रम् [१३.१, ३, ६, १८, ३३ सं(फल २.१)] क्षेत्र, (चेतना का खेत, शरीर)

क्षेत्री [१३.३३ सं(शशिन् १.१)] क्षेत्र का स्वामी; क्षेत्र में रहने वाला, क्षेत्रज्ञ

क्षेमतरम् [१.४६ वि(फल १.१)] अधिक अच्छा, अधिक कल्याण कारक

ख

खम् [७.४ सं(फल १.१)] आकाश

खे [७.८ सं(फल ७.१)] आकाश में

ग

गच्छ [१८.६२ (√गम् भ्वा P लोट् २.१)] जाना, जा

गच्छति [६.३७, ४० (√गम् भ्वा P लट् ३.१)] (वह) जाता है

गच्छन् [५.८ वि(ध्यायत् १.१) (√गम् भ्वा P + शतृ)] जाते हुए, जाता हुआ

गच्छन्ति [२.५१; ५.१७; ८.२४ ; १५.५ (√गम् भ्वा P लट् ३.३)] (वे) जाते हैं, प्राप्त करते हैं

गजेन्द्राणाम् [१०.२७ सं(राम ६.३)] बडे हाथियों में

गतः [११.५१ सं(राम १.१) (गम् गच्छ भ्वा. P + क्त)] गया हुआ, पाया हुआ

गतरसम् [१७.१० वि(फल २.१) (गतः रसः यस्य तत्)] वह जिसका स्वाद चला गया है, रस हीन

गतव्यथः [१२.१६ सं(राम १.१) (गता व्यथा यस्य सः) वह जिसका दुःख चला गया है, पीड़ा हीन

गतसंदेहः [१८.७३ सं(राम १.१) (गतः संदेहः यस्य सः)] वह जिसका सन्देह दूर हो गया है, मिट गया है

गतसंगस्य [४.२३ वि(राम ६.१) (गतः संगः यस्य तस्य)] जिसकी आसक्ति चली गई है, उसका

गताः [८.१५, १४.१, १५.४ सं(राम १.३) (√ गम् भ्वा. P + क्त)] गए हुए, प्राप्त हुए

गतागतम् [९.२१ सं.(फल २.१) (गतंच आगतमंच)] जाना और आना, आवागमन को

गतासून् [२.११ सं(गुरु २.३) (गताः असवः येषां तान्)] वे जिनके जीवन श्वास चले गए हैं- (मृतकों को)

गतिः [४.१७, ९.१८, १२.५ सं(मति १.१)] मार्ग, पथ, अन्तिम ध्येय, लक्ष्य

गतिम् [६.३७; ४५; ७.१८; ८.१३, २१; ९.३२, १३.२८; १६.२०, २२, २३ सं(मति २.१)] गति को, अवस्था को, लक्ष्य, ध्येय

गती [८.२६ सं(मति १.२)] (दो) मार्ग, पथ

गत्वा [१४.१५, १५.६ (अ.) (√ गम् भ्वा P + क्त्वाच्)] जाकर, प्राप्त होकर

गदिनम् [११.१७, ४६ वि(शशिन् २.१)] गदाधारी

गन्तव्यम् [४.२४ वि(फल १.१) (√ गम् भ्वा. P + तव्य)] प्राप्त करने योग्य, प्राप्त करना चाहिए

गन्तासि [२.५२ (√ गम् भ्वा P लुट + असि √ अस् लोट २.१)] (तू) जाएगा

गन्धः [७.९ सं(राम १.१)] गंध, वास

गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः [११.२२ सं(राम १.३) (गन्धर्वाणां च यक्षाणां च असुराणां च सिद्धानां च संघाः)] गन्धर्व, यक्ष, असुर और सिद्ध लोगों के समूह–संघ

गन्धर्वाणाम् [१०.२६ सं(राम ६.३)] गन्धर्वों में

गन्धान् [१५.८ सं(राम २.३)] सुगन्धियां

गमः [२.३ (√ गम् P लुङ् लकार २.१)] (तू) गया (यद्यपि परस्मैपदी गम् धातु का लुङ् लकार (सामान्य भूत) मध्यम पुरुष एक वचन का रूप 'अगमः' है, परन्तु यहां 'मा स्म गमः' में निषेधात्मक होने से 'अ' का लोप है – पाणिनि। 'तू नहीं गया का 'लोट् लकार' (आज्ञार्थक) में अर्थ होगा 'तू मत जा'

गम्यते [५.५ (√ गम् भ्वा A कर्म लट् ३.१)] पहुँचा जाता है

गरीयः [२.६ सं(मनस् १.१)] अधिक महत्त्व पूर्ण, अधिक श्रेष्ठ, आवश्यक

गरीयसे [११.३७ वि(गरीयस् ४.१)] अधिक महान् (को) अधिक बड़े को

गरीयान् [११.४३ गरीयस् (१.१)] अधिक महत्त्व के, अधिक बड़े, (से) बड़े है)

गर्भः [३.३८ सं(राम १.१)] गर्भ, भ्रूण

गर्भम् [१४.३ सं(राम २.१)] गर्भ को, अंकुर को

गवि [५.१८ सं(गो ७.१)] गाय में

गहना [४.१७ वि(क्रिया १.१)] गूढ़, गहन

गाण्डीवम् [१.३० सं(फल १.१)] गाण्डीव (अर्जुन का धनुष)

गात्राणि [१.२९ सं(फल १.३] अंग

गाम् [१५.१३ सं(गो २.१)] पृथ्वी

गायत्री [१०.३५ सं(नदी १.१)] गायत्री मन्त्र, एक वैदिक छन्द

गिराम् [१०.२५ सं(गिर् ६.३)] वाणियों में

गीतम् [१३.४ (गै. + क्त कर्म)] गाया गया है

गुडाकेश [१०.२०, ११.७ सं(राम ८.१)] हे गुडाकेश

गुडाकेशः [२.९ सं(राम १.१)] निद्रा के स्वामी, निद्रा को जीतने वाला, अर्जुन

गुडाकेशेन [१.२४ सं(राम ३.१) (गुडा कायाः ईशेन)] निद्रा के स्वामी से

गुणकर्मविभागयोः [३.२८ सं(राम ६.२) (गुणानां च कर्मणां च विभागोः)] गुणों के और कर्मों के (दो) विभागों का, गुण तथा कर्म के विभाजन का

गुणकर्मविभागशः [४.१३ (अ.) (गुणानां च कर्मणां च विभागशः)] गुणों के और कर्मों के विभाजन से (विभाग के अनुसार)

गुणकर्मसु [३.२९ सं(कर्मन् ७.३) (गुणानां कर्मसु)] गुणों के कामों में

गुणतः [१८.२९ (अ.)] गुणों के अनुसार

गुणप्रवृद्धाः [१५.२ सं(विद्या १.३) (गुणैः प्रवृद्धाः)] गुणों द्वारा पोषित, गुणों से वृद्धि को प्राप्त

गुणभेदतः [१८.१९ (अ.) (गुणाना भेदतः)] गुणों के भेद से

गुणभोक्तृ [१३.१४ वि(कर्तृ १.१) (गुणानां भोक्तृ)] गुणों को भोगने वाला

गुणमयी [७.१४ वि(नदी १.१)] गुण युक्त, गुणोंवाली

गुणमयैः [७.१३ वि(राम ३.३)] गुणयुक्त, गुणोंवाली

गुणसंख्याने [१८.१९ सं(फल ७.१) (गुणानां संख्याने)] गुणों के वर्णन में, गुण संख्या के शास्त्र में, (गणना में)

गुणसंमूढाः [३.२९ वि(राम १.३) (गुणैः संमूढाः)] गुणों से मोहित, गुणों से धोखा खाए हुए

गुणसंगः [१३.२१ सं(राम १.१) (गुणेषु संगः)] गुणों में आसक्ति

गजेन्द्राणाम् [१०.२७ सं(राम ६.३)] बडे. हाथियों में

गतः [११.५१ सं(राम १.१) (गम् गच्छ भ्वा. P + क्त)] गया हुआ, पाया हुआ

गतरसम् [१७.१० वि(फल २.१) (गतः रसः यस्य तत्)] वह जिसका स्वाद चला गया है, रस हीन

गतव्यथः [१२.१६ सं(राम १.१) (गता व्यथा यस्य सः) वह जिसका दुःख चला गया है, पीड़ा हीन

गतसंदेहः [१८.७३ सं(राम १.१) (गतः संदेहः यस्य सः)] वह जिसका सन्देह दूर हो गया है, मिट गया है

गतसंगस्य [४.२३ वि(राम ६.१) (गतः संगः यस्य तस्य)] जिसकी आसक्ति चली गई है, उसका

गताः [८.१५, १४.१, १५.४ सं(राम १.३) (√ गम् भ्वा. P + क्त)] गए हुए, प्राप्त हुए

गतागतम् [९.२१ सं.(फल २.१) (गतंच आगतमंच)] जाना और आना, आवागमन को

गतासून् [२.११ सं(गुरु २.३) (गताः असवः येषां तान्)] वे जिनके जीवन श्वास चले गए हैं- (मृतकों को)

गतिः [४.१७, ९.१८, १२.५ सं(मति १.१)] मार्ग, पथ, अन्तिम ध्येय, लक्ष्य

गतिम् [६.३७; ४५; ७.१८; ८.१३, २१; ९.३२, १३.२८; १६.२०, २२, २३ सं(मति २.१)] गति को, अवस्था को, लक्ष्य, ध्येय

गती [८.२६ सं(मति १.२)] (दो) मार्ग, पथ

गत्वा [१४.१५, १५.६ (अ.) (√ गम् भ्वा P + क्त्वाच्)] जाकर, प्राप्त होकर

गदिनम् [११.१७, ४६ वि(शशिन् २.१)] गदाधारी

गन्तव्यम् [४.२४ वि(फल १.१) (√ गम् भ्वा. P + तव्य)] प्राप्त करने योग्य, प्राप्त करना चाहिए

गन्तासि [२.५२ (√ गम् भ्वा P लुट + असि √ अस् लोट २.१)] (तू) जाएगा

गन्धः [७.९ सं(राम १.१)] गंध, वास

गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः [११.२२ सं(राम १.३) (गन्धर्वाणां च यक्षाणां च असुराणां च सिद्धानां च संघाः)] गन्धर्व, यक्ष, असुर और सिद्ध लोगों के समूह-संघ

गन्धर्वाणाम् [१०.२६ सं(राम ६.३)] गन्धर्वों में

गन्धान् [१५.८ सं(राम २.३)] सुगन्धियां

गमः [२.३ (√ गम् P लुङ् लकार २.१)] (तू) गया (यद्यपि परस्मैपदी गम् धातु का लुङ् लकार (सामान्य भूत) मध्यम पुरुष एक वचन का रूप 'अगमः' है, परन्तु यहां 'मा स्म गमः' में निषेधात्मक होने से 'अ' का लोप है - पाणिनि। 'तू नहीं गया का 'लोट् लकार' (आज्ञार्थक) में अर्थ होगा 'तू मत जा'

गम्यते [५.५ (√ गम् भ्वा A कर्म लट् ३.१)] पहुँचा जाता है

गरीयः [२.६ सं(मनस् १.१)] अधिक महत्त्व पूर्ण, अधिक श्रेष्ठ, आवश्यक

गरीयसे [११.३७ वि(गरीयस् ४.१)] अधिक महान् (को) अधिक बड़े को

गरीयान् [११.४३ गरीयस् (१.१)] अधिक महत्त्व के, अधिक बड़े, (से) बड़े है)

गर्भः [३.३८ सं(राम १.१)] गर्भ, भ्रूण

गर्भम् [१४.३ सं(राम २.१)] गर्भ को, अंकुर को

गवि [५.१८ सं(गो ७.१)] गाय में

गहना [४.१७ वि(क्रिया १.१)] गूढ़, गहन

गाण्डीवम् [१.३० सं(फल १.१)] गाण्डीव (अर्जुन का धनुष)

गात्राणि [१.२९ सं(फल १.३] अंग

गाम् [१५.१३ सं(गो २.१)] पृथ्वी

गायत्री [१०.३५ सं(नदी १.१)] गायत्री मन्त्र, एक वैदिक छन्द

गिराम् [१०.२५ सं(गिर् ६.३)] वाणियों में

गीतम् [१३.४ (गै. + क्त कर्म)] गाया गया है

गुडाकेश [१०.२०, ११.७ सं(राम ८.१)] हे गुडाकेश

गुडाकेशः [२.९ सं(राम १.१)] निद्रा के स्वामी, निद्रा को जीतने वाला, अर्जुन

गुडाकेशेन [१.२४ सं(राम ३.१) (गुडा कायाः ईशेन)] निद्रा के स्वामी से

गुणकर्मविभागयोः [३.२८ सं(राम ६.२) (गुणानां च कर्मणां च विभागोः)] गुणों के और कर्मों के (दो) विभागों का, गुण तथा कर्म के विभाजन का

गुणकर्मविभागशः [४.१३ (अ.) (गुणानां च कर्मणां च विभागशः)] गुणों के और कर्मों के विभाजन से (विभाग के अनुसार)

गुणकर्मसु [३.२९ सं(कर्मन् ७.३) (गुणानां कर्मसु)] गुणों के कामों में

गुणतः [१८.२९ (अ.)] गुणों के अनुसार

गुणप्रवृद्धाः [१५.२ सं(विद्या १.३) (गुणैः प्रवृद्धाः)] गुणों द्वारा पोषित, गुणों से वृद्धि को प्राप्त

गुणभेदतः [१८.१९ (अ.) (गुणानां भेदतः)] गुणों के भेद से

गुणभोक्तृ [१३.१४ वि(कर्तृ १.१) (गुणानां भोक्तृ)] गुणों को भोगने वाला

गुणमयी [७.१४ वि(नदी १.१)] गुण युक्त, गुणोंवाली

गुणमयैः [७.१३ वि(राम ३.३)] गुणयुक्त, गुणोंवाली

गुणसंख्याने [१८.१९ सं(फल ७.१) (गुणानां संख्याने)] गुणों के वर्णन में, गुण संख्या के शास्त्र में, (गणना में)

गुणसंमूढाः [३.२९ वि(राम १.३) (गुणैः संमूढाः)] गुणों से मोहित, गुणों से धोखा खाए हुए

गुणसंगः [१३.२१ सं(राम १.१) (गुणेषु संगः)] गुणों में आसक्ति

गुणाः [३.२८, १४.५, २३ सं(राम १.३)] गुण (बहुवचन)

गुणातीतः [१४.२५ वि(राम १.१) (गुणान् अतीतः)] गुणों को पार करने वाला, गुणों से परे चले जाने वाला गुणातीत

गुणान् [१३.१९, २१, १४.२०, २१, २६ सं(राम २.३)] गुणों को

गुणान्वितम् [१५.१० वि(राम २.१)(गुणैः अन्वितम्)] गुणों से जुड़े हुए, गुणों के साथ-साथ रहते हुए

गुणेभ्यः [१४.१९ सं(राम ५.३)] गुणों से, (तीनों] गुणों के अतिरिक्त

गुणेषु [३.२८ सं(राम ७.३)] गुणों में

गुणैः [३.५, २७, १३.२३, १४.२३, १८.४०, ४१ सं(राम ३.३)] गुणों से, गुणों सहित (गुणातीत हैं)

गुरुः [११.४३ सं(गुरु १.१)] गुरु

गुरुणा [६.२२ वि(गुरु ३.१)] भारी से

गुरून् [२.५ सं(साधु २.३)] गुरुजनों को

गुह्यतमम् [९.१, १५.२० विफल २.१)] सबसे गुप्त, अति गोपनीय

गुह्यतरम् [१८.६३ वि(फल १.१)] अधिक गुप्त

गुह्यम् [११.१, १८.६८, ७५ वि(फल १.१)] गोपनीय, गुप्त, रहस्य

गुह्यात् [१८.६३ वि(फल ५.१)] गुप्त से

गुह्यानाम् [१०.३८ वि(फल ६.३)] गोपनीय बातों में

गृणन्ति [११.२१ (√गृ क्या P लट् ३.३)] उच्चारण करते हैं

गृहीत्वा [१५.८, १६.१० (अ) (√ग्रह् क्या P + क्त्वाच्)] कस कर पकड़ लेने पर

गृह्णन् [५.९ वि.(ध्यायत् १.१)] (√ग्रह् क्या A/P शतृ) पकड़ते हुए

गृह्णाति [२.२२ (√ ग्रह् क्या लट् ३.१)] लेता है, धारण करता है

गृह्यते [६.३५ (√ग्रह् क्या A लट् ३.१)] रोका जाता है, वश में किया जा सकता है

गेहे [६.४१ सं(राम ७.१)] घर में

गोविन्द [१.३२ सं(राम ८.१)] हे गोविन्द

गोविन्दम् [२.९ सं(राम २.१)] गोविन्द को

ग्रसमानः [११.३० वि(राम १.१)] कस कर पकड़ते हुए (ग्रसन = भक्षण, निगलना, ग्रास, ग्रहण, बुरी तरह पकड़ना)

ग्रसिष्णु [१३.१६ सं(बहु) १.१)] निगलते हुए, संहार करते हुए, संहार कर्त्ता, भक्षण कर्त्ता

ग्लानिः [४.७ सं(मति १.१)] क्षय, अवनति, ह्रास, पतन

घ

घातयति [२.२१ (√हन् अदा P + णिच् चुरा P लट् ३.१)] (वह) वधका कारण होता है, कैसे किसी को मरवाता है

घोरम् [११.४९, १७.५ वि(फल २.१)] भयंकर, घोर, विकराल

घोरे [३.१ वि(फल ७.१)] भयानक, भयंकर

घोषः [१.१९ सं(राम १.१)] कोलाहल

घ्नतः [१.३५ वि(राम १.१)] (√ हन् अदा + क्त मारते हुए, मार डालते हुए

घ्राणम् [१५.९ सं(फल १.१)] नाक

च

च [१.१..(अ.)] और

चक्रम् [३.१६ सं(फल २.१)] चक्र, चक्कर, चाक

चक्रहस्तम् [११.४६ वि.(राम २.१) (चक्रम् हस्ते यस्य तम्)] उसको जिसके हाथ में चक्र है

चक्रिणम् [११.१७ वि(शशिन् २.१)] चक्र धारी

चक्षुः [५.२७, ११.८, १५.९ सं(धनुस् १.१)] दृष्टि को, नेत्र, आंख

चंचलत्वात् [६.३३ सं(फल ५.१)] चंचलता के कारण, अधीरता के कारण

चंचलम् [६.२६, ३४ वि(फल १.१)] चंचल, डाँवाडोल, अशान्त, बेचैन अधीर

चतुर्भुजेन [११.४६ सं(राम ३.१)] चतुर्भुज (से), चार हाथ वाले से

चतुर्विधम् [१५.१४ वि(फल २.१)] चार प्रकार का, (भोज्य- खाद्य = खाया जाने वाला, पेय = पीया जाने वाला, चोष्य = चूसा जाने वाला, लेह्य = चाटा जाने वाला

चतुर्विधाः [७.१६ वि(राम १.३)] चार प्रकार के

चत्वारः [१०.६ (संख्या वि पु प्रथमा)] चार

चन्द्रमसि [१५.१२ सं(चन्द्रमस् ७.१)] चन्द्रमा में

चमूम् [१.३ सं(चमू २.१)] सेना (को)

चरताम् [२.६७ वि(ध्यायत् ६.३) (√ चर् भ्वा P + शतृ)] गतिमान्, चलता, भ्रमण करता

चरति [२.७१, ३.३६ (√ चर् भ्वा P लट् ३.१)] विचरता है

चरन्ति [८.११ (√ चर् भ्वा P लट् ३.३)] (वे) आचरण करते हैं

चरन् [२.७१, ३.३६ सं(ध्यायत् १.१) (√ चर् भ्वा + शतृ)] पीछे चलते हुए

चरम् [१३.१५ सं(फल १.१)] चल, गतिमान, जंगम

चराचरम् [१०.३९ वि(फल १.१) (चरं च अचरं च)] चर और अचर, स्थावर-जंगम

चराचरस्य [११.४३ सं(राम ६.१)] चर और अचर का, जंगम और जड़(स्थावर) का

चलति [६.२१ (√ चल् भ्वा P लट् ३.१)] चलता है, चलायमान होता है

चलम् [६.३५, १७.१८ वि(फल १.१)] चंचल, अस्थिर

चलितमानसः [६.३७ वि(राम १.१) (चलितं मानसं यस्य सः)] वह जिसका मन भटक गया है, चंचल मन वाला

चातुर्वर्ण्यम् [४.१३ सं(फल १.१)] चातुर्वर्ण, चारों जातियाँ

चान्द्रमसम् [८.२५ वि(फल २.१) (चन्द्रमसः इदम्)] यह चन्द्रमा की

चापम् [१.४७ सं(फल २.१)] धनुष

चिकीर्षुः [३.२५ वि.(गुरु १.१) (√कृ तना A/P + सन् + उ)] करने की इच्छा करता हुआ

चित्तम् [६.१८, २०, १२.९ सं(फल १.१)] मन, चित्त

चित्ररथः [१०.२६ सं(राम १.१)] चित्ररथ

चिन्तयन्तः [९.२२ सं(ध्यायत् १.३) (√चिन्त् चुरा P + शतृ)] चिन्तन (ध्यान) करते हुए

चिन्तयेत् [६.२५ (√चिन्त् चुरा P विधि ३.१)] उसे चिन्तन करना चाहिए

चिन्ताम् [१६.११ सं(विद्या २.१)] चिन्ता (को)

चिन्त्यः [१०.१७ वि(राम १.१) (√चिन्त् चुरा P + य + ण्यत्)] चिंतन करने योग्य

चिरात् [१२.७ (क्रि. वि. अ.)] देर से, (न चिरात् = शीघ्रता से, तुरन्त)

चिरेण [५.६ (क्रि. वि.अ.)] बहुत देर बाद, विलम्ब करके

चूर्णितैः [११.२७ वि(राम ३.३)] चूर चूर हुए

चेकितानः [१.५ सं(राम १.१)] चेकितान

चेत् [२.३३.. (अ.)] यदि, क्या, कि

चेतना [१०.२२, १३.६ सं(विद्या १.१)] चेतन, प्राण शक्ति, संज्ञा, सजीवता

चेतसा [८.८, १८.५७, ७२ सं(मनस् ३.१)] चित्त से, मन से

चेष्टते [३.३३ (√चेष्ट् भ्वा A लट् ३.१)] व्यवहार करता है, बर्तता है

चेष्टाः [१८.१४ सं(विद्या १.३)] संकल्प, क्रियाएं, प्रयत्न, अंग की वह गति जिससे मन के भाव प्रकट हों

चैलाजिनकुशोत्तरम् [६.११चैलं च अजिनं च कुशाः च उत्तरं यस्मिन् तत्)] वह जिसमें क्रमशः वस्त्र और चर्म और दर्भ (बिछा हो), कुशा मृगछाला और वस्त्र एक पर एक बिछाए

च्यवन्ति [९.२४ (√च्यु भ्वा P लट् ३.३)] गिरते हैं

छ

छन्दसाम् [१०.३५ सं(मनस् ६.३)] छन्दों में

छन्दांसि [१५.१ सं(मनस् १.३)] वेद, स्तोत्र (बहुवचन)

छन्दोभिः [१३.४ सं(मनस् ३.३)] छन्दों द्वारा

छलयताम् [१०.३६ वि(ध्यायत् ६.३)] छल कपटियों में, धोखेबाज, प्रवंचक

छित्वा [४.४२, १५.३ (अ.) (√छिद् रुधा P + क्त्वाच्)] चीर कर, काट कर, विदीर्ण करके

छिन्दन्ति [२.२३ (√छिद् रुधा P लट् ३.३)] चीरना, फाड़ना, काटना

छिन्नद्वैधाः [५.२५ वि(राम १.३) (छिन्नं द्वैधं येषां ते)] वे जिन के द्वंद्व मिट गए है, जिनकी द्विधावृत्ति नष्ट हो गई है (द्वित्व = दो का भाव, यह या वह)

छिन्नसंशयः [१८.१० वि(राम १.१) (छिन्नः संशयः यस्य सः)] वह जिसका संशय मिट गया है- नष्ट हो गया है

छिन्नाभ्रम् [६.३८ सं(फल २.१) (छिन्नम् अभ्रम्)] छिन्न भिन्न हुआ, बादल

छेत्ता [६.३९ वि(धातृ १.१)] दूर करने वाला, सुलझाने वाला

छेत्तुम् [६.३९ (√छिद् रुधा P तुमुन्)] दूर करना, खण्ड खण्ड करना

ज

जगत् [७.५, १३; ९.४, १०; १०.४२; ११.७, १३, ३०, ३६; १५.१२; १६.८ सं(जगत् १/२.१)] संसार

जगतः [७.६, ८.२६, ९.१७, १६.९ सं(जगत् ६.१)] संसार (का)

जगत्पते [१०.१५ सं[हरि ८.१) (जगतः पते)] हे जगत् के स्वामी

जगन्निवास [११.२५, ३७, ४५ सं(राम ८.१) (जगतः निवास)] हे जगत् के आश्रयरूप

जघन्यगुणवृत्तिस्थाः [१४.१८ सं(राम १.३) (जघन्यस्य गुणस्य वृत्तौ स्थिताः)] निकृष्ट गुणों की रीतियों में स्थित ओछे गुणवाले, नीच गुणावलम्बी

जनः [३.२१ सं(राम १.१)] लोग

जनकादयः [३.२० (जनकः आदिः येषां ते)] वे जिनका आरम्भ जनक से होता है, जनक इत्यादि

जनयेत् [३.२६ (√जन् दिवा A + णिच् चुरा P विधि ३.१)] उत्पन्न करना चाहिए

जनसंसदि [१३.१० (जनानां संसदि)] मनुष्यों की भीड़ में, जनसमूह में

जनाः [७.१६, ८.१७, २४; ९.२२; १६.७; १७.४, ५ सं(राम १.३)] लोग, मनुष्य

जनाधिपाः [२.१२ सं(राम १.३) (जनानाम् अधिपाः)] जनता के स्वामी लोग, राजा लोग

जनानाम् [७.२८ सं(राम ६.३)] मनुष्यों का, लोगों का

जनार्दन [१.३६, ३९ ४४, ३.१; १०.१८, ११.५१ सं(राम ८.१)] हे जनार्दन

जन्तवः [५.१५ सं(गुरु १.३)] प्राणी बहुवचन) लोग

जन्म [२.२७, ४.४, ९; ६.४२; ८.१५, १६ सं(जन्मन् १.१)] जन्म

जन्मकर्मफलप्रदाम् [२.४३ (जन्म एव कर्मणः फलम् (इव) प्रदाति ताम्)] वह जो देती है कर्मफल केवल (पुनर) जन्म, जन्म मरण रूपी कर्म फल देने वाली

जन्मनाम् [७.१९ सं(जन्मन् ६.३)] जन्मों के

जन्मनि [१६.२० सं(जन्मन् ७.१)] जन्म में

जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः [२.५१ वि(राम १.३) (जन्मनः बन्धात् विनिर्मुक्ताः)] जन्म बन्धन से मुक्त हुए, जन्म के बन्धन से छूटकर

जन्ममृत्युजरादुःखैः [१४.२० सं(राम ३.३) (जन्मनः च मृत्योः च जरायाः च दुःखैः)] जन्म के, मृत्यु के और वृद्धावस्था के दुःखों (से)

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुद - र्शनम् [१३.८ सं(फल १.१) (जन्म च मृत्युः च जरा च व्याधिः च तेषां दुखस्य च दोषस्य च अनुदर्शनम्)] जन्म, मरण, जरा, व्याधि और उनके दुःख, दोष को देखना

जन्मानि [४.५ सं(जन्मन् १.३)] जन्म (बहुवचन)

जपयज्ञः [१०.२५ सं(राम १.१) (जपस्य यज्ञः)] जपयज्ञ, जपनामकयज्ञ

जयः [१०.३६ सं(राम १.१)] जय, विजय

जयद्रथम् [११.३४ सं(राम २.१)] जयद्रथ को

जयाजयौ [२.३८ सं(राम २.१) (जयः च अजयः च)] जय और पराजय, हार जीत

जयेम [२.६ (√जि भ्वा. P विधिलिङ् १.३)] (हम) जीतेंगे (हम) विजय प्राप्त करेंगे

जयेयुः [२.६ (√जि भ्वा. P विधिलिंग ३.३)] (वे) जीतेंगे; (वे) विजय प्राप्त करेंगे

जरा [२.१३ सं(विद्या १.१)] वृद्धावस्था

जरामरणमोक्षाय [७.२९ सं(राम ४.१) जरायाः च मरणात् च मोक्षाय)] वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त होने के लिए

जहाति [२.५० (√हा जुहो. P लट् ३.१)] (वह) फेंक देता है, त्यागता है

जहि [३.४३, ११.३४ (√हा जुहो P लोट् २.१)] (तू) मार डाल

जागर्ति [२.६९ (√जागृ अदा P लट् ३.१)] जागता है

जाग्रतः [६.१६ वि.(ध्यायत् ६.१) (√जागृ अदा. P + शतृ)] जागने वाले की

जाग्रति [२.६९ (√जागृ अदा P लट् ३.३)] जागते हैं

जातस्य [२.२७ वि.(राम ६.१) (√जन् दिवा A + क्त)] जन्मे हुए का

जाताः [१०.६ (वि राम १.३)] (√जन् दिवा A + क्त उत्पन्न हुए

जातिधर्माः [१.४३ सं(राम १.३) (जातेः धर्माः)] जातिधर्म, जाति की रीतिप्रथाएं

जातु [२.१२, ३.५, २३ (अ.)] कभी भी, किसी भी समय

जानन् [८.२७ वि.(ध्यायत् १.१) (√ज्ञा क्या. P + शतृ)] जानता हुआ

जानाति [१५.१९ (√ज्ञा क्र्या P लट् ३.१)] जानता है

जाने [११.२५ (√ज्ञा क्या A लट् १.१)] (मैं) जानता हूं

जायते [१.२९, ४१, २.२०, १४.१५

(√जन् दि. A लट् ३.१)] उइता है, होता है, जन्म लेता है

जायन्ते [१४.१२, १३ (√(जन् दि. A लट् ३.३)] उतपन्न होते हैं, उदय होते हैं

जाह्नवी [१०.३१ सं(नदी १.१) (जा ह्नोः अपत्यं स्त्री)] जह्णु की पुत्री, गंगा

जिगीषताम् [१०.३८ सं(ध्यायत् ६.३) (√जि भ्वा P + सन् + शातृ)] विजय के जिज्ञासुओं में

जिघ्रन् [५.८ वि.(ध्यायत् १.१) (√घ्रा भ्वा P + शतृ)] सूंघता हुआ

जिजीविषामः [२.६ (√जीव् भ्वा P + सन् लट् १.३)] (हम) जीना चाहते हैं

जिज्ञासुः [६.४४, ७.१६ वि(गुरु १.१)] जानने की इच्छा वाला, ज्ञान चाहने वाला

जितः [५.१९, ६.६ वि.(राम १.१) (√जि भ्वा P + क्त) जीता हुआ

जितसंगदोषाः [१५.५ सं(राम १.३) (जिताः संगस्य दोषाः यैः ते)] वे जिनके द्वारा आसक्ति के दोष, विजित हैं जिन्होंने संग दोष जीत लिए हैं

जितात्मा [१८.४९ सं(आत्मन् १.१)] वह जिसने अपने को जीत लिया है

जितात्मनः [६.७ सं(आत्मन् ६.१) (जितः आत्मा यस्य तस्य)] जिसने अपने को जीत लिया हे, उसका

जितेन्द्रियः [५.७ वि(राम १.१) (जितानि इन्द्रियाणि येन सः)] वह जिसके द्वारा इन्द्रियाँ जीती गई हैं, जिसने इन्द्रिय को, जीता है, वह

जित्वा [२.३७, ११.३३ (अ.)] जीत कर

जीर्णानि [२.२२ वि(फल १.३)] जीर्ण, पुराने हुए

जीवति [३.१६ (√जीव् भ्वा P लट् ३.१)] जीता है, जीवित है

जीवनम् [७.९ सं(फल १.१)] जीवन, प्राण

जीवभूतः [१५.७ वि(राम १.१)] जीव होकर, जीव रूप में

जीवभूताम् [७.५ वि(विद्या २.१)] जीवन के मूल तत्त्व को, जीवात्मा को

जीवलोके [१५.७ सं(राम ७.१) (जीवानां लोके)] जीव लोक में, मनुष्य लोक में

जीवितेन [१.३२ सं(फल ३.१)] जीवन से

जुहोषि [९.२७ (√हु P लट् २.१)] (तू) अर्पण करता है, होम हवन करता है

जुह्वति [४.२६, २७, २९, ३० (√हु जुहो P लट् ३.३)] यज्ञ करते हैं, हवन करते हैं, होम करते हैं

जेतासि [११.३४ (जि. भ्वा. P लुट् २.१)] (तू) विजयी होगा, जीतेगा

जोषयेत् [३.२६ (√जुष् चुरा P विधि ३.१)] (दूसरों की) रुचि कराना चाहिए

ज्ञातव्यम् [७.२ सं(फल १.१)] जानने योग्य, जो जानना चाहिए

ज्ञातुम् [११.५४ (√ज्ञा क्या A/P + तुमुन्)] जानने के लिए

ज्ञातेन [१०.४२ वि(फल ३.१)] जानने से, जानकर

ज्ञात्वा [४.१५, १६, ३२, ३५; ५.२९; ७.२; ९.१, १३; १३.१२, १४.१; १६.२४; १८.५५ (अ.) (√ ज्ञा क्र्या. A/P + क्त्वाच)] जान कर, समझकर कर

ज्ञानगम्यम् [१३.१७ वि(फल १.१) (ज्ञानेन गम्यम्)] जो ज्ञान से जाना जाय, ज्ञान से प्राप्त किया जाय

ज्ञानचक्षुषः [१५.१० (वि. १.३) (ज्ञानम् चक्षुः येषां ते)] वे जिनकी आंख ज्ञान है, ज्ञान चक्षु वाले, ज्ञानी

ज्ञानचक्षुषा [१३.३४ सं(धनुस् ३.१) (ज्ञानस्य चक्षुषा)] ज्ञान चक्षुसे, ज्ञान की आंखों से

ज्ञानतपसा [४.१० सं(मनस् ३.१) (ज्ञानस्य तपसा)] ज्ञान की तपस्या से, ज्ञानाग्नि से

ज्ञानदीपिते [४.२७ वि(राम ७.१) (ज्ञानेन दीपिते)] ज्ञान से प्रकाशित हुए, ज्ञान से प्रकाश में (आए)

ज्ञानदीपेन [१०.११ सं(राम ३.१) (ज्ञानस्य दीपेन)] ज्ञान के प्रकाश से

ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः [५.७ वि(राम १.३) (ज्ञानेन निर्धूतानि कल्मषाणि येषां ते)] वे जिनके पाप धुल गए हैं, ज्ञान से

ज्ञानप्लवेन [४.३६ सं(फल ३.१) (ज्ञानस्य प्लवेन)] ज्ञान की नाव से

ज्ञानम् [३.३९, ४०; ४.३४, ३९; ५.१५, १६; ७.२; ९.१; १०.४, ३८; १२.१२; १३.१, २, ११, १७.१८; १४.१, २, ९, ११, १७; १५.१५; १८.१८, १९, २०, २१, ४२, ६३ सं(फल १.१/२.१)] ज्ञान, विद्या, बुद्धिमत्ता

ज्ञानयज्ञः [४.३३ सं(राम १.१) (ज्ञानस्य यज्ञः)] ज्ञान का यज्ञ

ज्ञानयज्ञेन [९.१५, १८.७० सं(राम ३.१) (ज्ञानस्य यज्ञेन)] ज्ञान के यज्ञ से, ज्ञान यज्ञ द्वारा

ज्ञानयोगव्यवस्थितिः [१६.१ सं(मति १.१) (ज्ञाने च योगे च व्यवस्थितिः)] ज्ञान में और योग में दृढ़ता-निष्ठा

ज्ञानयोगेन [३.३ सं(राम ३.१) (ज्ञानस्य योगेन)] ज्ञान योग से

ज्ञानवताम् [१०.३८ सं(धीमत् ६.३)] ज्ञानवानों में

ज्ञानवान् [३.३३, ७.१९ वि(भवत् १.१)] ज्ञानी

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा [६.८ वि(आत्मन् १.१) (ज्ञानेन च विज्ञानेन च तृप्तः आत्मा यस्य सः)] वह जिसकी आत्मा संतुष्ट है ज्ञान से और विज्ञान से

ज्ञानविज्ञाननाशनम् [३.४१ वि(राम २.१) (ज्ञानस्य च विज्ञानस्य च नाशनम्)] ज्ञान और विज्ञान का नाश करने वाला (ध्वंसक)

ज्ञानसंछिन्नसंशयम् [४.४१ वि(राम २.१) (ज्ञानेन संछिन्नः संशयाः यस्य तम्)] उसको जिसने ज्ञान द्वारा संशय

काट दिया है, जिसका संशय नष्ट हो गया है।

ज्ञानसंगेन [१४.६ सं(राम ३.१ (ज्ञानस्य संगेन)] ज्ञान की आसक्ति से, ज्ञान के साथ

ज्ञानस्य [१८.५० सं(फल ६.१)] ज्ञान की

ज्ञानाग्निः [४.३७ सं(हरि १.१) (ज्ञानस्य अग्निः)] ज्ञान की अग्नि, ज्ञान रूपी अग्नि

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम् [४.१९ वि(राम २.१) (ज्ञानस्य अग्निना दग्धानि कर्माणि यस्य तम्)] जिसके कर्म ज्ञान रूपी अग्नि से जल गए हैं, उसको

ज्ञानात् [१२.१२ सं(फल ५.१)] ज्ञान की अपेक्षा, ज्ञान से

ज्ञानानाम् [१४.१ सं(फल ६.३)] ज्ञानों में

ज्ञानावस्थितचेतसः [४.२३ वि(चन्द्रमस् ६.१) ज्ञाने अवस्थितं चेतः यस्य तस्य)] जिसका मन ज्ञान में स्थित हैं, उसका

ज्ञानासिना [४.४२ सं(हरि ३.१) ज्ञानस्य असिना)] ज्ञान के कृपाण से (खड्ग से)

ज्ञानिनः [३.३९, ४.३४, ७.१७ सं(शशिन् ६.१) (१.३)] ज्ञानी पुरुष का, ज्ञानी का, ज्ञानी-लोग

ज्ञानिभ्यः [६.४६ वि(शशिन् ५.१)] ज्ञानियों की अपेक्षा, ज्ञानियों से

ज्ञानी [७.१६, १७, १८ सं(शशिन् १.१)] ज्ञानी, ज्ञानवान्

ज्ञाने [४.३३ सं(फल ७.१)] ज्ञान में

ज्ञानेन [४.३८, ५.१६ सं(फल ३.१)] ज्ञान से

ज्ञास्यसि [७.१ (√ ज्ञा क्रया A/P लृट् २.१)] (तू) जानेगा

ज्ञेयः [५.३, ८.२ वि(राम १.१)] जानना चाहिए

ज्ञेयम् [१.३९; १३.१, १२, १६, १७, १८; १८.१८ वि(फल १.१) (√ ज्ञा क्रया. + यत्)] जानने योग्य, ज्ञेय

ज्यायः [३.८ (वि. १.१)] अधिक अच्छा, श्रेष्ठ

ज्यायसी [३.१ वि(नदी १.१)] श्रेष्ठ उच्च, उत्कृष्ट, अधिक अच्छा

ज्योतिः [८.२४, २५, १३.१७ सं(हविस् १.१)] ज्योति, ज्वाला, प्रकाश

ज्योतिषाम् [१०.२१, १३.१७ सं(हविस् ६.३)] ज्योतियों में, प्रकाश करने वालों में

ज्वलद्भिः [११.३० वि.(ध्यायत् ३.३) (√ ज्वल् + शतृ भ्वा P)] जलता हुआ, अग्निमय, प्रज्वलित

ज्वलनम् [११.२९ सं(राम २.१)] ज्वाला, लौ, लपट, अग्निशिखा

झ

झषाणाम् [१०.३१ सं(राम ६.३)] मछलियों में, मत्स्यों में

त

तत् [१.१०.. सर्व(तद् नपु १.१)] वह, वह (जो भी)

ततः [१.१३.... (अ.)] तब, तत्पश्चात्, (उसके, उसकी अपेक्षा

ततम् [२.१७, ८.२२, ९.४, ११.३८, १८.४६ वि(फल १.१)] व्याप्त, फैलाया हुआ

तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् [१३.११ सं(फल १.१) (तत्त्वस्य ज्ञानस्य अर्थस्य दर्शनम्)] तत्त्व ज्ञान के उद्देश्य के बोध (की अनुभूति, उपलब्धि)

तत्त्वतः [४.९, ६.२१, ७.३, १०.७, १८.५५ अ(तत्त्व + तस्)] वस्तुतः सचमुच, सार, तत्त्व, सारांश, यथार्थ स्वरूप, में से

तत्त्वदर्शिनः [४.३४ वि(शशिन् १.३)] तत्त्व को जानने वाले

तत्त्वदर्शिभिः [२.१६ सं(शशिन् ३.३)] तत्त्व ज्ञानियों (द्वारा) वास्तविकता (यथार्थता) जानने वालों (द्वारा)

तत्त्वम् [१८.१ सं(फल २.१)] तत्त्व, तत् का सार, सारांश

तत्त्ववित् [३.२८, ५.८ वि(तत्त्वविद् १.१)] तत्त्वज्ञ, सार की बात जानने वाला

तत्त्वेन [९.२४, ११. ५४ सं(फल ३.१)] तत्त्व से, मूल रूप से,

तत्परम् [११.३७ सं(फल १.१) (तत् + परम्)] उनसे परे, श्रेष्ठ

तत्परः [४.३९ (राम १.१)] एकाग्र, दत्त चित्त, विलीन, दृढ संकल्प

तत्परायणाः [५.१७ वि(राम १. ३) (तत् परम् अयनं येषां ते)] वे जिनका उच्चतम 'ध्येय' वह हैं, 'उसे' ही सर्वोच्च मानने वाले

तत्प्रसादात् [१८.६२ सं(राम ५.१)] उसकी कृपा दृष्टि से

तत्र [१.२६.. (अ.)] वहां, इस बात में, उसके संबन्ध में, उसमें

तथा [१.८.. (अ.)] उस प्रकार, उसी प्रकार, वैसे ही, भी

तदर्थम् [३.९ (अ.) (तस्य अर्थम्)] उसके लिए, इस कारण

तदर्थीयम् [१७.२७ वि.(फल १.१) (सः अर्थः यस्य तत्)] वह जिसका अर्थ 'तत्' हैं, 'तत्' के लिए किए हुए

तदा [१.८... (अ.)] तब

तदात्मानः [५.१७ वि(आत्मन् १.३] (तत् एव आत्मा येषां ते)] वे जिनकी आत्मा केवल वही है, तन्मय हुए

तद्बुद्धयः [५.१७ वि(हरि १.३) (तस्मिन् बुद्धिः येषां ते)] वे जिनकी बुद्धिः उसी में (लगी है)

तद्भावभावितः [८.६ वि(राम १.१) (तेन भावेन भावितः)] उस स्वभाव (स्वरूप) से प्रेरित, उस स्वरूप में एक रूप हुआ (चिंतन करता हुआ)

तद्वत् [२.७० (अ.)(तत् + वत्)] ऐसे, इस प्रकार

तद्विदः [१३.१] (सं. तत्त्वविद् १.३) उसके जानने वाले, (क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को) जानने वाले

तनुम् [७.२१, ९.११ सं(गुरु २.१) (धेनु २.१)] स्वरूप (को) आकार

तन्निष्ठाः [५.१७ सं(राम १.३) (तस्मिन् निष्ठा येषां ते)] वे जो उसी में स्थित हैं (स्थिर हैं)

तपः [७.९; १०.५; १६.१; १७.५, ७, १४-१९, २८; १८.४२ सं(मनस् १.१)] तप

तपःसु [८.२८ सं(मनस् ७.३)] तप में (बहुवचन)

तपन्तम् [११.१९ सं(ध्यायत् २.१)] तपाते हुए (को)

तपसा [११.५३ सं(मनस् ३.१)] तप से, तप (करने) से

तपसि [१७.२७ सं(मनस् ७.१)] तप में

तपस्यसि [९.२७ (√ तप् भ्वा P लट् २.१)] (तू) तपस्या करता हैं, तप करता है

तपस्विभ्यः [६.४६ वि(शशिन् ५.३)] तपस्वियों की अपेक्षा

तपस्विषु [७.९ वि.सं(शशिन् ७.३)] तपस्वियों में

तपामि [९.१९ (√ तप् भ्वा P लट् १.१)] (मैं) तपाता हूं, गर्मी देता हूं

तपोभिः [११.४२ सं(मनस् ३.३)] तप द्वारा

तपोयज्ञाः [४.२८ सं(राम १.३) (तपः यज्ञः येषां ते)] वे जिनका यज्ञ तप है, तप रूपी यज्ञ करने वाले

तप्तम् [१७.१७, २८ वि(फल १.१) (√ तप् भ्वा P + क्त)] भुगता हुआ, झेला हुआ

तप्यन्ते [१७.५ (√ तप् भ्वा A लट् ३.३)] सहना, झेलना, तपना

तम् [२.१... सर्व(तद् पु. २.१)] उसे, उसको, उस

तमः [१०.११, १४.५, ८-१०; १७.१ सं(मनस् १/२.१)] अन्धकार, जड़ता, अकर्मण्यता

तमसः [८.९, १३.१७, १४.१६, १७, सं(मनस् ६.१)] अंधकार से, अंधकार की अपेक्षा, तमोगुण का, तमोगुण से

तमसा [१८.३२ सं(मनस् ३.१)] अन्धकार से

तमसि [१४.१३, १५ सं(मनस् ७.१)] तमोगुण में

तमोद्वारैः [१६.२२ सं[फल ३.३) (तमसः द्वारैः)] अन्धकार के द्वारों से, नरक के द्वारों से

तया [२.४४, ७.२२ सर्व(तद् स्त्री ३.१)] जिससे, उससे, उसके द्वारा

तयोः [३.३४, ५.२ सर्व(तत् पु ७.२) (६.२)] इन (दोनों) में, के

तरन्ति [७.१४ (√ तृ भ्वा P लृट् ३.३)] पार करना, पार करते है

तरिष्यसि [१८.५८ (√ तृ भ्वा P लृट् २.१)] [तू) पार कर जाएगा, लांघ जाएगा

तव [१.३... सर्व(युष्मद ६.१)] तेरा, आपके, आप का, तुझ को

तस्मात् [१.३७ (अ.)सर्व(तद पुं ५.१)] अतः; इसलिए, उसकी अपेक्षा, उनके लिए

तस्मिन् [१४.३ सर्व(तद पु.नपु. ७.१)] उसमें

तस्य [१.१२.... सर्व(तद पु.नपु. ६.१)] उसका, उसमें, उसके

तस्याः [७.२२ सर्व(तद स्त्री ६.१)] उसका

तस्याम् [२.६९ सर्व(तद स्त्री ७.१)] उसमें

तात [६.४० सं(राम ८.१)] हे मित्र

तान् [१.७.... सर्व(तत पु. २.३)] वे, ये, उनको

तानि [२.६१, ४.५, ९.७, ९; १८.१९ सर्व(तद नपु १.३/२.३)] उनको, वे, ये

ताम् [७.२१, ८.१७, १७.२ सर्व(तद स्त्री २.१)] उस, इस (को)

तामसः [१८.७, २८ वि(राम १.१)] तामसिक

तामसप्रियम् [१७.१० वि(राम २.१) (तामसानां प्रियम्)] तामसी लोगों को प्रिय

तामसम् [१७.१३, १९.२२; १८.२२, २५, ३९ वि(फल १.१/राम २.१)] तामसिक

तामसाः [७.१२, १४.१८, १७.४ संवि(राम १.३)] तामसिक, अक्रिय अकर्मण्य, निष्क्रिय लोग

तामसी [१७.२, १८.३२, ३५ वि(नदी १.१)] तामसिक, तमोगुणात्मक

तावान् [२.४६ (अ.)] उतना ही

तासाम् [१४.४ सर्व(तद स्त्री ६.३)] उनको, इनकी

तितिक्षस्व [२.१४ (√ तिज् भ्वा + सन् A लोट २.१)] (तू) सहन कर, झेल

तिष्ठति [३.५, १३.१३, १८.६१ (√ स्था-तिष्ठ भ्वा P लट ३.१)] रहता है, खड़ा रहता है, बैठा रहता है

तिष्ठन्तम् [१३.२७ वि.(ध्यायत २.१) (√ स्थ-तिष्ठ + शतृ)] बैठा हुआ

तिष्ठन्ति [१४.१८ (√ स्था-तिष्ठ भ्वा P लट ३.३)] (वे) खड़े होते हैं, रहते हैं

तिष्ठसि [१०.१६ (√ स्था-तिष्ठ भ्वा P लट २.१)] (तू) खड़ा है, स्थित है, रहता है

तु [१.२, ७.. (अ.)] वास्तव में, सचमुच में, इत्यादि, फिर, एक पादपूरक

तुमुलः [१.१३, १९ वि.(राम १.१)] उग्र, उत्तेजित, प्रचंड, उत्कट

तुल्यः [१४.२५ वि(राम १.१)] समान, बराबर

तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः [१४.२४ सं(हरि १.१) (तुल्ये निन्दा च आत्मनः संस्तुतिः च यस्मै सः)] वह जिसके

लिए निन्दा और अपनी स्तुति एक समान है

तुल्यनिन्दास्तुतिः [१२.१९ वि(हरि १.१) (तुल्ये निन्दा च स्तुतिः च यस्य सः)] वह जिसको निन्दा और स्तुति, एक समान है

तुल्यप्रियाप्रियः [१४.२४ वि.(राम १.१) (तुल्यौ प्रियः च अप्रियः च यस्मै सः)] वह जिसके लिए प्रिय और अप्रिय एक समान है

तुष्टः [२.५५ वि.(राम १.१) (√तुष् दिवा. P + क्त)] संतुष्ट हुआ

तुष्टिः [१०.५ सं(मति १.१)] सन्तोष

तुष्यति [६.२० (√तुष् दिवा P लट् ३.१)] संतुष्ट है

तुष्यन्ति [१०.९ (√तुष् दिवा P लट् ३.३)] संतुष्ट हैं

तूष्णीम् [२.९ (अ.)] चुप, मौन

तृप्तिः [१०.१८ सं(मति १.१)] संतोष, तृप्ति

तृष्णासंगसमुद्भवम् [१४.७ वि.(फल २.१) (तृष्णा च आसंगः च तयोः समुद्भवः यस्य सः)] वह जो तृष्णा और आसक्ति के स्रोत हैं, तृष्णा (अप्राप्त की इच्छा) और आसंग (प्राप्त वस्तु में आसक्ति) उत्पन्न करने वाला ।

ते [१.७, ३३... सर्व(युष्मद् ४.१), सर्व (युष ६.१); सर्व(तत् पु १.३)] तुझे, आप को; तेरा; वे

तेजः [७.९, १०, १०.३६, १५.१२, १६.३, १८.४३ सं(मनस् १.१)] तेज, ज्योति, प्रकाश

तेजस्विनाम् [७.१०, १०.३६ सं(शशिन् ६.३)] प्रतापवानों का, तेजस्वियों का

तेजोंऽशसंभवम् [१०.४१ वि(फल २.१) (तेजसः अंशात् संभवः यस्य तत्)] वह जिसकी उत्पत्ति है तेज के अंश से

तेजोभिः [११.३० सं(मनस् ३.३)] तेज से, भव्यता से, वैभव पूर्ण

तेजोमयम् [११.४७ वि.(फल १.१)] प्रकाशवान्, तेजोमय

तेजोराशिम् [११.१७ वि(हरि २.१) (तेजसः राशिम्)] तेज (प्रकाश, वैभव) के पुञ्ज (को)

तेन [३.३८... सर्व(तद पु ३.१)] उस से, इस से, उस

तेषाम् [५.१६..... सर्व(तद पु. ६.३)] उनके, उनका, उनमें

तेषु [२.६२, ५.२२ सर्व(तद पु ७.३)] उन में

तैः [३.१२.५.१९, ७.२० सर्व(तद पु ३.३)] उन से, उनके द्वारा

तोयम् [९.२६ सं(फल २.१)] जल

तौ [२.१९, ३.३४ सर्व[तद पु १.२/२.२)] ये, वे (दो)

त्यक्तजीविताः [१.९ सं(राम १.३)] वे जिनके द्वारा जीवन त्यागा गया है, (दांव पर लगाया गया है)

त्यक्तसर्वपरिग्रहः [४.२१ वि.(राम १.१) (त्यक्तः सर्वः परिग्रहः येन सः)] वह जिसके द्वारा सब प्रकार के संग्रह त्याग दिए गए हैं

त्यक्तुम् [१८.११ (अ.) (√ त्यज् भ्वा P + तुमुन)] त्यागना, छोड़ना

त्यक्त्वा [१.३३, २.३, ४८, ५१, ४.९, २०, ५.१०, ११, २२; ६.२४, १८.६, ९,५१ (अ.) (√ त्यज् भ्वा P + क्त्वाच् -)] तज कर, त्याग कर

त्यजति [८.६ (√ त्यज् भ्वा P लट् ३.१)] (वह) त्यागता है

त्यजन् [८.१३ सं(ध्यायत् १.१) (√ त्यज् भ्वा P + शतृ)] त्यागते हुए, तजते हुए

त्यजेत् [१६.२१, १८.८, ४८ (√ त्यज् भ्वा P विधिलिङ् ३.१)] त्याग करना चाहिए, (का) परित्याग किया जाय

त्यागः [१६.२, १८.४, ९ सं(राम १.१)] त्याग, परित्याग

त्यागफलम् [१८.८ सं(फल २.१) (त्यागस्य फलम्)] त्याग का फल

त्यागम् [१८.२, ८ सं(राम २.१)] त्याग

त्यागस्य [१८.१ सं(राम ६.१)] त्याग का

त्यागात् [१२.१२ सं(राम ५.१)] त्याग से

त्यागी [१८.१०, ११ वि(शशिन् १.१)] त्यागी

त्यागे [१८.४ सं(राम ७.१)] त्याग (के सम्बन्ध) में

त्याज्यम् [१८.३, ५ वि(फल १.१) (√ त्यज् P + ण्यत्)] त्यागना चाहिए, त्याग योग्य

त्रयम् [१६.२१ (आर्ष)] तीनों को

त्रयीधर्मम् [९.२१ सं.(राम २.१) (त्रय्याः धर्मम्)] तीनों (वेदों) में कहे हुए धर्म को

त्रायते [२.४० (√ त्रा भ्वा A लट् ३.१)] संरक्षण करता है, बचाता है

त्रिधा [१८.१९ वि(विधा १.१)] तीन प्रकार के, त्रिविध

त्रिभिः [७.१३, १६.२२ संख्या वि(नपु. ३.१) (पु. ३.१)] तीन (से)

त्रिविधः [१७.७, २३, १८.४, १८ वि(राम १.१)] तीन प्रकार के, त्रिगुणात्मक

त्रिविधम् [१६.२१, १७.१७, १८.१२, २९.३६ वि(राम २.१/फल १/ २.१)] तीन प्रकार के, त्रिगुणात्मक

त्रिविधा [१७.२, १८.१८ वि(विद्या १.१)] तीन प्रकार की, त्रिगुणात्मक

त्रिषु [३.२२ संख्या वि(त्रि ७.३)] तीन में

त्रीन् [१४.२०, २१ वि(त्रि-पु. द्वितीया)] तीन

त्रैगुण्यविषयाः [२.४५ वि(राम १.३) (त्रैगुण्यं विषयः येषां ते)] वे, तीन गुण विषय हैं जिनके

त्रैलोक्यराज्यस्य [१.३५ सं(फल ६.१) (त्रैलोक्यस्य राज्यस्य)] तीन लोक के राज्य के लिए

त्रैविद्याः [९.२० (तिस्रः विद्याः येषां ते)] वे जिनकी तीन विद्याएं (हैं) तीनों वेद जानने वाले

त्वक् [१.३० सं(वाच् १.१)] त्वचा, चमड़ी

त्वत् [६.३९, ११.४७, ४८ सर्व(युष्मद् ५.१)] तेरी अपेक्षा, तुमसे

त्वत्तः [११.२ (त्वत् + तस्)] आप से

त्वत्प्रसादात् [१८.७३ सं(राम ५.१) (तव प्रसादात्)] तेरी कृपा से, आप की दया से

त्वत्समः [११.४३ वि(राम १.१) (तव समः)] आपके समान, बराबर

त्वदन्यः (त्वत् अन्यः) सर्व.पु. (सर्व१.१) आप के अतिरिक्त, दूसरा, तेरे सिवाय दूसरा

त्वम् [२.११, १२... सर्व(युष्मद् १.१)] तू, आपने

त्वया [६.३३, ११.१, २०, ३८, १८.७२ सर्व(युष्मद् ३.१)] आप से, तेरे द्वारा

त्वयि [२.३ सर्व(युष्मद् ७.१)] तुझ में

त्वरमाणाः [११.२७ वि(राम १.३)] उतावली करते हुए, शीघ्रता से

त्वा [२.२, १०.१७ सर्व(युष्मद् २.१)] तुझे

त्वाम् [२.७, ३५... सर्व(युष्मद् २.१)] आप को, तुझ को, आप की, तुझे

द

दंष्ट्राकरालानि [११.२५, २७ वि(फल १.३)] भयानक दन्तों सहित

दक्षः [१२.१६ वि(राम १.१)] कार्य कुशल, निपुण, कौशल पूर्ण

दक्षिणायनम् [८.२५ सं(फल १.१)] दक्षिणायन, छः महीने (श्रावण से पौष) का समय जिसमें सूर्य कर्क रेखा से चल कर बराबर दक्षिण की ओर मकर रेखा तक बढ़ता रहता है)

दण्डः [१०.३८ सं(राम १.१)] राजदंड, अधिकार दण्ड

दत्तम् [१७.२८ सं(फल१.१) (√दा जुहो P + क्त)] दिया गया

दत्तान् [३.१२ सं(राम २.३)] (√दा + क्त)] दिए गए को, दिए हुए को

ददामि [१०.१०, ११.८ (√दा जुहो P लट् १.१)] (मैं) देता हूं

ददासि [९.२७ (√दा जुहो P लट् २.१)] (तू) देता है, दान देता है

दधामि [१४.३ (√ धा जुहो A/P लट्, १.१)] (मै) रखता हूं

दध्मुः [१.१८ (√ ध्मा भ्वा P लिट् ३.३)] (शंख), बजाए

दध्मौ [१.१२, १५ (√ध्मा P भ्वा. लिट् ३.१)] बजाया

दमः [१०.४, १६.१, १८.४२ सं(राम १.१)] इन्द्रिय निग्रह, अपने को संयम में रखना

दमयताम् [१०.३८ वि(ध्यायत् ६.३)] शासकों में, दण्ड देने वालों में

दम्भः [१६.४ सं(राम १.१)] पाखण्ड, ढोंग, मिथ्याचार

दम्भमानमदान्विताः [१६.१० वि(राम १.३) (दम्भेन च मानेन च मदेन च अन्विताः)] ढोंग घमण्ड और उन्माद से भरा हुआ

दम्भार्थम् [१७.१२ सं(राम २.१) (दम्भस्य अर्थम्)] पाखण्ड ढोंग के लिए

दम्भाहंकारसंयुक्ताः [१७.५ सं(राम १.३) (दम्भेन च अहंकारेण च संयुक्ताः)] ढोंग और घमण्ड से युक्त, (के समर्थक)

दम्भेन [१६.१७, १७.१८ सं(राम ३.१)] पाखण्ड से, अभिमान पूर्वक, झूठी ठसक दिखाते हुए

दया [१६.२ सं(विद्या १.१)] दया

दर्पः [१६.४ सं(राम १.१)] हेकड़ी, घमण्ड, अहंकार, अक्खड़पन

दर्पम् [१६.१८, १८.५३ सं(राम २.१)] ढिठाई, अक्खड़पन, घृष्टता

दर्शनकाङ्क्षिणः [११.५२ वि(शशिन् १.३) (दर्शनं काङ्क्षन्ते इति)] इस प्रकार (वे) इच्छा करते हैं दर्शन (की) दर्शन की इच्छा वाले, दर्शन के उत्सुक, दर्शनार्थी

दर्शय [११.४, ४५ (√दृश् भ्वा P णिच् लोट् २.१)] दिखाओ, दिखालाइए

दर्शयामास [११.९, ५० (√दृश् भ्वा P + णिच् A लिट् ३.१)] दर्शन दिए, दिखलाया

दर्शितम् [११.४७ वि(फल २.१)] (√दृश् भ्वा P + णिच् + क्त)] दिखाया, देखा गया

दश [१३.५ वि.(संख्यावाचक)] दस

दशनान्तरेषु [११.२७ सं(फल ७.३) (दशनानाम् अन्तरेषु)] दन्तों के बीच में

दहति [२.२३ (√दह् भ्वा P लट् ३.१)] जलाता है

दाक्ष्यम् [१८.४३ सं(फल १.१)] दक्षता (कार्य) कौशल

दातव्यम् [१७.२० वि(फल १.१) (√दा जुहो. P + तव्य)] देना चाहिए, देने योग्य

दानक्रियाः [१७.२५ सं(विद्या १.३)] दान की क्रियाएं

दानम् [१०.५, १६.१; १७.७, २०-२२; १८.५, ४३ सं(फल १.१)] दान

दानवाः [१०.६ सं(राम १.३)] दानव गण

दाने [१७.२७ सं(फल ७.१)] दान में

दानेन [११.५३ सं(राम ३.१)] दान से, दान (देने) से

दानेषु [८.२८ सं(फल ७.३)] दान में (बहुवचन)

दानैः [११.४८ सं(राम ३.३)] दान द्वारा

दास्यन्ते [३.१२ (√दा जुहो A/P लृट् ३.३)] देंगे, (वे)

दास्यामि [१६.१५ (√दा जुहो A/P लृट् १.१)] (मैं) दूंगा, मैं (दान) दूंगा

दिवि [९.२०, ११.१२, १८.४० सं.(दिव् ७.१) स्वर्ग में, आकाश में

दिव्यगन्धानुलेपनम् [११.११ सं(फल १.१) (दिव्ये गन्धः च अनुलेपनं च यस्य तत्)] वह जिसके ईश्वरीय गन्ध और लेप (लगा है)

दिव्यम् [४.९, ८.८, १०, १०.१२, ११.८ वि(फल १.१) (२.१) वि(राम २.१)] ईश्वरीय, दिव्य, दैवी

दिव्यमाल्याम्बरधरम् [११.११ वि.(फल १.१) (दिव्यानि माल्यानि च अम्बराणि च धरति इति तत्)] वह (जो) इस प्रकार ईश्वरीय मालाएं और वस्त्र पहिने है

दिव्याः [१०.१६, १९ वि.(विद्या १.३)] ईश्वरीय, दिव्य

दिव्यान् [९.२०, ११.१५ वि.(राम २.३)] ईश्वरीय, दिव्य

दिव्यानाम् [१०.४० वि.(विद्या ६.३)] ईश्वरीय

दिव्यानि [११.५ वि(फल १.३)] ईश्वरीय

दिव्यानेकोद्यतायुधम् [११.१० वि.(फल २.१) (दिव्यानि, अनेकानि उद्यतानि आयुधानि यस्मिन् तत्)] वह जिसमें अनेक ईश्वरीय शस्त्र उठे हैं, अनेक दिव्य शस्त्र उठाने वाला

दिव्यौ [१.१४ वि(राम १.२)] (दो) दैवी, दिव्य, ईश्वर दत्त

दिशः [६.१३, ११.२०, २५, ३६ सं(दिश् १.३/२.३)] दिशाएं, इधर उधर

दीपः [६.१९ सं(राम १.१)] दीप, दीपक

दीप्तम् [११.२४ वि(राम २.१)] चमकते हुए को, जगमगाते हुए को

दीप्तविशालनेत्रम् [११.२४ वि.(राम २.१) (दीप्तानि विशालानि नेत्रानि यस्य तम्)] उसको जिस के बड़े बड़े चमकते नेत्र (हैं), बड़ी तेजस्वी आखों वाले को

दीप्तहुताशवक्त्रम् [११.१९ वि(राम २.१) (दीप्तः हुताशः इव वक्त्रं यस्य तम्)] उसको जिसका मुख यज्ञाग्नि सा प्रज्वलित है

दीप्तानलार्कद्युतिम् [११.१७ वि(हरि २.१) दीप्तयोः अनलार्कयोः (अनलस्य च अर्कस्य च) इवं द्युतिः यस्य तम्)] उसको जिसकी महिमा अग्नि और सूर्य के समान देदीप्यमान है, अग्नि और सूर्य के समा प्रकाश वाले (को)

दीप्तिमन्तम् [११.१७ वि(धीमत् २.१)] प्रकाशवान् (को) ज्वलन्त (को)

दीयते [१७.२०, २१.२२ (√दा जुहो P + कर्मणि A लट् ३.१)] दिया जाता है

दीर्घसूत्री [१८.२८ वि(शशिन् १.१)] विलम्बी

दुःखतरम् [२.३६ वि.(फल १.१)] अधिक दुःख दायी (दुःखकर)

दुःखम् [५.६, ६.३२, १०.४; १२.५, १३.६; १४.१६; १८.८ सं(फल १.१/२.१)] कठिन, दुःख को

दुःखयोनयः [५.२२ वि(हरि १.३)] दुःख की योनियां, दुःख के मूल

दुःखशोकामयप्रदाः [१७.९ वि(राम १.३) (दुःखं च शोकं च आमयं च प्रददति इति)] इस प्रकार दुःख शोक और रोग उत्पन्न करने वाले

दुःखसंयोगवियोगम् [६.२३ वि.(राम २.१) (दुःखैः संयोगेन वियोगम्)] दुःखों के संयोग से वियोग, दुःख के समागम का वियोग

दुःखहा [६.१७] वि.(१.१) दुःख नाशक

दुःखान्तम् [१८.३६ सं(राम २.१) दुःखस्य अन्तम्)] दुःख का अन्त, दुःख के अन्त को

दुःखालयम् [८.१५ सं(फल २.१) (दुःखानाम् आलयम्)] दुःख का घर, स्थान

दुःखेन [६.२२ सं(फल ३.१)] दुःख से

दुःखेषु [२.५६ सं(फल ७.१)] दुःखों में

दुरत्यया [७.१४ वि(विद्या १.१)] पार होने में कठिन, दुस्तर

दुरासदम् [३.४३ वि(राम २.१)] जिसकी पहुंच कठिन हो, दुर्जय को

दुर्गतिम् [६.४० सं(मति २.१)] बुरी अवस्था को, बुरी दशा को, दुर्गति

दुर्निग्रहम् [६.३५ वि(फल १.१)] कठिनता से वश में आने वाला

दुर्निरीक्ष्यम् [११.१७ वि(राम २.१) (दुःखेन निरीक्ष्यम्)] कठिनता से दिखने वाला, कठिनाई से देखे जा सकने वाले को

दुर्बुद्धेः [१.२३ वि(हरि ६.१)] खोटी बुद्धिवाले

दुर्मतिः [१८.१६ वि(हरि १.१)] दुष्ट मन वाला, खोटी बुद्धि वाला, मूर्ख

दुर्मेधाः [१८.३५ सं(चन्द्रमस् १.१)] दुष्ट बुद्धिवाला

दुर्योधनः [१.२ सं(राम १.१)] दुर्योधन

दुर्लभतरम् [६.४२ वि(फल १.१)] अधिक दुर्लभ, जिसका पाना अत्यन्त कठिन है

दुष्कृताम् [४.८ वि(राम ६.१)] दुष्टों का, बुरे काम करने वालों का

दुष्कृतिनः [७.१५ सं(शशिन् १.३)] कुकर्मी लोग, खोटा काम करने वाले, दुराचारी

दुष्टासु [१.४१ वि(विद्या ७.३)] दुष्ट होने पर

दुष्पूरम् [१६.१० वि(राम २.१)] पूर्ण न होने वाली, तृप्त न होने वाली

दुष्पूरेण [३.३९ वि(राम ३.१)] न भरे जाने वाले, पूर्ण न होने वाले, तृप्त न होने वाले (द्वारा) अतोषणीय, अतर्पणीय, अति लोभी

दुष्प्रापः [६.३६ वि(राम १.१)] कठिनता से प्राप्त होने वाला

दूरस्थम् [१३.१५ वि(फल १.१) (दूरे तिष्ठति इति)] इस प्रकार (जो) दूर रहता है, दूर स्थित

दूरेण [२.४९ (अ.)] कहीं अधिक

दृढनिश्चयः [१२.१४ वि.(राम १.१) (दृढः निश्चयः यस्य सः)] वह जिसका निश्चय दृढ है, कृत संकल्प, दृढप्रतिज्ञ

दृढम् [६.३४, १८.६४ वि(फल १.१)] कठोर, पूरी शक्ति से(हठीला), गहरा, प्रगाढ़

दृढव्रताः [७.२८; ९.१४ वि(राम १.३) (दृढम् व्रतं येषां ते)] वे जिनके प्रण दृढ हैं अडिगव्रत वाले, दृढ निश्चय वाले

दृढेन [१५.३ वि.(राम ३.१)] कठोर (से), दृढ (से)

दृष्टः [२.१६ (√दृश् भ्वा P + क्त राम १.१)] देखा (गया है) जाना (गया है)

दृष्टपूर्वम् [११.४७ वि.(फल १.१)] पहले का देखा (गया)

दृष्टवान् [११.५२, ५३ वि(धीमत् (१.१) (दृश्-पश्य् भ्वा P + क्तवतु)] देखा गया, (तूने) देखा है

दृष्टिम् [१६.९ सं(मति २.१)] दृष्टिकोण, मत, विचार, अभिप्राय (को)

दृष्ट्वा [१.२, २०, २८, २.५९, ११.२०, २३.२५, ४५, ४९, ५१ (अ.) (दृश्-पश्य् भ्वा P + क्त्वा)] देखकर

देव [११.१५, ४४, ४५ सं(राम ८.१)] हे देव

देवताः [४.१२ सं(विद्या २.३)] देवताओं को

देवदत्तम् [१.१५ सं(राम २.१)] देवदत्त को

देवदेव [१०.१५ सं(राम ८.१) (देवानां देव)] देवताओं के देवता

देवदेवस्य [११.१३ सं(राम ६.१) (देवानां देवस्य)] देवताओं के, ईश्वर के

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम् [१७.१४ सं(फल १.१) (देवानां च द्विजानां च गुरूणां च प्राज्ञानां च पूजनम)] देवताओं की और ब्राह्मणों की और गुरूओं और बुद्धिमान् लोगों की पूजा; देव, ब्राह्मण गुरु और ज्ञानी की पूजा

देवभोगान् [९.२० सं(राम २.३) (देवानां भोगान)] देवताओं के भोग पदार्थों को

देवम् [११.११, १४ सं(राम २.१)] ईश्वर, देवता को

देवयजः [७.२३ (देवान् यजन्ते इति)] ऐसे पूजा करते हैं देवताओं की

देवर्षि [१०.१३ वि(हरि १.१)] देवर्षि

देवर्षीणाम् [१०.२६ सं(हरि ६.३)] देव ऋषियों (में) का

देवलः [१०.१३ सं(राम १.१)] देवल (ऋषि)

देववर [११.३१ सं(राम ८.१) (देवानां वर)] हे देवताओं में श्रेष्ठ, हे देववर

देवव्रताः [९.२५ सं(राम १.३) (देवेभ्यः व्रतं येषां ते)] वे जिनके व्रत देवताओं के लिए हैं, देवताओं का पूजन करने वाले

देवाः [३.११.१२, १०.१४, ११.५२ सं(राम १.३)] देवता लोग

देवान् [३.११, ७.२३, ९.२५, ११.१५, १७.४ सं(राम २.३)] देवता लोग, देवताओं को

देवानाम् [१०.२, २२ सं(राम ६.३)] देवताओं का, देवताओं में

देवेश [११.२५, ३७, ४५ सं(राम ८.१) (देवानाम् ईशः)] हे देवेश, हे देवेश्वर

देवेषु [१८.४० सं(राम ७.३)] देवताओं में

देशे [६.११, १७.२० सं(राम ७.१)] स्थान में

देहभृत् [१४.१४ वि(मरुत् १.१)] शरीर का आधार (पोषक) देह धारी

देहभृता [१८.११ वि.(मरुत् ३.१) (देहं बिभर्ति यः तेन)] जिसके द्वारा शरीर धारण किया जाता है, वह, देह धारी

देहभृताम् [८.४ वि(मरुत् ६.३) (देहं बिभ्रति इति तेषाम्)] उनका जो इस प्रकार देह धारण करते हैं, देह धारियों का

देहम् [४.९, ८.१३, १५.१४ सं(फल २.१)) (राम २.१)] शरीर

देहवद्भिः [१२.५ वि(ध्यायत् ३.३)] शरीर धारियों से, देह धारियों द्वारा

देहसमुद्भवान् [१४.२० वि(राम २.३) (देहात् समुद्भवः येषां तान्)] उनको जिनका उद्गम शरीर से (है), देह से उत्पन्न हुए

देहाः [२.१८ सं(राम १.३] देह (बहुवचन)

देहान्तरप्राप्तिः [२.१३ सं(मति १.१) (देहान्तरस्य प्राप्तिः)] दूसरी देह की प्राप्ति

देहिनः [२.१३, ५९ सं(शशिन् ६.१)] मूर्त रूप हुए का, देहधारी का- को

देहिनम् [३.४०, १४.५,७ सं(शशिन् २.१)] देह धारी, मूर्त रूप

देहिनाम् [१७.२ सं(शशिन् ६.३)] देहधारियों का

देही [२.२२, ३०, ५.१३, १४.२० सं(शशिन् १.१)] देह धारी, जीवात्मा

देहे [२.१३, ३०; ८.२, ४; ११.७, १५; १३.२२, ३२; १४.५, ११ सं(राम/फल ७.१)] देह में, शरीर में

दैत्यानाम् [१०.३० सं(राम ६.३)] दैत्यों में

दैवः [१६.६ वि(राम १.१)] दैवी, ईश्वरीय

दैवम् [४.२५, १८.१४ वि(राम २.१) सं(फल १.१)] ईश्वरीय, दैवी, देवताओं के निमित्त, दैव, ईश्वर

दैवी [७.१४.१६.५ वि(नदी १.१)] ईश्वरीय,

दैवीम् [९.१३, १६.३, ५ सं(नदी २.१)] ईश्वरीय, (को)

दोषम् [१.३८, ३९ सं(राम २.१)] दोष, अपराध

दोषवत् [१८.३ वि(जगत् १.१)] दुष्टता से भरे हुए के समान, दोष समान

दोषेण [१८.४८ सं(राम ३.१)] दोष से

दोषैः [१.४३ सं(राम ३.३)] दोषों से, दुष्कर्मों से

द्यावापृथिव्योः [११.२० सं(नदी ६.२) (दिवः च पृथिव्याः च)] आकाश और पृथ्वी का

द्यूतम् [१०.३६ सं(फल १.१)] जूआ

द्रक्ष्यसि [४.३५ (√दृश् भ्वा P लृट् २.१)] (तू) देखेगा

द्रवन्ति [११.२८, ३६ (√द्र भ्वा P लट् ३.३)] भागते हैं, दौड़ते हैं, बढ़ते हैं

द्रव्यमयात् [४.३३ वि(राम ५.१)] द्रव्य वाले (यज्ञ) की अपेक्षा

द्रव्ययज्ञाः [४.२८ सं(राम १.३) (द्रव्येण यज्ञः येषां ते)] वे जिनका यज्ञ धन-सम्पत्ति द्वारा (है), द्रव्य से यज्ञ करने वाले,

द्रष्टा [१४.१९ सं(धातृ १.१)]] देखने वाला

द्रुपदः [१.४, १८ सं(राम १.१)] द्रुपद

द्रष्टुम् [११.३, ४, ७, ८, ४६, ४८, ५३, ५४ (अ.) (√दृश्-पश्य भ्वा P + तुमुन) देखना

द्रुपदपुत्रेण [१.३ सं(राम ३.१) (द्रुपदस्य पुत्रेण)] द्रुपद के पुत्र (द्वारा)

द्रोणः [११.२६ सं(राम १.१)] द्रोणाचार्य्य

द्रोणम् [२.४, ११.३४ सं(राम २.१)] द्रोण को, द्रोणाचार्य्य को

द्रौपदेयाः [१.६, १८ सं(राम १.३)] द्रौपदी के पुत्र

द्वंद्वः [१०.३३ सं(राम १.१)] द्वन्द्व, द्वैत

द्वंद्वमोहनिर्मुक्ताः [७.२८ वि(राम १.३) (द्वंद्वस्य मोहात् निर्मुक्ताः)] द्वंद्वों के मोह से मुक्त, द्वन्द्व मोह से रहित

द्वंद्वमोहेन [७.२७ सं(राम ३.१) द्वंद्वस्य मोहेन)] द्वंद्वों के मोह से

द्वंद्वातीतः [४.२२ वि(राम १.१) (द्वंद्वम् अतीतः)] द्वंद्वों से परे चले गए, (द्वंद्व=सुख दुःख, हानि लाभ इत्यादि)

द्वंद्वैः [१५.५ सं(राम ३.३)] द्वन्द्वों से

द्वारम् [१६.२१ सं(फल १.१)] द्वार, फाटक

द्विजोत्तम [१.७ सं(राम ८.१) (द्विजेषु उत्तम)] हे द्विजश्रेष्ठ

द्विविधा [३.३ वि(विद्या १.१)] द्वि-दो प्रकार

द्विषतः [१६.१९ सं(ध्यायत् ६.१) (√द्विष् अदा P + शतृ)] द्वेष करने वाले, घृणा करने वाले

द्वेषः [१३.६ सं(राम १.१)] घृणा, द्वेष

द्वेष्टि [२.५७, ५.३, १२.१७, १४.२२, १८.१० (√द्विष् अदा. P लट् ३.१)] द्वेष करता है, चित्त को अप्रिय लगता है

द्वेष्यः [९.२९ वि(राम १.१)] घृणित, द्वेषपात्र, बैरी

द्वौ [१५.१६, १६.६ संख्या वि(द्वि पु प्रथमा)] दो

ध

धनंजय [२.४८, ४९, ४.४१; ७.७; ९.९; १२.९, १८.२९, ७२ सं(राम ८.१)] हे धनंजय

धनंजयः [१.१५, १०.३७, ११.१४ सं(राम १.१)] धनंजय

धनम् [१६.१३ सं(फल २.१)] धन,

धनमानमदान्विताः [१६.१७ वि(राम १.३) (धनस्य मानेन च मदेन च अन्विताः)] धन और मान के नशे से भरे हुए, धन और मान के मद में मस्त

धनानि [सं(फल १.३)] धन सम्पत्ति

धनुः [१.२० सं(गुरु १.१)] धनुष

धनुर्धरः [१८.७८ वि(राम १.१)] धनुर्धारी, धनुषधारी

धर्मकामार्थान् [१८.३४ सं(राम २.३) (धर्मः च कामः च अर्थः च तान्)] धर्म, और काम और अर्थ और उनके (इच्छुक)

धर्मक्षेत्रे [१.१ वि[फल ७.१] (धर्मस्य क्षेत्रे)] धर्म के क्षेत्र (मैदान) (में)

धर्मम् [१८.३१, ३२ सं(राम २.१)] धर्म को, उचित

धर्मसंमूढचेताः [२.७ सं(वेधस् १.१) (धर्मे संमूढं चेतः यस्य सः)] वह जिसका मन धर्म के विषय में भ्रम में है (घबराया हुआ है)

धर्मसंस्थापनार्थाय [४.८ सं(राम ४.१) (धर्मस्य संस्थापनस्य अर्थाय)] धर्म की स्थापना के लिए, धर्म संस्थापन के लिए

धर्मस्य [२.४०, ४.७, ९.३, १४.२७ सं(राम ६.१)] धर्म का (पथ, विधि)

धर्मात्मा [९.३१ वि(आत्मन् १.१) (धर्मे आत्मा यस्य सः)] वह जिसकी आत्मा धर्म में है, धर्मात्मा

धर्माविरुद्धः [७.११ वि(राम १.१)] धर्म के विरुद्ध नहीं, (जो) धर्म से विरोध नहीं करता, धर्म से विपरीत नहीं, (प्रतिकूल नहीं)

धर्मे [१.४० सं(राम ७.१)] धर्म में, कर्तव्य पालन में

धर्म्यम् [२.३३, ९.२, १८.७० वि(राम २.१)] धार्मिक, धर्म परायण

धर्म्यात् [२.३१ वि(राम ५.१)] धार्मिक (से)

धर्म्यामृतम् [१२.२० सं(फल १.१) (धर्म्यं च तत् अमृतं च)] धर्म, और वही अमृत, धर्म रूपी अमृत को

धाता [९.१७, १०.३३ सं(धातृ १.१)] भरण पोषण करने वाला, पोषक, आधार

धातारम् [८.९ सं(धातृ २.१)] पोषक, आधार को

धाम [८.२१, १०.१२, ११.३८, १५.६ सं(जन्मन् १.१)] धाम, आवास, निवास स्थान

धारयते [१८.३३, ३४ (√धृ चुरा A/P लट् ३.१)] (वह) धारण करता है, उठाए रखता है, थाम रखता है

धारयन् [५.९, ६.१३ वि.(ध्यायत् १.१) (√धृ P जुहो + शतृ)] मानता हुआ, धारण करता हुआ, रखता हुआ

धारयामि [१५.१३ (√धृ चुरा P लट् १.१)] (मैं) धारण करता हूं, थाम रखता हूं

धार्तराष्ट्रस्य [१.२३ सं(राम ६.१)] धृतराष्ट्र के पुत्र का

धार्तराष्ट्राणाम् [१.१९ सं(राम ६.३) (धृतराष्ट्स्य पुत्राणाम्)] धृतराष्ट्र के पुत्रों के

धार्तराष्ट्राः [१.४६, २.६ सं(राम १.३)] धृतराष्ट्र के पुत्र

धार्तराष्ट्रान् [१.२०, ३६, ३७ सं(राम २.३)] धृतराष्ट्र के पुत्रों (को)

धार्यते [७.५ (√धृ चुरा P + कर्मिण A लट् ३.१)] थामा है, उठाया हुआ है

धीमता [१.३ वि(धीमत् ३.१)] बुद्धिमान् (द्वारा)

धीमताम् [६.४२ सं(धीमत् ६.३)] बुद्धिमानों का, ज्ञानवानों का

धीरः [२.१३, १४.२४ सं(राम १.१)] दृढ चित्तवाला, स्थिरबुद्धिवाला, जिसमें धैर्य हो, ज्ञानी

धीरम् [२.१५ सं(राम २.१)] दृढ चित्त वाले को, स्थिर बुद्धिवाले को, ज्ञानी को

धूमः [८.२५ सं(राम १.१)] धूंआ, धूम

धूमेन [३.३८, १८.४८ सं(राम ३.१)] धुएं से

धृतराष्ट्रः [१.१ सं(राम १.१)] धृतराष्ट्र

धृतराष्ट्रस्य [११.२६ सं(राम ६.१)] धृतराष्ट्र के

धृतिः [१०.३४, १३.६, १६.३, १८.३३, ३४.३५, ४३, सं(मति १.१)] धैर्य सहनशक्ति, मन की धारणा

धृतिगृहीतया [६.२५ वि(मति ३.१) (धृत्या गृहीतया)] दृढता से पकड़ी गई, स्थिरता से युक्त

धृतिम् [११.२४ सं(मति २.१)] धीरज, शक्ति

धृतेः [१८.२९ सं(मति ६.१)] धैर्य के, धीरज के

धृत्या [१८.३३, ३४, ५१ सं(मति ३.१)] धैर्य से, धीरज से, सहन शक्ति से

धृत्युत्साहसमन्वितः [१८.२६ वि(राम १.१) (धृत्या च उत्साहेन च समन्वितः)] दृढता से और विश्वास से सम्पन्न है, भरा हुआ है (जो)

धृष्टकेतुः [१.५ सं(गुरु १.१)] धृष्टकेतु

धृष्टद्युम्नः [१.१७ सं(राम १.१)] धृष्टद्युम्न राजा द्रुपद के पुत्र, द्रौपदी के भाई

धेनूनाम् [१०.२८ सं(धेनु ६.३)] गायों में

ध्यानम् [१२.१२ सं(फल १.१)] ध्यान, चिंतन

ध्यानयोगपरः [१८.५२ वि(राम १.१) (ध्यानं च योगः च (ध्यान यौगौ) परौ यस्य सः)] वह जिसका ध्यान और योग श्रेष्ठ है, ध्यान योग में लीन

ध्यानात् [१२.१२ सं(फल ५.१)] ध्यान (चिंतन) की अपेक्षा

ध्यानेन [१३.२४ सं(फल ३.१)] ध्यान से, चिंतन द्वारा

ध्यायतः [२.६२ वि.(ध्यायत् ६.१) (√ ध्यै P भ्वा शतृ)] ध्यान करने वाले का, चिंतन करने वाले का

ध्यायन्तः [१२.६ वि.(ध्यायत् १.३) (√ ध्यै भ्वा P शतृ] ध्यान करते हुए, चिंतन करते हुए

ध्रुवः [२.२७ वि(राम १.१)] निश्चित, अवश्यंभावी

ध्रुवम् [२.२७, १२.३ वि(फल २.१)] निश्चित, पक्का, स्थिर

ध्रुवा [१८.७८ वि(विद्या १.१)] स्थिर, अचल

न

न [१.३०, ३१... (अ.)] न, नहीं

नः [१.३२, ३३, ३६, २.६ सर्व(अस्मद् २.३/४.३/६.३)] हम को, हमारे लिए हमारा/हमारी

नकुलः [१.१६ सं(राम १.१)] नकुल

नक्षत्राणाम् [१०.२१ सं(फल ६.३)] तारा पुंजों में, नक्षत्रों में

नदीनाम् [११.२८ सं(नदी ६.३)] नदियों का

नभः [१.१९ सं(राम १.१)] आकाश

नभःस्पृशम् [११.२४ सं(राम २.१) (नभः स्पृशति इति तम्)] उसको जो इस प्रकार आकाश को स्पर्श करता है, आकाश छूने वाले को

नमः [९.३४, ११.३१, ३५, ३९, ४०, १८.६५ सं(मनस् १.१)] नमस्कार, अभिवादन

नमस्कुरु [९.३४ (नमः + √कृ तना P लोट २.१)] नमस्कार कर

नमस्कृत्वा [११.३५ (नमः √कृ तना A/P + क्त्वाच्)] नमस्कार करके

नमस्यन्तः [९.१४ वि.((ध्यायत् १.३) (√ नम् + लृट + शतृ)] नमस्कार करते हुए

नमस्यन्ति [११.३६ (√ नम् भ्वा P ३.३)] दण्डवत् करते हैं, प्रणाम करते है

नमेरन् [११.३७ (√ नम् भ्वा A + विधिलिङ् ३.३)] (वे) दण्डवत् प्रणाम करें

नयेत् [६.२६ (√ नी भ्वा P विधि ३.१)] (उसे) लाना चाहिए

नरः [२.२२, ५.२३; १२.१९; १६.२२; १८.१५, ४५, ७१ सं(राम १.१)] मनुष्य

नरकस्य [१६.२१ सं(राम ६.१)] नरक का

नरकाय [१.४२ सं(राम ४.१)] नरक के लिए, नरक की ओर (लेजाता है)

नरके [१.४४, १६.१६ सं(राम ७.१)] नरक में

नरपुंगवः [१.५ सं(राम १.१) (नरेषु पुंगवः)] मनुष्यों में सांड़, नरश्रेष्ठ

नरलोकवीराः [११.२८ सं(राम १.३) (नराणां लोके वीराः)] मनुष्य लोक में वीर पुरुष, लोकनायक, (बहुवचन)

नराणाम् [१०.२७ सं(राम ६.३)] मनुष्यों में

नराधमाः [७.१५ सं(राम १.३) (नरेषु अधमाः)] मनुष्यों में अधम, निकृष्ट

नराधमान् [१६.१९ वि(राम २.३) (नरेषु अधमान्)] नीच मनुष्य, अधम नर

नराधिपम् [१०.२७ सं(राम २.१) (नराणां अधिपम्)] मनुष्यों में राजा, नरपति

नरैः [१७.१७ सं(राम ३.३)] मनुष्यों से, पुरुषों द्वारा

नवद्वारे [५.१३ वि(फल ७.१)] नव द्वारों वाले - (में) (दो कान, दो आँख, दो नासिकाएं, एक मुंह, एक गुदा और एक उपस्थ)

नवानि [२.२२ वि(फल १.३)] नए, नवीन

नश्यति [६.३८ (√नश दिवा P लट् ३.१)] नष्ट होता है

नश्यत्सु [८.२० (ध्यायत् ७.३) (√नश् दिवा P + शतृ)] नाश होते हुए भी, नष्ट होने पर भी, नष्ट होने में भी

नष्टः [४.२, १८.७३ (√नश् दिवा P + क्त वि(राम १.१)] नष्ट हुआ, विनाश हुआ

नष्टात्मानः [१६.९ सं(आत्मन् १.३) (नष्टः आत्मा येषां ते)] वे जिनकी आत्मा नष्ट हुई है, दुष्ट लोग

नष्टान् [३.३२ वि(राम २.३) (√नश् दिवा P + क्त)] नष्ट हुआ

नष्टे [१.४० वि(राम ७.१) (√नश् दिवा P + क्त)] नष्ट होने पर

नागानाम् [१०.२९ सं(राम ६.३)] नागों में

नातिनीचम् [६.११ वि(फल २.१) (न अतिनीचम्)] बहुत नीचा नहीं

नातिमानिता [१६.३ सं(विद्या १.१) (न अति मानिता)] अत्यन्त अभिमान का न होना, निरभिमानिता

नात्युच्छ्रितम् [६.११ वि(फल २.१) (न अत्युच्छ्रितम्)] बहुत ऊंचा नहीं

नानाभावान् [१८.२१ सं(राम २.३)] अनेक रूपों (को)

नानावर्णाकृतीनि [११.५ वि(वारि २.३) (नाना वर्णाः आकृतयः च येषां तानि)] उनको जिनके अनेक रंग और रूप (है)

नानाविधानि [११.५ वि(वारि २.३)] अनेक प्रकार के

नानाशस्त्रप्रहरणाः [१.९ सं(राम १.३)] वे जिनके प्रहार करने के अस्त्र नाना विधि के हैं

नान्यगामिना [८.८ विफल ३.१) (न अन्यं गच्छति इति तेन)] इस प्रकार इससे दूसरी ओर न जाते हुए

नामयज्ञैः [१६.१७ सं(राम ३.३)] नाम मात्र के यज्ञों द्वारा

नायकाः [१.७ सं(राम १.३)] नेतागण

नारदः [१०.१३, २६ सं(राम १.१)] नारद

नारीणाम् [१०.३४ सं(नदी ६.३)] स्त्रियों में, नारी –जाति के नामों (गुणों) में

नावम् [२.६७ सं(नौ २.१)] नाव को

नाशनम् [१६.२१ वि(फल १.१)] विनाशकारी, नाश करने वाला

नाशयामि [१०.११ (√नश् दिवा. P + णिच् लट् १.१)] (मैं) नष्ट करता हूं

नाशाय [११.२९ सं(राम ४.१)] नष्ट होने के लिए, नाश के लिए

नाशितम् [५.१६ वि.(फल १.१) (√नश् + णिच् + क्त)] नाश किया हुआ, नष्ट

नासाभ्यन्तरचारिणौ [५.२७ वि(शशिन् २.२)] (नासायाः अभ्यन्तरे चारिणौ)] नासाछिद्रों (नासारन्ध्रों) के भीतर चलते हुए (आते जाते)

नासिकाग्रम् [६.१३ वि(फल २.१) (नासिकायाः अग्रम्)] नाक की नोक को, नासिका के अग्रभाग को

नास्ति [२.६६ (न अस्ति)] नहीं है

निःश्रेयसकरौ [५.२ वि(राम २.१)] (दोनों) परम कल्याण कारक

निःस्पृहः [२.७१, ६.१८ वि(राम १.१)] इच्छा रहित

निगच्छति [९.३१, १८.३६ (नि + √गम् गच्छ् P लट् ३.१)] जाता है

निगृहीतानि [२.६८ वि(फल १.३)] रुकी हुई, नियंत्रित की हुई, खिंची हुई, हटी हुई (प्रत्याहार = योग के आठ अंगों में से एक अंग जिस में इंद्रियों को विषयों से हटा कर चित्त का निरोध किया जाता है)

निगृह्णामि [९.१९ नि + √ग्रह् क्र्या A/P लट् १.१)] (मैं) रोक रखता हूं, थाम रखता हूं

निग्रहः [३.३३ सं(राम १.१)] रोक, प्रतिबन्ध, नियन्त्रण, संयम

निग्रहम् [६.३४ सं(राम २.१)] वश में करना, पकड़ में लाना

नित्यजातम् [२.२६ वि.(राम २.१) (नित्यं जातम्)] सदा (बराबर) (निरन्तर) जन्मता है

नित्यतृप्तः [४.२० वि(राम १.१)] सदा संतुष्ट

नित्यः [२.२०, २४ वि(राम १.१)] निरन्तर, सतत

नित्यम् [२.२१, २६, ३०; ३.१५, ३१; ९.६; १०.९; ११.५२; १३.९, १८.५२ वि.(राम २.१) (अ.)] अनन्त, नित्य, सदा, निरन्तर

नित्ययुक्तः [७.१७ वि(राम १.१) (नित्यं युक्तः)] सदैव सन्तुलित, निरन्तर लीन

नित्ययुक्तस्य [८.१४ वि(राम ६.१)] सदा सन्तुलित (का) सदालीन रहने वाले (का)

नित्ययुक्ताः [९.१४, १२.२ वि(राम १.३)] सदैव लीन, निरन्तर सन्तुलित,

नित्यवैरिणा [३.३९ वि(शशिन् ३.१)] नित्य के शत्रु द्वारा

नित्यशः [८.१४ (अ.)] नित्य, निरंतर

नित्यसंन्यासी [५.३ सं(शशिन् १.१)] सदा संन्यासी, निरन्तर संन्यासी

नित्यसत्त्वस्थः [२.४५ सं(राम् १.१) (नित्यं सत्त्वे तिष्ठति इति)] नित्य सत्त्व (गुण) में (जो) निवास करता है, इस प्रकार

नित्यस्य [२.१८ वि(राम ६.१)] चिरस्थायी का

नित्याभियुक्तानाम् [९.२२ वि(राम ६.३)] सदैव लीन हुओं का, निरंतर समाहित चित्त वालों का

निद्रालस्यप्रमादोत्थम् [१८.३९ वि(फल १.१) (निद्रा च आलस्यं च प्रमादः च तेभ्यः उत्थितम्)] निद्रा, आलस्य और भ्रम से उदित हुआ

निधनम् [३.३५ सं(फल १.१)] मृत्यु

निधानम् [९.१८, ११.१८, ३८ सं(फल २.१)] भंडार, आधार, आश्रय स्थान

निन्दन्तः [२.३६ वि.(ध्यायत् १.३) (√निन्द् भ्वा शतृ)] निन्दा करते हुए

निबद्धः [१८.६० वि(राम १.१) (नि + √ बन्ध् क्र्या, P + क्त)] बंधा हुआ

निबध्नन्ति [४.४१, ९.९, १४.५ (नि + √ बन्ध् क्र्या. लट् P लट् ३.३)] (वे) बांधते हैं

निबध्नाति [१४.७, ८ (नि + √ बन्ध् क्र्या. P लट् ३.१)] (वह) बांधता है

निबध्यते [४.२२, ५.१२, १८.१७ (नि + √ बन्ध् क्र्या. P लट् ३.१)] (वह) बंधता है, बन्धन में पड़ता है, बंधा है

निबन्धाय [१६.५ सं(राम ४.१)] बन्धन के लिए, दासता के लिए

निबोध [१.७, १८.१३, ५० (नि + √ बुध् भ्वा. P लोट् २.१)] से परिचित होले, तू जानले, समझले

निमित्तमात्रम् [११.३३ (अव्यय)] हेतुमात्र, केवल कारण

निमित्तानि [१.३१ सं(फल २.३)] कारण (लक्षणों को)

निमिषन् [५.९ वि(ध्यायत् १.१) (नि + √ मिष् तुदा P + शतृ)] आंख बंद करते हुए, पलक बन्द करते हुए

नियतम् [१.४४, ३.८, १८.९, २३ क्रिवि/वि(फल २.१)] निश्चित, निर्धारित

नियतमानसः [६.१५ वि(राम १.१) (नियतं मानसं यस्य सः)] वह जिसका मन नियन्त्रित है, वह जिसने अपना मन नियम में रक्खा है

नियतस्य [१८.-७ वि(फल ६.१)] निर्धारित, विधानानुकूल

नियताः [७.२० वि(राम १.३)] प्रेरित हुए, लगाये गए

नियतात्मभिः [८.२ (नियतः आत्मा येषां तैः)] जिन्हों ने अपने को वश में किया है, उनके द्वारा; संयमियों द्वारा

नियताहाराः [४.३० वि(राम १.३) (नियतः आहारः येषां ते] वे जिनका आहार नियमित है

नियमम् [७.२० सं(राम २.१)] नियम, विधि (को)

नियम्य [३.७, ४१, ६२६, १८.५१ (नि + √यम् भ्वा P + ल्यप्)] नियम में, वश में, नियन्त्रण में (रख कर)

नियोक्ष्यति [१८.५९ (नि + √युज् रुधा P लृट् ३.१)] विवश करेगी, लाचार कर देगी

नियोजयसि [३.१) (नि + √युज् + णिच् लोट् २.१)] (तू) लगाता है, प्रेरित करता है

नियोजितः [३.३६ वि(राम १.१) (नि + √युज् + णिच् + क्त)] विवश हुआ, लाचार हुआ

निरग्निः [६.१ वि.(हरि १.१)] अग्नि से रहित, अग्नि के बिना, जिसने अग्नि होत्र आदि कर्म छोड़ दिए है

निरहंकारः [२.७१, १२.१३ वि(राम १.१)] अहंकार रहित

निराशीः [३.३०, ४.२१, ६.१०] आशा न करते हुए, आशा रहित

निराश्रयः [४.२० वि(राम १.१)] आश्रय रहित, बिना परावलम्बन के

निराहारस्य [२.५९ वि(राम ६.१)] निराहारी का, मिताहारी संयमी (का)

निरीक्षे [१.२२ (निः √ ईक्ष् भ्वा A लट् १.१)] देखता हूँ

निरुद्धम् [६.२० वि(फल १.१)] वश में किया हुआ, अंकुश में आया हुआ

निरुद्ध्य [८.१२ (अ.) (नि + √रुध् तना P + ल्यप्)] रख कर, बन्द करके, अन्दर रख के, परिरोध करके

निर्गुणत्वात् [१३.३१ सं(फल ५.१)] निगुर्ण होने से

निर्गुणम् [१३.१४ वि(फल २.१)] बिना गुणों के, गुणों से रहित

निर्देशः [१७.२३ वि(फल २.१)] विशेष विवरण, नाम

निर्दोषम् [५.१९ वि(फल १.१)] दोषरहित, निष्कलंक, निर्मल

निर्द्वन्द्वः [२.४५, ५.३ वि(राम १.१)] द्वन्द्वों के बिना, सुखदुःखादि द्वन्द्वों से मुक्त

निर्ममः [२.७१, ३.३०, १२.१३, १८.५३ वि(राम १.१)] ममत्व रहित, ममता रहित

निर्मलत्वात् [१४.६ सं(फल ५.१)] निर्मलता के कारण, निर्मल होने के कारण, बिगा किसी दाग या कलंक के होने से

निर्मलम् [१४.१६ वि(फल २.१)] निर्मल, निष्कलंक

निर्मानमोहाः [१५.५ सं(राम १.३) (मानः च मोहः च निर्गतौ येभ्यः ते)] वे जिनसे मान और मोह चले गए हैं, अभिमान और भ्रम से रहित

निर्योगक्षेमः [२.४५ वि(राम १.१) (न अस्ति योगः च क्षेमः च यस्य सः)] वह जो (किसी भी वस्तु) के पाने और संभालने में नहीं है; प्राप्ति (उपलब्धि) और संरक्षण के ध्यान से निश्चिन्त; अप्राप्त की प्राप्ति (योग) और प्राप्त की रक्षा (क्षेम) से निश्चिन्त

निर्वाणपरमाम् [६.१५ वि(विद्या २.१) (निर्वाणं परमं यस्याः ताम्)] निर्वाण अन्त है जिसका, उसकी

निर्विकारः [१८.२६ वि(राम १.१)] अपरिवर्तित; जिसका परिवर्तन नहीं हुआ

निर्वेदम् [२.५२ सं(राम २.१)] उदासीनता, तटस्थता, (को)

निर्वैरः [११.५५ (नि + सं(राम १.१)] बिना वैर के, द्वेष रहित

निवर्तते [२.५९, ८.२५ (नि + √ वृत् भ्वा A लट् ३.१)] दूर होजाता है, छूट जाता है, निवृत्त होता है, लौट आता है

निवर्तन्ति [१५.४] लौटना लौटते हैं, वापिस आते हैं (आर्ष प्रयोग) (देखें निवर्तन्ते)

निवर्तन्ते [८.२१, ९.३, १५.६ (नि + √ वृत A लट् ३.३)] (वे) लौटते हैं, फिर जन्म लेते हैं

निवर्तितुम् [१.३९ (क्रिवि अ.) (नि + √ वृत् भ्वा A + तुमुन्)] बचने के लिए, पराङ्मुख होने के लिए

निवसिष्यसि [१२.८ (नि + √ वस् भ्वा P लृट् २.१)] (तू) रहेगा

निवातस्थः [६.१९ वि(राम १.१)] वायुरहित स्थान में स्थित

निवासः [९.१८ सं(राम १.१)] निवास, आवास (स्थान)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निवृत्तानि [१४.२२ वि(फल २.३) (नि + √वृत् भ्वा A + क्त)] प्राप्त न होने पर, चले जाने पर, चले गये हुओं को

निवृत्तिम् [१६.७, १८.३० सं(हरि २.१)] अक्रियता, अकर्तव्य, प्रत्यागमन (लौट आना, फिर से आना)

निवेशय [१२.८ (नि + √विश तुदा P + णिच् लोट् २.१)] प्रवेश कराना, लगाना

निशा [२.६९ सं(विद्या १.१)] निशा, रात्रि

निश्चयम् [१८.४ सं(फल १.१)] निश्चय, निष्कर्ष

निश्चयेन [६.२३ वि(राम ३.१)] निश्चित रूप से, निश्चय ही

निश्चरति [६.२६ (निः + √ चर् भ्वा P लट् ३.१)] भागता है

निश्चला [२.५३ वि(विद्या १.१)] निश्चल, अचल, अटल, स्थिर

निश्चितम् [२.७, १८.६ वि(फल १.१)] निश्चय करके, निर्णायक रूप से

निश्चिताः [१६.११ वि(राम १.३)] आश्वासित, सुनिश्चित

निश्चित्य [३.२ (अ.) (निः + √चि भ्वा + ल्यप्)] निश्चय करके, निर्धारित

निष्ठा [३.३, १७.१, १८.५० सं(विद्या १.१)] धारणा, विश्वास, आस्था, अन्तिम अवस्था, गति

निस्त्रैगुण्यः [२.४५ वि(राम १.१)] तीनों गुणों से रहित (अलिप्त), तीनों गुणों के विना

निहताः [११.३३ वि(राम १.३)] मारे हुए, हनन किए हुए, मारे गए

निहत्य [१.३६ (क्रिवि अ.) (नि + √ हन् अदा + ल्यप्)] मार कर

नीतिः [१०.३८, १८.७८ सं(मति १.१)] राजनीति, कूटनीति, धर्म परायणता

नु [१.३५, २.३६ (अ.)] तब, सचमुच, वास्तव में

नृलोके [११.४८ सं(राम ७.१) (नृणा लोके)] मनुष्य लोक में

नृषु [७.८ सं(धातृ ७.३)] पुरुषों में

नैष्कर्म्यम् [३.४ सं(फल २.१)] निष्कर्म भाव, कर्मों से मुक्ति, कर्म शून्यता ऐसी युक्ति से कर्म करने की स्थिति जिसमें कर्म बन्धन उत्पन्न नहीं होते–तिलक

नैष्कर्म्यसिद्धिम् [१८.४९ सं(मति २.१) (निर्गतानि कर्माणि यस्मात् सः (निष्कर्मा) तस्य भावः)] वह जिससे क्रियाएं चली गई हैं, ऐसे की पूर्णता (कर्म शून्यता) रूप सिद्धि को

नैष्कृतिकः [१८.२८ वि(राम १.१)] दुर्भाव पूर्ण, नीच

नैष्ठिकीम् [५.१२ वि(नदी २.१)] परम्, अन्तिम, भली प्रकार संस्थापित

नो [१७.२८ (अ.)] नहीं, न

न्याय्यम् [१८.१५ वि(फल १.१)] न्याय संगत, न्यायोचित

न्यासम् [१८.२ सं(राम २.१)] त्याग (को)

प

पक्षिणाम् [१०.३० सं(शशिन् ६.३)] पक्षियों में

पचन्ति [३.१३ (√पच् भ्वा P लट् ३.३)] पकाते हैं

पचामि [१५.१४ (√पच भ्वा P लट् १.१)] मैं पकाता हूं, मैं पचाता हूं

पञ्च [१३.५, १८.१३, १५ संवि(प्रथमा बहु. पु.)] पांच संख्या

पञ्चमम् [१८.१४ संख्या. क्रम. वि. (प्रथमा एक. नपु.)] पांचवां

पणवानकगोमुखाः [१.१३ सं(राम १.३) (पणवाः च आनकाः च गोमुखाः च)] तबले, और ढोल (मृदंग) और रण सिंगे

पण्डितम् [४.१९ वि(राम २.१)] पंडित, विद्वान्

पण्डिताः [२.११, ५.४, १८ सं(राम १.३)] पण्डित लोग, समझदार लोग

पतंगाः [११.२९ सं(राम १.३)] पतंग, शलभ (बहुवचन), कीड़े

पतन्ति [१.४२, १६.१६ (√पत् भ्वा P लट् ३.३)] गिरते हैं, अधोगति को प्राप्त होते हैं, पतन होता है

पत्रम् [९.२६ सं(फल २.१)] पत्ता, पत्र

पथि [६.३८ सं(पथिन् ७.१)] मार्ग में

पदम् [२.५१, ८.११, १५.४, ५, १८.५६ सं(फल २.१)] पद (निवास) स्थान, लक्ष्य, ध्येय

पद्मपत्रम् [५.१० सं(फल २.१) (पद्मस्य पत्रम्)] कमल पत्र

परंतप [२.३; ४.२, ५, ३३; ७.२७; ९.३; १०.४०; ११.५४; १८.४१ सं(राम ८.१) (परान् तपति)] हे परंतप

परंतपः [२.९ सं(राम १.१)] वह जो शत्रुओं को ताप देता है (नष्ट करता है), अर्जुन

परंपराप्राप्तम् [४.२ त्रि(राम २.१) (परंपरया प्राप्तम्)] परम्परा से प्राप्त हुआ

परः [४.४०, ८.२०, २२, १३.२२ सं(राम १.१)] (के) परे, पार; (और) ऊपर, सर्वोत्तम

परतः [३.४२ (अ.)(पर + तस्.)] अधिक महत्त्वपूर्ण, अधिक श्रेष्ठ, परे है

परतरम् [७.७ वि(फल १.१)] अधिक श्रेष्ठ, बढ़कर

परधर्मः [३.३५ सं(राम १.१)] दूसरे का धर्म

परधर्मात् [३.३५, १८.४७ सं(राम ५.१) (परस्य धर्मात्)] दूसरे के धर्म की अपेक्षा

परम् [२.१२, ५९; ३.११, १९; ४२, ४३; ४.४; ५.१६; ७.१३, २४; ८.१०, २८; ९.११; १०.१२; ११.१८,३७, ३८, ४७; १३.१२, १७, ३४; १४.१, १९, १८.७५ (अ.) वि(फल २.१)] पीछे, बाद में, परमात्मा को, सर्वोपरि को, उत्तम, श्रेष्ठ, पहले का, प्राचीन (के) परे, पार

परमः [६.३२ वि(राम १.१)] श्रेष्ठ, उत्तम

परमम् [८.३, ८, २१; १०.१, १२; ११.१, ९, १८; १५.६; १८.६४, ६८ वि(राम २.१) (फल २.१)] सर्वोच्च, सर्वोपरि

परमात्मा [६.७, १३.२२, ३१, १५.१७ सं(आत्मन् १.१)] परमात्मा, ईश्वर

परमाम् [८.१३, १५, २१; १८.४९ वि(विद्या २.१)] सर्वोच्च, सर्वोपरि

परमेश्वर [११.३ सं(राम ८.१)] हे परमेश्वर

परमेश्वरम् [१३.२७ सं(राम २.१)] परमेश्वर को

परमेष्वासः [१.१७ वि(राम १.१) (परमः इष्वासः यस्य सः)] वह जिसका धनुष श्रेष्ठ (है)

परया [१.२८, १२.२, १७.१७ वि(विद्या ३.१)] परम, अत्यधिक, अतिशय

परस्तात् [८.९ अ.] परे, पार, उसपार

परस्परम् [३.११, १०.९ अ.(परः + परम्)] एक दूसरे को, आपस में

परस्य [१७.१९ सं(राम ६.१)] दूसरे के, पराये के

परा [३.४२, १८.५० वि(विद्या १.१)] वरिष्ठ, उच्च, उत्तम

पराणि [३.४२ वि(फल १.३)] श्रेष्ठ, प्रवर, वरिष्ठ

पराम् [४.३९, ६.४५; ७.५, ९.३२; १३.२८; १४.१; १६.२२, २३; १८.५४, ६२, ६८ वि(विद्या २.१)] परम, सर्वोच्च, श्रेष्ठ

परिकीर्तितः [१८.७, २७ (परि + √ कीर्त् चुरा. P + क्त)] कहा गया है, नामधारी है

परिक्लिष्टम् [१७.२१ (अ.) (परि + √ क्लिश् दिवा A + क्त)] दुखपूर्वक, अनिच्छा से

परिग्रहम् [१८.५३ सं(राम २.१)] लोलुपता, संचय

परिचक्षते [१७.१३, १७ (परि + √ चक्ष् अदा A लट् ३.३)] (वे) कहते हैं, घोषणा करते हैं

परिचर्यात्मकम् [१८.४४ वि(फल १.१) (परिचर्या आत्मा यस्य तत्)] वह जिसका स्वभाव सेवा है, सेवा स्वरूप

परिचिन्तयन् [१०.१७ वि.(ध्यायत् १.१) (परि + √ चिन्त् चुरा P + शतृ)] मनन करते हुए, चिन्तन करते हुए

परिज्ञाता [१८.१८ वि(धातृ १.१)] जानने वाला, ज्ञाता

परिणामे [१८.३७, ३८ सं(राम ७.१)] परिणाम में, अन्त में

परित्यज्य [१८.६६ (परि + √ त्यज् भ्वा P + ल्यप्)] त्याग कर, छोड़ कर

परित्यागः [१८.७ सं(राम १.१)] त्याग, परित्यक्तता

परित्राणाय [४.८ सं(फल ४.१)] रक्षा के लिए

परिदह्यते [१.३० (परि + √ दह् दिवा A लट् ३.१)] सर्वत्र जलती है

परिदेवना [२.२८ सं(विद्या १.१)] विलाप

परिपन्थिनौ [३.३४ वि(शशिन् १.२)] (दो) पथ की बाधांए, प्रतिरोध, शत्रु

परिप्रश्नेन [४.३४ सं(राम ३.१)] प्रश्न करके, पूछताछ करके, अनुसन्धान से, छान बीन द्वारा,

परिमार्गितव्यम् [१५.४ वि(फल १.१) (परि + √ मृग चुरा. A + णिच + तव्य,)] शोध करना चाहिए, भली प्रकार ढूंढ़ना चाहिए

परिशुष्यति [१.२९ (परि √ शुष् दिवा P ३.१)] सूखता है, शुष्क होता है

परिसमाप्यते [४.३३ (परि + सम् √ आप् + कर्मणि लट् ३.१)] पराकाष्ठा को पहुँचता हैं, का अन्त है, समाप्त होता है।

पर्जन्यः [३.१४ सं(राम १.१)] वर्षा, बादल

पर्जन्यात् [३.१४ सं(राम ५.१)] वर्षा से, बादल से

पर्णानि [१५.१ सं(फल १.३)] पत्ते

पर्यवतिष्ठते [२.६५ (परि + अव + √ स्था A लट् ३.१)] टिक जाता है, स्थिर होता है

पर्याप्तम् [१.१० वि(फल १.१)] यथेष्ट, जितना चाहिए उतना

पर्युपासते [४.२५, ९.२२, १२.१, ३, २० (परि + उप + √ आस् A लट् ३.३)] (वे) अभ्यास, उपासना, करते हैं

पर्युषितम् [१७.१० वि(फल २.१)] एक रात से अधिक देर का, बासी

पवताम् [१०.३१ सं (ध्यायत् ६.३) (√ पव् भ्वा A शतृ)] पवित्र करने वालों में, शोधकों (का), मे, (को)

पवनः [१०.३१ सं(राम १.१)] पवन, बयार

पवित्रम् [४.३८, ९.२, १७; १०.१२ वि(फल १ १/२)] पवित्र करने वाला, पवित्र

पश्य [१.३, २५, ९.५; ११.५, ६, ७, ८ (√ दृश् -पश्य् भ्वा P लोट् २.१)] देखना, देखिए

पश्यतः [२.६९ वि(ध्यायत् ६.१) (√ दृश्-पश्य् भ्वा P + शतृ)] देखने वाले (की)

पश्यति [२.२९;५.५, ६.३०, ३२; १३.२७, २९; १८.१६ (√दृश् - पश्य भ्वा P लट् ३.१)] (वह) देखता है

पश्यन् [५.८, ६.२०, १३.२८ वि.(ध्यायत् १.१)] (√दृश्-पश्य् भ्वा P + शतृ)] देखता हुआ

पश्यन्ति [१.३८, १३.२४, १५.१०, ११ (√ दृश्-पश्य् भ्वा P लट् ३.३)] (वे) देखते हैं

पश्यामि [१.३१, ६.३३, ११.१५, १६, १७, १९] (√दृश्-पश्य् भ्वा P लट् १.१)] (मैं) देखता हूं

पश्येत् [४.१८ (√दृश् भवा P विधि ३.१)] (वह) देख सके

पाञ्चजन्यम् [१.१५ सं(राम २.१)] पाञ्चजन्य को (श्रीकृष्ण के शंख का नाम)

पाण्डव [४.३५;६.२; ११.५५; १४.२२; १६.५ सं(राम ८.१)] (हे) पाण्डव

पाण्डवः [१.१४, २०, ११.१३ सं(राम १.१)] पाण्डव

पाण्डवाः [१.१ (पाण्डोः पुत्राः) (राम १.३)] पाण्डु के पुत्रों (ने)

पाण्डवानाम् [१०.३७ सं(राम ६.३)] पाण्डवों में

पाण्डवानीकम् [१.२ फल (२.१) (पाण्डवानाम् अनीकम्)] पाण्डवों की सेना (को)

पाण्डुपुत्राणाम् [१.३ (राम ६.३)] पाण्डु के पुत्रों (की)

पातकम् [१.३८ सं(फल १.१)] अपराध, पाप को

पात्रे [१७.२० सं(फल ७.१)] सत्पात्र को, योग्य पुरुष को

पापकृत्तमः [४.३६ वि(राम १.१)] सब से अधिक पाप करने वाला, सर्वाधिक पाप करने वाला

पापम् [१.३५, ४५, २.३३, ३८, ३.३६;५.१५; ७.२८ सं(फल १.१/२.१)] पाप, अघ, पाप को

पापयोनयः [९.३२ वि(हरि १.३) (पापा योनिः येषां ते)] वे जिनके गर्भ पापपूर्ण है, पाप योनि में जन्म पाये हुए

पापाः [३.१३ सं(राम १.३(] पापी लोग

पापात् [१.३९ सं(फल ५.१)] पाप से

पापेन [५.१० सं(फल ३.१)] पाप से,

पापेभ्यः [४.३६ सं(राम ५.३)] पापियों की अपेक्षा

पापेषु [६.९ वि(राम ७.३)] पापियों में

पाप्मानम् [३.४१ वि(आत्मन् २.१)] पाप, पापरूप को, पापी को

पारुष्यम् [१६.४ सं(फल १.१)] कठोरता, कर्कशता

पार्थ [१.२५... सं(राम ८.१)] हे पार्थ (अर्जुन)

पार्थः [१.२६, १८.७८ सं(राम १.१)] पार्थ

पार्थस्य [१८.७४ सं(राम ६.१)] पार्थ का

पार्थाय [११.९ सं(राम ४.१)] पार्थ के लिए

पावकः [२.२३, १०.२३, १५.६ सं(राम १.१)] अग्नि

पावनानि [१८.५ वि(फल १.३)] पवित्र करने वाले

पितरः [१.३४, ४२ सं(पितृ १.३)] पिता, (बहुवचन)

पिता [९.१७, ११.४३, ४४, १४.४ सं(पितृ १.१)] पिता

पितामहः [१.१२, ९.१७ सं(राम १.१)] दादा

पितामहाः [१.३४ सं(राम १.३)] दादा, पितामह (बहुवचन)

पितामहान् [१.२६ सं(राम २.३)] दादों को

पितृव्रताः [९.२५ सं(राम १.३) (पितृभ्यः व्रतं येषां ते)] वे जिनके व्रत पितरों के लिए हैं, पितरों का पूजन करने वाले

पितृणाम् [१०.२९ सं(पितृ ६.३)] पितरों में

पितृन् [१.२६, ९.२५ सं(पितृ २.३)] पितागण, पितरों कों

पीडया [१७.१९ सं(विद्या ३.१)] पीडा देकर, सन्ताप से, अत्यन्त कष्ट सहकर

पुंसः [२.६२ सं(पुमस् ६.१)] पुरुष का

पुण्यः [७.९ वि(राम १.१)] पवित्र, विशुद्ध

पुण्यकर्मणाम् [७.२८, १८.७१ सं(कर्मन् ६.३) (पुण्यं कर्म येषां तेषाम्) सं(कर्मन् ६.३)] उनका जिनके कर्म पवित्र हैं, पुण्यवानों का

पुण्यकृताम् [६.४१ वि(मरुत् ६.३)] पुण्यवानों के

पुण्यफलम् [८.२८ सं(फल १.१) (पुण्यस्य फलम्)] पुण्य फल, सुकर्मों का फल

पुण्यम् [९.२०, १८.७६ वि(राम २.१)] पवित्र, विशुद्ध

पुण्याः [९.३३ सं/वि(राम १.३)] पुण्यवान्, पवित्र

पुण्ये [९.२१ सं(राम ७.१)] पुण्य (में)

पुत्रदारगृहादिषु [१३.९ सं (हरि ७.३) (पुत्रश्च दारश्च गृहञ्च गृहादयस्तेषु)] पुत्र पत्नी और घर आदि में

पुत्रस्य [११.४४ सं(राम ६.१)] पुत्रका

पुत्राः [१.३४, ११.२६ सं(राम १.३)] पुत्र (बहुवचन)

पुत्रान् [१.२६ सं(राम २.३)] पुत्रों को

पुनः [४.९...(अ.)] फिर, इसके अतिरिक्त, दूसरी ओर, और

पुनरावर्तिनः [८.१६ वि(शशिन् १.३) (पुनः आवर्तते यः तस्य)] फिर लौटते हुए का; उसका जो फिर लौटता है

पुनर्जन्म [४.९, ८.१५, १६ सं(जन्मन् १/२.१) पुनर्जन्म

पुमान् [२.७१ सं(पुमस् १.१)] पुरुष

पुरस्तात् [११.४० (अ.)] पहले से, सम्मुख

पुरा [३.३, १०, १७.२३ (अ.)] पहले, सृष्टि के आरम्भ में, प्राचीन काल में

पुराणः [२.२०, ११.३८ वि(राम १.१)] प्राचीन, पुरातन, चिरन्तन

पुराणम् [८.९ वि(राम २.१)] प्राचीन, पुरातन (को)

पुराणी [१५.४ वि(नदी १.१)] प्राचीन, सनातन

पुरातनः [४.३ वि(राम १.१)] पुरातन, प्राचीन

पुरुजित् [१.५ सं(मरुत् १.१)] पुरुजित्

पुरुषः [२.२१, ३.४, ८.४, २२; ११.१८, ३८; १३.२०, २१, २२; १५.१७, १७.३ सं(राम १.१)] पुरुष, मनुष्य, सचेतन अधिष्ठाता (मुखिया,प्रधान) चैतन्यात्मिका प्रकृति, परमात्मा

पुरुषम् [२.१५, ८.८, १०; १०. १२, १३.०, १९, २३, १५.४ सं(राम २.१)] पुरुष को, (देखिए पुरुषः)

पुरुषर्षभ [२.१५ सं(राम ८.१)] हे पुरुषों में श्रेष्ठ, हे पुरुषश्रेष्ठ

पुरुषव्याघ्र [१८.४ सं(राम ८.१)] हे पुरुषव्याघ्र, हे नरसिंह

पुरुषस्य [२.६० सं(राम ६.१)] पुरुष की

पुरुषाः [९.३ सं(राम १.३)] मनुष्य, लोग (बहुवचन)

पुरुषोत्तम [८.१, १०.१५, ११.३ सं(राम ८.१) (पुरुषेषु उत्तम)] हे सर्व श्रेष्ठ पुरुष, हे पुरुषोत्तम

पुरुषोत्तमः [१५.१८ सं(राम १.१)] पुरुषोत्तम, सर्वश्रेष्ठ पुरुषो

पुरुषोत्तमम् [१५.१९ सं(राम २.१)] पुरुषोत्तम को, सर्वश्रेष्ठ पुरुष को

पुरुषौ [१५.१६ सं(राम १.२)] (दो) पुरुष

पुरे [५.१३ सं(फल ७.१)] नगर में, पुरी में

पुरोधसाम् [१०.२४ सं(चन्द्रमस् ६.३)] पुरोहितों में

पुष्कलाभिः [११.२१ वि(विद्या ३.३)] गूंजते हुए स्वरों से, (भव्य, प्रतापी); प्रतिध्वनि करते (पुष्कल = एक प्रकार का ढोल)

पुष्णामि [१५.१३ (√पुष् क्र्या P लट् १.१)] (मैं) पोषण करता हूं, पुष्ट करता हूं

पुष्पम् [९.२६ सं(फल २.१)] फूल, पुष्प

पुष्पिताम् [२.४२ वि(विद्या २.१)] अलंकृत, आलंकारिक, लच्छेदार

पूजार्हौ [२.४ वि(राम २.२) (पूजायाः अर्हौ)] (दोनों) पूजा के योग्य (हैं), (दोनों) पूजनीय हैं

पूज्यः [११.४३] पूजा करने योग्य, पूज्य

पूतपापाः [९.२० वि(राम १.३) (पूतं पापं येषां ते)] वे जिनके पाप शुद्ध हुए (है) , पाप से मुक्त हुए

पूताः [४.१० वि(राम १.३)] पवित्र हुए, शुद्ध हुए

पूति [१७.१० वि(वारि १.१)] सड़ाहुआ, दुर्गन्धयुक्त

पूरुषः [३.१९, ३६ सं(राम १.१)] मनुष्य, पुरुष

पूर्वतरम् [४.१५ वि(फल १.१)] पूर्व काल (में), प्राचीन समय (में)

पूर्वम् [११.३३ वि(राम २.१)] पहले

पूर्वाभ्यासेन [६.४४ सं(राम ३.१) (पूर्वेण अभ्यासेन)] पूर्व (जन्म) के अभ्यास से, पहले के अभ्यास से

पूर्वे [१०.६ वि(राम ७.१)] प्राचीन, पूर्व (के) पहले के

पूर्वैः [४.१५ वि(राम ३.३)] पूर्वजों द्वारा

पृच्छामि [२.७ (√प्रच्छ् तुदा P लट् १.१)] (मैं) पूछता हूं, (मैं) निवेदन करता हूं

पृथक् [१.१८, ५.४, १३.४, १८.१, १४ (अ.)] अलग-अलग

पृथक्त्वेन [९.१५, १८.२१, २९ सं(फल ३.१)] बहुविध रूप से, नाना रूप से, अलग-अलग

पृथग्विधम् [१८.१४ वि(राम २.१)] अलग अलग, भिन्न-भिन्न प्रकार की

पृथग्विधाः [१०.५ वि(राम १.३) (पृथक् विधाः येषा ते)] वे जिनके वर्ग भिन्न हैं, नाना प्रकार के

पृथग्विधान् [१८.२१ वि(राम २.३)] नाना भांति के, विविध प्रकार के

पृथिवीपते [१.१८ सं(हरि ८.१) (पृथिव्याः पते)] हे पृथिवी के स्वामी

पृथिवीम् [१.१९ सं(नदी २.१)] पृथ्वी

पृथिव्याम् [७.९, १८.४० सं(नदी ७.१)] पृथ्वी में

पृष्ठतः [११.४० (अ.)] पीछे से, पीठ, पीछे

पौण्ड्रम् [१.१५ सं(राम २.१)] पौण्ड्र

पौत्राः [१.३४ सं(राम १.३)] पौत्र पोते (बहुवचन)

पौत्रान् [१.२६ सं(राम २.३)] पौत्र, पोते (बहुवचन)

पौरुषम् [७.८, १८.२५ सं(फल १/२.१)] पुरुषत्व, पराक्रम, शक्ति योग्यता

पौर्वदेहिकम् [६.४३ वि(राम २.१)] पिछले शरीर के, पूर्व जन्म के

प्रकाशः [७.२५, १४.११ सं(राम १.१)] ज्ञात हुआ, प्रगट हुआ, प्रकाश, ज्योति

प्रकाशकम् [१४.६ वि(फल १.१)] प्रकाशित करने वाला

प्रकाशम् [१४.२२ सं(राम २.१)] प्रकाश को, ज्ञान को

प्रकाशयति [५.१६, १३.३३ (प्र + √काश् भ्वा A + णिच् P लट् ३.१)] ज्योतित करता है, प्रदीप्त करता है

प्रकीर्त्या [११.३६ सं(मति ३.१)] (तेरा) कीर्तन करने से, गुणगान करने से

प्रकृतिः [७.४, ९.१०, १३.२०, १८.५९ सं(मति १.१)] प्रकृति, स्वभाव, जड़ वस्तु, भौतिक-तत्त्व

प्रकृतिजान् [१३.२१ वि(राम २.३) (प्रकृतेः जातान्)] प्रकृति से उत्पन्न

प्रकृतिजैः [३.५, १८.४० वि(राम ३.३)] प्रकृति से उत्पन्न

प्रकृतिम् [३.३३, ४.६, ७.५; ९.७, ८, १२, १३; ११.५१, १३.१, २३ सं(मति २.१)] प्रकृति को, स्वभाव को, प्रकृति

प्रकृतिसंभवाः [१४.५ सं(राम १.३) (प्रकृतेः संभवः येषा ते)] वे जिन की उत्पति प्रकृति से हैं, प्रकृति से उत्पन्न होने वाले

प्रकृतिसंभवान् [१३.१९ सं(राम २.३) (प्रकृतेः संभवो येषां तान्)] उनको जिनकी उत्पत्ति प्रकृति से है, प्रकृति से उत्पन्न

प्रकृतिस्थः [१३.२१ वि(राम १.१) (प्रकृतौ तिष्ठति इति)] ऐसे प्रकृति में स्थित, (बैठता है)

प्रकृतिस्थानि [१५.७ वि.(फल १.३) (प्रकृतौ स्थितानि)] प्रकृति में स्थित

प्रकृतेः [३.२७, २९, ३३, ९.८ सं(मति ६.१)] प्रकृति का, स्वभाव का

प्रकृत्या [७.२०, १३.२९ सं(मति ३.१)] प्रकृति द्वारा, स्वभाव से

प्रजनः [१०.२८ सं(राम १.१)] संतति उत्पन्न करने वाला, प्रजोत्पत्ति करने वाला

प्रजहाति [२.५५ (प्र + √ हा जुहो P लट् ३.१)] (वह) फेंकता है, त्यागता है

प्रजहि [३.४१ (प्र + √हा जुहो P लोट् २.१)] मार डाल, बध करदे

प्रजाः [३.१०, २४, १०.६ सं(विद्या १.३)] प्रजा, लोग, जन साधारण

प्रजानाति [१८.३१ (प्र + √ ज्ञा क्र्या. P लट् ३.१)] (वह) जानता है, समझता है

प्रजानामि [११.३१ (प्र + √ ज्ञा क्र्या P लट् १.१)] (मैं) जानता हूं

प्रजापतिः [३.१०, ११.३९ सं(हरि १.१)] प्रजापति, ब्रह्मा

प्रज्ञा [२.५७, ५८, ६१.६८ सं(विद्या १.१)] बुद्धि, समझ

प्रज्ञाम् [२.६७ सं(विद्या २.१)] बुद्धि, समझ

प्रज्ञावादान् [२.११ (राम २.३) (प्रज्ञायाः वादान्)] ज्ञान के शब्द

प्रणम्य [११.१४, ३५.४४ (अ.) (प्र + √नम् भ्वा P + ल्यप्)] प्रणाम करके, साष्टांग, दण्डवत् प्रणाम करके

प्रणयेन [११.४१ सं(राम ३.१)] अनुराग, स्नेह (से)

प्रणवः [७.८ सं(राम १.१)] ओंकार, ॐ

प्रणश्यति [२.६३; ६.३०; ९.३१ (प्र + √नश् दिवा. P लट् ३.१)] (वह) नष्ट होता है

प्रणश्यन्ति [१.४० (प्र + √नश् दिवा P लट् ३.३)] नष्ट होते हैं

प्रणश्यामि [६.३० (प्र + √नश् दिवा P लट् १.१)] नष्ट हो जाना, खो जाना, लुप्त हो जाना (मेरा)

प्रणिधाय [११.४४ (अ.) (प्र + नि + √ धा जुहो P + ल्यप्)] झुकाकर, नमितकर

प्रणिपातेन [४.३४ सं(राम ३.१)] आदर सत्कार से, विनय पूर्वक, नम्रतापूर्वक

प्रतपन्ति [११.३० (प्र + √ तप् भ्वा P लट् ३.३)] जलते हुए, तपाते हुए

प्रतापवान् [१.१२ सं(धीमत् १.१)] यशस्वी, प्रतापी, तेजस्वी

प्रति [२.४३ (अ.)] के लिए

प्रतिजानीहि [९.३१ (प्रति + √ ज्ञा क्र्या P लोट् २.१)] (तू) निश्चय पूर्वक जान

प्रतिजाने [१८.६५ (प्रति + √ज्ञा क्र्या A/P लट् १.१)] (मैं) वचन देता हूं

प्रतिपद्यते [१४.१४ (प्रति + √ पद् भ्वा A लट् ३.१)] जाता है

प्रतियोत्स्यामि [२.४ (प्रति + √ युध् + सन् दिवा P लट् १.१)] मैं आक्रमण करूंगा, मैं लड़ूंगा, युद्ध करूंगा

प्रतिष्ठा [१४.२७ सं(विद्या १.१)] आवास निवास-स्थान

प्रतिष्ठाप्य [६.११ (अ.) (प्र + √ स्था भ्वा P ल्यप्)] स्थापना करके, स्थापित करके

प्रतिष्ठितम् [३.१५ सं(फल १.१) (प्र + √ स्थाभ्वा P + क्त)] स्थापित है, रहता है

प्रतिष्ठिता [२.५७, ५८, ६१, ६८ वि(क्रिया १.१) (प्र + √ स्था भ्वा P + क्त)] स्थित है, स्थिर है

प्रत्यक्षावगमम् [९.२ (फल १.१) (प्रत्यक्षेण अवगमः यस्य तत्)] वह जिसका अनुभव सीधे से हो, स्पष्ट बोध हो जिसका-वह

प्रत्यनीकेषु [११.३२ सं(फल ७.३)] प्रति-द्वंद्वी सेनाओं में, विरोधी सेनाओं में

प्रत्यवायः [२.४० सं(राम १.१)] उल्लंघन, अपराध, विघ्न अड़चन

प्रत्युपकारार्थम् [१७.२१ (अ.) (प्रत्युपकारस्य अर्थम्)] बदले में, लाभ के लिए

प्रथितः [१५.१८ वि(राम १.१) (√ प्रथ् भ्वा A अथवा चुरा P + क्त)] घोषित किया हुआ, कहा हुआ

प्रदध्मतुः [१.१४ (प्र + √ ध्मा भ्वा. P लिट् ३.२)] (दोनों ने) बजाए

प्रदिष्टम् [८.२८ वि.(फल १.१) (प्र + √ दिश् तुदा P + क्त)] निर्दिष्ट, निर्धारित हुआ

प्रदीप्तम् [११.२९ वि(राम २.१)] जलता हुआ, धधकता हुआ

प्रदुष्यन्ति [१.४१ (प्र + √ दुष् दिवा P लट् ३.३)] दुश्चरित्र, चरित्रहीन, हो जाती हैं

प्रद्विषन्तः [१६.१८ वि.(ध्यायत् १.३) (प्र + √ द्विष् अदा P + शतृ)] अत्यन्त द्वेष रखते हुए, घृणा करते हुए

प्रनष्टः [१८.७२ वि.(राम १.१) (प्र + √ नश् दिवा P + क्त.)] नष्ट हुआ

प्रपद्यते [७.१९ (प्र + √ पद् दिवा A ३.१)] पास आता है, समीप आता है, पा लेता है

प्रपद्यन्ते [४.११, ७.१४, १५, २० (प्र + √ पद् दिवा. लट् A ३.३)] पास आते हैं, आश्रय लेते हैं, भजते हैं, समीप आते हैं

प्रपद्ये [१५.४ (प्र + √ पद् दिवा. A लट् १.१)] (मैं) शरण में जाता हूं

प्रपन्नम् [२.७ सं(राम २.१) प्र + √ पद दिवा A + क्त)] प्रार्थी, शरण में आए हुए को

प्रपश्य [११.४९ (प्र + √ दृश्-पश्य् भ्वा P लोट् २.१)] देख, देखना

प्रपश्यद्भिः [१.३९ वि(ध्यायत् ३.३) (प्र + √ दृश्-पश्य + शतृ)] देखने वालों द्वारा

प्रपश्यामि [२.८ (प्र + √ + दृश्-पश्य भ्वा P लट् १.१)] (मैं) देखता हूं

प्रपितामहः [११.३९ (प्र + पितामह (राम १.१)] परदादा, पितामह, ब्रह्मा के पिता

प्रभवः [७.६, ९.१८, १०.८ सं(राम १.१)] उत्पत्ति का स्रोत, (उद्गम)

प्रभवति [८.१९ (प्र + √ भू-भ्वा P लट् ३.१)] उमड़ पड़ता है, प्रकट होता है

प्रभवन्ति [८.१८, १६.९ (प्र + √ भू-भ्वा P लट् ३.३)] उमड़ निकलते हैं, प्रकट होते हैं, उत्पन्न होते है

प्रभवम् [१०.२ सं(राम २.१)] उत्पत्ति को, उद्गम, मूल को

प्रभविष्णु [१३.१६ सं(गुरु १.१)] प्रजनन करता हुआ, उत्पन्न करता हुआ, कर्त्ता

प्रभा [७.८ सं(विद्या १.१.)] दीप्ति, चमक

प्रभाषेत [२.५४ (प्र + √ भाष् भ्वा A विधि ३.१)] (वह) बोले, बोलना चाहिए

प्रभुः [५.१४, ९.१८.२४ सं(गुरु १.१)] प्रभु, ईश्वर

प्रभो [११.४, १४.२१ सं(गुरु ८.१)] हे प्रभु, हे ईश्वर !

प्रमाणम् [३.२१, १६.२४ सं(फल २.१)] प्रमाण, सत्ता, प्रामाणिक

प्रमाथि [६.३४ वि(वारि १.१)] उतावला, अविवेकी, तीव्र

प्रमाथीनि [२.६० वि(फल १.३)] प्रचण्ड, प्रबल, उग्र, मंथन करने वाली

प्रमादः [१४.१३ सं(राम १.१)] असावधानी, भ्रम, भ्रांति

प्रमादमोहौ [१४.१७ सं(राम १.२) (प्रमादः च मोहः च)] असावधानी और भ्रम

प्रमादात् [११.४१ सं(राम ५.१)] असावधानी से

प्रमादालस्यनिद्राभिः [१४.८ सं(विद्या ३.३) (प्रमादेन च आलस्येन च निद्रया च)] प्रमाद (असावधानी), आलस और निद्रा से (के साथ)

प्रमादे [१४.९ सं(राम ७.१)] असावधानी में, भूल चूक में

प्रमुखे [२.१० (अ.)] सामने, सम्मुख

प्रमुच्यते [५.३, १०.३ (प्र + √ मुच् तुदा A + कर्म. A लट् ३.१)] मुक्त होता है, छूटता है

प्रयच्छति [९.२६ (प्र + √ दा भ्वा P लट् ३.१)] अर्पण करता है, भेंट करता है

प्रयतात्मनः [९.२६ वि(आत्मन् ६.१) (प्रयतः आत्मा यस्य तस्य)] उसका जिसकी आत्मा प्रयत्न करती हुई है, प्रयतनशील मनुष्य, ऐसे व्यक्ति का जिसका हृदय शुद्ध (स्वच्छ) है

प्रयत्नात् [६.४५ सं(राम ५.१)] प्रयत्न से, दृढ़ता के साथ

प्रयाणकाले [७.३०, ८.२, १० सं(राम ७.१) (प्रयाणस्य काले)] आगे जाने के समय में, मृत्यु के समय में, प्रस्थान के समय में

प्रयाताः [८.२३, २४ (वि(राम १.३) (प्र + √या अदा. P + क्त)] प्रस्थान किये हुए, आगे गये हुए

प्रयाति [८.५, १३ (प्र + √या अदा. P लट् ३.१)] प्रस्थान करता है, आगे जाता है

प्रयुक्तः [३.३६ वि.(राम १.१) (प्र + √युज् + क्त)] प्रेरित किया हुआ, उकसाया हुआ, ठेला हुआ

प्रयुज्यते [१७.२६ कर्म. A ३.१) (प्र + √युज् रुधा. P + कर्म A ३.१)] बोला जाता है, प्रयुक्त होता है, (का) प्रयोग होता है

प्रलपन् [५.९ वि(ध्यायत् १.१) (प्र + √लप् भ्वा P शतृ)] बोलते हुए

प्रलयः [७.६ ९.१८ सं(राम १.१)] प्रलय, नाश का कारण

प्रलयम् [१४.१४, १५ सं(राम २.१)] प्रलय को, विघटन को, मृत्यु

प्रलयान्ताम् [१६.११ सं(विद्या २.१) (प्रलयः अन्तः यस्याः ताम्)] वह जिसका अन्त प्रलय है, मृत्यु के साथ अन्त होने वाली

प्रलये [१४.२ सं(राम ७.१)] प्रलय में

प्रलीनः [१४.१५ वि(राम १.१) (प्र. + √ली + क्त.)] लय हुआ, विघटित हुआ

प्रलीयते [८.१९] (प्र. √ली दिवा. A लट् ३.१)] (वह) विलीन हो जाता है, लुप्त हो जाता है

प्रलीयन्ते [८.१८ (प्र + √ली दिवा. A लट् ३.३)] (वे) लुप्त हो जाते हैं, विलीन हो जाते हैं

प्रवक्ष्यामि [४.१६, ९.१, १३.१२, १४.१ (प्र + √ब्रू अदा. P लृट् १.१)] (मैं) बतलाऊंगा, कहूंगा, घोषित करूंगा

प्रवक्ष्ये [८.११ (प्र + √ब्रू अदा. A लृट १.१)] (मैं) बलाऊंगा, कहूंगा, वर्णन करूंगा

प्रवदताम् [१०.३२ सं(ध्यायत् ६.३) (प्र + √वद् भ्वा P + शतृ)] वाद विवाद करने वालों की, वक्ताओं की

प्रवदन्ति [२.४२, ५.४ (प्र + √वद् भ्वा P लट् ३.३)] बोलते हैं, कहते हैं, व्यक्त करते है

प्रवर्तते [५.१४, १०.८ (प्र + √वृत् भ्वा A लट् ३.१)] (वह) चलता है, होता है, रहता है, विकसित होता है, उत्पन्न होता है

प्रवर्तन्ते [१६.१०, १७.२४ (प्र + √वृत् भ्वा. A लट् ३.३)] लगे रहते हैं, (वे) चलते हैं, आरम्भ होते हैं

प्रवर्तितम् [३.१६ वि(फल २.१) (प्र + √ वृत् चुरा/भ्वा A/P)] चलाए हुए, घूमते हुए

प्रविभक्तम् [११.१३ वि(फल १.१)] भाग किये हुए, विभाजित

प्रविभक्तानि [१८.४१ वि.(फल १.३) (प्र + वि √ भज् भ्वा P + क्त)] विभक्त हुए हैं, बांटे हुए है, अलग-अलग किए हुए हैं

प्रविलीयते [४.२३ (प्र + वि + √ ली दिवा A लट् ३.१)] विलीन हो जाता है, नष्ट हो जाता है

प्रविशन्ति [२.७० (प्र + √ विश् P तुदा लट् ३.३)] (वे) प्रवेश करते हैं

प्रवृत्तः [११.३२ सं(राम १.१) (प्र + वृत् भ्वा A + क्त)] प्रकट हुआ, आरम्भ किया हुआ

प्रवृत्तिः [१४.१२, १५.४, १८.४६ सं(मति १.१) (प्र + √ वृत् भ्वा A क्तिन्)] मन का लगाव, झुकाव, निवृत्ति का उलटा, व्यवहार, सक्रियता

प्रवृत्तिम् [११.३१, १४.२२, १६.७, १८.३० सं(मति २.१) प्र + √ वृत् भ्वा A + क्तिन्)] चेष्टा, व्यापार, मन के लगाव (को), बढ़कर काम करने की इच्छा

प्रवृत्ते [१.२० वि(राम ७.१) प्र + √ वृत् भ्वा A + क्त)] आरम्भ होने पर, आरम्भ होते ही

प्रवृद्धः [११.३२ वि(राम १.१)] वृद्धि पाया हुआ, सुविस्तृत, विशाल

प्रवृद्धे [१४.१४ वि(राम ७.१) (प्र + √ वृध् + क्त)] बढ़े हुए में, वृद्धि पाए हुए में

प्रवेष्टुम् [११.५४ (अ.) (प्र + √ विश् + णिच् + तुमुन्)] प्रवेश करने के लिए

प्रव्यथितम् [११.२० वि(फल १.१)] व्याकुल हुआ, त्रस्त हुआ, उत्पीड़ित

प्रव्यथिताः [११.२३ सं(राम १.३)] त्रस्त हुए (हैं), दुःखित हैं, व्याकुल हैं

प्रव्यथितान्तरात्मा [११.२४ सं(आत्मन् १.१) (प्रव्यथितः अन्तरात्मा यस्य सः)] वह जिसकी आत्मा (भय से) कांप रही (हैं), व्याकुल चित्त वाला

प्रशस्ते [१७.२६ वि(फल ७.१)] प्रशंसनीय, श्लाध्य स्तुत्य.

प्रशान्तमनसम् [६.२७ वि(चन्द्रमस् २.१) (प्रशान्तं मनः यस्य तम्)] उसको जिसका मन शान्तिमय है, शान्त चित्त वाले को

प्रशान्तस्य [६.७ वि(राम ६.१)] शान्तिपूर्ण का, शान्ति मय का, शान्ति प्रिय का

प्रशान्तात्मा [६.१४ वि(आत्मन् १.१) (प्रशान्तः आत्मा यस्य सः)] वह जिसकी आत्मा पूर्ण शान्त हुई है, पूर्ण शान्ति वाला

प्राह [४.१ (प्र + ब्रू अदा P लिट् ३.१)] कहा

प्राहुः [६.२, १३.१, १५.१, १८.२, ३ (प्र + √ ब्रू अदा. P लिट् ३.३)] (वे) कहते हैं, कहा है

प्रियः [७.१७, ९.२९, ११.४४, १२.१४, १५, १६, १७, १९, १७.७; १८.६५ वि(राम १.१)] प्रिय, इष्ट

प्रियकृत्तमः [१८.६९ वि(राम १.१)] अति प्रिय करने वाला

प्रियचिकीर्षवः [१.२३ सं(गुरु १.३) (प्रियस्य चिकीर्षवः)] प्रिय करने के इच्छुक

प्रियतरः [१८.६९ वि(राम १.१)] अधिक प्रिय

प्रियम् [५.२० वि(राम २.१/फल २.१)] प्रिय वस्तु, सुखद

प्रियहितम् [१७.१५ सं(फल २.१) (प्रियं च हितं च)] सुखद और हितकर

प्रियाः [१२.२० वि.(राम १.३)] प्रिय

प्रियायाः [११.४४ वि(विद्या ६.१)] परम प्रिय, को, के लिए

प्रीतमनाः [११.४९ वि(चन्द्रमस् १.१) (प्रीतं मनः यस्य सः)] वह जिसका मन संतुष्ट है, शांतचित्त

प्रीतिः [१.३६ सं(मति १.१)] आनन्द

प्रीतिपूर्वकम् [१०.१० (प्रीतिः पूर्वं यथा स्यात् तथा)] प्रेम पूर्वक

प्रीयमाणाय [१०.१ सं(राम ४.१) (√ प्री क्र्या A/P + कर्मणि य् + शानच्)] प्रियजन के लिए, उसके लिए, जिससे प्रेम करते है

प्रेतान् [१७.४ सं(राम २.३)] प्रेत हुओं को, पिशाचों को

प्रेत्य [१७.२८, २८.१२ (प्र + √ इ अदा P + ल्यप्)] जाने के बाद, यहां के बाद, परलोक में

प्रोक्तः [४.३, ६.३३, १०.१०, १६.६ सं(राम १.१) (प्र + √ वच् अदा. P + क्त)] कहा गया, घोषित हुआ (है)

प्रोक्तम् [८.१, १३.११, १७.१५, १८.३७ (फल १.१) (प्र + √ वच् अदा. P + क्त)] कहाता है, पुकारा जाता है, कहते हैं

प्रोक्तवान् [४.१, ४.४ (धीमत् १.१) (प्र + √ वच् + क्तवतु)] कहा था, कहा

प्रोक्ता [३.३ - (प्र + वच् + क्त + टाप्)] कहा है, कही गई है

प्रोक्तानि [१८.१३ वि.(फल २.३) (प्र. + √ वच् अदा P + क्त)] कहे गये हैं

प्रोच्यन्ते [१८.१९ (प्र + √ वच् अदा A/P A लट् ३.३)] कहे जाते हैं

प्रोच्यमानम् [१८.२९ वि(राम २.१) (प्र + √ वच् + शानच्)] कहे हुए को, कहे गए को

प्रोतम् [७.७ वि(फल १.१)] पिरोया हुआ, गूंथा हुआ

फ

फलम् [२.५१, ५.४, ७.२३, ९.२६, १४.१६, १७.१२, २१.२५, १८.९, १२ सं(फल १/२.१)] फल को, फल

फलहेतवः [२.४९ वि(गुरु १.३) (फलं हेतुः येषां ते)] वे जिनका उद्देश्य फल है, फलाकांक्षी

फलाकांक्षी [१८.३४ वि(शशिन् १.१) (फलस्य आकांक्षी)] फल के इच्छुक

फलानि [१८.६ सं(फल १/२.३)] फलों (को)

फले [५.१२ सं(फल ७.१)] फल में

फलेषु [२.४७ सं(फल ७.३)] फलों में

ब

बत् [१.४५ (अ)] हाय

बद्धाः [१६.१२] वि(राम १.३) (√ बन्ध् + क्त .)] बँधे हुए

बध्नाति [१४.६ (√ बन्ध् क्र्या P लट् ३.१)] बांधता है, जकड़ता है

बध्यते [४.१४ (√ बन्ध क्या P कर्मणि A लट् ३.१)] (वह) बंधा है, बंधता है

बन्धम् [१८.३० सं(राम २.१)] बन्धन (को)

बन्धात् [५.३ सं(राम ५.१)] बन्धन से

बन्धुः [६.५, ६ सं(गुरु १.१)] सम्बन्धी

बन्धून् [१.२७] सम्बन्धियों को

बभूव [२.९ (भू भ्वा P लिट् ३.१)] हो गया

बलम् [१.१०, ७.११, १६.१८, १८.५३ सं(फल १/२.१)] बल, शक्ति

बलवत् [६.३४ वि (जगत् १.१)] बल

बलवताम् [७.११ सं(धीमत् ६.३)] बलवानों का

बलवान् [१६.१४ वि(धीमत् १.१)] बलवान्

बलात् [३.३६ (अ)] बल से

बहवः [१.९, ४.१०, ११.२८ वि(गुरु १.३)] बहुत से, अनेक

बहिः [५.२७, १३.१५ (अ.)] बाहरी, बाह्य, बाहर, के बाहर, अलग

बहुदंष्ट्राकरालम् [११.२३ वि(राम २.१) (बहूवीभिः दंष्ट्राभिः करालम्)] अनेक भयंकर दन्तों सहित

बहुधा [९.१५, १३.४ (अ.)] अनेक प्रकार से

बहुना [१०.४२ सं(गुरु ३.१)] बहुत से, अनेक

बहुबाहूरुपादम् [११.२३ सं(फल २.१)] बहवः बाहवः च ऊरवः च पादाः च यस्मिन् तत्)] वह जिसमें अनेक भुजाएं और जंघाएं और पैर हैं

बहुमतः [२.३५ वि(राम १.१) (बहु मतः)] बहु सम्मानित, बहुत मान्यता पाये हुए, बहुमान्य

बहुलायासाम् [१८.२४ वि(फल १.१) (बहुलः आयासः यस्मिन् तत्)] वह जिसमें बहुत परिश्रम है, क्लेश है

बहुवक्त्रनेत्रम् [११.२३ सं(फल २.१) (बहूनि वक्त्राणि च नेत्राणि च यस्मिन् तत्)] वह जिसमें अनेक मुख और नेत्र (हैं)

बहुविधाः [४.३२ वि(राम १.३)] विविध, नाना रूप, बहुत प्रकार के

बहुशाखाः [२.४१ सं(विद्या १.३) (बह्व्यः शाखाः यासां ताः)] वे जिनकी बहुत शाखाएं हैं

बहूदरम् [११.२३ सं(फल २.१) (बहूनि उदराणि यस्मिन् तत्)] वह जिसमें अनेक उदर हैं

बहून् [२.३६ वि(बहु २.३)] बहुतों (को) अनेक को

बहूनि [४.५, ११.६ वि(बहु १/२.३)] अनेक, बहुत से

बहूनाम् [७.१९ वि(बहु ६.३)] बहुतों का, अनेक का

बालाः [५.४ सं(राम १.३)] बालक गण, अज्ञानी लोग

बाह्यस्पर्शेषु [५.२१ सं(राम ७.३) (बाह्येषु स्पर्शेषु)] बाह्य (बाहरी) सम्पर्कों, संस्पर्शों (में)

बाह्यान् [५.२७ वि(राम २.३)] बाहरी, बाह्य

बिभर्ति [१५.१७ (v भृ जुहो, P लट् ३.१)] संभालकर रखता है, भरण-पोषण करता है

बीजप्रदः [१४.४ सं(राम १.१) (बीजं प्रददाति इति)] बीज देता है, बीज रोपने वाला, बीज स्थापन करने वाला

बीजम् [७.१०, ९.१८, १०.३९ सं(फल २.१/१.१)] बीज, मूल कारण

बुद्धयः [२.४१ सं(मति १.३)] बुद्धियां

बुद्धिः [२.३९, ४१, ४४, ५२, ५३, ६५, ६६, ३.१, ४०, ४२, ७. ४.१०, १०.४, १३.५, १८. १७, ३०, ३१, ३२ सं(मति १.१)] ज्ञान, विचार, बुद्धि

बुद्धिग्राह्यम् [६.२१ वि(फल १.१) (बुद्ध्या ग्राह्यम्)] बुद्धि से समझने योग्य

बुद्धिनाशः [२.६३ सं(राम १.१) (बुद्धेः नाशः)] बुद्धि का नाश

बुद्धिनाशात् [२.६३ सं(राम ५.१)] बुद्धि के नाश से

बुद्धिभेदम् [३.२६ सं(राम २.१) (बुद्धेः भेदम्)] बुद्धि भेद, बुद्धि को विसर्जित करना (तितर वितर करना)

बुद्धिम् [३.२, १२.८ सं(मति २.१)] बुद्धि, समझ (को)

बुद्धिमताम् [७.१० वि(धीमत् ६.३)] बुद्धिमानों की, ज्ञानियों की

बुद्धिमान् [४.१४, १५.२० वि.(धीमत् १.१)] बुद्धि मान्, विवेक वाला

बुद्धियुक्तः [२.५० वि(राम १.१) (बुद्ध्या युक्तः)] बुद्धि से सम्पन्न, बुद्धि से युक्त, बुद्धिवाला

बुद्धियुक्ताः [२.५१ वि(राम १.३)] बुद्धि वाले

बुद्धियोगम् [१०.१०, १८.५७ सं(राम २.१) (बुद्धिः योगम्)) बुद्धि का योग, विवेक बुद्धि

बुद्धियोगात् [२.४९ सं(राम २.१) (बुद्धेः योगात्) बुद्धि योग से

बुद्धिसंयोगम् [६.४३ सं(राम २.१) (बुद्धेः संयोगम्)] बुद्धि संयोग को, बुद्धि की विशिष्टताओं को

बुद्धेः [३.४२, ४३, १८.२९ सं(मति ५.१; ६.१)] बुद्धि की अपेक्षा, बुद्धि के

बुद्धौ [२.४९ सं(मति ७.१)] बुद्धि में, शुद्ध विवेक बुद्धि में

बुद्ध्या [२.३९, ५.११, ६.२५, १८.५१ सं(मति ३.१)] बुद्धि से, तर्क के द्वारा

बुद्ध्वा [३.४३, १५.२० (अ.)(√ बुध् दिवा P + क्त्वाच्)] जान कर

बुधः [५.२२ सं(राम १.१)] बुद्धिमान्, ज्ञानवान् मनुष्य

बुधाः [४.१९, १०.८ सं(राम १.३)] बुद्धिमान् लोग, ज्ञानी लोग

बृहत्साम [१०.३५] इन्द्र की स्तुति का साममन्त्र, बृहत्साम

बृहस्पतिम् [१०.२४ सं(हरि २.१)] बृहस्पति

बोद्धव्यम् [४.१७ वि(फल १.१) (बुध् दिवा P + तव्य)] जानना चाहिए, जानने योग्य

बोधयन्तः [१०.९ वि.(ध्यायत् १.३) (√ बुध्द दिवा A/P + णिच् P + शतृ)] प्रकाश डालते हुए, प्रबुद्ध करते हुए, समझाते हुए

ब्रवीमि [१.७ (√ ब्रू अदा P लट् १.१)] (मैं) कहता हूं, बतलाता हूं

ब्रवीषि [१०.१३ (√ ब्रू अदा P लट् २.१)] (आप) बतलाते हैं, कहते हैं

ब्रह्म [३.१५, ४.२४.३१, ५.६. १९ ७.२९, ८.१, ३,१३, २४, १०.१२, १३.१२.३०, १४.३,४; १८.५० सं(आत्मन्/कर्मन् २.१)] ब्रह्म, वेद, परम तत्त्व, ब्रह्मा, ब्राह्मण आदि अनन्त; (अव्यक्त) प्रकृति (१४.३,४) (देखें महद् ब्रह्म)

ब्रह्मकर्म [१८.४२ सं(कर्मन् १.१) (ब्रह्मणः- कर्म)] ब्राह्मण के कर्म

ब्रह्मकर्मसमाधिना [४.२४ सं(हरि ३.१) (ब्रह्म एव कर्म तस्मिन् समाधिः यस्य तेन)] जिसके कर्म और समाधि में केवल ब्रह्म है, उससे

ब्रह्मचर्यम् [८.११, १७.१४ सं(फल १/२.१)] ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचारिव्रते [६.१४ सं(फल ७.१) (ब्रह्मचारिणः व्रते)] ब्रह्मचारी के व्रत में

ब्रह्मणः [४.३२, ६.३८, ८.१७, ११.३७, १४.२७, १७.२३ सं(आत्मन्/कर्मन् ५/६.१)] ब्रह्म के, वेद के, ब्रह्माके

ब्रह्मणा [४.२४ सं(कर्मन् ३.१)] ब्रह्म के द्वारा

ब्रह्मणि [५.१०, १९, २० सं(कर्मन् ७.१)] ब्रह्म में

ब्रह्मनिर्वाणम् [२.७२, ५.२४, २५, २६ सं(फल १/२.१) (ब्रह्मणः निर्वाणम्)] ब्रह्म के निर्वाण को, ब्रह्मनिर्वाण को, ईश्वरीय आनन्द को

ब्रह्मभुवनात् [८.१६ सं(फल ५.१) (ब्रह्मणः भुवनात्)] ब्रह्म लोक से

ब्रह्मभूतः [५.२४, १८.५४ वि(राम १.१)] ब्रह्म हुआ, ब्रह्म रूप हुआ

ब्रह्मभूतम् [६.२७ वि(फल २.१)] ब्रह्म हुए (को) ब्रह्म रूप हुए (को)

ब्रह्मभूयाय [१४.२६, १८.५३ सं(फल ४.१) ब्रह्मणः भूयाय)] ब्रह्म होने के लिए, ब्रह्म भाव के प्राप्त करने के लिए, ब्रह्म रूप होने के लिए

ब्रह्मयोगयुक्तात्मा [५.२१ (आत्मन् १.१) (ब्रह्मणि योगेन युक्तः आत्मा यस्य सः)] वह जिसकी आत्मा योग द्वारा ब्रह्म में युक्त है

ब्रह्मवादिनाम् [१७.२४ वि(शशिन् ६.३)] ब्रह्म की व्याख्या करने वालों को, ब्रह्म के प्रतिपादक–ठीक प्रकार से कहने या समझाने वालों का

ब्रह्मवित् [५.२० वि(मरुत् १.१)] ब्रह्म को जानने वाला

ब्रह्मविदः [८.२४ वि(तत्त्वविद् १.३)] ब्रह्म वेत्ता, ब्रह्म को जानने वाले

ब्रह्मसंस्पर्शम् [६.२८ वि(राम २.१) (ब्रह्मणा संस्पर्शः यस्य तत्)] ब्रह्म के स्पर्श को, ब्रह्म के योग से होने वाले (सुख को)

ब्रह्मसूत्रपदैः [१३.४ सं(फल ३.३)] ब्रह्म सूत्र के पदों द्वारा (वचनों में)

ब्रह्माग्नौ [४.२४.२५ सं(हरि ७.१) (ब्रह्मणः अग्नौ)] ब्रह्म की अग्नि में, ब्रह्म रूपी अग्नि में

ब्रह्माणम् [११.१५ सं(आत्मन् २.१)] ब्रह्मा को

ब्रह्मोद्भवम् [३.१५ वि(फल २.१) (ब्रह्मणः उद्भवः यस्य तत्)] वह जिसकी उत्पत्ति, ब्रह्म (वेद) से है

ब्राह्मणक्षत्रियविशाम् [१८.४१ सं(विश ६.३) (ब्राह्मणानां च क्षत्रियाणां च विशां च)] ब्राह्मणों के और क्षत्रियों के और वैश्यों के

ब्राह्मणस्य [२.४६ सं(राम ६.१)] ब्राह्मण का

ब्राह्मणाः [९.३३, १७.२३ सं(राम १.३)] ब्राह्मण लोग

ब्राह्मणे [५.१८ सं(राम ७.१)] ब्राह्मण में

ब्राह्मी [२.७२ वि.(नदी १.१)] ब्रह्म की, ईश्वरीय, दैवी

ब्रूहि [२.७, ५.१ (√ब्रू अदा P लोट् २.१)] कहिए बतलाइए

भ

भक्तः [४.३, ७.२१, ९.३१, १२.१४ सं(राम १.१)] भक्त, उपासक

भक्ताः [९.३३, १२.१, २० सं(राम १.३)] निष्ठावान्, भक्तगण

भक्तिः [१३.१० सं(मति १.१)] भक्ति, श्रद्धा, उपासना

भक्तिम् [१८.६८ सं(मति २.१)] भक्ति को

भक्तिमान् [१२.१७, १९ वि(धीमत् १.१)] श्रद्धालु, भक्त

भक्तियोगेन [१४.२६ सं(राम ३.१) (भक्त्याः योगेन)] भक्ति के योग से, भक्ति योग द्वारा

भक्त्या [८.१०, २२, ९. १४, २६, २९, १०.५४, १८.५५ सं(मति ३.१)] भक्ति से, श्रद्धा से

भक्त्युपहृतम् [९.२६ वि(फल २.१) (भक्त्या उपहृतम्)] भक्ति से अर्पण किया हुआ

भगवन् [१०.१४, १७ सं(ध्यायत् ८.१)] हे भगवन्

भजताम् [१०.१० वि.(ध्यायत् ६.३) (√ भज् भ्वा A/P + शतृ)] पूजा करते हुओं को, भजन करने वालों को

भजति [६.३१, १५.१९ (√ भज् भ्वा P लट् ३.१)] भजता है, पूजा करता है

भजते [६.४७, ९.३० (√ भज् भ्वा A लट् ३.१)) भजता है

भजन्ति [९.१३, २९ (√ भज् भ्वा P लट् ३.३)] (वे) भजते हैं

भजन्ते [७.१६, २८. १०.८ (√ भज् भ्वा A लट् ३.३)] भजते हैं, पूजा करते हैं

भजस्व [९.३३ (√ भज् भ्वा A लोट् २.१)] भज, भजन कर (तू)

भजामि [९.११ (√ भज् भ्वा P लट् १.१)] (मैं) भजता हूं, पूजा करता हूं

भयम् [१०.४, १८.३५ सं(फल १.१/२.१)] भय

भयात् [२.३५, ४० सं(फल ५.१)] भय से

भयानकानि [११.२७ वि(फल २.३)] भयंकर, विकराल

भयाभये [१८.३० सं(फल २.२) (भयं च अभयं च)] भय और अभय, डर और निडरता

भयावहः [३.३५ वि(राम १.१)] भय लाने वाला, संकट में डालने वाला

भयेन [११.४५ सं(फल ३.१)] भय से

भरतर्षभ [३.४१, ७,११.१६, ८.२३, १३.२६, १४.१२, १८.३६ सं(राम ८.१) (भरतानाम् ऋषभ)] भरत वंश में श्रेष्ठ (हे), हे भरतश्रेष्ठ

भरतश्रेष्ठ [१७.१२ सं(राम ८.१)] (हे) भरतश्रेष्ठ

भरतसत्तम [१८.४ सं(राम ८.१)] हे भरतश्रेष्ठ, हे भरतसत्तम

भर्ता [९.१८, १३.२२ सं(धातृ १.१)] पोषक (पति)

भव [२.४५, ६.४६, ८.२७, ९.३४, ११.३३,४६, १२.१०, १८.५७,६५ (√ भू-भव् भ्वा P लोट् २.१)] हो, हो जा, जीवित हो, घटित हो

भवः [१०.४ सं(राम १.१)] अस्तित्व

भवतः [४.४, १४.१७ सर्व(भवत् ६.१) (√ भू भ्वा P लट् ३.२)] आप का, तेरा, होते हैं (दोनो)

भवति [१.४४, २.६३; ३.१४; ४.७, १२; ६.२, १७, ४२; ७.२३, ९.३१; १४.३, १०, २१; १७.२, ३, ७; १८.१२ (√ भ्वा P लट् ३.१)] है, होता है, अभिभावी होता है

भवन्तः [१.११ सर्व(भवत् पु १.३)] आप, आप सब

भवन्तम् [११.३१ सर्व(भवत् २.१)] आप को

भवन्ति [३.१४, १०.५, १६.३ (√ भू भ्वा P लट् ३.३)] हो जाते हैं, पैदा होते हैं

भवान् [१.८, १०.१२, ११.३१ सर्व(भवत् १.१)] आप

भवाप्ययौ [११.२ सं(राम १.२) (भवः च अप्ययः च)] होना और विलय, उत्पत्ति और प्रलय

भवामि [१२.७ (भू-भव्-भ्वा P लट् १.१)] होता हूं (मैं)

भविता [२.२०, १८.६९ (√ भू भव् भ्वा P लुट् ३.१)] होगा, होनेवाला

भविष्यताम् [१०.३४ सं(ध्यायत् ६.३)] भविष्य में होने वालों का

भविष्यति [१६.१३ (√ भू-भव् भ्वा P लृट् ३.१)] (वह) होगे

भविष्यन्ति [११.३२ (√ भू-भव् भ्वा P लृट् ३.३)] (वे) होंगे

भविष्याणि [७.२६ वि(फल २.३)] जो होने वाले हैं, जो भविष्य काल में होंगे

भविष्यामः [२.१२ (√ भू-भव् भ्वा P लृट् १.३)] (हम) होंगे

भवेत् [१.४६, ११.१२ (√ भू-भव् भ्वा P विधि ३.१)] होगा, हो जाए

भस्मसात् [४.३७ (अ.)] भस्मीभूत, भस्मरूप, राख

भाः [११.१२ सं(भास् १.१)] वैभव, चमक

भारत [१.२४,२.१०.१४.१८.२८.३०, ३.२५, ४.७.४२, ७.२७, ११.६ १३.२.३३, १४.३.८.९, १०, १५.१९.२०, १६.३, १७.३, १८.६२ सं(राम ८.१)] हे भारत

भावः [२.१६, ८.४२०, १८.१७ सं(राम १.१)] अस्तित्व, हस्ती, अवस्था, मनोदशा

भावना [२.६६ सं(विद्या १.१)] मनन, चिन्तन, ध्यान, विचार

भावम् [७.१५, २४, ८.६, ९.११, १८.२० सं(राम २.१)] स्वभाव को, स्वरूप को

भावयत [३.११ (√ भू भ्वा + णिच् लोट् २.३)] (तुमलोग) पोषण करो, प्रोत्साहित करो

भावयन्तः [३.११ सं(ध्यायत् १.३) (√ भू भ्वा णिच् + शतृ)] प्रोत्साहित करते हुए

भावयन्तु [३.११ (√ भू भ्वा + णिच् लोट् ३.३)] पोषण करें, विकसित करें

भावसंशुद्धिः [१७.१६ सं(मति १.१) (भावस्य संशुद्धिः)] भावना की शुद्धता, शुद्ध संवेदनशीलता

भावसमन्विताः [१०.८ वि(राम १.३) भावेन समन्विताः)] भावना से सम्पन्न, प्रेम पूर्वक

भावाः [७.१२, १०.५ सं(राम १.३)] गुण, (बहुवचन) मनोदशाएं, चित्त वृत्तियां, मनः स्थितियाँ

भावेषु [१०.७ सं(राम ७.३)] मनोदशाओं में, भावों में, अवस्थाओं में

भावैः [७.१३ सं(राम ३.३)] स्वभावों (से) मनोदशाओं (से)

भाषसे [२.११ (√ भाष् भ्वा A लट् २.१)] कहता है, बोलता है (तू)

भाषा [२.५४ सं(विद्या १.१)] परिभाषा, वर्णन, लक्षण, व्याख्या

भासः [११.१२, ३० सं(भास् ६.१; १.३)] महिमा के, प्रताप के, महिमा, गौरव

भासयते [१५.६, १२ (√ भास् चुरा A लट् ३.१)] प्रकाशित करता है

भास्वता [१०.११ वि(धीमत् ३.१)] प्रकाशमय, चमकते हुए, जगमगाता

भिन्ना [७.४ वि(विद्या १.१)] विभाजित

भीतभीतः [११.३५ वि(राम १.१) (भीतः भीतः)] भय भीत हुआ

भीतम् [११.५० वि(राम २.१)] भय भीत (को)

भीताः [११.२१ वि(राम १.३)] भयभीत हुए

भीतानि [११.३६ वि(फल १.३)] भयभीत हुए, आतंकित हुए

भीमकर्मा [१.१५ वि(आत्मन् १.१) (भीमं कर्म यस्य सः)] वह जिसके काम भयंकर (हैं)

भीमाभिरक्षितम् [१.१० वि(फल १.१) (भीमेन अभिरक्षितम्)] भीम द्वारा नियन्त्रित (या) संरक्षित

भीमार्जुनसमाः [१.४ सं(राम १.३) (भीमस्य अर्जुनस्य च समाः)] भीम और अर्जुन के तुल्य

भीष्मः [१.८, ११.२६ सं(राम १.१)] भीष्म

भीष्मद्रोणप्रमुखतः [१.२५ (भीष्मस्य च द्रोणस्य च प्रमुखतः)] भीष्म और द्रोण के सम्मुख, भीष्म और द्रोण की उपस्थिति (में)खख

भीष्मम् [१.११, २.४, ११.३४ सं(राम २.१)] भीष्म (को) भीष्म पितामह को

भीष्माभिरक्षितम् [१.१० वि(फल १.१) (भीष्मेण अभिरक्षितम्)] भीष्म द्वारा नियन्त्रित (या संरक्षित)

भुक्त्वा [९.२१ (अ.) (√ भुज् रुधा P + क्त्वाच्)] भोग कर

भुङ्क्ते [३.१२; १२.२१ (√ भुज् रुधा A लट् ३.१)) भोगता है, रस लेता है

भुङ्क्ष्व [११.३३ (√ भुज् रुधा A लोट् २.१)] भोग, आनन्द ले

भुञ्जते [३.१३ (√ भुज् रुधा A लट् ३.३)] भोगते हैं, आनन्द मनाते हैं

भुञ्जानम् [१५.१० वि(राम २.१)] भोगते हुए (को)

भुञ्जीय [२.५ (√ भुज् रुधा A विधि १.१)] मैं खाऊंगा, मैं भोगूंगा

भुवि [१८.६९ सं(भू ७.१)] पृथ्वी पर (में)

भूः [२.४७ सं(भू १.१) हो

भूत [सं(नपु.)] कोई वस्तु, चाहे वह मानवी हो चाहे दैवी, और चाहे निर्जीव; जड़-चेतनादि

भूतगणान् [१७.४ सं(राम २.३) (भूतानां गणान्)] भूतों के समुदाय को, भूतगणों को (देखिए 'भूत')

भूतग्रामः [८.१९ सं(राम १.१) (भूतानां ग्रामः)] प्राणियों का समुदाय, भूतसमूह (देखिए 'भूत')

भूतग्रामम् [९.८, १७.६ सं(राम २.१) (भूतानां ग्रामम्)] प्राणियों के समुदाय को, (पंच) महाभूतों को (देखिए 'भूत')

भूतपृथग्भावम् [१३.३० सं(राम २.१) (भूतानां पृथक् भावम्)] प्राणियों के भिन्नभिन्न अस्तित्वों को, प्राणियों के अनेकत्व को (देखिए 'भूत')

भूतप्रकृतिमोक्षम् [१३.३४ सं(राम २.१) (भूतानां प्रकृतेः मोक्षम्)] प्राणियों की प्रकृति से मुक्ति

भूतभर्तृ [१३.१६ वि.(कर्तृ १.१) (भूतानां भर्तृ)] प्राणियों का भरण पोषण करने वाला (देखिए 'भूत')

भूतभावन [१०.१५ वि(राम ८.१) (भूतानि भावयति इति)] हे ! इस प्रकार प्राणियों को उत्पन्न करने वाले (देखिए 'भूत')

भूतभावनः [९.५ वि(राम १.१) (भूतानि भावयति इति)] इस प्रकार विकसित करता है प्राणियों को, (पोषित करता है) (देखिए 'भूत')

भूतभावोद्भवकरः [८.३ वि.(राम १.१) (भूतानां भावस्य उद्भवं करोति इति सः)] जो इस प्रकार उत्पन्न करता है प्राणियों के स्वभाव को, प्राणिमात्र को उत्पन्न करने वाला, सृष्टि उत्पन्न करने वाला (देखिए 'भूत')

भूतभृत [९.५ वि(मरुत्१.१) (भूतानि बिभर्ति इति)] इस प्रकार धारण करता है भूतों को जो (देखिए 'भूत')

भूतम् [१०.३९ सं(फल १.१)] प्राणी (देखिए 'भूत')

भूतमहेश्वरम् [९.११ सं(राम २.१) (भूतानां महेश्वरम्)] प्राणियों (भूतों) के महेश्वर (महाईश्वर), को (देखिए 'भूत')

भूतविशेषसंघान् [११.१५ सं(राम २.३) (भूतानां विशेषाणां संघान्)] नाना प्रकार के प्राणियों के समुदायों को (देखिए 'भूत')

भूतसर्गौ [१६.६ सं(राम १.२) (भूतानां सर्गौ)] प्राणियों का सर्जन, उत्पत्ति, निर्गम (देखिए 'भूत')

भूतस्थः [९.५ वि(राम १.१) (भूतेषु तिष्ठति इति)] इस प्रकार स्थित है प्राणियों में, जीवों में स्थित हुआ (देखिए 'भूत')

भूतादिम् [९.१३ सं(हरि २.१) (भूतानां आदिम्)] प्राणियों के आदि (आरम्भ) को (देखिए 'भूत')

भूतानि [२.२८.३०.३४.६९, ३.१४.३३, ४.३५, ७.६.२६, ८.२२, ९.५.६.२५, १०.१३.१६ सं(फल १.३/२.३)] प्राणी, मनुष्य, सबलोग, भूतों (को) (देखिए 'भूत')

भूतानाम् [४.६, १०.५२०.२२, ११.२, १३.१५, १८.४६ सं(फल ६.३)] भूतमात्र का, संपूर्ण प्राणियों का (देखिए 'भूत')

भूतिः [१८.७८ सं(मति १.१)] वैभव, ऐश्वर्य, उत्तरोत्तर ऐश्वर्य की वृद्धि

भूतेज्याः [९.२५ (भूतेभ्यः इज्या येषां ते)] वे जिनका व्रत भूतों के लिए है, भूतों का पूजन करने वाले (देखिए 'भूत')

भूतेश [१०.१५ सं(राम ८.१) (भूतानाम् ईश)] हे प्राणियों के ईश्वर (देखिए 'भूत')

भूतेषु [७.११, ७.२०, १३.१६.२७, १६.२, १८.२१.५४ सं(फल ७.३)] प्राणियों में (देखिए 'भूत')

भूत्वा [२.२०, ३५, ४८; ३.३६; ८.१९; ११.५०; १५.१३, १४ (अ.) (√भू- भ्व P + क्त्वाच)] होकर, उत्पन्न होकर (देखिए 'भूत')

भूमिः [७.४ सं(मति १.१)] पृथ्वी

भूमौ [२.८ सं(मति ७.१)] पृथ्वी में, पृथ्वी पर

भूयः [२.२०, ६.४३ (अ.)] फिर, दुबारा

भृगुः [१०.२५ सं(गुरु १.१)] भृगु

भेदम् [१७.७, १८.२९ सं(राम २.१)] भेदभाव, पृथक्करण, प्रभेद

भेर्यः [१.१३ सं(नदी १.३)] ताशे, नक्कारे, नगाड़े

भैक्ष्यम् [२.५ सं(फल २.१)] भिक्षा

भोक्ता [९.२४, १३.२२ वि(धातृ १.१) (√भुज् रुधा P + तृच)] भोगने वाला

भोक्तारम् [५.२९ वि(धातृ २.१)] भोक्ता, भोगनेवाला (को)

भोक्तुम् [२.५ (अ.) (√ भुज् रुधा P + तुमुन्)] खाना

भोक्तृत्वे [१३.२० सं(फल ७.१)] भोगने की क्रिया में

भोक्ष्यसे [२.३७ (√ भुज् रुधा लृट् २.१)] (तू) भोगेगा

भोगाः [१.३३, ५.२२ सं(राम १.३)] सुख आनन्द

भोगान् [२.५, ३.१२ सं(राम २.३)] भोगों को, रस आनन्द को

भोगी [१६.१४ सं(शशिन् १.१)] भोग करने वाला,

भोगैः [१.३२ (राम ३.३)] भोगों से, भोगों सहित

भोगैश्वर्यगतिम् [२.४३ सं(मति २.१) (भोगस्य च ऐश्वर्यस्य च गतिम्)] भोग और ऐश्वर्य की प्राप्ति

भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम् [२.४४ वि(राम ६.३) (भोगे च ऐश्वर्ये च प्रसक्तानाम्)] भोग और ऐश्वर्य में आसक्त हुओं का

भोजनम् [१७.१० सं(फल २.१)] भोजन, आहार

भ्रमति [१.३० (√ भ्रम भ्वा P लट् ३.१)] घूमता है

भ्रातृन् [१.२६ सं(धातृ २.३)] भाईयों को

भ्रामयन् [१८.६१ वि.(ध्यायत् १.१) (√ भ्रम भ्वा P + णिच् + शतृ)] घुमाता हुआ, चक्कर खिलाता हुआ

भ्रुवोः [५.२७, ८.१० स.(भ्रू ६.२)] (दो) भृकुटियों के (बीच), भौंहों के बीच

म

मंस्यन्ते [२.३५ (√ मन् दिवा A लृट् ३.३)] सोचेंगे, विचार करेंगे

मकरः [१०.३१ सं(राम १.१)] मकर, घड़ियाल

मच्चित्तः [६.१४, १८.५७.५८ वि(राम १.१) (मयि चित्तं यस्य सः)] वह जिसका मन मुझ में है, मुझ में लीन

मच्चित्ताः [१०.९ वि(राम १.३) (मयि चित्तं येषां ते)] वे जिनका मन मुझ में हैं, मुझ में लीन

मणिगणाः [७.७ सं(राम १.१) (मणीनां गणाः)] मणियों की पंक्तियाँ (लड़ियां) मणियों की माला

मतः [६.३२, ४६, ४७, ११.१८, १८.९ वि.(राम १.१)] माना हुआ, विचारा हुआ,

मतम् [३.३१, ३२, ७.१८, १३.२, १८.६ सं(फल १.१)] मत, विचार, सम्मति

मता [३.१, १६.५, १८.३५ वि.(विद्या १.१) (√ मन् दिवा A क्त)] विचार, सोची जाती है, मानी जाती है, मानी हुई

मताः [१२.२ सं(राम १.३) (√ मन् दिवा A क्त)] विचार, विचारे हुए

मतिः [६.३६, १८.७०, ७८ सं(मति १.१)] मत, विचार

मते [८.२६ वि(फल १.२)] (दो) विचार हैं

मत्कर्मकृत् [११.५५ वि.(मरुत् १.१) (मम कर्म करोति इति)] इस प्रकार मेरा काम करते, मेरे लिए काम करने वाला

मत्कर्मपरमः [१२.१० सं(राम १.१) (मम कर्म परमं यस्य सः)] वह जिसका सर्वोच्च-मेरा काम है

मत्तः [७.७, १२, १०.५, ८; १५.१५ सर्व (अस्मद्-मत् + तस् ५.१)] मुझ से, मेरी अपेक्षा

मत्परः [२.६१, ६.१४, १८.५७ वि(राम १.१) (अहं परः यस्य सः)] वह जिसका सर्वोच्च ध्येय मैं हूं, मुझ में तन्मय

मत्परमः [११.५५ वि(राम १.३) (अहं परमः यस्य सः)] विश्वास करता हुआ मुझ में, मुझे सर्वश्रेष्ठ सर्वोपरि मानता हुआ

मत्परमाः [१२.२० वि(राम १.३)] वह जिसका सर्व श्रेष्ठ में हूं

मत्पराः [१२.६ वि(राम १.३)] मुझ में एकाग्र (दत्तचित्त), मुझ में परायण (लगे हुए)

मत्परायणः [९.३४ वि(राम १.१) (अहं परायणं यस्य सः)] वह जिसका सर्वोच्च ध्येय मैं हूं, मुझ में प्रवृत्त, लगा हुआ, मुझ में लीन

मत्प्रसादात् [१८.५६, ५८ सं(राम ५.१) (मम प्रसादात्)] मेरे प्रसाद से, मेरी कृपा से

मत्वा [३.२८, १०.८.११.४ अ (√ मन् दिवा A + क्त्वाच्)] मान कर, विचार कर

मत्संस्थाम् [६.१५. वि(विद्या २.१) (मयि संस्था यस्याः ताम्)] मुझ में नींव है जिसकी उसको, मुझ में स्थित, मुझ में टिकी हुई

मत्स्थानि [९.५, ६ वि(फल १.३) (मयि तिष्ठन्ति इति तानि)] वे ऐसे मुझ में स्थित हैं

मदनुग्रहाय [११.१ सं(राम ४.१) (मम अनुग्रहाय)] मुझपर कृपा करके, मुझपर दया करने के लिए

मदम् [१८.३५ सं(राम २.१)] मद् उन्माद

मदर्थम् [१२.१० (अ)] मेरे लिए

मदर्थे [१.९ सं(राम ७.१) (मम अर्थे)] मेरे लिए, मेरे कारण

मदर्पणम् [९.२७ सं(फल २.१) (मयि अर्पणम्)] मुझे, मेरे अर्पण

मदाश्रयः [७.१ वि(राम १.१) (अहम् आश्रयः यस्य सः)] वह जिसका आश्रय मैं (हूं), मेरे सहारे

मद्गतप्राणाः [१०.९ सं(राम १.३) (मां गताः प्राणाः येषां ते) वे जिनके प्राण मुझ को गए हैं, (मुझमें हैं)

मद्गतेन [६.४७ वि(राम ३.१) मां गतेन)] मुझ में लीन

मद्भक्तः [९.३४, ११.५५, १२.१६, १३.१८, १८.६५ सं(राम १.१) (मम भक्तः)] मेरा भक्त

मद्भक्ताः [७.२३ सं(राम १.३) (मम भक्ताः)] मेरे भक्तगण

मद्भक्तिम् [१८.५४ सं(मति २.१) (मयि भक्तिम्)] मुझ में भक्ति, मेरी भक्ति को

मद्भक्तेषु [१८.६८ सं(राम ६.३) (मम भक्तेषु)] मेरे भक्तों में

मद्भावम् [४.१०, ८.५, १४.१९ सं(राम २.१) (मम भावम्)] मेरे भाव को, मेरे स्वरूप को, मेरे अस्तित्व (सत्ता) को

मद्भावाः [१०.६ सं(राम १.३) (मयि भावः येषां ते अथवा (मम भावाः)] वे जिनका अस्तित्व मुझ में है मुझ में मनोदशा रखने वाले, जिनकी मनः स्थिति मुझ में है

मद्भावाय [१३.१८ सं(राम ४.१) (मम भावाय)] मेरी स्थिति को, मेरी सत्ताको, मेरी हस्ती को

मद्याजिनः [९.२५ सं(शशिन् १.३) (मां यजन्ते इति)] इस प्रकार मेरे लिए यज्ञ करने वाले, मेरी पूजा करने वाले,

मद्याजी सं.(शशिन् १.१) [९.३४, १८.६५ वि(शशिन् १.१) (मां यजते इति)] ऐसे मेरे लिए यज्ञ करता है, मेरे निमित्त यज्ञ करने वाला

मद्योगम् [१२.११ सं(राम २.१) (मम योगम्)] मेरा योग

मद्व्यपाश्रयः [१८.५६ वि(राम १.१) (अहं व्यपाश्रयः यस्य सः)] वह जिसका आश्रय मैं (हूं), मेरा शरणागत, मेरा आश्रय लेने वाला

मधुसूदन [१.३५, २.४, ६.३३, ८.२ सं(राम ८.१)] हे मधुसूदन

मधुसूदनः [२.१ सं(राम १.१)] मधुसूदन

मध्यम् [१०.२०, ३२, ११.१६ सं(फल १.१)] मध्य भाग , बीच का भाग

मध्ये [१.२१.२४, २.१०, ८.१०, १४.१८, वि(फल ७.१) बीच में

मनः [१.३०, २.६०, ६७; ३.४०, ४२; ५.१९, ६.१२, १४, २५, २६, ३४, ३५; ७.४, ८.१२; १०.२२, ११.४५; १२.२, ८ १५.९; १७.११ सं(मनस् १.१;२.१)] मन

मनःप्रसादः [१७.१६ सं(राम १.१) (मनसः प्रसादः)] मन की शान्तिप्रियता, चित्त की प्रसन्नता

मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः [१८.३३ सं(विद्या १.३) (मनसः च प्राणानां च इन्द्रियाणां च क्रियाः)] मन की, प्राण की और इन्द्रियों की क्रियाएं

मनःषष्ठानि [१५.७ सं(मनस् २.३) (मनः षष्ठं येषां तानि)] मन छठा है, उनको जिन के साथ छठवां मन है, (छठी इंद्रिय मन हैं)

मनवः [१०.६ सं(गुरु १.३)] मनु (बहुवचन)

मनवे [४.१) सं(गुरु ४.१)] मनु (सूर्य पुत्र) को

मनसा [३.६, ७, ४२, ५.११, १३; ६.२४, ८.१० सं(मनस् ३.१)] मन से, मन द्वारा

मनसः [३.४२ सं(मनस् ५.१)] मन की अपेक्षा, मनसे

मनीषिणः [२.५१, १८.३ वि(शशिन् १.३)] बुद्धिमान् लोग, विवेकी पुरुष

मनीषिणाम् [१८.५ सं(राम ६.३)] बुद्धिमान् पुरुषों का, विवेकियों का पंडित लोगों का (में)

मनुः [४.१ सं(गुरु १.१)] मनु (ने)

मनुष्यलोके [१५.२ सं(राम ७.१) (मनुष्याणां लोके)] मनुष्य लोक में

मनुष्याः [३.२३, ४.११ सं(राम १.३)] मनुष्य लोग

मनुष्याणाम् [१.४४, ७.३ सं(राम ६.३)] पुरुषों का, पुरुषों में

मनुष्येषु [४.१८.१८.६९ सं(राम ६.३)] मनुष्यों में

मनोगतान् [२.५५ वि(राम २.३) (मनः गतान्)] मन में आए हुओं को

मनोरथम् [१६.१३ सं(राम २.१)] इच्छा, अभिलाषा (को)

मन्तव्यः [९.३० वि(राम १.१) (√मन् दिवा A + तव्य)] विचारना चाहिए, मानने योग्य

मन्त्रः [९.१६ सं(राम १.१)] मन्त्र

मन्त्रहीनम् [१७.१३ वि(राम २.१) (मन्त्रेण हीनम्)] बिना मन्त्र के

मन्दान् [३.२९ वि(राम २.३)] मन्द बुद्धियों को, मन्द बुद्धि वालों को

मन्मनाः [९.३४, १८.६५ सं(चन्द्रमस् १.१) (मयि मनः यस्य सः)] वह जिसका मन मुझ में है, मुझ में मन लगाने वाला

मन्मयाः [४.१० वि(राम १.३)] मुझ में लीन, तल्लीन, निमग्न

मन्यते [२.१९, ३.२७, ६.२२, १८.३२ (√मन् दिवा A लट् ३.१)] विचारता है, मानता है

मन्यन्ते [७.२४ (√मन् दिवा A लट् ३.३)] विचार करते हैं, मानते हैं, समझते हैं

मन्यसे [२.२६, ११.४, १८.५९ (√मन् दिवा A लट् २.१)] (तू) सोचता है

मन्ये [६:३४, १०.१४ (√मन् दिवा A लट् १.१)] मैं मानता हूं, मेरे विचार में

मन्येत [५.८ (√ मन् दिवा A विधि ३.१)] विचार करना चाहिए

महापाप्मा [३.३७ वि(आत्मन् १.१)] महापापी, महा दुःखदायी, अतिदूषित करने वाला

महाबाहुः [१.१८ सं(गुरु १.१) (महान्तौ बाहू यस्य सः)] वह जिसकी (दो) विशाल भुजाएं (हैं)

महाबाहो [२.२६.६८, ३.२८, ४३, ५.३.६, ६.३५.३८, ७.५, १०.१, ११.२३, १४.५, १८.१.१३ सं(गुरु ८.१) (महान्तौ बाहू यस्य (त्वम्)] अरे (तू) जिसकी (दो) भुजाएं बड़ी बड़ी हैं , हे महाबाहो

महाभूतानि [१३.५ सं(फल १.३) (महान्ति भूतानि)] (पंच) महाभूत–"क्षिति जल पावक गगन समीरा"

महायोगेश्वरः [११.९ सं(राम १.१) (महान् योगेश्वरः)] महान् योगेश्वर

महारथः [१.४, १७ वि(राम १.१) (महान् रथः यस्य सः)] वह जिसका रथ विशाल (है)

महारथाः [१.६, २.३५ सं(राम १.३)] महारथी लोग

महाशंखम् [१.१५ सं(राम २.१)] महान् शंख (को)

महाशनः [३.३७ वि(राम १.१)] वह जो बहुत खाने वाला (है), बड़ा पेटू (है) निगलने वाला (है)

महिमानम् [११.४१ सं(महिमन् २.१)] महिमा को

महीकृते [१.३५ (मह्याः कृते)] पृथ्वी के लिए

महीक्षिताम् [१.२५ (मही क्षियन्ति इति महीक्षितः तेषाम्)] उनका जो पृथ्वी के ऐसे रक्षक हैं, शासकों का

महीपते [१.२१ सं(हरि ८.१) (मह्याः पते)] पृथ्वी के स्वामी, राजा

महीम् [२.३७ सं(नदी २.१)] पृथ्वी को

महेश्वरः [१३.२२ सं(राम १.१)] महेश्वर, महा ईश्वर

महेष्वासाः [१.४ सं(राम १.३) (महान्तः इष्वासाः येषां ते)] वे जिनके धनुष विशाल हैं

मा [२.३, ४७, ११.३४, ४९, १६.५, १८.६६ (अ.)] न, मत

माता [९.१७ सं(मातृ १.१)] माता

मातुलाः [१.३४ सं(राम १.३)] मामा (बहुवचन)

मातुलान् [१.२६ सं(राम २.३)] मामा (बहुत से)

मात्रास्पर्शाः [२ सं(राम १.३) (मात्राणां स्पर्शाः)] पदार्थों के स्पर्श, (संसर्ग, संयोग)

माधव [१.३७ सं(राम .१)] हे माधव

माधवः [१.१४ सं(राम १.१)] माधव

मानवः [३.१७, १८.४६ सं(राम १.१)] मनुष्य

मम सर्व(अस्मद ६.१)] मेरा, मेरे

मया सर्व(अस्मद ३.१)] मुझ से मेरे द्वारा

मयि सर्व(अस्मद् ७.१)] मुझ में

मरणात् [२.३४ सं(फल ५.१)] मृत्यु की अपेक्षा, मरण से

मरीचिः [१०.२१ सं(हरि १.१)] मरीचि, एक मरुत का नाम, वायु देव

मरुतः [११.६,२२ सं(मरुत् १.३)] मरुत (बहुवचन), देवताओं का एक गण, ये ४९ हैं

मरुताम् [१०.२१ सं(मरुत् ६.३)] मरुतों में

मर्त्यलोकम् [९.२१ सं(राम २.१) (मर्त्यानां लोकम्)] मृत्युलोक, मनुष्य लोक

मर्त्येषु [१०.३ सं(राम ७.३)] मनुष्यों में, मृत्यु लोक में

मलेन [३.३८ सं(फल ३.१)] धूल से

महत् [१.४५, ११.२३ वि(महत् नपु. २.१/ १.१)] बड़ा, विशाल

महतः [२.४० वि(महत् नपु. ५.१)] बड़ा, महा, बड़े से

महता [४.२ वि(महत् ३.१)] बहुत, अधिक [से)

महति [१.१४ वि(महत् ७.१)] बड़े (में)

महतीम् [१.३ वि(नदी २.१)] महान् शक्तिशाली, विशाल, बड़ी

महद्ब्रह्म [१४.३ सं(कर्मन १.१) (महत् ब्रह्म)] विशाल (अव्यक्त) प्रकृति, प्रकृति का प्रथम विकार

महद्योनिः [१४.४ सं(मति १.१) (महत् योनि)] विशाल उत्पत्ति स्थान

महर्षयः [१०.२, ६ सं(हरि १.३) (महान्त ऋषयः)] महर्षिजन, बड़े ऋषिलोग

महर्षिसिद्धसंघाः [११.२१ सं(राम १.३) (महर्षीणां च सिद्धानां च संघाः)] महर्षियों के, और सिद्धों के, समुदाय

महर्षीणाम् [१०.२, २५ सं(हरि ६.३)] महर्षियों का, महर्षियों में

महात्मन् [११.२०, ३७ सं(अत्त्मन् ८.१)] हे महात्मा, हे महापुरुष

महात्मनः [११.१२, १८.७४ सं(आत्मन् ६.१)] महात्मा के, बड़ी आत्मा वाले के

महात्मा [७.१९.११.५० सं(आत्मन् १.१) (महान् आत्मा यस्य सः)] वह जिसकी आत्मा महान् है, महात्मा

महात्मानः [८.१५, ९.१३ वि(आत्मन् १.३)] महात्मा लोग

महान् [९.६, १८.७७ सं(महत् १.१)] महान् महा

महानुभावान् [२.५ सं(राम २.३) (महान् अनुभावो येषां तान्)] उनको जिनका वैभव महान् है, महानुभावों को

महापाप्मा [३.३७ वि(आत्मन् १.१)] महापापी, महा दुःखदायी, अतिदूषित करने वाला

महाबाहुः [१.१८ सं(गुरु १.१) (महान्तौ बाहू यस्य सः)] वह जिसकी (दो) विशाल भुजाएं (हैं)

महाबाहो [२.२६.६८, ३.२८, ४३, ५.३.६, ६.३५.३८, ७.५, १०.१, ११.२३, १४.५, १८.१.१३ सं(गुरु ८.१) (महान्तौ बाहू यस्य (त्वम्)] अरे (तू) जिसकी (दो) भुजाएं बड़ी बड़ी हैं , हे महाबाहो

महाभूतानि [१३.५ सं(फल १.३) (महान्ति भूतानि)] (पंच) महाभूत–"क्षिति जल पावक गगन समीरा"

महायोगेश्वरः [११.९ सं(राम १.१) (महान् योगेश्वरः)] महान् योगेश्वर

महारथः [१.४, १७ वि(राम १.१) (महान् रथः यस्य सः)] वह जिसका रथ विशाल (है)

महारथाः [१.६, २.३५ सं(राम १.३)] महारथी लोग

महाशंखम् [१.१५ सं(राम २.१)] महान् शंख (को)

महाशनः [३.३७ वि(राम १.१)] वह जो बहुत खाने वाला (है), बड़ा पेटू (है) निगलने वाला (है)

महिमानम् [११.४१ सं(महिमन् २.१)] महिमा को

महीकृते [१.३५ (मह्याः कृते)] पृथ्वी के लिए

महीक्षिताम् [१.२५ (मही क्षियन्ति इति महीक्षितः तेषाम्)] उनका जो पृथ्वी के ऐसे रक्षक हैं, शासकों का

महीपते [१.२१ सं(हरि ८.१) (मह्याः पते)] पृथ्वी के स्वामी, राजा

महीम् [२.३७ सं(नदी २.१)] पृथ्वी को

महेश्वरः [१३.२२ सं(राम १.१)] महेश्वर, महा ईश्वर

महेष्वासाः [१.४ सं(राम १.३) (महान्तः इष्वासाः येषां ते)] वे जिनके धनुष विशाल हैं

मा [२.३, ४७, ११.३४, ४९, १६.५, १८.६६ (अ.)] न, मत

माता [९.१७ सं(मातृ १.१)] माता

मातुलाः [१.३४ सं(राम १.३)] मामा (बहुवचन)

मातुलान् [१.२६ सं(राम २.३)] मामा (बहुत से)

मात्रास्पर्शाः [२ सं(राम १.३) (मात्राणां स्पर्शाः)] पदार्थों के स्पर्श, (संसर्ग, संयोग)

माधव [१.३७ सं(राम .१)] हे माधव

माधवः [१.१४ सं(राम १.१)] माधव

मानवः [३.१७, १८.४६ सं(राम १.१)] मनुष्य

मानवाः [३.३१ सं(राम १.३)] मनुष्य (बहुवचन)

मानसम् [१७.१६ वि(फल १.१)] मानसिक, मन का

मानसाः [१०.६] वि(राम १.३ मानसिक, मन से

मानापमानयोः [६.७, १२.१८, १४.२५ सं(राम ७.२) (माने च अपमाने च)] मान में, अपमान में; ख्याति में कुख्याति में

मानुषम् [११.५१ वि(फल २.१)] मानुष को, मानवीय

मानुषीम् [९.११ वि(नदी २.१)] मानवीय

मानुषे [४.१२ वि(राम ७.१)] मनुष्यों के, में

माम् [सर्व(अस्मद् २.१)] मुझे, मुझ को

मामकम् [१५.१२ सार्व. वि(राम २.१)] मेरा

मामकाः [१.१ सार्व. वि(राम १.३)] मेरे

मामिकाम् [९.७ सार्व.वि(विद्या २.१)] मेरी

मायया [७.१५, १८.६१ सं(विद्या ३.१)] माया से, माया द्वारा

माया [७.१४ सं(विद्या १.१)] माया

मायाम् [७.१४ सं(विद्या २.१)] माया को

मारुतः [२.२३ सं(राम १.१)] पवन, वायु

मार्गशीर्षः [१०.३५ सं(राम १.१)] मार्गशीर्ष, अगहन मास

मार्दवम् [१६.२ सं(फल १.१)] कोमलता, मृदुता

मासानाम् [१०.३५ सं(राम ६.३)] महीनों में

महात्म्यम् [११.२ सं(फल २.१)] बड़प्पन, महत्ता, महिमा

मित्रद्रोहे [१.३८ सं(राम ७.१) (मित्राणां द्रोहे)] मित्रों की शत्रुता में, मित्र द्रोह (वैर) में

मित्रारिपक्षयोः [१४.२५ सं(राम ६.२) (मित्रस्य च अरेः च पक्षयोः)] मित्र के, और शत्रु के पक्षों में, मित्र और शत्रु दल में

मित्रे [१२.१८ सं(फल ७.१)] मित्र में

मिथ्या [१८.५९ अ.(क्रिवि.)] व्यर्थ

मिथ्याचारः [३.६ सं(राम १.१) (मिथ्या आचारः यस्य सः)] वह जिसका आचारण झूठा (कृत्रिम) हैं, मिथ्यावादी, ढोंगी

मिश्रम् [१८.१२ वि(फल १.१)] मिश्र मिश्रित, मिले जुले

मुक्तः [५.२८, १२.१५, १८.७१ वि(राम १.१)] मुक्त, उन्मुक्त, अबाध (हुआ)

मुक्तम् [१८.४० सं फल १.१)] (√ मुच् तुदा P + क्तः) मुक्त हुआ, स्वतन्त्र

मुक्तसंगः [३.९, १८.२६ सं(राम १.१) (मुक्तः संगः येन सः)] वह जो आसक्ति से मुक्त है, आसक्ति रहित

मुक्तस्य [४.२३ वि(राम ६.१)] जो मुक्त है उसका, मुक्तजन का

मुक्त्वा [८.५ (अ.) (√ मुच् तुदा A/P + क्त्वाच्)] त्याग करते हुए

मुखम् [१.२९ सं(फल १.१)] मुख

मुखानि [११.२५ सं(फल १.१)] मुख (बहुवचन)

मुखे [४.३२ सं(फल ७.१)] सम्मुख

मुख्यम् [१०.२४ वि(राम २.१)] मुख्य

मुच्यन्ते [३.१३, ३१ (√ मुच् तुदा कर्म A लट् ३.३)] मुक्त होते है

मुनयः [१४.१ सं(हरि १.३)] मुनि लोग

मुनि [२.५६, ५.६, २८, १०.२६ सं(हरि १.१)] मुनि

मुनीनाम् [१०.३७ सं(हरि ६.३)] मुनियों का, में

मुनेः [२.६९, ६.३ सं(हरि ६.१)] मुनि की

मुमुक्षुभिः [४.१५ वि(गुरु ३.३)] मोक्ष के इच्छुकों (द्वारा)

मुहुः [१८.७६ (अ.)] पुनः, फिर-फिर, बार-बार

मुह्यति [२.१३; ८.२७ (√ मुह् दिवा P लट् ३.१)] शोक मनाता है, मोहित होता है, व्याकुल होता है

मुह्यन्ति [५.१५ (√ मुह् दिवा. P लट् ३.३)] (वे) धोखा खाजाते हैं, मोहित हो जाते हैं

मूढः [७.२५ सं(राम १.१)] मूर्ख, धोखे में आया हुआ

मूढग्राहेण [१७.१९ सं(राम १.३) (मूढेन ग्राहेण)] मूर्खता द्वारा (कस कर) पकड़े हुए, दुराग्रह से, हठपूर्वक

मूढयोनिषु [१४.१५ सं(मति ७.३) मूढानां योनिषु)] मूर्खों की योनियों में, भ्रम में आए हुओं की योनियों में

मूढाः [७.१५, ९.११, १६.२० वि(राम १.३)] मूर्ख, धोखे में आए हुए, मोह ग्रस्त

मूर्तयः [१४.४ सं(मति १.३)] मूर्तियां आकृतियां

मूर्ध्नि [८.१२ सं(महिमन् ७.१)] मस्तक में

मूलानि [१५.२ सं(फल १.३)] जड़ें

मृगाणाम् [१०.३० सं(राम ६.३)] वन जीवियों में, पशुओं में

मृगेन्द्रः [१०.३० सं(राम १.१) (मृगाणाम् इन्द्रः)] वनजीवियों का राजा, सिंह

मृतम् [२.२६ वि.(राम २.१) (√ मृ तुदा A + क्त)] मरने वाला, मृतक

मृतस्य [२.२७ वि(राम ६.१)] (√ मृ तुदा A + क्त) मृत्यु हुई है जिसकी, (उसका), मरे हुए का

मृत्युः [२.२७, ९.१९, १०.३४ सं(गुरु १.१)] मृत्यु

मृत्युम् [१३.२५ सं(गुरु २.१)] मृत्यु को

मृत्युसंसारवर्त्मनि [९.३ सं(कर्मन् ७.१) (मृत्योः संसारस्य च वर्त्मनि)] मृत्युमय संसार के मार्ग में

मृत्युसंसारसागरात् [१२.७ सं(राम ५.१) (मृत्योः च संसारस्य च सागरात्)] मृत्यु के संसार सागर, (से) मृत्युमय संसार सागर से

मे [सर्व(अस्मद् ४/६.१)] मेरा, मेरे, मुझे, मुझको, मुझ से

मेधा [१०.३४ सं(विद्या १.१)] बुद्धि

मेधावी [१८.१० वि(शशिन् १.१)] बुद्धिमान, धारणा बुद्धि जिसकी तीव्र है

मेरुः [१०.२३ सं(गुरु १.१)] मेरु

मैत्रः [१२.१३ वि.(राम १.१)] हितैषी स्नेही

मोक्षकांक्षिभिः [१७.२५ वि(शशिन् ३.३) (मोक्षस्य कांक्षिभिः)] मोक्ष की इच्छा वालों द्वारा

मोक्षपरायणः [५.२८ वि(राम १.१) (मोक्षः परायणं यस्य सः)] वह जिसका ध्येय मुक्ति है, जो मोक्ष के लिए दत्तचित्त है

मोक्षम् [१८.३० सं(राम २.१)] मोक्ष

मोक्षयिष्यामि [१८.६६ (नाम √मोक्ष् चुरा P लृट् १.१] (मैं) मुक्त करूंगा

मोक्ष्यसे [४.१६, ९.१, २८ (√मुच् तुदा A लृट २.१)] (तू) मुक्त हो जाएगा

मोघकर्माणः [९.१२ सं(शर्मन् १.३) (मोघं कर्माणि येषां ते)] वे जिनके कर्म व्यर्थ (निष्फल) हैं

मोघज्ञानाः [९.१२ वि.(राम १.३) (मोघं ज्ञानं येषां ते)] वे जिनका ज्ञान निरर्थक है

मोघम् [३.१६ (अ.)] व्यर्थ, बेकार

मोघाशाः [९.१२ वि(राम १.३) (मोघा आशाः येषां ते)] वे जिनकी आशाएं व्यर्थ (हैं)

मोदिष्ये [१६.१५ (√मुद भ्वा A लृट् १.१)] (मैं) आनन्द मनाऊंगा, आमोद प्रमोद मनाऊंगा रंगरलियां मनाऊंगा

मोहः [११.१, १४.१३, १८.७३ सं(राम १.१)] भ्रम, मोह

मोहकलिलम् [२.५२ सं(फल २.१)] मोह की संभ्रान्ति, मोह का गँदलापन, मोह की दलदल

मोहजालसमावृताः [१६.१६ वि(राम १.३) (मोहस्य जालेन समावृताः)] मोह के जाल में लिपटे हुए, मोह जाल में फंसे हुए

मोहनम् [१४.८, १८.३९ वि(फल १.१) (२.१)] मोहित करने वाला, मोह में डालने वाला

मोहयसि [३.२ (√मुह् णिच् लट् २.१)] (तू) भ्रम में डालता है, शंकाशील बनाता है

मोहम् [४.३५; १४.२२ सं(राम २.१)] मोह, भ्रम, शंकाशील होना

मोहात् [१६.१०, १८.७, २५,६० सं(राम ५.१)] मोह से, भ्रम से

मोहितम् [७.१३ वि(फल १.१)] मोह ग्रस्त, धोखे में आया हुआ, धोखा खाया हुआ

मोहिताः [४.१६ वि(राम १.३) (√मुह् दिवा P क्त)] चकराये हुए अर्थात् चकरा जाते हैं, हतबुद्धि हो जाते हैं, घबरा जाते है

मोहिनीम् [९.१२ वि(नदी २.१)] कपट पूर्ण, मोह में रखने वाली

मौनम् [१०.३८, १७.१६ सं(फल १.१)] मौन, निःशब्दता

मौनी [१२.१९ सं(शशिन् १.१)] मूक, मौन चुप रहने वाला

म्रियते [२.२० (√मृ तुदा A लट् ३.१)] मरता है

य

यः [सर्व(यत् पु १.१)] वह, जो,

यक्षरक्षसाम् [१०.२३ सं(मनस् ६.३) (यक्षाणां च रक्षसां च)] यक्षों में और राक्षसों में

यक्षरक्षांसि [१७.४ सं(मनस् २.३) (यक्षान् च रक्षांसि च)] यक्षों और राक्षसों को

यक्ष्ये [१६.१५ (√यज् A भ्वा. लृट् १.१)] (मैं) यज्ञ करूंगा

यच्छ्रद्धः [१७.३ वि(राम १.१) (या श्रद्धा यस्य सः)] वह जिसकी जो भी श्रद्धा हो, जैसी श्रद्धावाला

यजन्तः [९.१५ वि(ध्यायत् १.३) (√यज् भ्वा A/P शतृ)] यज्ञ करते हुए

यजन्ति [९.२३ (√यज् भ्वा P लट् ३.३)] पूजा करते है

यजन्ते [४.१२, ९.२३, १६.१७, १७.१, ४ (√ यज् भ्वा A लट् ३.३)] (वे) यज्ञ करते हैं, बलिदान देते हैं, उपासना करते है

यजुः [९.१७ सं(धनुस् १.१)] यजुर्वेद

यज्ञः [३.१४, ९.१६, १६.१, १७.७, ११; १८.५ सं(राम १.१)] यज्ञ, स्मार्त यज्ञ (जो पुराणों की विधि से किया जाता है)

यज्ञक्षपितकल्मषाः [४.३० वि.(राम १.३) (यज्ञेन क्षपितानि कल्मषाणि येषां ते)] वे जिनके पाप, यज्ञ द्वारा दूर हो गए हैं

यज्ञतपःक्रियाः [१७.२५ सं(विद्या १.३)] यज्ञ और तप की क्रियाएं

यज्ञतपसाम् [५.२९ सं(मनस् ६.३) (यज्ञानां च तपसां च)] यज्ञों का और तपों का

यज्ञदानतपःकर्म [१८.३, ५ सं(कर्मन् १.१)] यज्ञ, दान और तप के कर्म

यज्ञदानतपःक्रियाः [१७.२४ सं(विद्या १.३) (यज्ञस्य च दानस्य च तपसः च क्रियाः)] यज्ञ की और दान की और तप की क्रियाएं

यज्ञभाविताः [३.१२ सं(राम (१.३) (यज्ञेन भाविताः)] यज्ञ से पोषित हुए

यज्ञम् [४.२५, १७.१२.१३ सं(राम २.१)] यज्ञ को, (४.२५ के उत्तरार्ध में शंकर मतानुसार 'यज्ञ' का अर्थ आत्मा है)

यज्ञविदः [४.३० वि(तत्त्वविद् १.३)] यज्ञ के जानने वाले

यज्ञशिष्टामृतभुजः [४.३१ सं(ऋत्विज् १.३) (यज्ञस्य शिष्टम् अमृत भुञ्जन्ति ये ते)] वे जो खाते है, यज्ञ का बचा हुआ अमृत जानकर

यज्ञशिष्टाशिनः [३.१३ वि(शशिन् १.३) (यज्ञस्य शिष्टम् अश्नन्ति ते)] वे (जो) खाते हैं यज्ञ के बचे हुए को

यज्ञाः [४.३२, १७.२३ सं(राम १.३)] यज्ञ (बहुवचन)

यज्ञात् [३.१४, ४.३३ सं(राम ५.१)] यज्ञ से

यज्ञानाम् [१०.२५ सं(राम ६.३)] यज्ञों में, यज्ञों का

यज्ञाय [४.२३ सं(राम ४.१)] यज्ञ के लिए

यज्ञार्थात् [३.९ सं(राम ५.१) (यज्ञस्य अर्थात्)] यज्ञ के लिए, यज्ञ के कारण

यज्ञे [३.१५, १७.२७ सं(राम ७.१)] यज्ञ में

यज्ञेन [४.२५ सं(राम ३.१)] यज्ञ से, यज्ञ द्वारा

यज्ञेषु [८.२८ सं(राम ७.३)] यज्ञों में

यज्ञैः [९.२० सं(राम ३.३)] यज्ञों से, यज्ञों द्वारा

यत् [सर्व(यत् नपु १.१)] (तब से) अबतक, जिससे, वह, जो, जिसे

यतः [६.२६, १३.३, १५.४, १८.४६ १.(अ.) २.सर्व(यत् पु १.१)] जहां से, जिससे

यतचित्तस्य [६.१९ वि(राम ६.१) (यतं चित्तं यस्य तस्य)] उसका जिसका मन नियन्त्रित है (स्थिर है)

यतचित्तात्मा [४.२१, ६.१० वि(आत्मन् १.१) (यतौ (चित्तात्मानौ) चित्तं च आत्माच यस्य सः)] वह जिसका मन और आत्मा नियन्त्रित है, वह जिसका मन अपने वश में है

यतचित्तेन्द्रियक्रियः [६.१२ वि(राम १.१) (यताः चित्तस्य च इन्द्रियाणां च क्रियाः यस्य सः)] वह जिसके मन की और इन्द्रियों की क्रियाएं नियन्त्रित हैं (वश में हैं)

यतचेतसाम् [५.२६ वि(चन्द्रमस् ६.३) (यतं चेतः येषां तेषाम्)] जिनका मन नियन्त्रित है, उनका, जिन्होंने अपना मन वश में किया है

यततः [२.६० सं(ध्यायत् ६.१) (√ यत् भ्वा P + शतृ)] प्रयत्न करने वाले की

यतता [६.३६ सं(ध्यायत् ३.१) (√ यत् + शतृ)] यत्नवान् से, प्रयत्न करने वाले के द्वारा

यतताम् [७.३ सं(राम ६.३) (√ यत् + शतृ)] प्रयत्न करने वालों में

यतति [७.३ (√ यत् भ्वा P लट् ३.१)] प्रयत्न करता है

यतते [६.४३ (√ यत् भ्वा A लट् ३.१)] प्रयत्न करता है

यतन्तः [९.१४, १५.११ वि(ध्यायत् १.३) (√ यत् भ्वा P + शतृ) (यतमानाः)] प्रयत्न करते हैं, करते हुए, करने वाले

यतन्ति [७.२९ (√ यत् भ्वा P लट् ३.३)] प्रयत्न करते हैं

यतमानः [६.४५ वि(राम १.१)] यत्न करता हुआ, प्रयास करता हुआ

यतयः [४.२८, ८.११ सं(हरि १.३)] यति लोग, संयमी जन, एकान्तवासी

यतवाक्कायमानसः [१८.५२ वि(राम १.१) (यतानि वाक् च कायः य मानसं च यस्य सः)] वह जिसका वाक्य (वाणी) शरीर और मन नियन्त्रित है, वाणी शरीर और मन को वश में रखने वाला

यतात्मवान् [१२.११ वि(धीमत् १.१) (यतः आत्मा यस्य सः)] वह जिसकी आत्मा नियन्त्रण में हैं, वह जिसने अपने को वश में किया है

यतात्मा [१२.१४ वि(आत्मन् १.१)] जिसने अपने को वश में किया है

यतात्मानः [५.२५ वि(आत्मन् १.३) (यतः आत्मा येषां ते)] वे जिनकी आत्मा नियन्त्रित है, वे जिन्होंने ने अपने को वश में कर लिया है

यतीनाम् [५.२६ सं(हरि ६.३)] यतियों का

यतेन्द्रियमनोबुद्धिः [५.२८ वि.(हरि १.१) (यताः इन्द्रियमनोबुद्धयः (यतानि इन्द्रियाणि च मनः च बुद्धिः च यस्य सः)] वह जिसकी इन्द्रियाँ और मन और बुद्धि नियन्त्रित (वश में) हैं, मन बुद्धि और इन्द्रियों को वश में करने वाला

यत्प्रभावः [१३.३ वि(राम १.१) (यः प्रभावः यस्य सः)] वह जिसकी जैसी शक्ति (प्रभाव) है, कैसे प्रभाव वाला

यत्र [(अ.)] जहां, जिस स्थान पर

यथा [(अ.)] जैसा, जिस प्रकार, जिस रीति से

यथाभागम् [१.११ (अव्य. समास)] विभाजन के अनुसार, अपने-अपने स्थान पर

यथावत् [१८.१९ (अ.)]. तथ्यतः, ठीक ठीक, जैसे (बताए गए) हैं वैसे

यदा [(अ.)] जब

यदि [१.३८.४६, २.६, ३.२३, ६.३२, १.४.१२ (अ.)] यदि, अगर

यदृच्छया [२.३२ सं(विद्या ३.१)] संयोग से, दैव योग से

यदृच्छालाभसंतुष्टः [४.२२ वि(राम १.१) (यदृच्छया लाभेन संतुष्टः)] संयोग से हुए लाभ में संतुष्ट, दैव योग से जो प्राप्त हो उससे ही संतुष्ट

यद्वत् [२.७० (अ.) (यत् + वत्)] जैसे, जिस प्रकार

यद्विकारि [१३.३ वि(वारि १.१) (यः विकारः यस्य तत्)] वह जिसके कौन से रूपांतर (हैं) कैसे कैसे विकार वाला

यन्त्रारूढानि [१८.६१ वि(फल १.३) (यन्त्रे आरूढानि)] यन्त्रपर बैठे हुए, यन्त्र (चाक), पर चढ़े हुए

यम् [२.१५, ७०, ६.२, २२, ८.६, २१ सर्व(यत् पु २.१)] जिसको, जिसे, जिसमें, जिस

यमः [१०.२९, ११.३९ सं(राम १.१)] यम

यया [२.३९, ७.५, १८.३१, ३३, ३४.३५ सर्व(यत् स्त्री ३.१)] जिस से, जिसके साथ, जिसके द्वारा

यशः [१०.५, ११.३३ सं(मनस् १.१)] यश, कीर्ति, ख्याति

यष्टव्यम् [१७.११ वि (फल १.१) (√ यज् भ्वा A/P + तव्य)] अर्पण करना चाहिए, यज्ञ करना चाहिए

यस्मात् [१२.१५, १५.१८ सर्व(यत् पु ५.१)] जिस से, क्यों कि

यस्मिन [६.२२, १५.४ सर्व(यत् पु./नपु. ७.१)] जिसमें

यस्य [२.६१, ६८, ४.१९, ७.२२, १५.१, १८.१७ सर्व(यत् पु ६.१)] जिसका, जिसके

यस्याम् [२.६९ सर्व(यत् स्त्री ७.१)] जिसमें

या [२.६९, १८.३०, ३२, ५० सर्व(यत् स्त्री १.१)] जो

याः [१४.४ सर्व(यत् स्त्री १.३)] जो जितनी

यातयामम् [१७.१० वि(फल २.१) (यातः यामः यस्य तत्)] वह जिसे एक पहर (तीन घन्टे का समय) चला गया है, पहर तक पड़ा हुआ, बासी, अनपका, मन्दपका

याति [६.४५, ८.५, ८, १३, २६, १३.२८, १४.१४, १६.२२ (√ या अदा P लट् ३.१)] (वह) जाता है

यादव [११.४१ सं(राम ८.१)] हे यादव

यादसाम् [१०.२९ सं(चन्द्रमस् ६.३)] जल जन्तुओं में

यादृक् [१३.३ (सार्व.१.३)] जिस सा, जिस प्रकार का

यान् [२.६ सर्व(यत् पु २.३)] जिन्हें

यान्ति [३.३३, ४.३१, ७.२३, २७, ८.२३, ९.७.२५, ३२, १३.३४, १६.२० (√ या अदा P लट् ३.३)] (वे) जाते हैं, गमन करते है

याभिः [१०.१६ सर्व(यत् स्त्री ३.३)] जिन से

याम् [२.४२, ७.२१ सर्व(यत् स्त्री २.१)] जिसे, जो, कौन

यावत् [१.२२, १३.२६ (अ.)] जबतक, जिससे, जो कुछ

यावान् [२.४६, १८.५५ (अ.)] जितना,

यास्यसि [२.३५, ४.३५ (√ या अदा P लृट् २.१)] तू जाएगा, प्राप्त होगा

युक्तः [२.३९.६१.३.२६, ४.१८, ५.८.१२, २३, ६.८.१४.१८, ७.२२, ८.१०, १८.५१ वि(राम १.१)] जुड़ा हुआ, युक्त, सन्तुलित योगी

युक्तचेतसः [७.३० वि(चन्द्रमस् १.३) (युक्तं चेतः येषां ते)] वे जिनका मन सन्तुलित है, सुमेलित है, मुझ में लीन

युक्तचेष्टस्य [६.१७ वि(राम ६.१) (युक्ता चेष्टा यस्य तस्य)] उसका जिसका व्यवहार (आचरण) नियन्त्रित है

युक्ततमः [६.४७ वि(राम १.१)] उत्तम योगी

युक्ततमाः [१२.२ वि(राम १.३)] योग में उत्तम (लोग)

युक्तस्वप्नावबोधस्य [६.१७ वि(राम ६.१) (युक्तौ स्वप्नाववोधौ (स्वप्नः च अवबोधः च) यस्य तस्य)] उसका जिसकी निद्रा और जागरण वश में है, जिसका सोना जागना नियमित है

युक्तात्मा [७.१८ (युक्तः आत्मा यस्य सः)] वह जिसकी आत्मा सन्तुलित है, लीन है

युक्ताहारविहारस्य [६.१७ वि(राम ६.१) (युक्तौ आहारविहारौ (आहारः च विहारः च) यस्य तस्य)] उसका जिसका आहार विहार नियन्त्रित है, जिसका खाना पीना, घूमना फिरना वश में है

युक्ते [१.१४ वि(राम ७.१) (√ युज् रुधा. P + क्त] जुते हुए (में)

युक्तैः [१७.१७ वि(राम ३.३)] संतुलित (चित्त) से, समभावी (पुरुषों) द्वारा, लीन हुओं (से)

युक्त्वा [९.३४ (अ.) (√ युज् चुरा P क्त्वाच्)] जुड़कर, लीन होकर, संतुलित होकर

युगपत् [११.१२ (अ.)] एक साथ, एक ही समय में

युगसहस्रान्ताम् [८.१७ वि(विद्या २.१) (युगानां सहस्रे अन्तः यस्या ताम्)] वह जिसका अन्त सहस्र युग का होता है, सहस्र युगकी अवधिवाली

युगे [४.८ सं(राम ७.१)] युग में, काल में

युज्यते [१०.७, १७.२६ (√ युज् रुधा + कर्मणिय् A लट् ३.१)] संतुलित होता है, लीन होता है, प्रयोग में आता है

युज्यस्व [२.३८.५० (√ युज् रुधा A लोट् २.१)] (तू) लगजा, तत्पर होजा, प्रयत्न कर, प्रवृत्त हो

युञ्जतः [६.१९ वि(ध्यायत् ६.१)] अभ्यास (साधन) करते हुए (का)

युञ्जन् [६.१५.२८, ७.१ वि.(ध्यायत् १.१) (√ युज् रुधा A/P शतृ)] साधता हुआ, योगाभ्यास करता हुआ, जोड़ता हुआ, अनुसंधान करता हुआ

युञ्जीत [६.१० (√ युज् रुधा P विधि ३.१)] (वह) संतुलित करे , के साथ जोड़े , स्थिर करे

युञ्ज्यात् [६.१२ (√ युज् रुधा P विधि३.१)] (उसे) साधना करने दो, (उसे) अभ्यास करना चाहिए

युद्धम् [२.३२ सं(फल २.१)] युद्ध को

युद्धविशारदाः [१.९ सं(राम १.३) (युद्धे विशारदाः)] युद्ध में कुशल

युद्धात् [२.३१ (सं(फल ५.१)] युद्ध की अपेक्षा, युद्ध से

युद्धाय [२.३७, ३८ सं(फल ४.१)] युद्ध के लिए

युद्धे [१.२३, ३३, १८.४३ सं(फल ७.१)] युद्ध में

युधामन्युः [१.६ सं(गुरु १.१)] युधामन्यु

युधि [१.४ सं(फल ७.१)] युद्ध में

युधिष्ठिरः [१.१६ सं(राम १.१)] युधिष्ठिर

युध्य [८.७ (√ युध् दिवा P लोट् २.१)] युद्ध कर (तू)

युध्यस्व [२.१८, ३.३०, ११.३४ (√ युध् दिवा A लोट् २.१)] (तू) युद्ध कर

युयुत्सवः [१.१ वि(गुरु १.३)] लड़ने की इच्छा वाले

युयुत्सुम् [१.२८ सं(गुरु २.१) (√ युध् + सन् + उ)] लड़ने की इच्छा वाले (को)

युयुधानः [१.४ सं(राम १.१)] युयुधान, एक यादव जो महाभारत के युद्ध में पाण्डवों की ओर से लड़ा था

ये [सर्व(यत् पु १.३)] कौन, जो, चाहे जो, जो कोई

येन [२.१७, ३.२, ४.३५, ८.२२; १०.१०; १८.२० सर्व(यत् पु./नपु ३.१)] जिससे, जिसके द्वारा

येनकेनचित् [१२.१९ अनि. सर्व(किम् ३.१)] कुछ भी से, जिस किसी से भी, जो कुछ भी हो उसी से

येषाम् [१.३३, २.३५, ५.१६, १९; ८.२८; १०.६ सर्व(यत् पु ६.३)] जिनके, जिनमें

योक्तव्यः [६.२३ वि.(राम १.१) (√युज् रुधा P + णिच् + तव्य)] अभ्यास करना चाहिए, साधन करना चाहिए

योगः [२.४८.५०, ४.२, ३, ६.१६, १७.२३.३३.३६ सं(राम १.१)] योग, ईश्वर के साथ जुड़ना। १. गीता में योग की परिभाषा के लिए देखिए श्लोक २.४८ और २.५०, "समत्वं योग उच्यते" और "योगः कर्मसु कौशलम्," । श्लोक ५.४ में योग का अर्थ है "कर्म योग, और अध्याय छः में बतलाया है "योग" कैसे प्राप्त किया जा सकता है । २ गीता के हर अध्याय के शीर्षक में "योग" शब्द आता है । यहां इसका अर्थ साधारणतया "विवरण" या "प्रसंग" जानना चाहिए

योगक्षेमम् [९.२२ सं(राम २.१) (फल २.१)] सुरक्षा, अभय, निश्चिन्तता, सांसारिक नित्य निर्वाह

योगधारणाम् [८.१२ सं(विद्या ६.३) (योगस्य धारणाम्)] योग की एकाग्रता को, केन्द्रीकरण को

योगबलेन [८.१० सं(फल ३.१) (योगस्य बलेन)] योग के बल से, योग के सामर्थ्य से

योगभ्रष्टः [६.४१ वि(राम १.१) (योगात् भ्रष्टः)] योग से भ्रष्ट (गिरा हुआ) योग से विचलित

योगम् [२.५३, ४.१, ४२, ५.१, ५, ६.२, ३; १२, १९, ७.१, ९.५, १०.७, १८; ११.८, १८.७५ सं(राम २.१)] योग (को)

योगमायासमावृतः [७.२५ (योगमायया समावृतः)] योग माया से ढका हुआ

योगयज्ञाः [४.२८ सं(राम १.३) (योगः यज्ञः येषां ते)] वे जिनका यज्ञ योग है, योग रूपी यज्ञ करने वाले

योगयुक्तः [५.६, ७, ८.२७ वि(राम १.१) (योगेन युक्तः)] योग से युक्त, योग सहित, योग में रमा हुआ

योगयुक्तात्मा [६.२९ वि(आत्मन् १.१) (योगेन युक्तः आत्मा यस्य सः)] जिसकी आत्मा योग से (युक्त है) संतुलित है; योगी

योगवित्तमाः [१२.१ वि(राम १.३)] योग के उत्तम ज्ञानी, अधिक योग जानने वाले

योगसंज्ञितम् [६.२३ वि.(राम २.१)] योग नाम की, योग नामक

योगसंन्यस्तकर्माणम् [४.४१ वि(आत्मन् २.१) (योगेन संन्यस्तं कर्म येन तम्)] उसको जिसने योग द्वारा कर्म त्याग दिया है

योगसंसिद्धिः [४.३८ वि(राम १.१) (योगे संसिद्धः)] योग में प्राप्त की गई सिद्धि, पूर्णता

योगसंसिद्धिम् [६.३७ सं(मति २.१) (योगस्य संसिद्धिम्)] योग की सिद्धि, (पूर्णता) को

योगसेवया [६.२० सं(विद्या ३.१)] योग की सेवा से

योगस्थः [२.४८ वि(राम १.१)] योगस्थ, योग में स्थिर हुआ

योगस्य [६.४४ सं(राम ६.१)] योग का

योगात् [६.३७ सं(राम ५.१)] योग से

योगाय [२.५० सं(राम ४.१)] योग के लिए

योगारूढः [६.४ सं(राम १.१) (योगम् आरूढः)] योग में आरूढ़ (स्थिर, दृढ़)

योगारूढस्य [६.३ वि(राम ६.१) (योगम् आरूढस्य)] जिसने योग साध लिया है (उसका), जो योग में स्थिर है, दृढ़ है, (उसका),

योगिन् [१०.१७ सं(शशिन् ८.१)] हे योगिन्

योगिनः [४.२५, ५.११ ६.१९, ८.१४; २३, १५.११ सं(शशिन् १.३/६.१)] योगी (बहुवचन), योगी का (से, को)

योगिनम् [६.२७ सं(शशिन् २.१)] योगी को

योगिनाम् [३.३, ६.४२, ४७ सं(शशिन् ६.३)] योगियों का

योगी [५.२४ ६.१.२.८.१०.१५.२८.३१.३२.४५.४६, ८.२५.२७.२८, १२.१४ सं(शशिन् १.१)] योगी

योगे [२.३९ सं(राम ७.१)] योग में

योगेन [१०.७, १२.६, १३.२४, १८.३३ सं(राम ३.१)] योग द्वारा

योगेश्वर [११.४ सं(राम ८.१) (योगस्य ईश्वर)] हे योगेश्वर

योगेश्वरः [१८.७८ सं(राम १.१)] योगेश्वर

योगेश्वरात् [१८.७५ सं(राम ५.१) (योगस्य ईश्वरात्)] योग के स्वामी से, योग के ईश्वर से

योगैः [५.५ सं(राम ३.३)] योगियों द्वारा

योत्स्यमानान् [१.२३ वि(राम २.३) (√ युध + सन् + शानच्)] इन युद्ध करने वालों (को)

योत्स्ये [२.९, १८.५९ (√ युध् दिवा A + सन् लट् १.१)] (मैं) युद्ध करूंगा

योद्धव्यम् [१.२२ वि(फल १.१) (युध् + त्व्य)] युद्ध करना ही है, लड़ना है, युद्ध करने योग्य

योद्धुकामान् [१.२२ वि(राम २.३) (योद्धुं कामो येषां तान्)] उन्हें जिनकी युद्ध करने की इच्छा है

योधमुख्यैः [११.२६ वि(राम ३.३) (योधानां मुख्यैः)] मुख्य योद्धाओं सहित

योधवीरान् [११.३४ सं(राम २.३) (योधानां वीरान्)] वीर योद्धाओं को

योधाः [११.३२ सं(राम १.३)] योद्धा लोग

योनिः [१४.३ सं(मति १.१)] योनि, गर्भ, कोई भी उद्‌भव स्थान, कारण

योनिम् [१६.२० सं(मति २.१)] योनि को

योनिषु [१६.१९ सं(मति ७.३)] योनि में, गर्भ में

यौवनम् [२.१३ सं(फल १.१)] यौवन, युवावस्था

र

रक्षांसि [११.३६ सं(मनस् १.३)] राक्षस गण

रजः [१४.५, ७, ९.१०, १७.१ सं(मनस् १.१)] रजोगुण, रजस्, चंचलता

रजसः [१४.१६, १७ सं(मनस् ६.१)] रजो गुण (को), रजोगुण से

रजसि [१४.१२, १५ सं(मनस् ७.१)] रजो गुण में, चंचलता में

रजोगुणसमुद्‌भवः [३.३७ वि(राम १.१) (रजसः गुणात् समुद्‌भवः यस्य सः)] रजोगुण से उत्पन्न, वह जिसका जन्म रजो गुण से (है)

रणसमुद्यमे [१.२२ सं(राम ७.१) (रणस्य समुद्यमे)] रण, संग्राम में

रणात् [२.३५ सं(फल ५.१)] रण से, युद्ध से

रणे [१.४६, ११.३४ सं(राम ७.१)] युद्ध में

रताः [५.२५, १२.४ वि(राम १.३)] प्रसन्न हुए हुए, आन्नदित हुए हुए

रथम् [१.२१ सं(राम २.१)] रथ

रथोत्तमम् [१.२४ सं(राम २.१) (रथानाम् उत्तमम्)] रथों में उत्तम

रथोपस्थे [१.४७ सं(राम ७.१) (रथस्य उपस्थे)] रथ के पिछले भाग (में)

रमते [५.२२, १८.३६ (√ रम् भ्वा A लट् ३.१)] आनन्द मनाता है, आनन्दित होता है, रीझाता है, रमता है

रमन्ति [१०.९ (√ रम् भ्वा P लट् ३.३)] आनन्द मनाते हैं, आनन्दित होते हैं

रविः [१०.२१, १३.३३ सं(हरि १.१)] सूर्य

रसः [२.५९, ७.८ सं(राम १.१)] रस, स्वाद

रसनम् [१५.९ सं(फल १.१)] जिह्वा, स्वादेन्द्रिय

रसवर्जम् [२.५९ (रसं वर्जयित्वा) (अ)] रस को छोड़कर

रसात्मकः [१५.१३ वि.(राम १.१) (रसः आत्मा यस्य सः)] वह जिसका स्वभाव रस है, रसवाला, रसरूपी

रस्याः [१७.८ वि(राम १.३)] रुचिर, रसदार, आर्द्र

रहसि [६.१० सं(मनस् ७.१)] एकांत में

रहस्यम् [४.३ सं(फल २.१)] रहस्य, गुप्त, गोपनीय, सार, मर्म की बात

राक्षसीम् [९.१२ वि(नदी २.१)] राक्षसी

रागद्वेषवियुक्तैः [२.६४ वि(राम ३.३) (रागेण च द्वेषेण च वियुक्तैः)] राग द्वेष रहित (द्वारा), रुचि और अरुचि से अलग

रागद्वेषौ [३.३४, १८.५१ सं(राम १.२) (रागः च द्वेषः च)] रुचि और अरुचि, राग और द्वेष, प्रेम और बैर (दोनों)

रागात्मकम् [१४.७ वि.(फल २.१) (रागः आत्मा यस्य तत्)] वह जिसकी आत्मा भावावेश (भावातिरेक) है, भाव (उत्साह क्रोध इत्यादि) उत्पन्न करने वाला, अनुराग, काम वासना का उत्पादक

रागी [१८.२७ वि(शशिन् १.१)] कामुक, वासनामय, भावप्रवण

राजगुह्यम् [९.२१ सं.(फल १.१) (गुह्यानां राजा अथवा राज्ञां गुह्यम्)] गुप्त बातों का राजा, राजाओं का रहस्य; गूढ़ वस्तुओं में गुप्त, श्रेष्ठ

राजन् [११.९, १८.७६, ७७ सं(राजन् ८.१)] हे राजन् !

राजर्षयः [४.२, ९.३३ सं(हरि १.३)] राजर्षियों ने

राजविद्या [९.२ सं(विद्या ६.३) (विद्यानां राजा)] विद्याओं में राजा, श्रेष्ठ विद्या, राजाओं की विद्या

राजसः [१८.२७ वि(राम १.१)] राजसिक

राजसम् [१७.१२, १८, २१; १८.८, २१, २४, ३८ वि(राम २.१) (फल १/२/१)] राजसिक

राजसस्य [१७.९ वि(राम ६.१)] राजसी लोगों का

राजसाः [७.१२, १४.१८, १७.४ वि(राम १.३)] राजसी, रजो गुणात्मक, सक्रिय, क्रियाशील, क्रियात्मक

राजसी [१७.२, १८.३१.३४ वि(नदी १.१)] राजसी, रजोगुणात्मक

राजा [१.२, १६ सं(राजन् १.१)] राजा

राज्यम् [१.३२, ३३,२.८ ११.३३ सं(फल २.१)] राज्य को

राज्यसुखलोभेन [१.४५ सं(राम ३.१) (राज्यस्य सुखस्य लोभेन)] राज्य के सुख के लालच से, राज्य सुख के लोभ से

राज्येन [१.३२ सं(फल ३.१)] राज्य से

रात्रिः [८.२५ सं(मति १.१)] रात, रात्रि

रात्रिम् [८.१७ सं(मति २.१)] रात्रि को

रात्र्यागमे [८.१८, १९ सं(राम ७.१) (रात्र्याः आगमे)] रात्रि के आगमन में, रात होने पर

राधनम् [७.२२ सं(फल २.१)] पूजा, आराधना

रामः [१०.३१ सं(राम १.१)] राम

रिपुः [६.५ सं(गुरु १.१)] शत्रु

रुद्राणाम् [१०.२३ सं(राम ६.३)] रुद्रों में

रुद्रादित्याः [११.२२ सं(राम १.३) (रुद्राः च आदित्याः च)] रुद्र और आदित्य गण

रुद्रान् [११.६ सं(राम २.३)] रुद्र (बहुवचन), एक प्रकार के गण देवता जो ग्यारह हैं

रुद्ध्वा [४.२९ (अ.)(√ रुध् रुधा P क्त्वाच्)] रोककर, नियंत्रित करके

रुधिरप्रदिग्धान् [२.५ सं(राम २.३) (रुधिरेण प्रदिग्धान्)] लहू से सने हुए, लहू से लिपे हुए

रूपम् [११.३.९.२०.२३.४५.४७.४९.५०.५१.५२; १५.३, १८.७७ सं(फल १.१/२.१)] स्वरूप को, आकार को

रूपस्य [११.५२ सं(फल ६.१)] स्वरूप का

रूपाणि [११.५ सं(फल १.३)] स्वरूप (बहुवचन)

रूपेण [११.४६ सं)फल ३.१)] रूप से

रोमहर्षः [१.२९ सं(राम १.१) (रोम्णां हर्षः)] रोंगटे खड़े होना, रोमाञ्च होना

रोमहर्षणम् [१८.७४ सं(राम २.१) (रोम्णां हर्षणं यस्मात् तत्)] वह जिससे रोमाञ्च होता है

ल

लघ्वाशी [१८.५२ वि(शशिन् १.१) (लघु अश्नाति यः)] जो कम खाता है, अल्पाहारी

लब्धम् [१६.१३ (फल २.१)] प्राप्त किया. पा लिया, हस्तगत किया

लब्धा [१८.७३ (√ लभ् भ्वा A + क्त.)] प्राप्त की गई, पाई गई

लब्ध्वा [४.३९, ६.२२, १८.७३ (अ.) (√ लभ् भ्वा A + क्त्वाच्)] प्राप्त करके, पाकर

लभते [४.३९, ६.४३, ७.२२, १८.४५, ५४ (√ लभ् भ्वा A लट् ३.१)] (वह) पाता है, प्राप्त करता है

लभन्ते [२.३२, ५.२५, ९.२१ (√ लभ् भ्वा A लट् ३.३)] पाना, प्राप्त करना, (वे) प्राप्त करते हैं

लभस्व [११.३३ (√ लभ् भ्वा A लोट् २.१)] पा, प्राप्त कर

लभे [११.२५ (√ लभ् भ्वा A लट् १.१)] (मैं) पाता हूं

लभेत्(लभेत) [१८.८ (√ लभ् भ्वा. A विधि. ३.१)] प्राप्त करता है, पासकता है

लभ्यः [८.२२ वि(राम १.१)] प्राप्य, जो प्राप्त करने योग्य है

लाघवम् [२.३५ सं(फल २.१)] लघुता को, हलकापन, तुच्छता

लाभम् [६.२२ सं(राम २.१)] लाभ को

लाभालाभौ [२.३८ सं(राम २.२) (लाभः च अलाभः च)] लाभ और हानि

लिङ्गैः [१४.२१ सं(राम ३.३)] चिन्हों से, लक्षणों द्वारा

लिप्यते [५.७, १०, १३.३१, १८.१७ (√ लिप् तुदा A लट् ३.१)] लिप्त होता है,- के ऊपर प्रभाव पड़ता है

लिम्पन्ति [४.१४ (√ लिप् तुदा A लट् ३.३)] असर करते हैं, प्रभावित करते हैं, स्पर्श करते हैं

लुप्तपिण्डोदकक्रियाः [१.४२ वि.(राम १.३) (लुप्ता पिण्डस्य च उदकस्य च क्रिया येषां ते)] वे जिनकी लुप्त हो गई हैं पिण्ड और जल की क्रियाएं

लुब्धः [१८.२७ वि(राम १.१)] लालची

लेलिह्यसे [११.३० (√ लिह् दिवा + यङ् A लट् २.१)] (तू) चाटता है, निगल जाता है, लील जाता है

लोकः [३.९, २१, ४.३१, ४०, ७.२५, १०.६, १२.१५ सं(राम १.१)] संसार, लोक

लोकक्षयकृत् [११.३२ वि(१.१) (लोकानां क्षयम् करोति इति)] इस प्रकार लोकों को नष्ट करता (है), लोकों का नाश करने वाला

लोकत्रयम् [११.२०, १५.१७ सं(फल १.१) (लोकानां त्रयम्)] तीनों लोक,

लोकत्रये [११.४३ सं(फल ७.१)] तीनों लोकों में

लोकम् [९.३३, १३.३३ सं(राम २.१)] लोक, संसार

लोकमहेश्वरम् [१०.३ सं(राम २.१) (लोकस्य महेश्वरम्)] संसार के महेश्वर, को

लोकसंग्रहम् [३.२०, २५ सं(राम २.१) (लोकस्य संग्रहम्)] लोक कल्याण, लोक रक्षा, लोकोन्नति

लोकस्य [५.१४, ११.४३ सं(राम ६.१)] लोक का, जगत् का

लोकाः [३.२४, ८.१६, ११.२३, २९ सं(राम १.३)] लोक (बहुवचन) सब लोक, सब लोग

लोकात् [१२.१५ सं(राम ५.१)] संसार से

लोकान् [६.४१, १०.१६, ११.३०, ३२, १४.१४, १८.१७.७१ सं(राम २.३)] लोकों में, लोकों को, लोगों को

लोके [२.५, ३.३, ४.१२, ६.४२, १३.१३, १५.१६.१८, १६.६ सं(राम ७.१)] संसार में, लोक में, जगत् में

लोकेषु [३.२२ सं(राम ७.३)] लोकों में

लोभः [१४.१२, १७, १६.२१ सं(राम १.१)] लोभ, लालच, धन लिप्सा

लोभोपहतचेतसः [१.३८ सं(चन्द्रमस् १.३) (लोभेन उपहतं चेतः येषां ते)] वे जिनके मन लोभ से प्रभावित हैं (उत्तेजित हैं)

व

वः [३.१०, ११ सर्व(युष्मद् ६/२.३)] तुम्हारा, तुम को

वक्तुम् [१०.१६ (अ.) (√ ब्रू-वच् + तुमुन्)] कहना, बतलाना, कहिए, समझाइए

वक्त्राणि [११.२७, २८.२९ सं(फल १.३)] मुख (बहुवचन)

वक्ष्यामि [७.२, ८.२३, १०.१, १८.६४ (√ ब्रू अदा P लृट् १.१)] (मैं) कहूंगा, बतलाऊंगा

वचः [२.१०, १०.१, ११.१, १८.६४ सं(मनस् १.१/२.१)] शब्द, वचन

वचनम् [१.२, ११.३५, १८.७३ सं(फल २.१)] वचन, शब्द

वज्रम् [१०.२८ सं(फल १.१/२.१)] वज्र, वज्रपात

वद [३.२ (√ वद् भ्वा P लोट् २.१)] कहो, बोलो, (तू) कह

वदति [२.२९ (√ वद् भ्वा P लट् ३.१)] (वह) कहता है, बोलता है

वदनैः [११.३० सं(फल ३.३)] मुखों द्वारा, (कई) मुखों से

वदन्ति [८.११ (√ वद् भ्वा P लट् ३.३)] (वे) कहते हैं, घोषित करते हैं

वदसि [१०.१४ (√ वद् भ्वा P लट् २.१)] (आप) कहते हैं

वदिष्यन्ति [२.३६ (√ वद् भ्वा P लृट् ३.३)] कहेंगे

वयम् [१.३७, ४५, २.१२ सर्व(अस्मद् १.३)] हम

वर [८.४ सं(राम ८.१)] हे श्रेष्ठ

वरुणः [१०.२९, ११.३९ सं(राम १.१)] वरुण (जलदेवता)

वर्णसंकरः [१.४१ सं(राम १.१) (वर्णस्य संकरः)] वर्णसंकर, दोगला, वहव्यक्ति जो भिन्न भिन्न जातियों के स्त्री पुरुष के संयोग से उत्पन्न हो, जाति भ्रष्ट

वर्णसंकरकारकैः [१.४३ वि(राम ३.३) (वर्णस्य संकरस्य कारकैः)] वर्णों की गड़बड़ी करने वालों के द्वारा, वर्ण संकरों के द्वारा

वर्तते [५.२६, ६.३१, १६.२३ (√ वृत् भ्वा A लट् ३.१)] रहता है, होता है, (का) कार्य करना, व्यवहार करना

वर्तन्ते [३.२८, ५.९, १४.२३ (√ वृत् भ्वा A लट् ३.३)] अस्तित्व में हैं, रहते हैं

वर्तमानः [६.३१, १३.२३ वि(राम १.१)] विद्यमान होते हुए, रहते हुए, व्यवहार करते हुए (वर्त्मन् = मार्ग, रास्ता, चलन, रस्म)

वर्तमानानि [७.२६ वि(फल २.३)] जो हैं, जो वर्तमान काल में हैं, उनको

वर्ते [३.२२ (√वृत् भ्वा A लट् १.१)] (मैं) बना रहता हूं, प्रवृत्त रहता हूं, लगा रहता हूं

वर्तेत [६.६ (√वृत भ्वा A विधि३.१)] हो सकता है, होगा, करता है

वर्तेयं [३.२३ (√ वृत् भ्वा A विधि१.१)] (मैं) लगा रहूं, प्रवृत्त रहूं

वर्त्म [३.२३, ४.११ सं(जन्मन् १.१)] मार्ग, पथ

वर्षम् [९.१९ सं(फल १.१)] वर्षा

वशम् [३.३४, ६.२६ सं(राम २.१)] वश में, (को)

वशात् [९.८ सं(राम ५.१)] बल से, बलात्, हठ से, बरबस

वशी [५.१३ वि(शशिन् १.१)] अपने को वश में रखने वाला, अपना स्वामी

वशे [२.६१ सं(राम ७.१)] वश में

वश्यात्मना [६.३६ वि(आत्मन् (१.१) (वश्यः आत्मा यस्य तेन)] उससे जिसकी आत्मा वश में है, संयमी द्वारा

वसवः [११.२२ सं(गुरु १.३)] वसु गण

वसून् [११.६ सं(गुरु २.३)] वसु, देवताओं का एक गण जिसके अन्तर्गत आठ देवता हैं, उनको

वसूनाम् [१०.२३ सं(गुरु ६.३)] वसुओं में (का)

वहामि [९.२२ (√ वह् भ्वा P लट् १.१)] (मैं) लाता हूं, प्रस्तुत करता हूं

वह्निः [३.३८ सं(हरि १.१)] अग्नि

वा [१.३२, २.६.२०.२६.३७; ६.३२, ८.६, १०.४१, १५.१०, १७.१९.२१, १८.१५.२४.४० (अ.)] अथवा, या, और

वाक् [१०.३४ सं(वाच् १.१)] वाणी

वाक्यम् [१.२१, २.१, १७.१५ सं(फल २.१)] वाक्य, बात

वाक्येन [३.२ सं(फल ३.१)] वचन से, वाक्य से

वाङ्मयम् [१७.१५ वि(फल १.१)] वाणी का

वाचम् [२.४२ सं(वाच् २.१)] वाणी, बोली, कथन (को)

वाच्यम् [१८.६७ वि(फल १.१) (√ ब्रू अदा वच् + ण्यत्)] कहना चाहिए, कहा जाए

वादः [१०.३२ सं(राम १.१)] वाणी, बोली, वाक् , भाषा

वादिनः [२.४२ वि(शशिन् १.३)] कहते हुए, बोलने वाले

वायुः [२.६७, ७.४, ९.६, ११.३९, १५.८ सं(गुरु १.१)] वायु, पवन
वायोः [६.३४ सं(गुरु ६.१)] वायु का
वार्ष्णेय [१.४१, ३.३६ सं(राम ८.१)] हे वार्ष्णेय, हे कृष्ण, हेवृष्णि वंशिन्, (भगवान् कृष्ण का जन्म वृष्णि (यादव) वंश में हुआ था,)
वासः [१.४४ सं(राम १.१)] निवास, घर
वासवः [१०.२२ सं(राम १.१)] वासव, इन्द्र
वासांसि [२.२२ सं(मनस् १.३)] वस्त्र
वासुकिः [१०.२८ सं(हरि १.१)] वासुकि, कश्यप पुत्र सर्पराज वासुकि
वासुदेवः [७.१९, १०.३७, ११.५० सं(राम १.१)] वासुदेव
वासुदेवस्य [१८.७४ सं(राम ६.१)] वासुदेव का
विकम्पितुम् [२.३१ (वि + √कम्प् भ्वा A + तुमुन्)] (भय से) कांपना, थरथराना, डगमगाना
विकर्णः [१.८ सं(राम १.१)] विकर्ण, एक कौरव
विकर्मणः [४.१७ सं(कर्मन् ६.१)] दोष पूर्ण कर्म का, विपरीत कर्म का
विकारान् [१३.१९ सं(राम २.३)] विकारों, रूपान्तरों (को)
विक्रान्तः [१.६ वि(राम १.१)] बलवान्
विगतः [११.१ वि(राम १.१) (वि + √गम् भ्वा P + क्त)] चला गया, दूर हो गया हुआ
विगतकल्मषः [६.२८ वि(राम १.१) (विगतः कल्मषः यस्य सः)] जिसके पाप चले गए हैं, वह; पाप रहित
विगतज्वरः [३.३० वि(राम १.१) (विगतः ज्वरः यस्य सः)] वह जिसका ज्वर दूर हो गया है, जिसे कोई व्यग्रता नहीं, शोक संताप रहित
विगतभीः [६.१४ वि.(सुधी १.१) (विगता भीः यस्य सः)] वह जिसका भय चला गया है, भयरहित, निर्भय
विगतस्पृहः [२.५६, १८.४९ वि(राम १.१) (विगता स्पृहा यस्य सः)] वह जिसकी कामनाएं चली गई हैं (वह जिससे कामनाएं चली गई हैं) स्पृहा (इच्छा) रहित
विगतेच्छाभयक्रोधः [५.२८ वि(राम १.१) (विगताः इच्छा च भयं च क्रोधः च यस्य सः)] वह जिसकी कामना भय और क्रोध चले गए हैं; इच्छा, भय और क्रोध से रहित
विगुणः [३.३५, १८.४७ वि(राम १.१)] गुण रहित, बिना विशेषता के
विचक्षणाः [१८.२ सं(राम १.३)] बुद्धिमान् लोग
विचालयेत् [३.२९ (वि + √ चल् भ्वा P + णिच् + विधि. ३.१)] अस्थिर करना चाहिए, डाँवा डोल करना चाहिए

विचाल्यते [६.२२, १४.२३ (वि + √ चल् भ्वा P + णिच् + कर्म + लट् ३.१)] डगमगाता है, चलायमान होता है

विचेतसः [९.१२ वि(चन्द्रमस् १.३)] बुद्धिहीन

विजयः [१८.७८ सं(राम १.१)] विजय

विजयम् [१.३२ सं(राम २.१)] विजय को

विजानतः [२.४६ सं(ध्यायत् ६.१) (वि √ ज्ञा P + शतृ)] विद्वान्, (का), जानने वाले (का) ज्ञानी का

विजानीतः [२.१९ (वि + √ज्ञा क्र्या P लट् ३.२)] (दो) जानते हैं

विजानीयाम् [४.४ (वि + √ ज्ञा क्र्या P विधि १.१)] (मैं) समझलू, मानलूं

विजितात्मा [५.७ वि(आत्मन् १.१) (विजितः आत्मा येन सः)] वह जिसके द्वारा आत्मा जीती गई है, वह जिसने अपने पर विजय प्राप्त की है

विजितेन्द्रियः [६.८ सं(राम १.१) (विजितानि इन्द्रियाणि यस्य सः)] वह जिसकी इन्द्रियां विजित हैं, जिसने इन्द्रियों को जीता है

विज्ञातुम् [११.३१ (अ.) (वि + √ ज्ञा + तुमुन्)] जानना

विज्ञानम् [१८.४२ सं(फल १.१)] विज्ञान, ज्ञान

विज्ञानसहितम् [९.१ वि(फल १.१) (विज्ञानेन सहितम्)] अनुभव सहित, अनुभव के साथ

विज्ञाय [१३.१८ (अ.) (वि √ ज्ञा क्र्या P + ल्यप्)] जान कर

विततः [४.३२ वि(राम १.३)] फैले हुए, विस्तारित

वित्तेशः [१०.२३ सं(राम १.१)] कुबेर

विदधामि [७.२१ (वि + √ धा जुहो P लट् १.१)] (मैं) बनाता हूं, करता हूं, बना देता हूं

विदितात्मनाम् [५.२६ (आत्मन् ६.३) (विदितः आत्मा येषां तेषाम्)] जिन्होंने अपने को जान लिया है, (उनके)

विदित्वा [२.२५, ८.२८ (अ.) (√ विद् अदा P + क्त्वाच्)] जान कर

विदुः [४.२, ७.२९.३०, ८.१७, १०.२.१४, १३.३४, १६.७, १८.२ (√ विद् अदा P लिट् ३.३)] जानना, जानते हैं

विद्धि [२.१७, ३.३२.३७, ४.१३.३२.३४, ७.१०, १२, १०.२४.२७, १३.१९.२६, १४.७.८, १५.१२, १७.१२, १८.२०.२१ (√ विद् अदा P लोट् २.१)] (तू) जान, समझ

विद्मः [२.६ (√ विद् अदा P लट् १.३)] (हम) जानते हैं, समझते हैं

विद्यते [२.१६.३१.४०, ३.१७, ४.३८, ६.४०, ८.१६, १६.७ (√ विद् दिवा A लट् ३.१)] है

विद्यात् [६.२३, १४.११ (√ विद् अदा. P विधि ३.१)] (उसे) जानना चाहिए

विद्यानाम् [१०.३२ सं(विद्या ६.३)] विद्याओं में (का)

विद्याम् [१०.१७ (√ विद् दिवा A विधि १.१)] (मैं) जानूं

विद्याविनयसंपन्ने [५.१८ वि(राम ७.१) (विद्यया च विनयेन च संपन्ने)] विद्या और नम्रता से परिपूर्ण (भरा हुआ)

विद्वान् [३.२५, २६ सं(विद्वस् १.१)] ज्ञानी, विवेकी

विधानोक्ताः [१७.२४ वि(राम १.१) (विधानेन उक्ताः)] विधान द्वारा निर्देशित, विधि में कही हुई

विधिदृष्टः [१७.११ वि(राम १.१) (विधौ दृष्टः)] विधि पूर्वक, शास्त्र निर्धारित

विधिहीनम् [१७.१३ वि(राम २.१) (विधिना हीनम्)] विधि हीन, बिना (शास्त्रोक्त) प्रणाली के

विधीयते [२.४४ (वि √ धा जुहो P + कर्म A लट् ३.१)] स्थिर है, नियत है

विधेयात्मा [२.६४ वि(आत्मन् १.१) (विधेयः आत्मा यस्य सः)] वह जिसकी आत्मा दमित है, जिसका मन अपने वश में है, वह

विनङ्क्ष्यसि [१८.५८ (वि + √ नश् दिवा. लृट् २.१)] (तेरा) नाश कर दिया जाएगा, (तू) नष्ट हो जाएगा

विनद्य [१.१२ (वि + नद् + ल्यप्)] गुंजायमान करते हुए

विनश्यति [४.४०, ८.२० (वि + √ नश् दिवा P लट् ३.१)] नष्ट हो जाता है

विनश्यत्सु [१३.२७ वि(ध्यायत् ७.३) (वि + √ नश् दिवा + शतृ)] नष्ट होते हुओं में, नाशवान् (पदार्थों) में

विना [१०.३९ (अ.)] के बाहर, से रहित, बिना

विनाशः [६.४० सं(राम १.१)] नाश

विनाशम् [२.१७ सं(राम २.१)] विनाश

विनाशाय [४.८ सं(राम ४.१)] नाश के लिए, विनाश के लिए

विनियतम् [६.१८ वि(फल १.१)] विजित, दमित, भली प्रकार नियमबद्ध किया हुआ

विनियम्य [६.२४ (वि + नि + √ यम् + ल्यप्)] नियंत्रित करके, भली प्रकार नियमबद्ध कर के

विनिवर्तन्ते [२.५९ (वि + नि + √ वृत् भ्वा A लट् ३.३)] दूर हो जाते हैं, छूट जाते हैं, विरत (निवृत्त) होते हैं

विनिवृत्तकामाः [१५.५ सं(राम १.३) (विनिवृत्ताः कामाः येषां ते)] वे जिनकी इच्छाएं दूर हो गई हैं, जिनकी कामनाएं शांत हो गई हैं

विनिश्चितैः [१३.४ वि(राम ३.३)] निश्चित, निश्चय (करने) वालों (द्वारा)

विन्दति [४.३८, ५.२१, १८.४५.४६ (√ विद् तुदा P लट् ३.१)] (वह) प्राप्त करता है, (उसे) मिलता है

विन्दते [५.४ (√ विद् तुदा A लट् ३.१)] प्राप्त करता है, पाता है

विन्दामि [११.२४ (√ विद् तुदा P लट् १.१)] (मैं) प्राप्त करता हूं, पाता हूं

विपरिवर्तते [९.१० (वि + परि + √ वृत् भ्वा A लट् ३.१)] घूमता है, चक्कर खाता है

विपरीतम् [१८.१५ वि(फल १.१)] विपरीत, उल्टा

विपरीतान् [१८.३२ वि(राम २.३)] विकृत हुआ, उल्टा

विपरीतानि [१.३१ वि(फल २.३)] उल्टा, विपरीत

विपश्चितः [२.६० सं(मरुत् ६.१)] ज्ञानी बुद्धिमान्, (का)

विभक्तम् [१३.१६ वि(फल १.१)] विभाजित, खंडित, बांटा हुआ

विभक्तेषु [१८.२० वि(राम ७.३)] अलग अलग में, विभाजित हुओं में

विभावसौ [७.९ सं(गुरु ७.१)] अग्नि में

विभुः [५.१५ सं(गुरु १.१)] परमेश्वर, ईश्वर

विभुम् [१०.१२ सं(गुरु २.१)] (सर्व व्यापी) ईश्वर (को)

विभूतिभिः [१०.१६ सं(मति ३.३)] विभूतिओं से

विभूतिम् [१०.७, १८ सं(मति २.१)] सर्व सत्ता, महिमा, गौरव

विभूतिमत् [१०.४१ वि(जगत् १.१)] यशास्कर, तेजस्वी, चमत्कार पूर्ण

विभूतीनाम् [१०.४० सं(मति ६.३)] गरिमाओं का, विभूतियों का

विभूतेः [१०.४० सं(मति ५.१)] गौरव प्रताप (का) विभूति का

विमत्सरः [४.२२ वि(राम १.१)] ईर्ष्या-रहित

विमुक्तः [९.२८, १४.२०, १६.२२ वि(राम १.१)] मुक्त हुआ

विमुक्ताः [१५.५ सं/वि(राम १.३) (वि + √ मुच तुदा + क्त)] मुक्त हुए

विमुच्य [१८.५३ (अ.) (वि √ मुच् तुदा P + ल्यप्)] त्याग कर

विमुञ्चति [१८.३५ (वि + √ मुच् मुञ्च् तुदा P लट् ३.१)] तजता है, छोड़ता है

विमुह्यति [२.७२ (वि + √ मुह् दिवा P लट् ३.१)] सम्भ्रान्त होता है, किंकर्तव्य विमूढ़ होता है, भ्रम में पड़ता है

विमूढः [६.३८ वि(राम १.१)] मूढ़, धोखा खाया हुआ, भूल में पड़ा हुआ

विमूढभावः [११.४९ सं(राम १.१) (विमूढस्य भावः)] सम्भ्रान्त अवस्था, मूढ जैसी स्थिति

विमूढाः [१५.१० सं(राम १.३)] मोहित हुए, भ्रम में आए, मूर्ख (लोग)

विमूढात्मा [३.६ सं(आत्मन् १.१) (विमूढः आत्मा यस्य सः)] वह जिसका मन भ्रमित है, मूढ पुरुष

विमृश्य [१८.६३ (अ.) (वि + √ मृश् तुदा P + ल्यप्)] विचार, चिन्तन कर के, भली प्रकार से सोचकर

विमोक्षाय [१६.५ सं(राम ४.१)] मुक्ति के लिए, मोक्ष के लिए

विमोक्ष्यसे [४.३२ (वि + √ मुच् तुदा A लृट् २.१)] (तू) मुक्त होगा, मोक्ष प्राप्त करेगा

विमोहयति [३.४० (वि + √ मुह् दिवा P + णिच् लट् ३.१)] घबरा देता है, सम्भ्रान्त करता है

विराटः [१.४, १७ सं(राम १.१)] विराट, मत्स्य देश के राजा जिनके यहां पाण्डवों ने अज्ञातवास किया था

विलग्नाः [११.२७ वि(राम १.३)] चिपके हुए, लिपटे हुए, अटके हुए

विवस्वतः [४.४ सं(धीमत् ६.१)] सूर्य का, विवस्वान् का

विवस्वते [४.१ सं(धीमत् ४.१)] सूर्य को, विवस्वान् के लिए

विवस्वान् [४.१ सं(धीमत् १.१)] सूर्य, विवस्वान् (ने)

विविक्तदेशसेवित्वम् [१३.१० सं(फल १.१) (विविक्तस्य देशस्य सेवित्वम्)] एकान्त स्थान का सेवन, (आश्रय)

विविक्तसेवी [१८.५२ वि(शशिन् १.१) (विविक्तं सेवते यः)] जो एकान्त की सेवा करता है, एकान्त सेवी

विविधाः [१७.२५, १८.१४ वि(विद्या १.३)] भिन्न-भिन्न

विधैः [१३.४ वि(राम ३.३)] नाना विधि से, भांति-भांति से

विवृद्धम् [१४.११ वि(फल २.१)] बढ़ा, वृद्धि की हुई

विवृद्धे [१४.१२, १३ वि(फल ७.१)] वृद्धि पाये हुए (में) बढ़े हुए (में)

विशते [१८.५५ (√ विश् भ्वा P/A लट् ३.१)] प्रवेश करता है

विशन्ति [८.११, ९.२१, ११.२१, २७.२८, २९ (√ विश् तुदा P लट् ३.३)] (वे) प्रवेश करते हैं

विशालम् [९.२१ वि(राम २.१)] सुविस्तृत, अपार

विशिष्टाः [१.७ वि(राम १.३)] श्रेष्ठ, प्रतिष्ठित

विशिष्यते [३.७, ५.२, ६.९, ७.१७, १२.१२ (वि + √ शिष् रुधा A लट् ३.१)] से श्रेष्ठ या उत्कृष्ट है, विशेष है

विशुद्धया [१८.५१ वि(विद्या ३.१)] शुद्ध (-से)

विशुद्धात्मा [५.७ वि(आत्मन् १.१) (विशुद्धः आत्मा यस्य सः)] वह जिसकी आत्मा शुद्ध (पवित्र) है

विश्वतोमुखः [१०.३३ वि(राम १.१)] हर दिशा में मुख रखते हुए, चारों ओर मुख वाला

विश्वतोमुखम् [९.१५, ११.११ वि(राम २.१) (विश्वतः मुखं यस्य तम्)] उसको जिसका मुख सब ओर है, विश्व व्यापक को

विश्वम् [११.१९, ३८, ४७ सं(फल १.१/२.१)] विश्व (को)

विश्वमूर्ते [११.४६ सं(हरि ८.१) (विश्वं मूर्तिः यस्य सः)] (हे) वह जिसका स्वरूप विश्व है, हे विश्वमूर्ते !

विश्वरूपम् [११.१६ सं(राम २.१) (विश्वं रुपम् यस्य तम्)] उसको जिसका स्वरूप जगत् (है)

विश्वस्य [११.१८, ३८ सं(फल ६.१)] ब्रह्माण्ड का, जगत् का

विश्वे [११.२२ (देवः) सं(राम १.१)] विश्वेदेव, अग्नि

विश्वेश्वर [११.१६ सं(राम ८.१) (विश्वस्य ईश्वर)] हे जगत् प्रभो !

विषम् [१८.३७, ३८ सं(फल १.१)] विष

विषमे [२.२ वि(फल ७.१)] आपत्ति में

विषयप्रवालाः [१५.२ वि(विद्या १.३) (विषयाः प्रवालाः यासां ताः)] जिनके इन्द्रिय विषय अंकुर (कोपलें) हैं, वे

विषयाः [२.५९ सं(राम १.३)] विषय, इन्द्रियों के विषय

विषयान् [२.६२, ६४, ४.२६, १५.९, १८.५१ सं(राम २.३)] (इन्द्रियों के) विषयों (पर) विषयों को

विषयेन्द्रियसंयोगात् [१८.३८ सं(राम ५.१) (विषयैः इन्द्रियाणां संयोगात्)] विषयों के साथ, इन्द्रियों के संयोग से

विषादम् [१८.३५ सं(राम २.१)] उदासी, निराशा, हतोत्साह, खिन्नता को

विषादी [१८.२८ वि(शशिन् १.१)] निराश, जो झट उदास हो जाए, शोकातुर

विषीदन् [१.२८ वि(महत् १.१) (वि + सीद P + शतृ)] उदास, दुःखी होता हुआ

विषीदन्तम् [२.१, १० वि(ध्यायत् २.१)] निराश, उदास (हुए को)

विष्टभ्य [१०.४२ (अ) (वि √स्तम्भ् + ल्यप्)] स्थापित कर के, व्याप्त करके

विष्ठितम् [१३.१७ वि.(फल १.१) (वि. √स्था + क्त)] बैठा, स्थित

विष्णुः [१०.२१ सं(गुरु १.१)] विष्णु

विष्णो [११.२४, ३० सं(गुरु ८.१)] हे विष्णो

विसर्गः [८.३ सं(राम १.१)] निर्गम (निकास, निकला हुआ) प्रसर्जन, क्रिया, व्यापार

विसृजन् [५.९ वि(ध्यायत् १.१) (वि + √ सृज् तुदा P + शतृ)] देता हुआ, छोड़ता हुआ

विसृजामि [९.७, ८ (वि + √ सृज् तुदा P लट् १.१)] (मैं) उत्पन्न करता हूं, सर्जन करता हूं, प्रकट करता हूं

विसृज्य [१.४७ (अ.) (वि + सृज् तुदा P + ल्यप्)] फेंक कर, छोड़कर

विस्तरः [१०.४० वि(राम १.१)] विस्तार, प्रसार, फैलाव

विस्तरशः [११.२, १६.६ अ. (विस्तार + शस्)] विस्तार से, विस्तार पूर्वक

विस्तरस्य [१०.१९] विस्तार का, विस्तृत वर्णन या विवरण का

विस्तरेण [१०.१८ वि(राम ३.१)] विस्तार से, विस्तृत रूप से

विस्तारम् [१३.३० वि(फल २.१)] विस्तार को, प्रसार, प्रसारण को

विस्मयः [१८.७७ सं(राम १.१)] विस्मय, आश्चर्य

विस्मयाविष्टः [११.१४ वि(राम १.१) (विस्मयेन आविष्टः)] आश्चर्य से व्याप्त (भरा हुआ) (लीन)

विस्मिताः [११.२२ वि(राम १.३)] आश्चर्य चकित हुए, विस्मित हुए

विहाय [२.२२, ७१ (अ.) (वि + √ हा जुहो P + ल्यप्)] फेंक कर, छोड़कर

विहारशय्यासनभोजनेषु [११.४२ सं.(फल ७.३) (विहारे च शय्यायां च आसने च भोजने च)] आमोद प्रमोद करते, विश्राम करते, बैठते और भोजन करते

विहिताः [१७.२३ वि(राम १.३) (वि + √ धा जुहो P + क्त)] निश्चय किए हुए, ठहराए हुए, विधान किये हुए है

विहितान् [७.२२ वि(राम २.३ (वि + √ धा जुहो P + क्त)] आदेशित, निर्णय किए हुए, निर्धारित, निर्मित, को

वीक्षन्ते [११.२२ (√ वीक्ष् भ्वा A लट् ३.३)] (वे) देखते हैं, निरीक्षण करते हैं

वीतरागभयक्रोधः [२.५६ वि(राम १.१) (वीतः रागः च भयं च क्रोधः च यस्य सः)] वह जिसका राग, भय और क्रोध चला गया है

वीतरागभयक्रोधाः [४.१० वि.(राम १.३) (वीताः रागः च भयं च क्रोधः च येषां ते)] वे जिनके राग भय और क्रोध चले गए हैं, प्रीति, भय और क्रोध से रहित

वीतरागाः [८.११ वि(राम १.३) (वीतः रागः येषां ते)] वे जिनका राग (आसक्ति) चला गया हैं, रागरहित

वीर्यवान् [१.५, ६ वि(धीमत् १.१)] पराक्रमी, बहादुर

वृकोदरः [१.१५ सं(राम १.१) (वृकस्य इव उदरं यस्य सः)] वह जिसका पेट भेड़िए सा है (भीमसेन)

वृजिनम् [४.३६ सं(फल २.१)] पापों को

वृष्णीनाम् [१०.३७ सं(हरि ६.३)] यादवों में, वृष्णि कुल में (देखो वार्ष्णेय)

वेगम् [५.२३ सं(राम २.१)] वेग को, प्रचण्डता को

वेत्ता [११.३८ वि(धातृ १.१)] जानने वाला, ज्ञाता

वेत्ति [२.१९, ४.९, ६.२१ (√ विद् अदा P लट् ३.१)] जानता है

वेत्थ [४.५, १०.१५ (√ विद् अदा P लेट् २.१)] (तू)

वेद [२.२१, २९, ४.५, ७.२६, १५.१ (√ विद् अदा P लट् ३.१)] जानता है, जानना,

वेदयज्ञाध्ययनैः [११.४८ सं(राम ३.३) (वेदैः च यज्ञैः च अध्ययनैः च)] वेदों द्वारा, यज्ञों द्वारा और अध्ययन द्वारा

वेदवादरताः [२.४२ वि(राम १.३) (वेदस्य वादे रताः)] वेद वाक्य में रत (आनन्दित) हुए

वेदवित् [१५.१, १५ वि(तत्त्वविद् १.१)] वेद जानने वाला

वेदविदः [८.११ वि.(तत्त्वविद् १.३)] वेद जानने वाले

वेदाः [२.४५, १७.२३ सं(राम १.३)] वेद (बहुवचन)]

वेदानाम् [१०.२२ सं(राम ६.३)] वेदों में

वेदान्तकृत् [१५.१५ वि(मरुत् १.१)] वेदान्त का कर्त्ता, वेदान्त का रहस्य प्रकट करने वाला

वेदितव्यम् [११.१८ वि(फल २.१)] जानने योग्य, ज्ञेय

वेदितुम् [१८.१ (√ विद् अदा P + तुमुन्)] जानना

वेदे [१५.१८ (अ.) सं(राम ७.१)] वेद में

वेदेषु [२.४६, ८.२८ सं(राम ७.३)] वेदों में

वेदैः [११.५३, १५.१५ सं(राम ३.३)] वेदों द्वारा, वेद (पढ़ने) से

वेद्यः [१५.१५ वि(राम १.१)] जानने योग्य

वेद्यम् [९.१७, ११.३८ वि(फल १.१)] जानने योग्य

वेपथुः [१.२९ सं(गुरु १.१)] कम्पन, कँपकंपी लगे हुए

वेपमानः [११.३५ वि(राम १.१)] कांपते हुए

वैनतेयः [१०.३० सं(राम १.१) (विनतायाः अपत्यं पुमान्)] विनता का पुत्र, गरुड़

वैराग्यम् [१३.८, १८.५२ सं(फल १.१/२.१)] अनासक्ति, विरक्ति, तटस्थता, वैराग्य

वैराग्येण [६.३५ सं(फल ३.१)] वैराग्य से, विरक्ति, तटस्थता अनासक्ति (से)

वैरिणम् [३.३७ वि(शशिन् २.१)] शत्रु को, वैरी को

वैश्यकर्म [१८.४४ सं(कर्मन् १.१) (वैश्यानां कर्म)] वैश्यों का कर्म

वैश्याः [९.३२ सं(राम १.३)] वैश्य लोग

वैश्वानरः [१५.१४ सं(राम १.१)] अग्नि, जठराग्नि, वह अग्नि जो अन्न पचाती है, अग्नि की एक उपाधि

व्यक्तमध्यानि [२.२८ वि.(फल १.३) (व्यक्तं मध्यं येषां तानि)] वे जिनकी मध्यावस्था प्रत्यक्ष है, जिनकी बीच की स्थिति प्रकट है

व्यक्तयः [८.१८ सं(मति १.३)] प्रत्यक्ष, प्रकट, व्यक्त (हुई वस्तुएं)

व्यक्तिम् [७.२४, १०.१४ सं(मति २.१)] अभिव्यक्ति को, प्राकट्य को

व्यतितरिष्यति [२.५२ (वि + अति + √ तॄ भ्वा P लृट ३.१)] (तू) पार उतर जाएगा

व्यतीतानि [४.५ वि(फल १.३)] बीत गए (हैं), हो चुके (हैं)

व्यथन्ति [१४.२ (√ व्यथ् भ्वा. P लट ३.३)] दुःख झेलते, कष्ट पाते

व्यथयन्ति [२.१५ (√ व्यथ् भ्वा. णिच् P लट ३.३)] यातना देते हैं, उत्पीड़ित करते हैं, दुःखी करते है

व्यथा [११.४९ सं(विद्या १.१)] क्लेश, वेदना, पीड़ा

व्यथिष्ठाः [११.३४ (√ व्यथ् भ्वा A विधि २.१)] व्यथित हो, दुःखित हो

व्यदारयत् [१.१९ (वि + √ दृ चुरा लङ् ३.१)] चीर दिया, विदीर्ण कर दिया

व्यनुनादयन् [१.१९ (वि + अनु √ नद भ्वा P + णिच् लङ् ३.३)] गुंजाता हुआ

व्यपाश्रित्य [९.३२ (अ.) (वि + अप् + आ + √ श्रि भ्वा P + ल्यप्)] शरण लेकर, आश्रय लेकर

व्यपेतभीः [११.४९ वि.(सुधी १.१) (व्यपेता भीः यस्य सः)] वह जिसका भय दूर हो गया है, भय रहित, निडर

व्यवसायः [१०.३६, १८.५९ सं(राम १.१)] दृढ़ निश्चय, संकल्प

व्यवसायात्मिका [२.४१, ४४ वि(विद्या १.१) (व्यवसायः आत्मा यस्याः सा)] वह जिसकी आत्मा दृढ़संकल्प है, स्थिर, सुस्थिर

व्यवसितः [९.३० वि(राम १.१) (वि + अव √ सो दिवा P + क्त)] कृतसंकल्प, दृढ निश्चय वाला

व्यवसिताः [१.४५ वि(राम १.३) (वि + अव √ सो दिवा P + क्त)] तय्यार हुए (हैं) तत्पर हुए

व्यवस्थितान् [१.२० वि(राम २.३) (वि + अव √ स्था भ्वा P + क्त)] पंक्तिबद्ध अथवा क्रम से खड़े हुए

व्यवस्थितौ [३.३४ वि.(राम १/२.२) (वि + अव् + √ स्था भ्वा P क्त)] (दो) बैठे हुए (हैं), रहते हैं, टिके हुए (हैं), (किसी प्रकार के नियम से) रक्खे हुए

व्यात्ताननम् [११.२४ सं(राम २.१) (व्यात्तानि आननानि यस्य तम्)] उसको जिसका मुख खुला हुआ (है), खुले हुए मुखवाले को

व्याप्तम् [११.२० वि(राम २.१)] व्याप्त, फैला हुआ (है)

व्याप्य [१०.१६ (अ.) (वि + √ आप् स्वा. P + ल्यप्)] व्याप्त हुआ, (होकर, करके) फैला हुआ

व्यामिश्रेण [३.२ वि(फल ३.१)] जटिल, उलझे हुए, सन्दिग्ध (से)

व्यासः [१०.१३, ३७ सं(राम १.१)] व्यास

व्यासप्रसादात् [१८.७५ सं(राम ५.१) (व्यासस्य प्रसादात्)] व्यास की कृपा से

व्याहरन् [८.१३ वि.(ध्यायत् १.१) (वि + आ √ हृ भ्वा P + शतृ)] पाठ करता हुआ, जपता हुआ

व्युदस्य [१८.५१ (अ.) (वि-उत्-अस् + ल्यप्)] तजकर, छोड़कर

व्यूढम् [१.२ वि(विद्या २.१)] तैनात, व्यूह-रचना की हुई

व्यूढाम् [१.३ वि(विद्या २.१)] व्यूह-रचना की गई, तैनात, संघटित (को)

व्रज [१८.६६ (√ व्रज् भ्वा P लोट् २.१)] आना, आ

व्रजेत [२.५४ (√ व्रज् भ्वा A विधि ३.१)] (वह) चले, चलना चाहिए

श

शंकरः [१०.२३ सं(राम १.१)] शंकर

शंससि [५.१ (√ शंस् भ्वा P लोट् २.१)] (आप) प्रशंसा करते हैं, सराहना करते हैं, बड़ाई करते हैं

शक्नोति [५.२३ (√ शक् स्वा P लट् ३.१)] (वह) सकता है, समर्थ है

शक्नोमि [१.३० (√ शक् स्वा P लट् १.१)] (मैं) समर्थ हूं, सकता हूं

शक्नोषि [१२.९ (√ शक् स्वा P लट् २.१)] (तू) नहीं सकता, (तेरे लिए) सम्भव नहीं

शक्यः [६.३६, ११.४८, ५३, ५४ सं/वि(राम १.१)] सम्भव

शक्यम् [११.४, १८.११ सं(राम २.१)] सम्भव

शक्यसे [११.८ ((√ शक् स्वा A/P लट् २.१)] (तू) नहीं सकता, (तेरे लिए) सम्भव नहीं (शक्नोषि का आर्ष प्रयोग)

शंखम् [१.१२ सं(राम २.१)] शंख को

शंखाः [१.१३ सं(राम १.३)] शंख (बहुवचन)

शंखान् [१.१८ सं(राम २.३)] शंखों को

शंखौ [१.१४ सं(राम २.२)] (दो) शंख

शठः [१८.२८ वि(राम १.१)] छली, कपटी, दुष्ट

शतशः [११.५ (अ.)] सैकड़ों, सौ गुना

शत्रुः [१६.१४ सं(गुरु १.१)] शत्रु, वैरी

शत्रुत्वे [६.६ सं(फल ७.१)] शत्रुतामें, वैर-विरोध में

शत्रुम् [३.४३ सं(गुरु २.१)] शत्रु को

शत्रुवत् [६.६ (अ.) (शत्रु + वतुप्)] शत्रु के समान, शत्रु जैसा

शत्रून् [११.३३ सं(गुरु २.३)] शत्रुओं को

शत्रौ [१२.१८ सं(गुरु ७.१)] शत्रु में

शनैः [६.२५ (अ.)] क्रमशः, धीरे-धीरे

शब्दः [१.१३, ७.८ सं(राम १.१)] ध्वनि, नाद

शब्दब्रह्म [६.४४ सं(कर्मन् १.१)] वेद, वेदोक्त कर्म का फल

शब्दादीन् [४.२६, १८.५१ वि(हरि २.३) (शब्दः आदिः येषां तान्)] शब्दों आदि को

शमः [६.३, १०.४, १८.४२ सं(राम १.१)] शान्ति, अन्तःकरण तथा बाह्य इन्द्रियों का निग्रह

शमम् [११.२४ सं(राम २.१)] शान्ति, निग्रह

शरणम् [२.४९, ९.१८, १८.६२, ६६ सं(फल २.१)] आश्रय, शरण

शरीरम् [१३.१, १५.८ सं(फल १/२.१)] शरीर, शरीर को

शरीरयात्रा [३.८ सं(विद्या १.१) (शरीरस्य यात्रा)] शरीर की यात्रा, शरीर का निर्वाह, रख रखाव (भरण पोषण)

शरीरवाङ्मनोभिः [१८.१५ सं(मनस् ३.३) (शरीरेण च वाचा च मनसा च)] शरीर से, वाणी से और मन से

शरीरविमोक्षणात् [५.२३ सं(फल ५.१) (शरीरात् विमोक्षणात्)] शरीर के छूटने से

शरीरस्थः [१३.३१ वि(राम १.१)] शरीर में स्थित

शरीरस्थम् [१७.६ वि.(राम २.१) (शरीरे स्थितम्)] शरीर में स्थित, बैठे हुए (को)

शरीराणि [२.२२ सं(फल २.३)] शरीरों को

शरीरिणः [२.१८ सं(शशिन् ६.१)] देहधारी का

शरीरे [१.२९, २.२०, ११.१३ सं(फल ७.१)] शरीर में

शर्म [११.२५ सं(जन्मन् २.१)] सुख, शान्ति, आश्रय को

शशांकः [११.३९, १५.६ सं(राम १.१)] चन्द्रमा

शशिसूर्यनेत्रम् [११.१९ वि.(राम २.१) (शशी च सूर्यः च नेत्रे यस्य तम्)] उसको जिसके नेत्र शशि और सूर्य हैं

शशिसूर्ययोः [७.८ सं(राम ६.२) (शशिनः च सूर्यस्य च)] चन्द्र और सूर्य का

शशी [१०.२१ सं(शशिन् १.१)] चन्द्रमा

शश्वत् [९.३१ वि.(अ.)] सनातन, शाश्वत, निरन्तर नित्य

शस्त्रपाणयः [१.४६ वि(हरि १.३) (शस्त्राणि पाणिषु येषां ते)] वे जिनके हाथ में शस्त्र हैं

शस्त्रभृताम् [१०.३१ सं(मरुत् ६.३) (शस्त्राणि बिभ्रति इति तेषाम्)] उनका जो इस प्रकार शस्त्र वहन करते हैं, शस्त्रधारियों में

शस्त्रसंपाते [१.२० सं(राम ७.१) (शस्त्राणां संपाते)] शस्त्रों के प्रहार, में

शस्त्राणि [२.२३ सं(फल १.३)] शस्त्र, हथियार

शाखाः [१५.२ सं(विद्या १.३)] शाखाएं, डालियां

शाधि [२.७ (√ शास् अदा. P लोट् २.१)] सिखलाएं, शिक्षा दें

शान्तः [१८.५३ वि.(राम १.१)] शान्तिमय, शान्त हुआ

शान्तरजसम् [६.२७ वि(चन्द्रमस् २.१) (शान्तं रजः यस्य तम्)] उसको जिसका रजोगुण शान्त हो गया है, जिसके विकार शान्त हो गए हैं

शान्तिः [२.६६, १२.१२, १६.२ सं.(मति १.१)] शान्ति

शान्तिम् [२.७०.७१, ४.३९, ५.१२.२९, ६.१५, ९.३१, १८.६२ सं(मति २.१)] शान्ति, शान्ति को

शारीरम् [४.२१, १७.१४ वि(फल १.१/२.१)] शरीर से, शारीरिक

शाश्वतः [२.२० वि(राम १.१)] अनादि अनन्त

शाश्वतधर्मगोप्ता [११.१८ वि(धातृ १.१)] शाश्वत (नित्य निरन्तर) धर्म का रक्षक (संरक्षक)

शाश्वतम् [१०.१२, १८.५६.६२ वि(राम २.१) (फल २.१)] सदैव रहने वाला, अनन्त

शाश्वतस्य [१४.२७ वि(राम ६.१)] अनन्त का, सदैव रहने वाले का

शाश्वताः [१.४३ वि(राम १.३)] चिरस्थायी, अनन्त, सनातन, नित्य

शाश्वतीः [६.४१ वि(नदी २.३)] चिरस्थायी, अनन्त, सनातन

शाश्वते [८.२६ वि(फल १.२)] (दो) चिरस्थायी, अनन्त, सनातन, नित्य

शास्त्रम् [१५.२०, १६.२४ सं(फल १.१/२.१)] शास्त्र

शास्त्रविधानोक्तम् [१६.२४ सं(फल १.१) (शास्त्रस्य विधानेन उक्तम्)] शास्त्र के कहे आदेश (को)

शास्त्रविधिम् [१६.२३, १७.१ सं(मति २.१) (शास्त्राणां विधिम्)] शास्त्रों के आदेश (को), शास्त्र में बताई गई क्रिया को, शास्त्र विधि को

शिखण्डी [१.१७ सं(शशिन् १.१)] शिखण्डी, द्रुपदराज की एक कन्या जो पीछे पुरुष के रूप में होकर कुरुक्षेत्र के युद्ध में लड़ी थी

शिखरिणाम् [१०.२३ वि(शशिन्) (शिखराणि एषां सन्ति इति तेषाम्)] शिखरवालों में, पर्वतों में

शिरसा [११.१४ सं(मनस् ३.१)] शिर से

शिष्यः [२.७ सं(राम १.१)] शिष्य, अनुयायी

शिष्येण [१.३ सं(राम ३.१)] शिष्य (द्वारा)

शीतोष्णसुखदुःखदाः [२.१४ वि.(राम १.३) (शीतं च उष्णं च सुखं च दुःखं च ददति इति)] ठण्डक, गरमी सुख दुःख देते हैं, ऐसे

शीतोष्णसुखदुःखेषु [६.७, १२.१८ सं(फल ७.३) (शीते च उष्णे च सुखे च दुःखे च)] सर्दी में गर्मी में, सुख में और दुःख में

शुक्लः [८.२४ वि(राम १.१)] शुक्ल पक्ष

शुक्लकृष्णे [८.२६ वि(विद्या १.२) शुक्ला च कृष्णा च)] शुक्ल और कृष्ण, प्रकाश और अन्धकार

शुचः [१६.५, १८.६६ (√ शुच् भ्वा P लुङ् २.१)] शोक मनाना, दुःखी होना

शुचिः [१२.१६ वि(हरि १.१)] पवित्र

शुचीनाम् [६.४१ वि(हरि ६.३)] पवित्र (लोगों) का

शुचौ [६.११ वि(हरि ७.१)] शुद्ध पवित्र, स्वच्छ, निर्मल (में)

शुनि [५.१८ सं(श्वन् ७.१)] श्वान में

शुभान् [१८.७१ वि(राम २.३)] शुभ, कान्तिमय, प्रफुल्ल

शुभाशुभपरित्यागी [१२.१७ वि(शशिन् १.१) (शुभस्य च अशुभस्य च परित्यागी)] शुभ और अशुभ का त्यागने वाला

श्रोतव्यस्य [२.५२ वि(फल १.६) (√श्रु P + तव्यत्)] सुनने योग्य (का) जो सुना जाना चाहिए (उसका)

श्रोत्रम् [१५.९ सं(फल १.१)] कान

श्रोत्रादीनि [४.२६ सं(फल २.३) (श्रोत्रम् आदिः येषां तानि)] कान आदि इन्द्रियों को

श्रोष्यसि [१८.५८ (√श्रु स्वा P लृट् २.१)] सुनेगा, कान देगा, ध्यान देगा

श्वपाके [५.१८ सं(राम ७.१)] चांडाल में, कुत्तों को पकाके खाने वालों में

श्वशुराः [१.३४ सं(राम १.३)] श्वसुर (बहुवचन)

श्वशुरान् [१.२७ सं(राम २.३)] श्वसुरों को

श्वसन् [५.८ वि(ध्यायत् १.१) (√श्वस् अदा P + शतृ)] श्वास लेता हुआ

श्वेतैः [१.१४ वि(राम ३.३)] सफेद

ष

षण्मासाः [८.२४, २५ सं(राम १.३) (षट् मासाः)] छः महीने

स

संकरः [१.४२ सं(राम १.१)] (वर्णों का) मिश्रण, भ्रम, घपला

संकरस्य [३.२४ सं(राम ६.१)] (वर्णों के) मिश्रणका, भ्रमका, घपले का, अव्यवस्था का

संकल्पप्रभवान् [६.२४ वि(राम २.३)] कल्पना से उत्पादित, प्रस्तुत, संकल्प (कार्य करने की इच्छा) से उत्पन्न हुओं (को)

संख्ये [१.४७, २.४ सं(फल ७.१)] युद्ध में, रण क्षेत्र में

संग्रहेण [८.११ सं(राम ३.१)] संक्षेप से (में)

संग्रामम् [२.३३ सं(राम २.१)] युद्ध (को)

संघातः [१३.६ सं(राम १.१)] समूह, समुच्चय, संघटित शरीर रचना, शरीर

संजनयन् [१.१२ वि.(ध्यायत् १.१ (सम् + जन् + णिच् चुरा P + शतृ)] उत्पन्न करता हुआ

संजय [१.१ सं(राम ८.१)] हे संजय

संजयः [१.२.. सं(राम १.१)] संजय

संजयति [१४.९ (सम् + √जि. जय् P लट् ३.१)] संलग्न रहता है, जुड़ा रहता है

संजायते [२.६२, १३.२६, १४.१७ सम् + √ जन्-जा दिवा A लट् ३.१)] उठता है, उदय होता है, उत्पन्न होता है

संज्ञार्थम् [१.७ सं(राम २.१) (संज्ञायाः अर्थम्)] जानकारी के लिए

संतरिष्यसि [४.३६ (सम् + √ तृ भ्वा P लृट् २.१)] (तू) पार कर जाएगा

संतुष्टः [३.१७, १२.१४, १९ सं(राम १.१) (सम् √तुष् दिवा P + क्त)] संतुष्ट हुआ, संतोष पाया हुआ

संदृश्यन्ते [११.२७ (सम् √दृश् + कर्मणि A लट् ३.३)] दिखते हैं, दिखाई देते हैं

संनियम्य [१२.४ (अ.) (सम् + नि + √ यम् + ल्यप्)] संयम करके, वश में रखकर

संनिविष्टः [१५.१५ वि(राम १.१) (सम् + नि + √विश् भ्वा P + क्त)] बैठा हुआ, ठहरा हुआ

संन्यसनात् [३.४ सं(फल ५.१)] त्याग से

संन्यस्य [३.३०, ५.१३, १२.६, १८.५७ (अ.) (सम् + नि + √ अस् दिवा A/P + ल्यप्)] त्याग कर, अर्पण करके, छोड़कर

संन्यासः [५.२, ६, १८.७ सं(राम १.१)] संन्यास, (सं = सम् एक अव्यय जिसका व्यवहार शोभा समानता, उत्कृष्टता आदि सूचित करता है, न्यास = त्याग, गीता के अनुसार कामना से प्रेरित कर्मों का त्याग, (देखिए श्लोक १८.२)

संन्यासम् [५.१, ६.२, १८.२ सं(राम २.१)] संन्यास को

संन्यासयोगयुक्तात्मा [९.२८ सं(आत्मन् १.१) (संन्यासस्य योगेन युक्तः आत्मा यस्य सः)] वह जिसकी आत्मा संन्यास के योग से संतुलित है, वह जिसने अपने आप को संन्यास योग से संतुलित किया है

संन्यासस्य [१८.१ सं(राम ६.१)] संन्यास का

संन्यासिनाम् [१८.१२ सं(शशिन् ६.३)] संन्यासियों का, त्यागियों का

संन्यासी [६.१ सं(शशिन् १.१)] संन्यासी

संन्यासेन [१८.४९ सं(राम ३.१)] संन्यास से

संपत् [१६.५ सं(सम्पद् १.१)] सम्पन्नता, स्थायी निधि, संपत्ति

संपदम् [१६.३.४.५ सं(सम्पद् २.१)] स्थायी निधि को

संपद्यते [१३.३० (सम् + √ पद A लट् ३.१)] हो जाता है, होता है

संपश्यन् [३.२० वि.(ध्यायत् १.१) (सम् + √दृश् भ्वा P शतृ)] देखते हुए, विचार करते हुए

संप्रकीर्तितः [१८.४ वि(राम १.१) (सम् + प्र + √ कीर्त् चुरा + क्त)] वर्णन किया गया (है), कहा गया (है)

संप्रतिष्ठा [१५.३ सं(विद्या १.१)] नींव, आधार

संप्रवृत्तानि [१४.२२ वि(फल २.३) (सं + प्र + √वृत् भ्वा A + क्त)] प्राप्त होने पर, प्राप्त हुओं को

संप्रेक्ष्य [६.१३ (अ.) (सम् + प्र + √ ईक्ष् A भ्वा + ल्यप्)] दृष्टि डालकर, दृष्टि जमा कर

सच्छब्दः [१७.२६ सं(राम १.१) (सत् इति शब्दः)] सत् ऐसा शब्द

सज्जते [३.२८ (√ सज्ज् भ्वा A लट् ३.१)] आसक्त होता है, अनुरक्त रहता है

सज्जन्ते [३.२९ (√ सज्ज् भ्वा A लट् ३.३)] आसक्त होते हैं, अनुरक्त रहते हैं

सत् [९.१९, ११.३७, १३.१२, १७.२३, २६, २७ सं/वि(ध्यायत् १.१)] सत्, अस्तित्व

सतः [२.१६ सं(ध्यायत् ६.१) (√ अस् अदा. P + शतृ)] सत् का, विद्यमान का

सततम् [३.१९, ६.१०, ८.१४, ९.१४, १२.१४, १७.२४, १८.५७ (अ.)] सदा, सर्वदा, निरन्तर

सततयुक्ताः [१२.१ वि(राम १.३)] निरन्तर सन्तुलित, सदैव लीन, हरदम जुड़ा हुआ

सततयुक्तानाम् [१०.१० सं(राम ६.३) (सततं युक्तानाम्)] सदैव संतुलित रहने वालों का, निरन्तर लीन रहने वालो का

सति [१८.१६ वि.(ध्यायत् ७.१) (√ अस् अदा P + शतृ)] होने पर (में)

सत्कारमानपूजार्थम् [१७.१८ सं(राम २.१) (सत्कारः च मानः च पूजा च तासाम् अर्थम्)] आदर और सम्मान और पूजा और इनके निमित्त; सत्कार, मान और पूजा के लिए,

सत्त्वम् [१०.३६.४१, १३.२६, १४.५.६.९.१०.११, १७.१, १८.४० सं(फल १.१)] सत्यता, सत्य, वस्तु, पदार्थ, प्राणी, सत्त्वगुण समन्वय, सामंजस्य, सुव्यवस्था, अस्तित्व

सत्त्ववताम् [१०.३६ सं./वि(भवत् ६.३)] सत्यवादियों में, सत्यनिष्ठावानों में

सत्त्वसंशुद्धिः [१६.१ सं(मति १.१) (सत्त्वस्य संशुद्धिः)] प्राणी की शुद्धता, अन्तःकरण की निर्मलता, निर्मलतवृत्ति

सत्त्वसमाविष्टः [१८.१० वि(राम १.१)] सत्त्वगुण से व्याप्त, सत्त्वशील

सत्त्वस्थाः [१४.१८ सं(राम १.३) (सत्त्वे स्थिताः)] सत्त्वगुण में स्थित, सात्त्विक (वृत्तिवाले)

सत्त्वात् [१४.१७ सं(फल ५.१)] सत्त्वगुण से

सत्त्वानुरूपा [१७.३ वि(विद्या १.१) (सत्त्वस्य अनुरूपा)] मनुष्य के रूप के अनुसार, व्यक्तिगत स्वभावानुसार

सत्त्वे [१४.१४ सं(फल ७.१)] सत्त्व गुण में

सत्यम् [१०.४, १६.२.७, १७.१५, १७.६५ सं(फल १.१/२.१)] सत्य

सदसद्योनिजन्मसु [१३.२१ सं(जन्मन् ७.३) (सतीषु च असतीषु च योनिषु जन्मानि तेषु)] अच्छी और बुरी योनियों में जन्म लेने में

सदा [५.२८, ६.१५.२८, ८.६,१०.१७, १८.५६ (अ.)] सदा, सर्वदा, निरन्तर

सदृशः [१६.१५ वि(राम १.१)] समान

सदृशम् [३.३३, ४.३८ (अ.)] (के) जैसा, अनुरूप

सदृशी [११.१२] वि.(नदी १.१) समान

सदोषम् [१८.४८ वि(राम २.१)] दोष सहित, दूषित, दोषपूर्ण

सद्भावे [१७.२६ सं(राम ७.१)] यथार्थता के संदर्भ में

सन् [४.६ वि(ध्यायत् १.१) (√अस् अदा P शतृ)] होता हुआ

सनातनः [२.२४, ८.२०, ११.१८, १५.७ वि(राम १.१)] प्राचीन, पुरातन

सनातनम् [४.३१, ७.१० वि(फल २.१)] सनातन, शाश्वत, अनादि – अनन्त

सनातनाः [१.४० वि(राम १.३)] प्राचीन, चिरन्तन

सन्तः [३.१३ सं(ध्यायत् १.३) (√ अस् A + शतृ)] सत्पुरुष

सपत्नान् [११.३४ सं(राम २.३)] प्रतिद्वन्द्वी, शत्रु (बहुवचन)

सप्त [१०.६ (संख्या. वि पु प्रथमा)] सात, सप्त

समः [२.४८, ४.२२, ९.२९, १२.१८, १८.५४ वि(रामः १.१)] समरूप, बराबर

समक्षम् [११.४२ (अ.)] किसी के सामने दल, में टोली, में; संगति में

समग्रम् [४.२३, ७.१, ११.३० वि(फल २.१)] सब, सर्व, सम्पूर्ण

समग्रान् [११.३० वि(राम २.३)] सम्पूर्ण, सब को, सब मिलकर

समचित्तत्वम् [१३.९ सं(फल १.१)] समभाव, समानचित्तता एक चित्तता

समता [१०.५ सं(विद्या १.१)] समचित्तता, समबुद्धि

समतीतानि [७.२६ वि(फल २.३)] बीते हुए (को), जो हो चुके हैं, जो भूतकाल में थे

समतीत्य [१४.२६ (अ.) (सम् + अति + √ ई अदा P + ल्यप्)] पार करके, लांघ कर

समत्वम् [२.४८ सं(फल १.१)] समानता, समता, बराबरी, साम्य

समदर्शनः [६.२९ वि(राम १.१)] समान देखने वाला, एक बराबर देखने वाला

समदर्शिनः [५.१८ वि(शशिन् १.३)] समदर्शी, समान रूप से देखने वाले

समदुःखसुखः [१२.१३, १४.२४ वि(राम १.१) (समे दुःखं च सुखं च यस्य सः)] (वह जो) दुःख और सुख में समान है, सुख दुख में एकसा रहने वाला

समदुःखसुखम् [२.१५ वि(राम २.१) (समं दुःखं च सुखं च यस्य तम्)] उसको जिसके सुख और दुःख समान है, सुख दुःख में समान रहने वाले (को)

समधिगच्छति [३.४ (सम् + अधि + √ गम्-गच्छ् भ्वा P लट् ३.१)] प्राप्त करता है, पाता है

समन्ततः [६.२४ (अ.)] सब ओर से

समन्तात् [११.१७, ३० (अ.)] चारों ओर से, सब दिशाओं में

समबुद्धयः [१२.४ वि.(हरि १.३) (समा बुद्धिः येषां ते)] वे जिनकी बुद्धि एक समान है, सम स्वभाव वाले

समबुद्धिः [६.९ वि(हरि १.१) (समा बुद्धिः यस्य सः)] वह जिसका मन एकसा है, समान भाव रखने वाला

समम् [५.२९, ६.१३, ३२, १३.२७, २८ वि(राम २.१)] सीधा, सरल समरेखा में, समान, के बराबर, समभावी, एकसमान

समलोष्टाश्मकाञ्चनः [६.८, १४.२४ सं(राम १.१) (समानि लोष्टाश्म काञ्चनानि (समं लोष्टं च अश्मा च काञ्चनं च) यस्मै सः)] वह जिसके लिए एक समान है मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण

समवस्थितम् [१३.२८ वि(राम २.१)] एक समान रहते हुए, समभाव से रहने वाले को, एकभाव से स्थित

समवेताः [१.१ वि(राम १.३)] एकत्र हुए

समवेतान् [१.२५ वि(राम २.३)] एकत्र हुओं (को)

समाः [६.४१ सं(विद्या २.३)] वर्ष, संवत्सर

समागताः [१.२३ वि(राम १.३) (सम् + आ + √ गम् भ्वा. + क्त)] एकत्र हुए

समाचर [३.९, १९ (सम् + आ + √ चर् भ्वा P लोट् २.१)] पूरा करना, सम्पन्न करना, अच्छी तरह पूरा करना

समाचरन् [३.२६ वि.(ध्यायत् १.१) (सम् + आ + √ चर् भ्वा + शतृ)] करते हुए

समाधातुम् [१२.९ (अ.) (सम् + आ + √ धा जुहो A/P + तुमुन्)] स्थिर करना, लगाना

समाधाय [१७.११ (अ.) (सम् + आ + √ धा जुहो P ल्यप्)] निश्चित करके, स्थिर करके

समाधिस्थस्य [२.५४ वि(राम ६.१)] समाधि में बैठे हुए की

समाधौ [२.४४, ५३ सं(मति ७.१)] समाधिमें, चिन्तन मनन में

समाप्नोषि [११.४० (सम् + √ आप् स्वा P लट् २.१)] (तू) व्याप्त है

समारम्भाः [४.१९ सं(राम १.३)] (हर काम का) आरम्भ, प्रारम्भ

समासतः [१३.१८ (अ.) (समास + तसिल्)] संक्षेप में, थोड़े में

समासेन [१३.३, ६, १८.५० सं(राम ३.१)] एकीकरण (राशीकरण) से, संक्षेप में, सारांश में

समाहर्तुम् [११.३२ (अ.) (सम् + आ + √ हृ भ्वा P + तुमुन्)] सत्यानाश करने के लिए, संहार करने के लिए

समाहितः [६.७ वि(राम १.१)] सन्तुलित, एक समान रहता हुआ

समितिंजयः [१.८ सं(राम १.१) (समितिं जयति)] लड़ाई जीतने वाला , संग्रह, संकलन जमाव, जीतता है, (जो)

समिद्धः [४.३७ वि(राम १.१)] सुलगा हुआ, प्रदीप्त हुआ

समीक्ष्य [१.२७ (अ.) (सम् + √ ईक्ष् भ्वा A + ल्यप्)] देखकर

समुद्रम् [२.७०, ११.२८ सं(राम २.१)] समुद्र में (को)

समुद्धर्ता [१२.७ वि.(धातृ १.१)] उद्धार करने वाला, (से) मुक्ति दिलाने वाला, छुटकारा कराने वाला, मुक्तिदाता, परित्राता

समुपस्थितम् [१.२८, २.२ वि(फल १.१) (सम् + उप् + √ स्या भ्वा. P + क्त)] एक साथ खड़े हुए , उपस्थित, उत्पन्न हुआ

समुपाश्रितः [१८.५२ वि.(राम १.१) (सम + उप + आ √श्रि भ्वा + क्त)] शरण लेते हुए, लेता हुआ, आश्रित

समृद्धम् [११.३३ वि(फल २.१)] वैभव पूर्ण, विस्तृत

समृद्धवेगाः [११.२९ वि(राम १.३)] द्रुत गति से, बढ़ते हुए वेग से

समे [२.३८ वि(फल २.२)] समान, (दो) बराबर, तुल्य (दो)

समौ [५.२७ वि(राम २.२)] समान, बराबर, तुल्य, एक समान (दो)

सम्यक् [५.४, ८.१०, ९.३० (अ.)] यथाविधि विधिवत् , भली प्रकार से, एक साथ

सरसाम् [१०.२४ सं(मनस् ६.३)] सरोवरों में

सर्गः [५.१९ सं(राम १.१)] पुनर्जन्म, सृष्टि

सर्गाणाम् [१०.३२ सं(राम ६.३)] सृष्टियों में (का)

सर्गे [७.२७, १४.२ सं(राम ७.१)] सृष्टि में, संसार में, उत्पत्तिकाल में

सर्पाणाम् [१०.२८ सं(राम ६.३)] सर्पों में

सर्व [११.४०] हे सर्वरूप

सर्वः [३.५, ११.४०] सब, सबकुछ

सर्वकर्मणाम् [१८.१३ सं(कर्मन् ६.३) (सर्वेषां कर्मणाम्)] सब कर्मों की

सर्वकर्मफलत्यागम् [१२.११, १८.२ सं(राम २.१) (सर्वेषां कर्मणां फलस्य त्यागम्)] समस्त कर्मों के फल के त्याग (को)

सर्वकर्माणि [३.२६, ४.३७, ५.१३, १८.५६, ५७ सं(कर्मन् २.३) (सर्वाणि कर्माणि)] सब कर्म, सर्व कर्मों को

सर्वकामेभ्यः [६.१८ सं(राम ४.३) (सर्वेभ्यः कामेभ्यः)] सर्व वस्तुओं की इच्छाओं के लिए

सर्वकिल्बिषैः [३.१३ सं(फल ३.३) (सर्वैः किल्बिषैः)] सब पापों से

सर्वक्षेत्रेषु [१३.२ सं(फल ७.३) (सर्वेषु क्षेत्रेषु)] सब क्षेत्रों में

सर्वगतः [२.२४ वि(राम १.१) (सर्वस्मिन् गतः)] सर्व व्यापी

सर्वगतम् [३.१५, १३.३२ वि(फल १.१)] सब में व्याप्त, सर्वव्यापी

सर्वगुह्यतमम् [१८.६४ सं(फल २.१) (सर्वेभ्यः गुह्यतमम्)] सब गोपनीय (रहस्यों) में, सबसे अधिक गोपनीय

सर्वज्ञानविमूढान् [३.३२ वि.(राम २.३) (सर्वस्मिन् ज्ञाने विमूढान्)] सम्पूर्ण ज्ञान में विमूढ (भ्रम में पड़े हुए) मूर्खों को

सर्वतः [२.४६, ११.१६, १७.४०.१३.१३ (अ.)] सर्वत्र, सब जगह, सब ओर से, हर प्रकार से

सर्वतःपाणिपादम् [१३.१३ सं(फल १.१) (सर्वतः पाणयः च पादाः च यस्य तत्)] वह जिसके हाथ पैर हर कहीं हैं, सर्वत्र हाथ पैर वाला

सर्वतःश्रुतिमत् [१३.१३ वि.(जगत् १.१)] सब कहीं कान रखते हुए, जिसके कान हरस्थान में हैं

सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् [१३.१३ वि(राम २.१) (सर्वतः अक्षीणि च शिरांसि च मुखानि च यस्य तत्)] वह जिसके नेत्र सिर और मुख सर्वत्र हैं

सर्वत्र [२.५७, ६.२९.३०.३२, १२.४, १३.२८.३२, १८.४९ (अ.)] सर्वत्र, सब स्थान में, हर कहीं, सब प्रकार से

सर्वत्रगः [९.६ वि(राम १.१) (सर्वत्र गच्छति इति)] सब कहीं जाता है, सब कहीं विचरण करने वाला

सर्वत्रगम् [१२.३ वि(फल २.१)] सब कहीं विचरण करने वाला, सर्वव्यापी

सर्वथा [६.३१, १३.२३ (अ.)] हर कहीं, सब प्रकार से

सर्वदुःखानाम् [२.६५ सं(फल ६.३) (सर्वेषां दुःखानाम्)] सब दुःखों का, सम्पूर्ण पीड़ाओं का

सर्वदुर्गाणि [१८.५८ सं(फल २.३) (सर्वाणि दुर्गाणि)] सब विघ्न बाधाएं

सर्वदेहिनाम् [१४.८ सं(शशिन् ६.३) (सर्वेषां देहिनाम्)] सब देहधारियों का, सब प्राणियों का

सर्वद्वाराणि [८.१२ सं(फल २.३) (सर्वाणि द्वाराणि)] सब द्वारों को, इन्द्रियों को

सर्वद्वारेषु [१४.११ सं(फल ६.३) (सर्वेषु द्वारेषु)] सब द्वारों में

सर्वधर्मान् [१८.६६ सं(राम २.३) (सर्वान् धर्मान्)] सब धर्मों, कार्यों , कामों (को)

सर्वपापेभ्यः [१८.६६ सं(राम ५.३) (सर्वेभ्यः पापेभ्यः)] सब पापों से

सर्वपापैः [१०.३ सं(राम ३.३) (सर्वैः पापैः)] सब पापों से

सर्वभावेन [१५.१९, १८.६२ सं(राम ३.१) (सर्वेण भावेन)] पूर्णभाव से, सम्पूर्ण रूप से

सर्वभूतस्थम् [६.२९ वि(राम २.१) (सर्वेषु भूतेषु तिष्ठति तम्)] उसको (जो) सब प्राणियों में स्थित (है), टिका है

सर्वभूतस्थितम् [६.३१ वि(राम २.१) (सर्वेषु भूतेषु स्थितम्)] सब भूतों में स्थित (को)

सर्वभूतहिते [५.२५, १२.४ सं(फल ७.१) (सर्वेषां भूतानां हिते)] सब प्राणियों के कल्याण (हित) में

सर्वभूतात्मभूतात्मा [५.७ वि(आत्मन् १.१) (सर्वेषां भूतानाम् आत्मभूतः आत्मा यस्य सः)] वह जो सब प्राणियों की आत्मा को अपनी आत्मा बनाता है, सब प्राणियों को अपने जैसा मानने वाला

सर्वभूतानाम् [२.६९, ५.२९, ७.१०, १०.३९.१२.१३, १४.३, १८.६१ सं(फल ६.३) (सर्वेषां भूतानाम्)] सब प्राणियों का, भूतमात्र का

सर्वभूतानि [६.२९, ७.२७, ९.४, ७.१८.६१ सं(फल २.३/१.३) (सर्वाणि भूतानि)] सब सृष्टि (प्राणी)

सर्वभूताशयस्थितः [१०.२० (सर्वेषां भूतानाम् आशये स्थितः)] सब प्राणियों के हृदय में स्थित, (बैठा हुआ)

सर्वभूतेषु [३.१८, ७.९, ९.२९, ११.५५, १८.२० सं(फल ७.३) (सर्वेषु भूतेषु)] सब प्राणियों में, भूतमात्र में

सर्वभृत् [१३.१४ वि./सं(जगत् २.१) (सर्वं बिभर्ति इति)] सब का पोषण करता है (जो)

सर्वम् [२.१७, ४.३३.३६, ६.३० ७.७.१३.१९, ८.२२.२८, ९.४, १०.८.१४, ११.४०, १३.१३, १८.४६ सर्व(सर्व नपु १.१/२.१)] सब, सबको

सर्वयज्ञानाम् [९.२४ सं(राम ६.३) (सर्वेषां यज्ञानाम्)] सब यज्ञों का

सर्वयोनिषु [१४.४ सं(मति ७.३)] सब योनियों में, सब गर्भों में

सर्वलोकमहेश्वरम् [५.९ सं(राम २.१) (सर्वेषां लोकानां महेश्वरम्)] सब लोकों का महान् ईश्वर (को)

सर्ववित् [१५.१९ वि(तत्त्वविद १.१)] सर्वज्ञ, सब कुछ जानने वाला

सर्ववृक्षाणाम् [१०.२६ सं(राम ६.३) (सर्वेषां वृक्षाणाम्)] सब वृक्षों में, पेड़ो में

सर्ववेदषु [७.८ सं(राम ७.३) (सर्वेषु वेदेषु)] सब वेदों में

सर्वशः [१.१८, २.५८. ६८, ३.२३.२७, ४.११, १०.२, १३, १३.२९](अ.)] सब ओर से, सर्व प्रकार से, सर्वत्र

सर्वसंकल्पसंन्यासी [६.४ सं(शशिन् १.१) (सर्वेषां संकल्पानां संन्यासी)] सम्पूर्ण इच्छाओं को त्यागने वाला

सर्वस्य [२.३०, ७.२५, ८.९, १०.८, १३.१७, १५.१५, १७.३.७ सर्व(सर्व पु ६.१, नपु ६.१)] सब का, प्रत्येक का

सर्वहरः [१०.३४ वि(राम १.१) (सर्वं हरति इति)] सब का संहार कर्ता, सबका क्षय करने वाला

सर्वाः [८.१८, ११.२०, १५.१३ सर्व(सर्व स्त्री १.३/२.३)] सब, सभी, समस्त

सर्वाणि [२.३०.६१, ३.३०, ४.५.२७, ७.६, ९.६, १२.६, १५.१६ सर्व(सर्व नपु १.३/२.३)] सब, सब को

सर्वान् [१.२७, २.५५.७१, ४.३२, ६.२४, ११.१५ सर्व(सर्व पुं २.३)] सब (को)

सर्वारम्भपरित्यागी [१२.१६, १४.२५ वि(शशिन् १.१) (सर्वेषाम् आरम्भाणां परित्यागी)] सब (उपक्रमणों), कार्यों (का) त्यागी, (उपक्रमण = कार्यारंभ, सकाम कार्यों का आरम्भ)

सर्वारम्भाः [१८.४८ सं(राम १.३) (सर्वे आरम्भाः)] सब उद्यम, कार्य, व्यवसाय

सर्वार्थान् [१८.३२ सं(राम २.३) (सर्वान् अर्थान्)] सब वस्तुओं को

सर्वाश्चर्यमयम् [११.११ वि(राम २.१)] सब चमत्कारों से भरा

सर्वे [१.६.९.११, २.१२.७०, ४.१९.३०, ७.१८, १०.१३, ११.२२.२६.३२ ३६, १४.१ सर्व(सर्व पु १.३)] सब, सभी

सर्वेन्द्रियगुणाभासम् [१३.१४ वि(फल १.१) (सर्वेषाम् इन्द्रियाणां गुणेषु आभासः यस्य तत्)] वह जिसका वैभव सब इन्द्रियों के गुणों में है, जिसमें सब इन्द्रियों के गुणों का आभास होता है

सर्वेन्द्रियविवर्जितम् [१३.१४ वि(फल १.१) सर्वैः इन्द्रियैः विवर्जितम्)] सब इन्द्रियों को त्यागा हुआ है, सब इन्द्रियों से रहित है (जो)

सर्वेभ्यः [४.३६ सर्व(सर्व पु ५.३)] सब, (की अपेक्षा)

सर्वेषाम् [१.२५, ६.४७ सर्व(सर्व पु/नपु ६.३)] सब के

सर्वेषु [१.११, २.४६, ८.७.२०.२७, १३.२७, १८.२१.४४ सर्व(सर्व पु/नपु ७.३)] सब (में)

सर्वैः [१५.१५ सार्व.वि(सर्व पु ३.३)] सभी (के द्वारा)

सविकारम् [१३.६ वि(फल १.१)] विकारों सहित, रूपान्तरों सहित

सविज्ञानम् [७.२ वि(फल २.१) (विज्ञानेन सह)] विज्ञान सहित

सव्यसाचिन् [११.३३ सं(शशिन् ८.१) (सव्येन सचितुं शीलं यस्य सः)] वह जिसका स्वभाव है बाएँ हाथ से लक्ष्य करना, हे सव्यसाचिन्

सशरम् [१.४७ वि(राम २.१)] बाण के साथ-साथ

सह [१.२२, ११.२६, १३.२३ (अ.)] साथ, सहित

सहजम् [१८.४८ वि(फल १.१)] सहज, जन्मजात

सहदेवः [१.१६ सं(राम १.१)] सहदेव

सहयज्ञाः [३.१० वि.(विद्या २.३)] यज्ञ सहित, यज्ञ के साथ-साथ

सहसा [१.१३ (अ.)] अचानक, एकाएक

सहस्रकृत्वः [११.३९ (अ.)] सहस्रों बार

सहस्रबाहो [११.४६ सं(गुरु ८.१) (सहस्रं बाहवः यस्य सः)] वह जिसकी सहस्र भुजाएं हैं, हे सहस्रबाहो

सहस्रयुगपर्यन्तम् [८.१७ वि.(फल २.१) (सहस्रं युगानि पर्यन्तः यस्य तत्)] वह जिसकी सीमा सहस्र युग (है), सहस्रं युग तक का

सहस्रशः [११.५ (अ.)] सहस्रगुण, सहस्रधा, सहस्र प्रकार,

सहस्रेषु [७.३ वि(राम ७.३)] सहस्रों में , हजारों में

सा [२.६९ सर्व(तद स्त्री १.१)] वह (स्त्रीलिंग)

सांख्यम् [५.५ सं(फल २.१)] १. संख्या सम्बन्धी, छः दर्शनों में से एक - महर्षि कपिल कृत सांख्य दर्शन । इसमें सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम वर्णित है । मूल में प्रकृति और पुरुष, प्रकृति से उत्पन्न बुद्धि अहंकार, पांच महाभूत, और मन सहित ग्यारह इंद्रियां और उनके पांच विषय । सांख्य शास्त्र में ये २५ तत्त्वमाने गए हैं । इसमें ईश्वर की सत्ता नहीं है । त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही सृष्टि का विधान करती है । २. ज्ञान (श्लोक २.३९) ३. ज्ञान द्वारा कर्म संन्यास (श्लोक ५.४)] जैसा

सांख्ययोगौ [५.४ सं(राम १.२) (सांख्यः च योगः च)] सांख्य और योग

सांख्यानाम् [३.३ सं(राम ६.३)] सांख्यों का

सांख्ये [२.३९, १८.१३ सं(राम ७.१)] सांख्य सिद्धान्त में , सांख्य शास्त्र में , वेदांत में

सांख्येन [१३.२४ सं(फल ३.१)] ज्ञान, द्वारा, सांख्य सिद्धान्त से

सांख्यैः [५.५ सं(राम ३.३)] सांख्य योगियों द्वारा

साक्षात् [१८.७५ (अ.)] प्रत्यक्ष रीति से

साक्षी [९.१८ सं(शशिन् १.१)] दर्शक, साक्षी, जो तटस्थ हुआ सब के भावाभाव को देखता है

सागरः [१०.२४ सं(राम १.१)] सागर

सात्त्विकः [१७.११, १८.९, २६ वि(राम १.१)] सात्त्विक

सात्त्विकप्रियाः [१७.८ वि(राम १.३) (सात्त्विकानां प्रियाः)] सात्त्विक लोगों को प्रिय

सात्त्विकम् [१४.१६, १७.१७.२०, १८.२०.२३.३७ वि(फल १.१/२.१)] सात्त्विक, सत्त्वगुण युक्त

सात्त्विकाः [७.१२, १७.४ सं/वि(राम १.३)] पवित्र, शुद्ध, सात्त्विक, सत्त्व गुणात्मक

सात्त्विकी [१७.२, १८.३०, ३३ वि(नदी १.१)] सात्त्विक, सत्त्वगुणात्मक

सात्यकिः [१.१७ सं(हरि १.१)] सात्यकि, एक यादव जिसने महाभारत के युद्ध में पाण्डवों का पक्ष लिया था, युयुधान (देखें श्लोक १.४)

साधर्म्यम् [१४.२ सं(फल २.१)] समान भाव को, समरूपता को, समानता को

साधिभूताधिदैवम् [७.३० वि(राम २.१) (अधिभूतेन च अधिदैवेन च सह)] अधिभूत (मूल तत्त्व – आकाश पृथ्वी जल अग्नि वायु से संबन्धित) और अधिदैव (देवताओं से संबन्धित) के साथ-साथ

साधियज्ञम् [७.३० सं(राम २.१) (अधियज्ञेन सह)] अधियज्ञ के सहित

साधुः [९.३० सं(गुरु १.१)] साधु, धर्मात्मा, सदाचारी

साधुभावे [१७.२६ सं(राम ७.१)] साधुता के संदर्भ में

साधुषु [६.९ सं(गुरु ७.३)] साधुओं में

साधूनाम् [४.८ सं(गुरु ६.३)] साधुजन की, भले लोगों की

साध्याः [११.२२ वि(राम १.३)] साध्य लोग

साम [९.१७ सं(राम १.१)] सामवेद

सामर्थ्यम् [२.३६ सं(फल २.१)] शक्ति, बल

सामवेदः [१०.२२ सं(राम १.१)] सामवेद

सामासिकस्य [१०.३३ सं(राम ६.१) समासानां समूहः तस्य)] समासों के समूह, का (देखें गीता व्याकरण)

साम्नाम् [१०.३५ सं(नामन् ६.३)] साम अर्थात् गाने के योग्य वैदिक स्तोत्रों (में) स्तोत्र = किसी देवता का छंदोबद्ध स्वरूप कथन, वंदना या गुण कीर्तन, स्तुति

साम्ये [५.१९ सं(फल ७.१)] समता में, समत्व में, समान भाव में

साम्येन [६.३३ सं(फल ३.१)] समता से, साम्य से, साम्य बुद्धि से

साहंकारेण [१८.२४ सं(राम ३.१)(अहंकारः यस्य अस्ति तेन)] उससे जिसे अहंकार है, अहंकार के साथ

सिंहनादम् [१.१२ सं(राम २.१) (सिंहस्य नादम्)] सिंह की गरज, दहाड़, गर्जन

सिद्धः [१६.१४ वि(राम १.१)] सिद्ध, सर्वसम्पन्न , सिद्धियुक्त

सिद्धये [७.३, १८.१३ सं(मति ४.१)] पूर्णता के लिए, सिद्धिके लिए

सिद्धसंघाः [११.३६ सं(राम १.३)] सिद्धों के समुदाय

सिद्धानाम् [७.३, १०.२६ सं(राम ६.३)] सिद्धों में, पूर्णाता को जो प्राप्त हो चुके हैं, उनमें

सिद्धिः [४.१२ सं(मति १.१)] पूर्णता

सिद्धिम् [३.४, ४.१२, १२.१०, १४.१, १६.२३, १८.४५.४६.५० सं(मति २.१)] पूर्णत्व, सिद्धि सफलता, सम्पन्नता (को)

सिद्धौ [४.२२ सं(मति ७.१)] सफलता में,

सिद्ध्यसिद्ध्योः [२.४८.१८.२६ सं(मति ७.२) (सिद्धौ च असिद्धौ च)] सफलता और असफलता में, प्राप्ति और अप्राप्ति में

सीदन्ति [१.२९ (√ सद् भ्वा लट् P ३.३)] अशक्त होते, शिथल होते, ढीले हो रहे हैं

सुकृतदुष्कृते [२.५० सं(फल १.२) (सुकृतं च दुष्कृतं च)] अच्छे और बुरे कर्म

सुकृतम् [५.१५ सं(फल २.१)] सद्गुण

सुकृतस्य [१४.१६ वि(फल ६.१)] सत्कर्म का, अच्छे प्रकार से किए हुए का

सुकृतिनः [७.१६ वि(शशिन् १.३)] सदाचारी, अच्छे काम करने वाले, सुकर्मी

सुखदुःखसंज्ञैः [१५.५ सं(फल ३.३) (सुखं च दुःखं च संज्ञा येषां ते)] उनसे जिनके सुख दुःख नाम हैं, सुख दुःख नाम से पहचाने जाने वाले

सुखदुःखानाम् [१३.२० सं(फल ६.३) (सुखानां च दुःखानां च)] सुखों का और दुःखों का, सुख-दुःखों का

सुखदुःखे [२.३८ सं(फल २.२) (सुखं च दुःखं च)] सुख और दुःख

सुखम् [२.६६, ४.४०, ५.३.१३.२१, ६.२१.२७.२८.३२, १०.४, १३.६, १६.२३, १८.३६.३७.३८.३९ सं(फल १.१/२.१) (अ.)] सुख, सुख को, सरलता से

सुखसंगेन [१४.६ सं(राम ३.१) (सुखस्य संगेन)] सुख की आसक्ति से, सुख के साथ से

सुखस्य [१४.२७ सं(फल ६.१)] सुख का

सुखानि [१.३२, ३३ वि(फल १.३/२.३)] सुखों को, सुख आराम

सुखिनः [१.३७, २.३२ वि(शशिन् १.३)] प्रसन्न, सौभाग्यशाली

सुखी [५.२३, १६.१४ वि(शशिन् १.१)] सुखी

सुखे [१४.९ सं(फल ७.१)] सुख में

सुखेन [६.२८ सं(फल ३.१)] सरलता से, सुख से

सुखेषु [२.५६ सं(फल ७.३)] सुखों में

सुघोषमणिपुष्पकौ [१.१६ सं(राम २.२) (सुघोषं च मणिपुष्पकं च)] सुघोष और मणि पुष्पक को

सुदुराचारः [९.३० वि(राम १.१)] अत्यन्त दुष्ट, महापापी

सुदुर्दर्शम् [११.५२ वि(फल २.१)] दुर्लभ दर्शन वाले, (को); बहुत कठिनता से देखा जासके ऐसा

सुदुर्लभः [७.१९ वि(राम १.१)] बहुत कठिनता से मिलनेवाला, अत्यन्त दुर्लभ

सुदुष्करम् [६.३४ वि(फल २.१)] अत्यन्त कठिनाई से किया जाने वाला, अत्यन्त दुष्कर

सुनिश्चितम् [५.१ वि(फल २.१)] ठीक प्रकार से निश्चय कर के, निर्धारित करके

सुरगणाः [१०.२ सं(राम १.३) (सुराणां गुणाः)] देवता लोग, देवताओं के समूह

सुरसंघाः [११.२१ सं(राम १.३) (सुराणां संघाः)] देवताओं के समूह, झुण्ड, समुदाय

सुराणाम् [२.८ सं(राम ६.१)] देवताओं के

सुरेन्द्रलोकम् [९.२० सं(राम २.१) सुराणाम् इन्द्रस्य लोकम्)] देवताओं के राजा (इन्द्र) के लोक को

सुलभः [८.१४ वि(राम १.१)] सहज मिलने वाला, सरलता से प्राप्त होने वाला

सुविरूढमूलम् [१५.३ वि(फल २.१) (सुविरूढानि मूलानि यस्य तम्)] वह जिसकी जड़ें भली प्रकार विकसित हैं-बढ़ी हुई हैं, गहराई तक गई हुई जड़ों वाले

सुसुखम् [९.२ वि(राम २.१)] अति सुख देने वाला, अति सरल

सुहृत् [९.१८ सं(तत्त्वविद् १.१)] मित्र, प्रेमी

सुहृदः [१.२७ सं(तत्त्वविद् २.३)] स्नेहियों को, मित्रों को

सुहृदम् [५.२९ सं(मरुत् २.१)] प्रेमी, स्नेही, मित्र (को)

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु [६.९ सं.(गुरु ७.३) सुहृत्सु च

मित्रेषु च अरिषु च उदासीनेषु च मध्यस्थेषु च द्वेष्येषु च बन्धुषु च)] प्रिय मित्रों में, और सखाओं में, और शत्रुओं में और तटस्थजनों में, और मध्यस्थों में, और द्वेषियों में और बंधुओं में

सूक्ष्मत्वात् [१३.१५ सं(फल ५.१)] सूक्ष्मता से, सूक्ष्मता के कारण, बहुत वारीक या महीन होने से

सूतपुत्रः [११.२६ सं(राम १.१) (सूतस्य पुत्रः)] सूत (सारथि) पुत्र (कर्ण)

सूत्रे [७.७ सं(फल ७.१)] डोरी में, धागे में

सूयते [९.१० (√सू दिवा A लट् ३.१)] (वह) रचता है, उत्पन्न करता है

सर्यः [१५.६ सं(रामः १.१)] सूर्य

सूर्यसहस्रस्य [११.१२ सं(राम ६.१) (सूर्याणां सहस्रस्य)] सहस्र सूर्यों का

सृजति [५.१४ (√सृज् तुदा P लट् ३.१)] (वह) रचता है, उत्पन्न करता है

सृजामि [४.७ (√ सृज् तुदा P लट् १.१)] प्रसारित करता हूं, उत्पन्न करता हूं

सृती [८.२७ सं(मति २.२)] (दो) मार्गों को

सृष्टम् [४.१३ सं(फल १.१) (√सृज् तुदा P + क्त)] प्रकट हुए, निकला, उत्पन्न हुआ

सृष्ट्वा [३.१० (अ.) (√सृज् तुदा P + क्त्वाच्)] उत्पन्न करके

सेनयोः [१.२१, २४, २७, २.१० सं(विद्या ६.२/७.२)] (दो) सेनाओं के, (दो) सेनाओं में

सेनानीनाम् [१०.२४ सं(शशिन् ६.३) (सेनां नयन्ति इति तेषाम्)] सेना पतियों में

सेवते [१४.२६ (√सेव् भ्वा A लट् ३.१)] सेवा करता है, आराधना करता है

सेवया [४.३४ सं(विद्या ३.१)] सेवा से, सेवा द्वारा

सैन्यस्य [१.७ सं(फल ६.१)] सेना के

सोढुम् [५.२३, ११.४४ (अ.) (√सह् भ्वा A + तुमुन्)] सहन करना

सोमः [१५.१३ सं(राम १.१)] सोम, चन्द्र

सोमपाः [९.२० (सोमं पिबन्ति इति)] जो सोमरस पीते (हैं), सोमरस पीने वाले

सौक्ष्म्यात् [१३.३२ सं(फल ५.१)] सूक्ष्मता के कारण

सौभद्रः [१.६.१८ सं(राम १.१)] सौभद्र, सुभद्रा का पुत्र (अभिमन्यु)

सौमदत्तिः [१.८ सं(हरि १.१)] सोमदत्ति, सोमदत्त का पुत्र, भूरिश्रवा

सौम्यत्वम् [१७.१६ सं(फल १.१)] भद्रता, कोमलता, शान्त भाव

सौम्यम् [११.५१ सं(फल २.१)] शान्त, शीतल

सौम्यवपुः [११.५० वि(साधु १.१) (सौम्यं वपुः यस्य सः)] वह जिसका स्वरूप शीतल (शान्त, सौम्य) है, शान्ति मूर्ति

स्कन्दः [१०.२४ सं(राम १.१)] स्कन्द, कार्तिकेय

स्तब्धः [१८.२८ वि(राम १.१)] हठी, अक्खड़

स्तब्धाः [१६.१७ वि(राम १.३)] हठधर्मी, हठीले, हठी, अक्खड़

स्तुतिभिः [११.२१ सं(मति ३.३)] स्तोत्रों द्वारा, गीतों से, (स्तोत्र = किसी देवता का छंदोबद्ध गुण कीर्तन)

स्तुवन्ति [११.२१ (√ स्तु अदा P लट् ३.३)] (वे) स्तुति करते हैं, यशगान करते हैं

स्तेनः [३.१२ सं(राम १.१)] चोर, तस्कर

स्त्रियः [९.३२ सं(स्त्री १.३)] स्त्रियां

स्त्रीषु [१.४१ सं(स्त्री ७.३)] स्त्रियों में

स्थाणुः [२.२४ वि(गुरु १.१)] स्थिर, अचल, अटल

स्थानम् [५.५, ८.२८, ९.१८, १८.६२ सं(फल २.१)] स्थान, पद, स्थिति, नींव, आधार

स्थाने [११.३६ सं(फल ७.१)] ठीक है, (उचित) स्थान में

स्थापय [१.२१ (√ स्था भ्वा + णिच् लोट्२.१)] रोकिए, ठहराइए

स्थापयित्वा [१.२४ (अ.) (√ स्था भ्वा + णिच् + क्त्वाच्)] खड़ा करके, रोक कर

स्थावरजंगमम् [१३.२६ सं(राम २.१) (स्थावरं च जंगमं च)] अचर और चर, जड़ और जंगम

स्थावराणाम् [१०.२५ वि(राम ६.३)] स्थिर रहने वालों में, स्थिर पदार्थों में

स्थास्यति [२.५३ (√ स्था भ्वा P लृट् ३.१)] (तू) स्थिर होगा

स्थितः [५.२०, ६.१०.१४.२१.२२, १०.४२, १८.७३ वि(राम १.१)] स्थिर हुआ, स्थापित हुआ, स्थिर, जो डाँवाडोल न हो

स्थितधीः [२.५४.५६ वि(सुधी १.१) (स्थिता धीः यस्य सः)] वह जिसका मन स्थिर है, स्थिर बुद्धिवाला

स्थितप्रज्ञः [२.५५ सं(राम १.१)] स्थिर बुद्धि वाला

स्थितप्रज्ञस्य [२.५४ सं(राम ६.१) (स्थिता प्रज्ञा यस्य तस्य)] उसकी जिसकी बुद्धि स्थिर है, स्थिर बुद्धि वाले की

स्थितम् [५.१९, १३.१६.१५.१० वि(राम २.१) (फल २.१)] स्थित हुआ, स्थिर हुआ, ठहरा हुआ

स्थिताः [५.१९ वि(राम १.३)] स्थिर हुए, स्थापित हुए

स्थितान् [१.२६ वि(राम २.३) (√ स्था भ्वा P + क्त)] खड़े हुओं को

स्थितिः [२.७२, १७.२७ सं(मति १.१)] अवस्था, स्थिति, निष्ठा, दृढ़ता, दृढ़निश्चयता

स्थितिम् [६.३३ सं(मति २.१)] स्थिरता, स्थैर्य, अचलता, अटलता

स्थितौ [१.१४ वि.(राम १.२) (√स्था भ्वा. P + क्त)] (दो) खड़े हुए, ठहरे हुए

स्थित्वा [२.७२ (अ.) (√स्था भ्वा P + क्त्वाच्)] स्थिर होकर, स्थित होकर

स्थिरः [६.१३ वि(राम १.१)] स्थिर, स्थायी, एक समान

स्थिरबुद्धिः [५.२० वि(हरि १.१) (स्थिरा बुद्धिः यस्य सः)] वह जिसकी बुद्धि स्थिर है

स्थिरम् [६.११, १२.९ वि(फल २.१)] दृढ़ता से, स्थिर, अचल

स्थिरमतिः [१२.१९ वि.(हरि १.१) (स्थिरा मतिः यस्य सः)] वह जिसकी बुद्धि स्थिर है

स्थिराः [१७.८ वि(राम १.३)] पौष्टिक, सारवान्

स्थिराम् [६.३३ वि(विद्या २.१)] दृढ़, सुदृढ़

स्थैर्यम् [१३.७ सं(फल १.१)] स्थिरता, अटलता

स्निग्धाः [१७.८ वि(राम १.३)] चिकने, स्निग्ध स्नेहयुक्त

स्पर्शनम् [१५.९ सं(फल १.१)] स्पर्श इन्द्रिय, त्वचा

स्पर्शान् [५.२७ सं(राम २.३)] सम्पर्कों को

स्पृशन् [५.८ विं(ध्यायत् १.१) (√स्पृश् तुदा P शतृ)] स्पर्श करते हुए, छूते हुए

स्पृहा [४.१४, १४.१२ सं(विद्या १.१)] लालसा, इच्छा

स्म [२.३] पुनरुक्तात्मक उपपद जो 'मा' के साथ निषेध वाचक अर्थ में आता है जैसे मा स्म गमः

स्मरति [८.१४ (√स्मृ भ्वा P लट् ३.१)] स्मरण करता है

स्मरन् [३.६, ८.५.६ वि.(ध्यायत् १.१) (√स्मृ भ्वा + शतृ)] चिन्तन करता हुआ, स्मरण करता हुआ

स्मृतः [१७.२३ वि(राम १.१) (स्मृ भ्वा P + क्त)] स्मरण किया हुआ, स्मृति में कहा हुआ

स्मृतम् [१७.२०.२१, १८.३८ वि.(फल १.१) (√स्मृ भ्वा P + क्त)] स्मरण किया जाता है, माना जाता है, जाता है

स्मृता [६.१९ वि(विद्या १.१)] स्मरण की जाती है,

स्मृतिः [१०.३४, १५.१५, १८.७३ सं(मति १.१)] स्मरण शक्ति, ज्ञान, अभिज्ञान

स्मृतिभ्रंशात् [२.६३सं(राम ५.१) (स्मृतेः भ्रंशात्)] स्मृति के भ्रष्ट होने से

स्मृतिविभ्रमः [२.६३ सं(राम १.१) (स्मृतेः विभ्रमः)] स्मृति की भ्रान्ति (किंकर्तव्य विमूढ़ता, उलझन)

स्यन्दने [१.१४ सं(राम ७.१)] रथ (में)

स्यात् [१.३६; २.७, ३.१७, १०.३९, ११.१२, १५.२०, १८.४० (√ अस् अदा P विधि ३.१)] संम्भवतः हो सकता है, हो

स्याम् [३.२४, १८.७० (√ अस् अदा P विधि १.१)] (मैं) होऊं, संभवतः

स्याम [१.३७ (अस्. अदा. P विधि. १.३)] हम होवें, हों

स्युः [९.३२ (√ अस् अदा P विधिलिङ् ३.३)] (चाहे) होवें

स्रंसते [१.३० (सम् + √ सृ भ्वा A ३.१)] खिसकता है

स्रोतसाम् [१०.३१ सं(मनस् ६.३)] नदियों में, सरिताओं में

स्वकम् [११.५० वि(राम २.१)] अपना, निजी

स्वकर्मणा [१८.४६ सं(कर्मन् ३.१)] अपने कर्म से

स्वकर्मनिरतः [१८.४५ वि(राम १.१) (स्वस्य कर्मणि निरतः)] अपने काम में लगा हुआ, अपने काम में व्यस्त

स्वचक्षुषा [११.८ सं(धनुस् ३.१)] अपनी आंखों से, निजी नेत्रों से

स्वजनम् [१.२८, ३१, ३७, ४५ सं(राम २.१) (स्वस्य जनम्)] निजके लोगों (को)

स्वतेजसा [११.१९ सं(मनस् ३.१)] अपने प्रकाश से

स्वधर्मः [३.३५, १८.४७ सं(राम १.१)] अपना धर्म

स्वधर्मम् [२.३१.३३ सं(राम २.१) (स्वस्य धर्मम्)] निजकर्तव्य को, स्वधर्म को

स्वधर्मे [३.३५ सं(राम ७.१)] अपने धर्म में

स्वधा [९.१६ सं(विद्या १.१)] पितरों को चढ़ाया जाने वाला अन्न, पितरों को प्रदान की जाने वाली बलि

स्वनुष्ठितात् [३.३५, १८.४७ वि(राम ५.१)] सकुशल कार्यान्वित की अपेक्षा, ठीक तरह किये हुए से

स्वपन् [५.८ वि(ध्यायत् १.१) (√ स्वप् अदा P शतृ)] सोता हुआ

स्वप्नम् [१८.३५ सं(राम २.१)] निद्रा (को)

स्वबान्धवान् [१.३७ सं(राम २.३)] अपने संबन्धियों को

स्वभावः [५.१४, ८.३ सं(राम १.१)] अपना स्वभाव, (आत्मा का) मूलस्वरूप, प्रकृति, मूलभाव

स्वभावजम् [१८.४२, ४३.४४ सं(फल १.१) (स्वभावात् जातम्)] स्वभाव से उत्पन्न, सहज, स्वाभाविक

स्वभावजा [१७.२ वि(राम १.३) (स्वभावात् जाता)] अपने स्वभाव से उत्पन्न, स्वभावतः उत्पन्न हुई

स्वभावजेन [१८.६० वि(फल ३.१)] (अपने) स्वभाव से उत्पन्न, स्वभाव जन्य

स्वभावनियतम् [१८.४७ वि(फल २.१) (स्वभावेन नियतम्)] अपने स्वभाव द्वारा निर्धारित

स्वभावप्रभवैः [१८.४१ वि(राम ३.३) (स्वभावात् प्रभवः येषां तैः)] उनसे जिनका उद्‌गम अपने स्वभाव से (है), स्वभाव जन्य, स्वभाव से उत्पन्न

स्वम् [६.१३ वि(फल २.१)] (उसका) अपना

स्वयम् [४.३८, १०.१३.१५, १८.७५ सर्व(स्व पु २.१)] अपने आप, स्वयं

स्वया [७.२० वि(विद्या ३.१)] अपने से, अपनी प्रकृति द्वारा

स्वर्गतिम् [९.२० सं(मति २.१)] स्वर्ग-मार्ग, स्वर्ग की ओर जाने को, स्वर्ग प्राप्ति को

स्वर्गद्वारम् [२.३२ सं(फल १.१) (स्वर्गस्य द्वारम्)] स्वर्ग के द्वार (को)

स्वर्गपराः [२.४३ वि(राम १.३) (स्वर्गः परः येषां ते)] वे जिनका उच्चतम (लक्ष्य) है स्वर्ग

स्वर्गम् [२.३७ सं(राम २.१)] स्वर्ग (को)

स्वर्गलोकम् [९.२१ सं(राम २.१)] स्वर्ग लोक (को)

स्वल्पम् [२.४० वि(फल १.१)] थोड़ा, अल्प, कुछ ही, किंचित्

स्वस्ति [११.२१ (अ.) (√ अस् अदा P ल· ३.१) (सु + अस्ति)] भला हो, कल्याण हो

स्वस्थः [१४.२४ वि(राम १.१) (स्वात्मनि स्थितः)] आत्मस्थ, अपने आप में स्थित, स्वस्थ

स्वस्याः [३.३३ सार्व वि.(स्व. स्त्री. ६.१)] अपनी

स्वाध्यायः [१६.१ सं(राम १.१)] स्वाध्याय, अपने आप का अध्ययन वेदाध्ययन

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः [४.२८ वि(राम १.३) (स्वाध्यायः च ज्ञानं च यज्ञः येषां ते)] वे जिनका यज्ञ स्वाध्याय और ज्ञान है, स्वाध्याय और ज्ञान यज्ञ करने वाले

स्वाध्यायाभ्यसनम् [१७.१५ सं(फल १.१) (स्वाध्यायस्य अभ्यसनम्)] स्वाध्याय का अभ्यास धर्म ग्रन्थों का अभ्यास

स्वाम् [४.६, ९.८ वि(विद्या २.१)] मेरी, अपनी

स्वे [१८.४५ सर्व(सर्व ७.१)] अपने (में)

स्वेन [१८.६० सर्व(सर्व ३.१)] अपने से, अपने द्वारा

ह

ह [२.९ (अ.)] एक उपपद, अपने से पूर्वगत शब्द पर बल देने वाला अव्यय, सचमुच, निश्चय

हतः [२.३७, १६.१४ वि.(राम १.१)

हतम् [२.१९ वि.(राम २.१) (√हन् अदा P + क्त)] मारे हुए (को)

हतान् [११.३४ वि(राम २.३)] मारे हुओं को

हत्वा [१.३१.३६.३७, २.६, १८.१७ क्रि वि (अ.) (√हन् अदा P + क्त्वाच्)] मार कर

हनिष्ये [१६.१४ (√हन् अदा A लृद् १.१)] (मैं) बध करूंगा, मारूंगा

हन्त [१०.१९ (अ.)] अच्छा, ठीक है, तेरा कल्याण हो, यही सही

हन्तारम् [२.१९ वि(धातृ २.१)] मारने वाले को, वधिक को

हन्ति [२.१९, २१, १८.१७ (√ हन् अदा P लट् ३.१)] मारता है, हनन करता है

हन्तुम् [१.३५.३७.४५ क्रि वि (अ.) (√ हन् अदा + तुमुन्)] मारना, हत्या करना (के लिए)

हन्यते [२.१९.२० (√हन् अदा कर्म-वाच्य A लट् ३.१)] मारा जाता है

हन्यमाने [२.२० वि.(राम ७.१) (√ हन् + शानच्)] हनन होने (में), मारे जने (में)

हन्युः [१.४६ (√हन् विधि ३.३)] चाहे मार डालें

हयैः [१.१४ सं(राम ३.३)] घोड़ों के साथ, द्वारा

हरति [२.६७ (√ हृ भ्वा P लट् ३.१)] (वह) हर लेता है, भगा ले जाता है

हरन्ति [२.६० (√हृ भ्वा P लट् ३.३)] (वे) हर लेती हैं

हरिः [११.९ सं(हरि १.१)] हरि

हरेः [१८.७७ सं(हरि ६.१)] हरि का

हर्षम् [१.१२ सं(राम २.१)] आनन्द आह्लाद

हर्षशोकान्वितः [१८.२७ वि(राम १.१) (हर्षेण च शोकेन च अन्वितः)] हर्ष और शोक से युक्त, घिरा हुआ

हर्षामर्षभयोद्वेगैः [१२.१५ सं(राम ३.३) (हर्षस्य च अमर्षस्य च भयस्य च उद्वेगैः)] हर्ष, अमर्ष (क्रोध), भय, और उत्तेजना (अशान्ति) से

हविः [४.२४ सं(हविस् १.१)] हवन की वस्तु, बलि

हस्तात् [१.३० सं(राम ५.१)] हाथ से

हस्तिनि [५.१८ सं(शशिन् ७.१)] हाथी में

हानिः [२.६५ सं(मति १.१)] विनाश, ध्वंस

हि [१.११(अ.)] सचमुच, एक पाद पूरक उपपद, निश्चय ही

हिंसात्मकः [१८.२७ वि(राम १.१) (हिंसा आत्मनि यस्य सः)] वह जिसकी आत्मा में निर्दयता (निष्ठुरता) है, क्रूर, निर्दय, निष्ठुर

हिंसाम् [१८.२५ सं(विद्या २.१)] क्षति, चोट

हितकाम्यया [१०.१ सं(विद्या ३.१) (हितस्य काम्यया)] भलाई की इच्छा से, हितेच्छा से

हितम् [१८.६४ सं(फल २.१)] लाभ भलाई

हितान् [७.२२ वि(राम २.३)] लाभ, फल

हित्वा [२.३३ (अ) (√ हा जुहो P + क्त्वाच्)] फेंक कर, गवां कर

हिनस्ति [१३.२८ (√ हिंस् रुधा P लट् ३.१)] मार डालता है, वध करता है

हिमालयः [१०.२५ सं(राम १.१)] हिमालय

हुतम् [४.२४, ९.१६.१७.२८ वि(फल १.१)] होम हवन किया हुआ

हृतज्ञानाः [७.२० संवि(राम १.३) (हृतं ज्ञानं येषां ते)] वे जिनका ज्ञान हर लिया गया है, नष्ट हुए ज्ञान वाले

हृत्स्थम् [४.४२ वि(फल २.१)] हृदय में स्थित, मन में बैठे हुए

हृदयदौर्बल्यम् [२.३ सं(फल २.१) (हृदयस्य दौर्बल्यम्)] हृदय की दुर्बलता, असमर्थता

हृदयानि [१.१९ सं(फल २.३)] हृदयों (को)

हृदि [८.१२, १३.१७, १५.१५ सं(तत्त्वविद् ७.१)] हृदय में

हृद्देशे [१८.६१ सं(राम ७.१) (हृदः देशे)] हृदय स्थान में

हृद्याः [१७.८ वि(राम १.३)] शक्तिवर्धक, रुचिकर

हृषितः [११.४५ वि(राम १.१)] आनन्दित, प्रसन्न हुआ

हृषीकेश [११.३६, १८.१ सं(राम ८.१)] हे हृषीकेश

हृषीकेशः [१.१५.२४, २.१० सं(राम १.१) (हृषीकाणाम् ईशः)] हृषीकेश, इन्द्रियों के स्वामी

हृषीकेशम् [१.२१, २.९ सं(राम २.१)] हृषीकेश को

हृष्टरोमा [११.१४ वि(१.१) (हृष्टानि रोमाणि यस्य सः)] वह जिसका रोमांच हुआ है, रोमांचित, पुलकित

हृष्यति [१२.१७ (√ हृष् दिवा P लट् ३.१)] आनन्द मनाता है, रंगरलियां करता है

हृष्यामि [१८.७६.७७ (√ हृष दिवा P लट् १.१)] (मैं) प्रसन्न होता हूं, आह्लादित होता हूं, आनन्द मनाता हूं, आनन्दित होता हूं

हे [११.४१ (अ.)] हे, अरे

हेतवः [१८.१५ सं(गुरु १.३)] कारण, हेतु

हेतुः [१३.२० सं(गुरु १.१)] कारण, हेतु

हेतुना [९.१० सं(गुरु ३.१)] कारण से, हेतु से

हेतुमद्भिः [१३.४ वि(धीमत् ३.३)] तर्क या युक्ति का आश्रय लेने वालों द्वारा

हेतोः [१.३५ सं(गुरु ५.१)] के लिए

ह्रियते [६.४४ (√ हृ भ्वा A कर्मणि लट् ३.१)] बहा जाता है, उड़ाया जाता है, खींचा जाता है

ह्रीः [१६.२ सं(श्री १.१)] शील संकोच, विनय, सलज्जता